- **सुनें–समझें और करें**
- **जीवन की संपूर्णता**
- **मानस में राम चरित**
- **सार्वभौम धर्म–अध्यात्म**
- **महात्माओं का विज्ञान**

यह बताया जाय कि यदि हम सब लोग अंधेरे में बैठकर दिया, बत्ती, लालटेन, सूरज, चन्द्रमा और बिजली की खूब बात करें, तो क्या अंधेरा भाग जाएगा? कब भागेगा? जब दीपक जलाएंगे। दीपक की बातें करते रहें, दीपक न जलाएं, कैसे अंधेरा जाएगा?

'निशि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई।'

खीर, मालपुआ, लड्डू, जलेबी, रसगुल्ला, मलाई की खूब बातें करें और उसमें हाथ न लगायें–खायें न उसे, तो क्या पेट भरेगा? खाने से ही पेट भरेगा।

इसी तरह यह साधन–भजन, ज्ञान–ध्यान की बातें करते रहने से कुछ होता नहीं। जब तक इसे क्रिया में नहीं ले लेते हैं, तब तक इसका परिणाम नहीं आता। यह साधना का जो विषय है, इसमें केवल थ्योरी से काम नहीं चलता। प्रैक्टिकल करने का विषय है यह। व्यक्तिगत अपने करने का है। इसलिए सुनें, समझें और फिर करें।

कितने शास्त्रों में, गीता रामायण में, पुराणों में ज्ञान भरा पड़ा है। लोग पढ़ते हैं, सुनते–सुनाते हैं। बड़े–बड़े राम कृष्ण आदि महापुरुष संसार का दुख दूर करने आए, तो क्या दुख संसार से चला गया? वास्तव में सुख–दुख दोनों साथ रहते हैं। सभी सुख चाहते हैं। दुख कोई नहीं चाहता है, फिर भी दुख रहता है, रहेगा। क्योंकि दुनिया सुख चाहती है। और सुख होने के लिए दुख का होना ज़रूरी है। सुख–दुख के सापेक्ष हैं। इसलिए दुनिया में ये दोनों रहेंगे। हाँ सुख की चाह में मानव ने जो खोज की है, वह आध्यात्मिक–साधना के रूप में सामने आई। यही एक मार्ग है, लेकिन यह सफर लम्बा है।

''लम्बा मारग दूर घर अगम पंथ बड़ि मार।''

रास्ता चलने से ही तय होगा। यह जो कहना सुनना है, इसके साथ–साथ, साधन –पथ पर चल पड़ना ही मुख्य बात है। ''हम उन ऋषियों–मुनियों की संतान हैं जिन्होंने जीवन को सही अर्थों में जिया है, और हमें भी उसका रास्ता बताया है। जीवन की संपूर्णता केवल शरीर के लिए जीवन बिता देने में नहीं है। वास्तव में जीवन, इससे कुछ बड़ी चीज़ है। हमें विचार करना चाहिए कि हमारे पूर्वज–ऋषियों ने हमें जीवन जीने की जो शैली प्रदान की है, क्या हम उसके अनुसार चल रहे हैं? उन्होंने भौतिक जीवन के साथ–साथ आध्यात्मिक जीवन को भी लिया है। बल्कि अध्यात्म को ही प्राथमिकता दी है। अनेक महापुरुष जन्म से ही विरक्त होते थे। किन्तु आध्यात्मिक उपलब्धि के बाद उन्होंने सृष्टि की प्रक्रिया में सहभागी होकर, संतानें भी पैदा कीं। यहीं चित्रकूट में अत्रि जी, माता अनसूया के साथ रहे। तो हमें सबसे ज़्यादा ध्यान इस बात पर देना होगा, कि हम शरीर के लिए दिनभर नौकरी–व्यापार, धंधा करते रहते हैं। तो फिर आत्मा के लिए भी कुछ समय निकालें। हम अपने जीवन का अधिकांश उपयोग शरीर के लिए ही करते हैं। सबेरे से शाम तक, रातो–दिन, आदमी जो भी करता है, सब कुछ शरीर के लिए करता है। इसी के सुख को सुख और दुख को दुख मानता है। कुछ थोड़ा अपने मन के लिए भी कर लेता है। किन्तु खाना पीना, सोना, जागना, धंधा करना सभी कुछ शरीर के लिए करता रहता है। जीवात्मा अपने लिए कुछ भी नहीं

करता। उसे आत्मकल्याण के लिए भी कुछ करना चाहिए। जैसे शरीर भोजन के बिना नहीं चल सकेगा, वैसे ही आत्मा को शान्ति चाहिए। इसके लिए आवश्यक है, कि शरीर की जरूरतें पूरी करने के साथ–साथ, हमें अपने लिए, अपनी आत्मा के लिए भी कुछ करना चाहिए। आप लोग जो भी कुछ करते हैं। उसे करते रहें। उसे शरीर के लिए, शरीर के संबधियों के लिए, करते रहें। सारा दिन काम में बिताने के बाद, रात में विस्तर में जाते समय विचार करें, कि दिन भर का समय हमने क्या केवल शरीर के लिए ही नहीं बिताया? क्या आत्मा के प्रति भी हमारा कोई कर्तव्य है? वास्तव में विचार करने पर स्वयं निर्णय मिलेगा, कि आत्मिक सुख के लिए भी हमें कुछ करना चाहिए। प्रारम्भ में केवल इतना ही किया जाय, कि सोने के पहले विस्तर पर ही बैठकर, थोड़ी देर के लिए अपने इष्ट का स्मरण करें, दो चार नाम लें। भगवान के सामने विनम्रभाव से प्रस्तुत होकर प्रार्थना करें, कि हे प्रभु! मैंने आपकी प्रेरणा के अनुसार, दिन भर सांसारिक कार्यों में बिताया, अब आपके सामने हाज़िर हूँ। मैं अज्ञान हूँ, मेरी त्रुटियों को क्षमा करेंगे, और मुझे सही दिशा में चलाते रहेंगे। सबेरे उठकर सर्वप्रथम अपने इष्ट का ही ध्यान और प्रार्थना करें। प्रतिदिन इतना नियम से करते रहने पर, आत्मा को खूराक मिलने लगेगी। भजन का मार्ग प्रशस्त होगा। रोजाना की हाजिरी का, इस लाइन में बड़ा महत्व है। धीरे–धीरे, ज्यों–ज्यों अनुराग बढ़ेगा, प्रगति होगी। किसी संत सतगुरू के रूप में, भगवान, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष मार्गदर्शन करने लगेंगे। फिर तो कोई समस्या ही नहीं रहेगी। भजन का क्रम, जब एक बार प्रारम्भ होता है, तो फिर टूटता नहीं। उसमें बाधाएं तो आती हैं, पर उसका रस जब जीवात्मा को मिल जाता है, तो बार–बार उसकी ओर आएगा। हाँ इसमें साधक को सावधान और दृढ़ रहना चाहिए। क्योंकि माया के क्षेत्र से जब कोई भी ईश्वर के क्षेत्र में जाता है, तो माया को यह अच्छा नहीं लगता। वह उसे अपनी ओर खीचने का प्रयत्न करती है। तरह–तरह की बाधाएं कष्ट या प्रलोभन, उसे भजन के मार्ग से हटाने को, आ खड़े होते हैं। ऐसे में साधक को भगवान सेप्रार्थना करते रहना चाहिए। और माया से भी हाथ जोड़कर कहें, कि वह भी अनुकूल रहे। कभी–कभी कठिन परीक्षा हो जाती है। यदि साधक सबको पार करता हुआ आगे बढता गया, तो लक्ष्य तक अवश्य पहुँच जाता है।

अध्यात्म बिल्कुल एक व्यक्तिगत चीज़ है–साधना, समूह में या मंडल में नहीं होती। एक आदमी अपने में साधना करके पूर्णता पाले, तो फिर उससे प्रेरणा लेकर दूसरे भी करें। तुलसी दास ने रामायण का नाम राम चरित मानस रखा है। उनके साधना की थीसिस है यह मानस। राम के चरित मन से। देखिये, भगवान तो देशकाल से बाधित है नहीं। राम त्रेता में हुए आज नहीं हैं। जब वे थे, उन्होंने सबका कल्याण किया। अब जो राम आज भी हैं, वही हमारा कल्याण कर सकता है। राम का देश–काल अबाधित रूप आत्मा का है। राम कहते हैं–

''अवध सरिस मोहि प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ।''

शरीर ही अवध है। दश इन्द्रियों में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब ही दशरथ है। भक्ति कौशिल्या है, कर्म कैकेई, सुमति सुमित्रा, भाव भरत, विवेक लक्ष्मण, सत्य शत्रुघन है, फिर विश्वास रूपी विश्वामित्र के आने पर, तर्क रूपी ताड़का को मारकर, आगे जनकपुर में सीता को वरण करते हैं। फिर आगे मोह रावण है। क्रोध कुंभकर्ण, लोभ नांरातक, काम–मेघनांद और मन के सारे विकार राक्षस हैं। वैराग्य, रूपी हनुमान, सुरति, सुग्रीव, अनुराग, अंगद, नियम, नील, नल आदि वानरी सेना के द्वारा मोह का कुटुंब सहित विनाश करके, जीव रूपी विभीषण का कल्याण करते हैं–उसे राजा बना देते हैं। तो यह सब असली रामायण अपने

अंदर की है। बाहर के कथानकों में तुलसीदास ने, अपने भीतर की साधना–प्रक्रिया को अभिव्यक्त किया है। मानस की अनुभूतियों को राम–चरित के साथ जोड़कर कहा है। सभी ऋषियों ने संतो ने इसी प्रकार अपने अनुभव कहे हैं। आज लोग बाहर की बात ले लेते हैं। उसके मूल तत्व को नहीं पकड़ते। वस्तुतः असली साधन–सत्संग, अपने अंतःकरण का है, बाहर का नहीं। हाँ प्रारम्भ में कथा, कीर्तन का महत्व है। जब तक उसे सही साधना–प्रक्रिया का बोध नहीं मिल जाता, तब तक वह ऊपर की बातों में फंसा रहता है। जैसे छोटी बच्चियाँ, गुड़िया, गुड्डा का खेल खेलती हैं। बड़ी हो गईं, और शादी होने पर जब ससुराल में आती हैं, तो फिर गुड्डा–गुड़िया वहीं पड़े रह जाते हैं। ऐसे ही बाहरी कथा–सत्संग का महत्व है। एक प्रकार से इस पढ़ाई की यह प्राइमरी क्लास है। इसे करना अच्छा तो है, किन्तु इसी को पकड़ कर बैठ जाना बुरी बात है। कोई जीवन भर प्राइमरी ही पढ़ता रहे, तो आप क्या कहेंगे? साधना की भी कक्षाएं हैं। एक–एक कर पास करना होगा, और तभी एक दिन इसमें मास्टर डिग्री ले सकेंगे।

हम जब रामायण या महाभारत सुनते हैं, तो हमारे मन में बाहर की घटनाओं के चित्र बनते हैं। यह ढंग गलत है। इन सारी घटनाओं को सारे, पात्रों को, सारे प्रसंगों को, अपने अन्तर्जगत में ढालकर लेना होगा। भला बताइये, हमारे तत्वदर्शी ऋषि–मुनि जो इस संसार को मिथ्या जानते थे, वे क्यों फिर संसार की घटनाएं लिखते फिरेंगे? ऋषियों ने अपने साधन–पथ का व्याख्यान, इन घटनाओं के माध्यम से किया है। एक साधक को इन कथाओं का पठन–पाठन यथार्थ के धरातल पर करना चाहिए।

मानस में सबसे बड़ी है गुरू की बंदना। उनके पैरों का, चरणों के नख का स्मरण करके उनकी चरण–रज की वंदना से मानस की शुरूआत हुई है।

बंदऊं गुरू पद पदुम परागा।
सुरुचिसुवाससरस अनुरागा।।
– – – –
श्रीगुरूपद नखमनिगन जोती।
सुमरितदिव्यदृष्टिहिय होती।।
– – – –
गुरूपदरजमृदु मंजुल अंजन।
नयनअमियदृगदोष विभंजन।।

तो मानस की प्रवेशिका के पहले जो हमारा गाइड है, मार्गदर्शक है अंतःकरण का, उसका स्मरण कर लेना, उसका वंदन कर लेना ही बड़ी बात है। उसके बाद सबसे पहले मनु सतरूपा का प्रसंग आता है। आजकल बड़ी चर्चा रहती है–मनुवादी हैं। तो ये गीता, रामायण, भागवत, पुराण सब ब्राह्मण ग्रंथ हैं। ये सब साधु या धर्मग्रंथ हैं। ऐसी परंपराये हैं, इनमें, कि जो लोग इसमें भाग लिये या जिनका विशेष रूप से इन ग्रंथों में वर्णन है, उनका बड़ा आदर रहा है भारत में, और जिनका नहीं हुआ जो निम्न श्रेणी के माने गये, उसको आज भी लोग अच्छा नहीं समझते। वैसे अब बोलने का मौका मिला है लोगों को। और यह समाज को बदलने के लिये ठीक भी है, लेकिन लोग उसे बाद में ले लेते हैं–जातिवाद में ले लेते हैं। सही एडजस्टिंग ऊपर वाले लोग नहीं कर पाते, और झगड़ा पैदा कर देते हैं। अगर

इसको अध्यात्म में ले लिया जाय तो इससे समाज का बड़ा काम यह होगा, कि जातिवाद खतम होगा, इससे रूढ़िवाद खतम होगा। और इससे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि जो इसमें तमाम लोग मारे जाते हैं–धर्म के नाम पर लोग मर जाते हैं, कट जाते हैं। फिर इस तरह से तमाम धर्मों की उत्पत्ति होती है। वितंडावाद तैयार होता है और सही धर्म लुप्तप्राय हो जाता है। धर्म के विषय में, मज़हब के विषय में, सम्प्रदाय के विषय में, अगर विवाद उठा तो झगड़ा ज़रूर खड़ा हो जाता है। और फिर जो धर्म का मूल सिद्धान्त है, उसको खतम कर देता है, यह झगड़ा। हर बात में झगड़े का रूप आ जाता है। इसलिए यदि समाज को, धर्म को, मज़हब को, अगर झगड़े से बचाना है, तो इसके लिए भी, बड़ी भारी आवश्यकता है, कि इसे अध्यात्म में घटाना चाहिए। दूसरा कोई तरीका नहीं है। हम उन महानुभावों से एक बात कहते हैं, जो बहुत बड़ी आस्था रखते हैं भगवान में, और बहुत आस्था रखते हैं धर्म में, कि उनको भी थोड़ा सोचना चाहिए, कि अलग–अलग न मानकर एक ही भगवान माने, एक ही धर्म माने, एक ही जाति मानव जाति मान लें, तो यह विवाद खतम हो जाय। एक ही मज़हब मान लें, तो बात जहाँ की तहाँ है–कोई कहता है–राम लक्ष्मण दशरथ, कोई कहता है ईशु तेरी रहमत, कोई कहता है अल्ला तेरी कुदरत। है सब बराबर। उसमें कोई अन्तर नहीं है। आला ताला वाले भी उसी तरह खुदा को मानते हैं, जैसे हिन्दू लोग भगवान को मानते हैं। हिन्दू भी भगवान से दया की भीख मांगते रहते हैं, दिन रात मूड़ी पटकते रहते हैं। वे भी खुदा से रहम मांगते रहते हैं। हे हे आला ताला, रहमाने मुसल्लम! मुझे तुम निहाल कर दो, मेरे ऊपर रहम कर दो। मुझे अपना प्यारा बना लो। और यही सब हिन्दू लोग भी करते हैं। दूसरा तो करते नहीं। भाषा का केवल अन्तर है, भाव तो वही है। इसी तरह से ईसामसीह वाले करते होंगे। इसी तरह से ताओ या कन्फ्यूसियस या बौद्ध या जैन इन सबका भी यही तरीका है। तो यह सब विवाद सरलतापूर्वक हल हो सकते हैं, अगर बाहर की रूढ़िगत बातों को छोड़कर अन्तर्जगतीय तरीका आ जाय। लेकिन हम यह मानते हैं कि यह आ नहीं सकता। आ क्यों नहीं सकता? क्योंकि जब दो आदमियों के विचार नहीं मिलते, तो इतने समाज को कैसे एक विचार का बना सकते हैं। लेकिन प्रयासरत रहना ही चाहिए। इसलिए यदि मानस को सही मानस के अर्थ में लेना है। सही मानस को ग्राह्य बनाना है। सही मानस में डुबकी लगाना है, तो गोस्वामी जी ने लिखा है कि कैसे मानस बना है? कैसे मानस बहा है? कहाँ होकर चला। कैसे इसमें अवगाहन हो, इसका एक तरीका है–यह तुम लोगों ने पढ़ा होगा। उसमें समझाने का तरीका बहुत बढ़िया है। पूरी राम कथा को उन्होंने आध्यात्मिक रूपरेखा में लेकर, जन–जन के अंदर की कहानी बना दिया है। मानस बना दिया है। शंकर जी ने पहले से इसकी रचना मन में कर रक्खी है–

रचि महेश निज मानस राखा।

इसलिए इसका नाम राम चरित मानस रखा गया है–

ताते राम चरित मानसवर।
धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर।।

अब देखिए तुलसीदास के अन्दर कैसे बना, यह मानस–

'सुमति भूमि थल हृदय अगाधू।
वेद पुरान उदधि घन साधू।।
बरसहिं राम सुजस वर वारी।
मधुर मनोहर मंगल कारी।।'

....

मेधा महि गत सो जल पावन।
सकिलि स्रवन मग चलेउ सुहावन।।
भरेउ सुमानस सुथल थिराना।
सुखद सीत रुचि चारू चिराना।।

तो भगवान की महिमा रूपी जल जो संतों के द्वारा शास्त्रों के द्वारा सुना गया, सुमति ने उसे धारण कर लिया। अन्तःकरण में ईश्वर की सही एडजस्टिंग हो गई। ऐसे–ऐसे यह मानस का रूप आ गया गोस्वामी जी में। तब फिर, उस मानस से यह कथा निकली है–

अस मानस मानस चख चाही।
भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही।।
भयउ हृदय आनंद उछाहू।
उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू।।
चली सुभग कविता सरिता सो।

तो इस तरह से, इसका मूल है, मानस। 'मानस मूल मिली सुरसरिहीं।'

पहले मानस बना। अपने में अनुभूति मिल गई। जब काम पूरा हो गया मस्ती आ गई। तब यह कथा का प्रवाह चला। राम चरित के रूप में बाहर आ गई, वही मानस की अनुभूति। बाहर कोई अर्थ उन्होंने छोड़ा नहीं है। बाहर अगर छोड़ा है, तो केवल उनके लिए छोड़ा है, जिनके पास बारीक बुद्धि नहीं है। जो हठी हैं, और जो जिद्दी हैं। जो समझते नहीं हैं। जो लालची हैं। स्वभाव के अधीन हैं। स्वभाव के वश में हो गए हैं। इच्छा का त्याग नहीं कर सकते। ईश्वर को समर्पण नहीं कर सकते। ऐसे लोग जो हैं, अर्थ का अनर्थ करने के लिये, शब्दों को तोड़–मरोड़ कर पेश करके, गलत बता देते हैं। इसलिए जो अंध विश्वास है। जो सच्चाई के सहारे, बगली–बगली रूढ़िवाद रह गया है, गलतवाद बैठ गया है, झूठवाद बन गया है। इस कलंक को धोने का यही एक उपाय है, कि हर पुस्तक का मानस ट्रांसलेशन किया जाय। अगर कोई कविता स्थूल जगत की है, तो स्थूल जगत में ली जाय। अगर कोई कविता किसी ऋषि की है तो उसे अन्तर्जगत से लिया जाय। बाहर से न लिया जाय। इस तरह से अगर सदुपयोग किया जाय, तो समाज पीसफुल बन सकती है। सबको शान्ति आ सकती है। और जो कल्पना में सतयुग और क्या–क्या होते थे, वह सब हो जाय। लेकिन यह रूढ़ि दुनिया से जा नहीं सकती। इसलिए यह परसनल विषय है, यह भक्ति करने का। एक व्यक्ति का। यह व्यक्तियों के समूह में नहीं हो सकता। कि हम हो गये–सबको करा दिया जाय। फिर प्लाटून बन गया, फिर कम्पनी बन जाय। बटालियन बन जाय फिर दुनिया बन जाय। ऐसे नहीं होता। यह बहुत मालीक्यूल चीज़ है– किसी–किसी को समझ में आता है। और समाज ऐसी है, कि हर आदमी बराबर मानस में ट्रांसलेशन नहीं कर सकता। हाँ, शरीर सबके पास बराबर दिखाई पड़ते हैं, वो एक साथ खड़े हो सकते हैं, पैर बढ़ा सकते हैं। किसी चीज़ को एक साथ कर सकते हैं। राइफल चला सकते हैं, एक साथ। कार चला सकते हैं, एक साथ। लेकिन यह मन इतना मालीक्यूल है, कि उसको शोधन करने के लिये तो व्यक्तिगत ही चलना पड़ेगा। और व्यक्तिगत अगर हो जाता है, तो उसका जो तौर तरीका है– बताने का, वह बाहर नहीं हो सकता। अगर बाहर हम लेंगे तो फिर उसका रिएक्शन होता चला जायेगा और उतनी ही बीमारी बढ़ती चली जायेगी। दुनियाँ के विविध धर्मों में झगड़े इसलिए होते हैं, कि लोग धर्म को बाहरी जगत की बात मान लेते हैं। बाहर की दुनिया देश–काल–बाधित है, इसलिए उसमें विषमताएं रहती हैं। रूचियों में भिन्नता होती

है। खानपान, रहन–सहन, भाषा–बोली में विभिन्नता रहती है। तो फिर बाहर के धर्मों में भिन्नता होगी। धर्म को बाहर की चीज़ मानेंगे–बाहर से लेंगे, तो विभेद होंगे ही। और मतभेद होने पर, झगड़े होते हैं। धर्म का सही मायने में तात्पर्य अध्यात्म से है, जो सबमें समान होता है। अध्यात्म देश–काल अबाधित होता है। वह हमारे तुम्हारे सबके अन्तःकरण की बात है। अन्तःकरण के स्तर पर सबमें समानता रहती है। वहाँ गोरे और काले का भेद नहीं होता। जाति और भाषा का भेद इस स्तर पर नहीं होता– बाहर की तरह। बाहर समाज में राम, खुदा, ईश्वर, ताओ, ईशु आदि के भेद हैं, पर अन्दर सबकी आत्मा एक है। जैसे सारे जल–स्रोत समुद्र में जाकर एक हो जाते हैं। वैसे ही सबका परमात्मा वही एक है। परमात्मा अनेक नहीं है–एक ही है, झगड़ा किस बात का?

शरीर के बाहर की ओर भेद ही भेद हैं। अन्दर की ओर अभेद होने का क्रम है। सभी के शरीर गोरे, काले, पीले, सब उन्हीं पाँच तत्वों से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश से बने हैं। सबके मन इन्द्रियों में, एक जैसे संवेदन होते हैं। सुख–दुख, की अनुभूतियाँ सबको एक सी होती है। इसलिए अध्यात्म ही समाज में एकता लाने का एक मात्र रास्ता है।

यह सब जो आज रूढ़ि बन गयी है, यह सब व्यर्थ की बातें हैं। हमारे ऋषि–मुनियों ने अन्दर के रहस्यों को, प्रतीक रूप में बाहर दर्शाया है। रामायण, महाभारत अथवा उपनिषदों की कथायें, उनके आध्यात्मिक शोध ग्रंथ हैं। जिन्हें उन्होंने कथाओं, पात्रों घटनाओं के रूप में बाहर व्यक्त किया है। बाद में वे रूढ़ि बन गई। वास्तविकता यह है, कि साधक को, अन्दर की दुनिया से ही अर्थ ग्रहण करना चाहिए। अनेक महात्माओं ने अपने–अपने ढंग से, बाहर समझाने की चेष्टा की है। अन्यथा अनुभव की बात, अभिव्यक्ति में कैसे आये, गूंगे के गुड़ की भांति। सोई जानै जो पावे। कबीर ने षटचक्र बताये हैं, यह अन्तःकरण की स्थितियां हैं। मूलाधार से सहस्रार तक। अब बताइये, लोग विष्णु की उपासना करते हैं। कहते हैं ये क्षीर सागर में शेष नाग पर सोते हैं। लक्ष्मी जी उनके चरण दबाती हैं। शंकर जी कैलाश में शक्ति (पार्वती) के साथ विराजते हैं, उनका रंग ढंग ही विचित्र है। असल में ये सब अन्दर की बातें हैं। बाहर ऐसे प्रतीकात्मक खाका बताया गया और फिर रूढ़ि बन गई। चित्र बन गये, कलेण्डर में छाप दिया, मूर्ति बन गई, मंदिर बन गये। हिन्दुस्तान में परंपरा के प्रति आदर की भावना इतनी अधिक रही है, कि धीरे–धीरे लोग अन्ध विश्वासी हो गये, रूढ़िवादी बन गये। आँख मूंदकर, एक भेड़ जिस खड्ड में गयी, सभी चलती गईं। हिन्दुस्तान भेड़िया धसान बन गया। महात्माओं का विज्ञान दुनियावी रूढ़ियों से अलग है। वे बाहर को अन्दर से घटाते चलते हैं। तुलसीदास ने कहा है–

'सकलदृश्य निज उदर मेलि, सोवै निद्रा तजि जोगी।'

और जब कम्युनिकेशन सही हो जाता है, तो सब उत्तर मिलते रहते हैं। महात्माओं की पहचान बाहर से नहीं होती। जब हम अनसूया में थे, महाराज जी की सेवा में। उस समय तक वहां और कोई नहीं था। तो एक दिन बैठे ही बैठे, महराज जी बोले, आज एक महात्मा आ रहे हैं, बहुत अच्छे। थोडी ही देर में एक सनकी सा दिखने वाला हाफ पैन्ट सा कुछ पहने हुये, अटपटा सा छोटे कद का हल्के (बालकों जैसे) शरीर का आदमी आया। महराज जी बोले यही है। उन्हें बड़े आदर से महराज जी ने रखा। यहाँ तक कि रात में अपने आसन पर उन्हें सुलाया और स्वयं अलग सोये। सबेरे जंगल की ओर गये, तो बोले, यह जंगल कटेगा, गायें होंगी भैंसे होंगी। उसके कुछ ही समय बाद अनसूया का फार्म बना, गायें–भैंसें भी बहुत हो गयीं। कहने का मतलब कि इस स्तर के महात्माओं के लिये भूत भविष्य का कोई अन्तराल नहीं। उनका भीतर का कम्युनिकेशन इतना व्यवस्थित हो चुका होता है कि

सब स्पष्ट रहता है। आध्यात्मिक विषय अन्दर का है। बाहर हम सब पूजा पाठ करते हैं, और मन में वही सब बुराइयां भरी रहें, तो क्या लाभ हुआ? हमारे अन्दर सुधार हो, दैवी सम्पत्तियों का विकास हो, तब कुछ मतलब हुआ– साधन–भजन का। साधन–भजन तो बड़ा प्रेक्टिकल मार्ग है। पुराने ऋषि मुनि जिसके लिये भजन करते थे, उसे वे शान्ति कहते थे–आज भी लोग सत्संग भजन, कीर्तन, ध्यान, योग जो भी करते हैं, रिलैक्स होने के लिए। यह रिलैक्स और शान्ति एक ही बात है। हमारा चित्त अनेक–अनेक चिंतनों में – दुनिया के जंजालों में चतुर्दिक फंसा रहता है, तनाव ग्रस्त हो जाता है। जब हम थोड़ी देर के लिये उसे सारे चिंतनों से मुक्त करते हैं।, मन को एक नाम में, इष्ट के ध्यान में लगा देते हैं, उसकी दौड़ बन्द हो जाती है। इसी अवस्था को शान्ति कहते हैं। बिना चित्त रूपी चाप को तोड़े शान्ति की सीता नहीं मिलेगी। इसे हर आदमी चाहे तो कर सकता है। थोड़ा–थोड़ा साधन की पूँजी बढती जाए तो एक दिन अपने पास क्षमता आ जायेगी। एक तरफ से बस पैसे के पीछे दौड़ रहा है आदमी, पैसा–पैसा! अरे भाई! क्या होगा पैसे से? सुख और शान्ति के लिये पैसा के पीछे दौड़ लगी हैं। अरे! किसी पैसे वाले से करोड़पति से पूछा जाए, क्या वह सुखी है? पैसे में सुख नहीं है।

बाहर कहीं भी सुख शान्ति नहीं है। चित्त का शान्त होना ही शान्ति है। अन्दर की बात है। जैसे भी हो मन शान्त हो उसकी दौड़ रुके। यह तब होता है, जब बाहर की दौड़ खत्म हो अपने अन्दर स्थिर होना सीखें। बाहरी दुनिया का आकर्षण झूठा है। जैसे मरूस्थल में पानी या सीपी में चांदी दिखती है, वैसे ही बाहर सुख दिखता है। मिथ्या को भी सत्य मानने की परवशता है जीव की, भ्रम वश–

''रजत सीप महं भास जिमि यथा भानुकर वारि।
यदपि मृषा तिहुँ काल सोई, भ्रम न सकै कोऊ टारि।''

तो भाई अध्यात्म विद्या इसी भ्रम का निवारण करके, यथार्थ बोध कराती है। लेकिन इसके लिए भी किसी स्कूल में एडमीशन लेना होगा, किसी अच्छे सतगुरू की शरण लेनी होगी। तो मानस कहते हैं–मन जब अन्तर्मुखी हो जाय। माया उन्मुखता छोड़ दे और ईश्वर उन्मुख हो जाय, तब यह मानस कहलाता है। यह मानसरोवर कहलाता है। इसमें आत्मारूपी हंस आकर क्रीड़ा करते हैं। हंस कहां रहते हैं–मानसरोवर में। ऐसा कुछ हंस वगैरह वहाँ हैं नहीं, लेकिन यह समझाने का ऐसा तरीका बनाया गया है। तो यहाँ घाट मनोहर चार हैं। चार जगह यह कथा होती है।

अगर तुमसे भजन बन जाय, तो यही भारद्वाज, बरबस जानकारी (जाग्यवल्क्य) को प्राप्त कर लेगा। अगर तुम्हारे अन्दर प्रेम आ जाय, तो वह प्रेम रूपी पार्वती, संत–शंकर से मानस की सब जानकारी ले लेगा। और अगर गो नाम इंद्रियों के मूल, इस गरुण (मन) में श्रद्धा तैयार हो जाय, तो जो कांक्षा रूप कागभुसुंडि है, आकांक्षाओं से परे हो जाती है जो वृत्ति वह फिर मन को सब बता सकता है। गरुण को बता सकता है। और गोस्वामी जी, जो साधक के हृदय में इष्टदेव हैं, जो करने वाला है–वह अपने अवयवों को बताता है। अगर सही पात्र हो जाय तो, और नहीं तो –

जे श्रद्धा संबल रहित, नहि संतन कर साथ।
तिन कहुं मानस अगम अति, जिनहिं न प्रिय रघुनाथ।।

इस तरह से यह मानस बहुत विस्तृत और बारीक है। और मानस एक समझ है, एक थ्योरी है। एक सिद्धान्त है। एक दर्शन है, कि हम क्या हैं, ईश्वर क्या है, संसार क्या है। इनकी एडजस्टिंग कैसे होती है?

संसार भी गल जाय, हम भी गल जायं, शरीर भी गल जाय और सब एक हो जायं। वह कौन तरीका है? इसमें, समझ सबकी काम नहीं करती। कहाँ किस कोने में कैसी एडजस्टिंग करें। यह मानस का रहस्य है। यह मन का रहस्य है। इसलिए मानस मूल है। जिसका मानस संतुलन बना और एडजस्टिंग हुई और मन का ट्रांसफार्म हुआ तो वह ईश्वर की अनुभूति प्राप्त कर सकता है–ऐसा परिणाम मान लिया गया।

गोस्वामी जी विनय में कहते हैं–

सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि योगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परमसुख अतिशय द्वैत वियोगी।।

वही ईश्वर की अनुभूति कर सकता है। सकल दृश्य निज उदर मेलि–सारा दृश्य जगत अपने अन्दर ले लो। अरे! एक छोटा सा पत्थर अगर अन्दर चला जाय, तो हम ज़िंदा नहीं रह सकते–कैसे सारा जगत अंदर लेंगे–आखिर गोस्वामी जी कहना क्या चाहते हैं? क्या तरीका है उनका कहने का? दृश्य निज उदर मेलि–लेकिन वे ठीक कहते हैं–अब हम सुनने वालों को, थोड़ा बारीक बनना पड़ेगा। दृश्य को कौन धारण किये है? मन। तो दृष्टा को–अगर पकड़ लिया जाय, तो दृश्य पीछे चला न आयेगा? यह तो तीनों कालों में है नहीं–दृष्टा ही दृष्टा है। दृष्टा, दृश्य में अनुगत है, और दृश्य, दृष्टा में अनुगत होता नहीं। इसलिए इस सिद्धान्त के अनुसार, जब दृश्य, दृष्टा में अनुगत हो जाता है तब दृश्य, दृश्य का स्वरूप त्याग कर, दृष्टा ही बन जाता है। इसलिए अन्ततः दृष्टा ही दृष्टा है–इस प्रकार यही मन दृश्य है। इसलिए इसको अगर अंदर कर लिया जाय, उदर में कैच किया जाय, गुरू के चरणों में लपटा दिया जाय। मानस से पकड़ा दिया जाय, तो आ जाय न पूरा दृश्य अन्दर। फिर कुछ बाधा नहीं रह जाती–'मूंदहु आंख कतहुं कछु नाहीं। यह तो मन की भावना है (संसार)। और अगर मन भगवान में लीन हो जाय, तो यह रह जायगा कहीं? तो इस तरीके से –'सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि योगी।' अब वह इस संसार रूपी निद्रा का सदैव के लिए त्याग करके, ईश्वर में हमेशा–हमेशा के लिए सो जाता है।

'सोइ हरिपद अनुभवै परमसुख अतिशय द्वैत वियोगी।।'

वह फिर भगवान के पद की अनुभूति कर सकता है। वह उस पद को–परमसुख को, अनुभव कर सकता है।

- **अन्तःकरण**
- **आत्म–स्वरूप**
- **सद्गुरू शरण में कल्याण**

एक ने देखा, दूसरा गया, तीसरे ने उठाया, चौथे ने खाया, और पांचवें को मार पड़ी। तो देखो, आम का पका फल पेड़ से गिरा, तो आंख ने देखा, पैर गए, हाथ ने उठाया, मुंह ने खाया, और पीठ पर मार पडी। एक ही आदमी की हैं न, सब क्रियाएं, लेकिन आगे–पीछे हुईं। इसी तरह से अंतःकरण के चार अंग हैं–मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। हां, तो अहंकार को सबसे पीछे क्यों लिया ? इसके बाद बुद्धि है। बुद्धि के बाद मन है। मन के बाद चितवन है। चितवन चित्त का काम है, बूंद–बूंद संकल्प करना मन का काम है। इन संकल्पों में जो बात अहंकार को ठीक लगती है, उसमें बुद्धि मोहर लगा देती है। निर्णय दे देती है, कि यह ठीक है। जो नहीं ठीक लगती, उसे नकार देती है। वैसे बुद्धि में सजातीय आस्था है। लेकिन यह डाली जाती है, वैसे नहीं आती है। ऐसे चार ये अंतःकरण हो गए, बैखरी मध्यमा पश्यंती, परा, चार ये वाणियां हो गईं, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियां। ये 18 ऐसे तत्व हैं, जो इसमें रहते हैं। यह अंतःकरण एक मकान है, जहां क्रिया होती है। जहाँ नाना प्रकार के भागों का एक दूसरे में सम्मिश्रण होता है। इसलिए ये 18 ऐसे कमरे हैं, जहाँ अटैक होता है। रावण का कब्जा होता है, तो राम अटैक करता है। उधर कंस का कब्जा हुआ तो कृष्ण अटैक करता है। धृतराष्ट्र का कब्जा हुआ, तो अर्जुन अटैक करता है। उधर दैत्यों का कब्जा हुआ, तो देवता अटैक करते हैं। इसलिए पदुम अठारह जूथप बंदर और 18 अक्षोहिणी सेना महाभारत में भी आयी है। 18 हजार श्लोक श्री मद्भागवत में भी आए हैं। गीता में 18 अध्याय हैं। 18 पुराण भी हैं। ऐसे 18 और भी होते हैं। इसलिए इसका मतलब बाहर से नहीं। महापुरुषों ने समझाया है, कि यह अंतःकरण की बातें हैं। इनमें अहंकार प्रमुख है। अहंकार राजा है। इसके अधीन हैं, बुद्धि, मन और चित्त। अहंकार इनसे राय लेता है। (एक प्रकार से अपने पसंद की बात में हाँ कराता है) बुद्धि से कहता है– क्यों, ऐसा ठीक है न ? बुद्धि मन और चित्त को कहेगी समझ लो भाई। ऐसे दो चार और चिन्तवन आएंगे, और झट से बुद्धि मन और चित्त से सहमति लेकर, अहंकार के अनुसार निर्णय दे देगी। इस प्रकार जब बुराई समाप्त हो जाती है, तो अहंकार भलाई में काम करने लग जाता है। जब तक अहंकार, माया के क्षेत्र में काम करता है, तब तक यह सब मेरा है, मेरा है, कहता है और जब भगवान के यहाँ समर्पित हो जाता है, ईश्वरीय क्षेत्र में आ जाता है, तो तेरा है, कहने लगता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार समर्पित हो जाते हैं। तेरा तुझको सौंपते क्या लागे मेरा–ऐसे इसकी धारणा करनी चाहिए।यह बड़ा जटिल विषय है, और तुम लोग तो भाई विज्ञानी हो। हाई लेविल के इंजीनियर, कम्प्यूटर में रिसर्च किये हुये मार्डन विज्ञानी हो। तुम लोगों के यहां, जैसे दो पदार्थ अमुक–अमुक मिला देने से पानी बन जाता है, ऐसे ही कोई फारमूला मिल जाय, तो कुछ शायद हल निकल आवे, कि हम क्या हैं, ईश्वर क्या है, मैं क्या हूँ का ऐसा कोई फारमूला मिल जाय, जिससे विज्ञानी उसमें कोई निष्कर्ष अपनी बुद्धि से निकाल सकें। तो यह ऐसा विषय नहीं है। वैज्ञानिक तो मैटर और इनर्जी बस इनके बीच ही काम करते हैं। लेकिन भगवान इन दोनों से परे की बात है। इसलिए मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, कोई वहां काम नहीं करते। ये सब जब खत्म हो जाते हैं, तब उसकी शुरूआत होती है। और वह इतना मालीक्यूल है, कि चारों तरफ है। वह कोई वस्तु नहीं है, कोई चीज़ नहीं है। जो चीज़ है वह चीज़ है, जो वस्तु है वह वस्तु है। वह तो कुछ है ही नहीं।

देखो एक नरेन्द्र नाम का लड़का था, जो आगे विवेकानन्द नाम से सन्यासी हुआ। जब अपनी पढ़ाई समाप्त करके घर आया, तो उसके माता–पिता ने कहा, देखो यहाँ एक परमहंस नाम से महात्मा जी रहते हैं। उनके दर्शन कर आओ, प्रणाम कर आओ। वह ठहरा लड़का। यह 18 से 30 साल की उम्र ही ऐसी होती है, तेजी रहती है लड़कों में। उसने कहा अरे! ये साधू लोग सब ऐसे होते हैं। खाते–पीते रहते हैं बस। आप लोग क्या मुझे भेज रहे हैं, वहां ? घरवालों ने कहा उनके दर्शन से कल्याण होगा। जैसे–तैसे गया जाकर प्रणाम किया। परमहंस जी तो महात्मा थे। महात्मा गम्भीर होते हैं। कम बोलते हैं। और यह लड़का तेजी में था। बोला, महात्मा जी! क्या आपने माई (देवी) का दर्शन किया ? बोले हाँ! तो वह बोला, क्या आप मुझे माई का दर्शन करा सकते हैं ? वे बोले, हाँ, लेकिन तुम अपना परिचय बताओ, क्योंकि माई को बताना पड़ेगा, कि अमुक व्यक्ति आया है। तो फिर माई तुम्हें बुलायेंगी, दर्शन देंगी और तुम्हें निहाल कर देंगी। वह बोला, मैं नरेन्द्र हूँ । परमहंस जी ने कहा, कि नरेन्द्र! तो नरेन्द्र कहां है? हाथ, तो हाथ है। पैर तो पैर है – नरेन्द्र कहां। उसने कहा, यह तो मैं खड़ा हूँ। नहीं भाई, यह तो तुम्हारा शरीर है। शरीर तो शरीर है, नरेन्द्र कहां है? अब वह हड़बड़ा गया। बोला, आत्मा। आत्मा तो आत्मा है। नरेन्द्र कहां है, वह बताओ। अब क्या बतावे। परेशान हो गया। लाजवाब हो गया। तो कुछ ऐसी ही बातें हैं। अब हमने जितने तुम्हें गिनाए, उनको हटाना पड़ेगा, तो माई का नाम आएगा। तब नरेन्द्र मिल जायेगा। लेकिन यह बहुत जटिल काम है। इतना जटिल है कि समझते–समझते मन और बुद्धि और अंतःकरण, सब भाग जायेंगे। ये तो इतने मोटे यंत्र हैं, और वह इतना मालीक्यूल विषय है, कि इनकी पकड़ में नहीं आ सकता। तो इन सबके लिए तुम तैयार हो, तो हम फिर बताएंगे कि नरेन्द्र क्या है। मसला तो इतना ही है फिर माई नरेन्द्र को दर्शन देगी। कार्य हो गया नरेन्द्र। कारण हो गई माई। कारण, कार्य मेंअनुगत है। तो फिर, अन्योन्याश्रय सम्बन्ध से, कार्य खत्म होकर कारण बन जायेगा। कार्य, कारण में विलीन हो जायेगा। तब फिर माई ही माई रह जायेगी। तुम उसे पाकर निहाल हो जाओगे। लेकिन इसमें बाधाएं हैं। जो पहले के किये हुये कर्म, संचित और प्रारब्ध के रूप में, तुम्हारे साथ हैं। और जो क्रियमाण, रोज तुम करते हो। ये तीन प्रकार के कर्म, मुख्य बाधाएं हैं। इसके लिए सबसे ज़रूरी है, कि पहले सतगुरू की शरण पकड़े, और गुरू इसे स्वीकार करले। सतगुरू बताएंगे कि तुम्हारे प्रारब्ध की कमी है, या कि तुम्हारे संचित की बहुतायत है। क्रियमाण तुम्हारा अच्छा नहीं है। इसलिए साधन में तुम साफ नहीं उतरोगे। अब जो कुछ वो बताएं। हाँ अगर क्रियमाण सही है, तो एडजस्ट हो जायेगा। प्रारब्ध का भोग होता जायेगा, और भोगते–भोगते संचित, प्रारब्ध के रूप में, घूमकर सामने आ जायेगा–भोग में। तो अपना क्रियमाण ठीक करना, सबसे प्रमुख बात है। तुम्हारा काम है कि यह जो इंगला पिंगला दो नाड़ियां हैं, श्वांसा में। एक सूर्यनाड़ी है, दूसरी चन्द्रनाड़ी है। इन दोनों को रेल की पटरी बना लो, और इच्छा को रेलगाड़ी बनालो। पैट बदल कर, इच्छा की ट्रेन को दूसरी, लाइन में ले जाना है। दो लाइनें हैं। एक सजातीय है, और एक विजातीय लाइन है। एक अविद्या संस्कारों का क्रियमाण है– विजातीय। और एक सजातीय, विद्या संस्कारों का क्रियमाण। साधक को अपनी इच्छा रूपी ट्रेन को विजातीय से सजातीय क्रियमाण की पटरी पर दौड़ाना है। इस प्रकार सद्गुरू के पास जाने से यह जानकारी हो जाती है। जब साधक को जानकारी हो जायेगी, तो फिर वह करेगा। प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण बाधा डालते हैं, वो डालेंगे। तो देखो यह विष्णु भगवान पड़े रहते हैं और (लक्ष्मी) उनके पैर दबाती रहती हैं। पता नही ये कैसा महात्मा लोग बना दिये हैं। देखे हो चित्र ऐसा ? पता नहीं कौन सा ढोंग धतूर बनाया महात्माओं ने। लेकिन ऐसा नहीं है। यह विष्णु–विश्व अणु स विष्णु। अणु, समझ रहे हो, सबसे मालीक्यूल। और जब इंलार्जमेंट

होता है, तो सबसे बड़ा बनता है। और जो सबसे बड़ा होता है, वह सबसे मालीक्यूल होता है। और जो सबसे बारीक होता है, वही सबसे बड़ा होता है। यह तो तुम वैज्ञानिक हो जानते हो। है न यह फारमूला ? तो वो विष्णु। और यहां बना दिया हाथ, पैर, आंखी, औरत पैर दबाते हुए। ऐसे ही किसी महात्मा ने अपने हृदय में जो अनुभूति की, शिष्यों से बताया, तो उसका चित्र बनाकर छाप दिया। ब्रह्मा हो गया। किसी तीसरे महात्मा ने कुछ अलग अनूभूति किया, और शंकर का ऐसा–ऐसा चित्र बना दिया गया। यह अंतःकरण की बात है। बाहर ऐसा है नहीं। यह जब कोई साधन करता है, तो ज्ञात होता है। ये सब हार्मोन्स हैं। एक–एक हार्मोन्स क्या–क्या करता है। नाभि का हार्मोन क्या पैदा करता है। ब्रेन में क्या कब होता है। त्रिकुटी में क्या होता है। मूर्धा में क्या होता है। यह सब चक्र या कमल कहे गये हैं।

''मूलद्वार से खैंच पवन को उल्टा पंथ धराता **है।**

नाभि पंकज दल में सोती नागिन जाय जगाता है।
मेरू दण्ड की सीढ़ी बनाकर शून्य शिखर चढ़ जाता है।
भ्रमर गुफा में जाकर सोवै जगमग ज्योति जलाता है।
शशि मंडल से अमृत टपकै पीकर प्यास बुझाता है।''

इस प्रकार की जो प्रक्रियाएं हैं, समझने की हैं। अब ये कमल कहा गया, तो वहां कमल थोड़े है। अगर हम फाड़ कर देखें, तो वहां कमल थोड़े रखा है। यह तो मांस का लोथा है। नाभि कमल कहते हैं 6 पंखुडी का कमल है। अब यहां (पेट) फाड़कार देखे, तो यहां मिलेगा कमल? नहीं मिलेगा। ये झूठी माया को, सच्ची बंदूक क्या काम करेगी? क्या बम काम करेगा? भूत यहां खडा हो जाय, तो क्या रायफल काम करेगी ? (नहीं) हाँ तो, 'टिट फार टैट'–जैसे को तैसा। जैसा सामने होता है, वैसा हथियार बनाना पड़ता है। टिट फार टैट। जैसे को तैसा, भिड़ा के चले।

'चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश'
सुना है! ''रहिमन उतरे पार, भार झोंक सब भार में।'

यह सब भाड़ में झोंक दे, और निकल आये पार। तब अपने को पता लगने लगता है।

इस प्रकार साधक जब सदगुरू के पास पहुँच जाता है, और वह एडमिट हो जाता है, तभी यह प्रक्रिया उसे बतायी जाती है, सबको नहीं बतायी जाती है। ऐसे किसी की बुद्धि कमजोर है, कोई 6 पैसा साधना में प्रगति किया है। कोई 10 पैसे आगे बढ़ पाया है, 90 पैसे गडबड़ है। कोई बीस पैसे कर पाया, 80 पैसे गड़बड़ है, तो कोई 50 पैसे के बीच में टंगा पड़ा है। गुरु के पास साधकों का रिकार्ड रहता है। साधक के अंन्तःकरण की दशा के अनुसार गुरु वहीं से बटन दबाता है, कम्युनिकेशन करता है। जैसे कम्युनिकेशन सेन्टर चले जाओ, तो ऐसे–ऐसे बटन दबाता रहता है। न इसलिए जनरल बताने पर सभी के लिए ठीक नहीं रहता। यह थ्योरिटिकल है। साधना तो प्रैक्टिकल है। प्रैक्टिकल करो, तो समझ में आये। अब प्रैक्टिकल में तुम्हें कहा गया, कि शंकर का ध्यान करो। तुमने सुना है कि कैलाश एक पर्वत है, शंकर जीवहां बैठे रहते हैं, विभूति रमाए, और उनके सिर से गंगा निकलती रहती है। इसकी क्या कथा बनी है ? कि जब भगवान तीन पैर से तीनों लोकों को नापने लगे, तो जब ब्रह्मा लोक में चरण पंहुचा तो ब्रह्मा ने अपने कमंडल से उनके चरण धोए। और उनके चरणों से गंगा निकली। शंकर जी ने उसे अपने सिर पर धारण कर लिया। जो उनके सिर से बहती रहती है। ऐसा है नहीं, तो ये क्या है?

यह काया ही कैलाश है। कल्याण रूपी शिव है। स्थूल अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब शंकर का है। सूक्ष्म अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब ब्रह्मा है और कारण अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब विष्णु है। ये तीनों अधिदेव है। ये तीनों इन तीनों प्रान्तों के (स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों के) गवर्नर जैसे हैं।

पुरुष विशेषः ईश्वरः

इन तीनों से भिन्न एक उत्तम पुरुष है, जो इन तीनों को भी नियंत्रित करता है। जैसे प्रान्त की सरकारों को केन्द्र की सरकार देखती है। ऐसे वह उत्तम पुरुष परमात्मा है। वह इन सब तत्वों में जो अलग–अलग अपने क्षेत्रों में काम करते हैं, सामंजस्य बैठालता है। अब इन जटिलताओं में से खोज कर निकालना, यह साधक का काम है। और इस काम में मदद करना, यह सद्गुरू का काम है। आगे की बात बताना (रास्ता दिखाना) पीछे को भी संभालना। अब तुम्हें यह करना है। अब यह करो, वह करो, ऐसे साधना करनी है। यह बताना गुरू का काम है।

अब साधक आया गुरू के पास, तो गुरू देखता है। इक्जाम लेता है। इसका परसेंटेज वगैरह कैसा है? यह साधना करेगा या कामनाओं से भरा हुआ है अथवा कामना रहित हो गया है। बस उसके हिसाब से उसकी एडजस्टिंग हो जाती है। उसी के हिसाब से उसे साधना बताई जाती है। और अगर उसे परफेक्ट या पूरी साधना बता दी जाय तो कर नहीं पाएगा, समझेगा ही नहीं।

आरत अधिकारी जहं पावहिं। गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं।'

आर्त मिल जाये अधिकारी मिल जाय, अनुरागी मिल जाय, फर्स्ट क्लास मिल जाये, अनेक जन्म में पुण्य किया हुआ शुद्ध अन्तःकरण का साधक मिल जाये, तो जबरदस्ती बताना पड़ता है। उसे देना पड़ता है। बुद्धि ऐसी बन जायेगी, कि बताना पड़ेगा। और अगर उसमें योग्यताएं नहीं हैं तो, जो हम देना चाहते हैं, बुद्धि कुंठित हो जायेगी। हमारा मूड है, हम बताना चाहते हैं लेकिन हमें टाइम न मिलेगा। यह तो नेचुरल सिस्टम है। परमात्मा का सिस्टम है। यह मनुष्य का बनाया हुआ सिस्टम नहीं है, यह आटोमैटिक सिस्टम है। जैसे कुछ भर गया है, लेकिन निकल नहीं सकता। इस तरीके से उसकी क्या स्थिति है – यह देखा जाता है। अगर कोई योग्य साधक मिल जाय, तो फिर बाजी मार ले जाय।

सत्गुरू की हाट अलग लागी, सतगुरू की।
वस्तु अमोल खोल गुरू बैठे, लेवेगा कोई बड़भागी।।
आए व्यापारी सौदा करि गए, जनम–जनम के अनुरागी।
पड़े रहे मैदान गढ़ी में, सकल कामना जिन त्यागी।।
कहै कबीर सुनौ भाई साधौ, भक्ति भीख उनसे मांगी।

इस तरीके से ऐसे महापुरुष जो होते हैं, उन्हें कहते हैं "मुक्त किं लक्षणं–निर्भयं।" बाहर की दुनिया से उन्हें कोई मतलब नहीं रहता, और बस जहां कम्युनिकेशन हुआ, मार लिया बाजी। वो अन्तर्जगत देखते रहते हैं। अन्तर्जगत में सोचते हैं। अन्तर्जगत में हंसते हैं, अन्तर्जगत में रोते हैं, अन्तर्जगत की बात करते हैं। उनका दिमाग कम्प्यूटर हो गया है। सब कुछ भरा है, उसमें। अब वो इस तरीके से रहते हैं। हाँ इतना बाहर वालों को पता चलेगा,

कि विलक्षणता है, उनकी बुद्धि में। विलक्षणता है उनके शरीर में, यह लोग जान सकते हैं। बाकी नहीं जान सकते। इस प्रकार कोई साधक आयेगा, तो उससे यही कहा जाएगा, कि बताओ, हाँ नाम बताओ। यह एक अच्छी शैली है। यह तो संसार की एक विधि है। पहले नाम बताएगा, रूप बताएगा, फिर पूजा बताएगा, अनुष्ठान बताएगा। कुछ न कुछ करने को कहेगा न? नाम तो किसी नामी का होगा। ओम, इसका कोई रूप होगा। यह तो प्रापर है न ? तो इसका कोई अपना रूप होगा। राम, तो राम का कोई रूप होगा। स्वामी, तो स्वामी का कोई आकार है। जवाहर तो जवाहर का एक आकार है (रूप है) आदि। रूप भी है, नाम भी है। जब कोई नाम लिया जायगा, तो उसका रूप भी बनेगा। राम, राम, तो जो यह नाम लेने से, हवा मुंह से निकलती है, यह आकाश में संघर्ष करती है। इसमें स्पार्किंग होती है, पोल में। धीरे–धीरे करके एक रूप बना देगी। अब वह व्यापक है, कि संकीर्ण है, कि व्यक्तिगत है, कि समष्टिगत है, कि सर्वांगीण है, यह नाम के ऊपर रहता है। जैसे राम, र अ म तो इसका एक रूप बन जाता है। अब नाम को कितने रूपों में बदलना है– बैखरी में, मध्यमा में, पश्यंती में, परा में। अब एक बीमारी और है, कि जब नाम लेंगे तो उसमें बाधा भी आती है। जैसे कोई गांव का लड़का घर से भाग कर शहर में गया, जहां बनिया दुकान लगाए बैठे रहते हैं। किसी सेठ की दुकानके सामने से निकल रहा था। उसने लडके को बुलाया, यहां आओ जी। कहां के हो, क्या नाम है ? क्यों घूम रहे हो? पूछा, तो बताया, कि नौकरी के लिए घूम रहा हूं। सेठ ने पूछा– हमारे यहाँ काम करोगे? हाँ करूंगा। अच्छा ठीक है, आजा। सेठ ने चार आना इधर, आठ आना उधर, दूकान में चुपचाप डाल दिया। खुद निकल कर बाहर गाड़ी के पास खड़ा हो गया, और बोला, ऐ लड़के ! दुकान साफ करके बंद कर दो। लड़के को सफाई करने में जो पैसे मिले, जेब में धर लिया, बताया नहीं । बस, सेठ तो देख ही रहा था। तो जब दूसरे दिन वह आयेगा, तो जानते हो, वह लड़के से कुछ बोलेगा नहीं। मारेगा चार झापड़ और निकाल भगाएगा। फेल हो गया न ? तो ऐसी ही जब छोटी–छोटी बात के लिए परीक्षा ली जाती है, तो परमात्मा जैसी बड़ी चीज के लिए हम जायेंगे तो परीक्षा नहीं होगी? परीक्षा तो होगी। तो जैसे साधक नाम में लगा, और कुछ आगे बढ़ा, तो भगवान परीक्षा लेने लगते हैं। व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरित, भ्रांतिदर्शन, अलब्धभूमिका अनवस्थितत्व आदि विघ्न आने लगेंगे। भगवान अपनी माया को आदेश करता है, कि देखो तमाम लोग यहाँ भीड़ न लगायें। तुम उन्हीं को हमारे पास तक आने दो, जो आने लायक हों। जो आने लायक नहीं हैं, उन्हें वहीं रोको। माया को इक्जामिनर बना दिया। अब प्रकृति इक्जामिनर बनकर साधक की परीक्षा लेती है। काम दिखायी नहीं देता, लेकिन सबको नचाता रहता है, मोह दिखाई नहीं देता, लेकिन सबको नचाता रहता है। इन्द्र किसी को कभी दिखाई दिया? नारद दिखाई दिया? तमाम किताबों में लिखा मिलता है। तो ये अन्तःकरण की चीजें हैं, बाहर होतीं तो मिलतीं। काम, क्रोध, लोभ, मोह सब अन्तःकरण में रहते हैं। ये देवता, दैत्य या राम, सुग्रीव नाटक में दिखाए जाते हैं। एक ही आदमी राम बन गया, सुग्रीव बन गया, हनुमान बन गया, बन्दर की भाषा राम को समझ में आ जाती है, राम की भाषा बन्दर को समझ में आ जाती है। सोचा किसी ने, यह

सब कैसे सम्भव है? राम लंका तक गए, और भाषा की प्राब्लम नहीं आयी, आना चाहिये। रामायण में तुलसीदास ने इस ओर ध्यान क्यों नहीं दिया ? देना चाहिये ना। हाँ, तो अगर बाहर की बात होती तो ध्यान देते। यह सब अन्तःकरण की प्रक्रियाएं हैं। वहां भाषा की प्राब्लम ही नहीं है। राम कहीं गए हों, तो प्राब्लम (भाषा की) आवे। यहां तो प्रवृत्ति ही लंका है– तुलसीदास ने विनय में लिखा है–'वपुष ब्रम्हाण्ड सुप्रवृत्ति लंका'। आसक्ति ही लंका है–यह सबसे सुन्दर है, सोने की है। यह काया रूपी किला है। सोना सबसे सुन्दर है। इसलिए इसे सोने की कहा गया है। मोह ही रावण है, क्रोध ही कुंभकर्ण है, काम मेघनाद है, लोभ नारांतक है, अभिमान अहिरावण है। जीव ही विभीषण है, जो इनके बीच में लात–घूंसा खा रहा है, परेशान है। कितना अच्छा चित्र खींचा है गोस्वामी जी ने, और कोई समझता नहीं। वहां लंका जा रहे हैं। यहां अपने अंदर नही देखते, जहां इन राक्षसों के बीच पड़े लात घूंसा खाते विभिषण की तरह, काम, क्रोध, लोभ, मोह से दुर्गति को प्राप्त हो रहे हैं। यहां अखाड़ा बनाए हुए हैं ये राक्षस। यह कोई नहीं समझता कि – ''मोह सकल व्याधिन कर मूला।'' अपने अंदर की खबर नहीं लेते, और वहां हिमालय को राजा बना रहे हैं' मैना को उसकी पत्नी बनाया। उनसे पार्वती पैदा हुई। यह बात कोई क्यों नहीं समझता? कि शंकर क्या है, पार्वती क्या है? जब साधक साधना करने लगता है, तो ये सारे हार्मोन्स ट्रांसफार्म होने लगते हैं। जितने हार्मोन्स हैं अन्तःकरण में, जितने नर्व्स हैं, ये सब निकलने लगते हैं। कहाँ कौन क्या है, कहाँ कौन क्या है। है। इनका सबका रूपान्तरण होने लगता है। तमाम ऋषियों ने अपने अन्तःकरण के रिसर्च लिखे हैं। किसी ने देव–दानव संग्राम लिखा है। तो किसी ने राम–रावण संग्राम लिखा है। किसी ने कंस–कृष्ण संग्राम लिखा है। किसी ने महाभारत लिखा, किसी ने पुराणों का संग्राम लिखा। इन्हें नहीं समझता, बस मान लिया, शंकर जी कैलास में रहते हैं। कैलाश में तो बर्फ जमी रहती है। वहाँ कोई रहेगा? सर्प जरा सी ठंडी में मर जाते हैं, बर्फ में कैसे रहेंगे? कहते हैं, शंकर जी के सर्प लिपटे रहते हैं । सही चीज़ को कोई समझता नहीं है। कितना, अपभ्रन्श कर दिया गया है, सही बात का? जब साधक साधना के प्रारम्भ में होता है, विकारों से ग्रस्त रहता है। तब वह शूद्र कहलाता है। फिर धीरे–धीरे सेवा के द्वारा पुण्य की पूंजी बनाकर कुछ आगे बढ़ता है, तो वह वैश्य हो जाता है। फिर विजातीयों को मार, सजातीयों की विजय करा लेता है अन्तःकरण में तो क्षत्रिय कहलाता है। तीसरी श्रेणी का साधक होता है। फिर आगे ब्रह्म में स्थिति पा लेता है तो ब्राह्मण हो जाता है। तीनों गुणों को जीत लेता है।

अब हम बने बैठे हैं, करते कुछ भी नहीं हैं। तो इसके लिए गुरू की शरण में नाम का आश्रय लेना चाहिये। महात्माओं ने बताया है कि–

''सतगुरू पैयां लागौं, नाम लखा दीजै हो।
जनम–जनम का सोया मेरा मनुआ
शब्दन मार जगाय दीजै हो। –
सतगुरू पैयां लागौं।''

'नाम निरूपन नाम जतन ते। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन ते'। जैसे रत्न जब हाथ में आ जायेगा, तो उसकी कीमत का पता लगेगा। ऐसे ही जब नाम तुम्हारे हृदय में आ जाएगा, तो नामी का पता अपने आप लग जायेगा। फिर गोस्वामी जी कहते हैं, कि 'बारक नाम जपत जग जेऊ। होत तरन् तारन नर तेऊ'। एक बार भी जो नाम का जप कर लेता है, वह भव सागर से पार हो जाता है। और लोगों को तारने की क्षमता उसमें आ जाती है। वह कौन नाम है, जिसका इतना बड़ा महत्व है। यह साधक को गुरू बताते हैं, और जब साधक इसके योग्य हो जाता है, तब बताते हैं। ऐसे नहीं बताते हैं। जब नाम जपा जायेगा, तब अन्तःकरण में रूप खड़ा हो जायेगा। जब रूप आ जायेगा, तो ये काम, क्रोध, लोभ आदि जितने शत्रु हैं' सब निष्क्रिय हो जायेंगे। सद्गुरू सक्रिय हो जायेंगे, तो फिर रहस्य खुलने लगेगा।

ब्रह्मज्ञान वृन्दावन है, मन मथुरा है, नन्दगांव नियम है। अमृत बरसना, बरसाना है। ये चार धाम, चार अन्तःकरण हैं। इनमें ही भगवान की लीला होती है। राधा–राधा जपने से रहस्य प्रकट होता है। जब अन्तःकरण में कम्युनिकेशन होने लगता है, तो फिर विरज बन जाता है। वि से वीर्य (पुरुष) रज से स्त्री। दोनों के संयोग से तीसरी चीज़ पैदा हो जाती है, बच्चा पैदा होता है। विरज रज और वीर्य से रहित अर्थात अन्तःकरण में पैदा होता है। यही विरज है, वह एक स्थिति है, जो साधक के अन्दर बनती है। वह दिखाई नहीं देता है।

'आगे–आगे राह देत है पाछे राखै नीत।
ना हां करै नहीं नां बोलै, है दोनों के बीच।'

बोलता है, सुनाई नहीं देता है, दिखाई नहीं देता वह।

बिनुपग चलै, सुनै बिनुकाना।
कर बिनु करम करै विधि नाना।

साधना एक पढ़ाई है। उसका भी कोर्स होता है। कोर्स पूरा करना होगा। पढ़ाई करो। फिर करो कोर्स की बातें। मूलतः हम बताए देते हैं। साधन हैं,–

नाम रूप लीला और धाम। मन बुद्धि चित्त अहंकार, यह चार वश में होते हैं, तब अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, ये चार परिणाम आ गए तो फिर काल, कर्म, स्वाभाव, गुन, ये प्रकृति के जो बंधन हैं, वो समाप्त हो जाते हैं। यह प्रैक्टिकल करने से होगा। यह तो अभी हम थ्योरी बता रहे हैं। यह तो तभी होगा जब प्रैक्टिकल होगा। कहां का कहां, क्या, कैसे बैठेगा– करने से पता चलेगा।

- **साधक के लक्षण**
- **निश्छल समर्पण**
- **जो घर फूंकै अपना**
- **कल्याण का मार्ग**

साधक अनपेक्ष रहकर साधना करे। उसे इच्छा रहित होना चाहिए। **'अनारम्भ, अनिकेत आमानी, अनध अरोष दक्ष विज्ञानी।।**

ऐसे लक्षण साधक में हों, और वेग से साधना में लगे, तो निहाल हो जाता है। वेग लाने के लिए, साधक में तीव्र वैराग्य होना चाहिए। खाने–पीने, रहने–सहने के नियम, कोई खास बातें नहीं हैं। वह तो अपने आप होते रहते हैं। उनमें चित्त फंसाने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। जब साधक में तीव्रतर वैराग्य होता है, त्याग आ जाता है, तो उसका मन भजन में लीन हो जाता है। अपने अन्दर से ही मार्गदर्शन मिलने लगता है।

सीता की खोज में वानर समुद्र के किनारे पहुंचे। सोचने लगे कि सीता का पता हम लगा नहीं पाए। ऐसे लौट कर जाएंगे, तो वहां सुग्रीव हमें मार डालेगा। इससे तो अच्छा है, कि यहीं हम लोग मर जायें। मरने को तैयार हो गये। उनकी बात जटायु का भाई, वह गीध सम्पाती, सुन रहा था। मन ही मन कहने लगा–मरो तो जल्दी तुम लोग। बहुत दिनों से भर पेट खाने को नहीं मिला। बन्दरों ने उसे देखा, तो किसी ने जटायु की बात चला दी, कि जटायु बड़ा सज्जन था। भगवान के लिए अपने प्राण दे दिये। सम्पाती ने जब जटायु का नाम सुना, तो बन्दरों से पूंछा, जटायु का क्या हुआ? तो बन्दरों ने बताया, कि रावण ने सीता का हरण कर लिया है। उसे छुडाने के प्रयास में रावण से झगड़ा किया, मर गया। तो वह बोला, जटायु मेरा भाई था। अच्छा, तो मुझे ले चलो समुद्र के पास, मैं उसे तिलांजलि दूंगा। अरे! भला गीध क्या तिलांजलि दिये होगा, लेकिन मनुष्यता की बात लिख दिया, तुलसी दास जी ने। बन्दर या गीध, सब मनुष्य की भांति व्यवहार करते दिखाए गए हैं। बिल्कुल अस्वाभाविक असंम्भव बात है, तो भी लोग विचार नहीं करते। असल में यह सब, गोस्वामी जी ने अपने हृदय के अन्दर की बात लिख दी है। यह गोस्वामी जी के हृदय की लीला है। तो देखो, यह शरीर ही मनुष्य है। यह 5 तत्वों का बना हुआ है। जब साधक स्थूल साधना से आगे बढ़ता है, निचोड़ मिल जाता है। उसे अमल में लाता है। आत्मसात करता है, तो तत्काल उसे डिग्री मिल जाती है। जब मन उसका आनन्द लेना चाहता है, जब साधक इसका पता लेना चाहता है, कि मैंने इतना किया। आलिंगन करना चाहता है, परिणाम या निष्कर्ष लेना चाहता है, तो देखो प्रकृति कैसे काम करती है। जहाँ यह ईगो आया, तो तत्काल उसे सावधान होना चाहिए। यदि उसके पास विवेक हो, तो कन्ट्रोल कर लेगा। इस प्रकार से मन के अन्दर बड़ी बारीकियां हैं। किसी को कंचन–कामिनी से बाधा आ सकती है। किसी को और किसी इच्छा से, या दूसरे प्रकार से। तो यह अपने अन्दर ही देखना पड़ेगा। उसका समाधान अन्दर से लेना होता है। एक दूसरे से अलग ढंग से इसकी अपनी निजी पृष्ठभूमि बनानी पड़ेगी। प्रक्रिया तो एक ही है, रूप थोड़ा भिन्न हो जाता है। साधक के अन्तःकरण के आधार पर। गोस्वामी जी ने अपनी बात लिख दी। ब्यास जी ने तो अपना ढंग बता दिया। अब हमें अपना–अपना देखना है। गुजरना तो सबको उसी रास्ते से है। विजातीय

तत्वों की लड़ाई में कौन कैसे मरे? कैसे कहाँ, क्या करना है, देखना पड़ेगा। इस प्रकार साधक में अगर वेग है, तो उस वेग के आधार से, वह आगे बढ़ जायेगा। जल्दी उठ जायेगा। ऐसे तो बहुत लोगों की समझ में ही नहीं आता। यह तो अपनी–अपनी बुद्धि की बात है। जैसे आई.ए.एस. वगैरह के टेस्ट में छांट लिये जाते हैं न, मेरिट वाले। बहुत लोग फेल हो जाते हैं। कुछ निकल भी जाते हैं। ऐसे ही साधक भी, जिनमें योग्यता है, आ जाते हैं। ऐसे तो कोई आवेश में, क्षणिक भावना बन जाती है। इधर के संस्कार होंगे, तो सब हो जाता है। देख लिया जाता है, कैसा है क्या कर सकता है, कैसे चलता है, कितनी प्रगति है। बस साधक आगे बढ़े, पीछे न मुड़े। इच्छा न हो कोई, बस इच्छा न हो। आहार–विहार सब आ गया। अगर साधक साधना में लगा है। उसमें ठीक चल रहा है, तो क्या खाता है, कैसे रहता है, कब सोता है, ये सब गौण हो जाता है। मुख्य चीज़ है वेग–साधना की गति। अब जैसे कोई साधक आज एडमिट हुआ। हाँ आओ बैठो। कैसा क्या है? समझ कर, उसकी गति के अनुसार एडजस्टिंग कर दी जाती है। अगर कोई साधक तीव्र वैराग्य वाला, अच्छे वेग से चलता है तो, वह तेज़ी से आगे बढ़ जायेगा। इसमें यह नहीं होता, कि यह जूनियर है या सीनियर है। वह सबसे आगे बढ़ जायेगा। गति होना चाहिये। अगर टाप वाले (सिनीयर) प्रैक्टिकल में नहीं आएंगे, तो 50 प्रतिशत से ज़्यादा पाने वाले नहीं हैं।

देखो समुद्र के किनारे बन्दर आए–समुद्र कैसे पार करें? अंगद ने कहा, मैं पार जा सकता हूँ। लौटने में सन्देह है। किसी ने कहा, कि आधी दूर तक जा सकता हूँ। 'निज–निज बल सब काहू भाषा।' हनुमान और अंगद ये दो वानर मुख्य हैं। अंगद क्या है– अनुराग। अनुराग इस संसार समुद्र को लांघ सकता है। अनुराग के आवेश में, साधक इस संसार का त्याग कर सकता है। अनुराग उसे कहते हैं। जब अपने इष्ट के प्रेम में साधक डूब जाता है, रोमांच हो जाता है, आंसू भर आते हैं। लेकिन यह ज़्यादा देर टिकता नहीं। जब तक आवेश है, प्रेम के आंसू आएंगे, रोमांच होगा। आवेग शांत होने पर आंसू नहीं आते। ऐसा है अनुराग। अगर आवेश बराबर बना रहे, तो अनुराग बहुत बड़ी चीज़ है। लेकिन ठंडा पड़ जाता है। अगर उसी आवेश में निकल गये, तो निकल गये। नहीं तो रह गये, तो रह गए। साधक का अनुराग ठंडा न पड़ना चाहिये। कितनी भी विपत्ति आये, तकलीफ आये, अनुराग बना रहे, तो काम बन जाय। साधक के हृदय में, इष्ट के प्रति, जो अनुराग का वेग एक रस बना रहता है, वही है वैराग्य। दृढ़ अनुराग ही वैराग्य है। यही वैराग्य ही है हनुमान। यह वैराग्य साधना को पूर्णता तक पहुंचा देता है। वैराग्य के आने पर साधक, साधना में दृढ़ता से आरूढ़ रहता है। जल्दी प्रगति करता है। उसका वेग अलग है, और साधारण साधकों के लिए तो यह पढ़ाई है। एक क्लास से दूसरी, दूसरी से तीसरी। गति के अनुसार समय लगता है। लेकिन प्रबल वैराग्य वाले साधक को, इन कोर्सों में कम समय लगता है। रैपिड में आ जाता है। सबसे आगे निकल जाता है।

खाने–पीने का ऐसा है कि न ज़्यादा खाय, न कम खाय, न बहुत ज़्यादा सोवे न बहुत कम सोवे। लोगों से सम्बंध कम से कम रखे, गम्भीर बने। इसके लिए यह जो बीच का रास्ता है, अच्छा है। साधन के लिए नाम को लेकर, रूप को लेकर चलना है। नाम को श्वास

में ढालो या रूप का ध्यान करो। धीरे–धीरे अन्दर अंग–प्रत्यंग में जागृति आने लगेगी और हमें लगने लगेगा कि हम कुछ जानते हैं। हम कुछ अच्छे हो रहे हैं। ऐसा नियम से करने लगेंगे, तो धीरे–धीरे हमारा मन खाली होता जायेगा। आकाशवत होगा। अभी तक जो इस मन में संसारी चितवन भरे रहते थे, उनसे यह खाली हो जायेगा, तो इसमें वे तत्व आने लगेंगे, जिनसे हम आगे बढ़ जाएगें। जिनसे हम राइज हो जायेंगे। ऊपर उठ जायेंगे। जिन तत्वों से हमारा कल्याण होना है। जिन तत्वों से हमें वह चीज़ मिलती है, जो सबसे कीमती है। और हमारे मन में बाहर की दुनिया के चितवन आते रहेंगे, तो हम इन सबसे वंचित रह जाएंगे। इसलिए मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। मन ही सब कुछ है। अगर इसे बाहर लगाते रहेंगे, तो वहीं रस लेता रहेगा। अगर अन्दर ले आए, तो प्रगति होने लगेगी। उसमें मन लगने लगेगा। कुछ मिलेगा, तो और आगे बढ़ेगा। गोस्वामी जी कहते हैं–

'कउनिउ सिद्धि न बिनु विश्वासा।' और
'जाने बिनु न होई परतीती।'

गोस्वामी जी कहते हैं–बिना साधक को कुछ दिखाए, उसे विश्वास नहीं आता। जैसे कोई धंधा करता है तो बगैर दो चार पैसा आए, उसका मन लगेगा? इसी प्रकार भजन में लगने पर, जब उसमें शान्ति मिलती है, अच्छा लगता है, रुचि बनती है। समझ आने लगती है। अलौकिकता झलकने लगती है। प्रगति होती है, तो मन को अच्छा लगने लगता है और साधक आगे बढ़ने लगता है। और यदि मन, दुनिया की बातों में ही लगा रहा, तो हम कितना ही भजन करें, कितना ही ध्यान करें, कितना ही पढ़ लें, कितना ही बोलने वाले बन जायें, दुनिया में छा जायं। सम्राट बन जाय, इससे क्या होता है? ईश्वर के क्षेत्र में उसकी गति नहीं हो सकती। इसलिए इस बात को शुरू से ही पकड़ना चाहिये, कि हमारा मन उधर से मुड़े। हमें बारीकी से समझना चाहिये कि हमें कौन सी चीज़ पकड़ना है, क्या छोड़ना है, हमें समझना चाहिये कि हमारी शुरूआत कहां से हुई है। तो यह ऐसा विषय है, कि बड़ी समझदारी से चलना पड़ेगा। नहीं तो इस रास्ते में सिर टकरा–टकरा कर, परेशान हो जाएंगे। मर जायेंगे। वापस हो जायेंगे। कुछ नहीं मिलेगा।

भगवान नाम की चीज़ ऐसी है, जिसे हम बदनाम नहीं कर सकते। यह भलाई बुराई दुनिया की बातें हैं। भगवान में न अच्छाई पहुंचती है, न बुराई पहुंचती है, न निन्दा पहुंचती है, न स्तुति पहुंचती है, न दिन, न रात। वह इन सबसे परे है, और परे इसलिए है, कि यह संसार है। और वह संसार क्षेत्र से परे की चीज है। इसलिए जब हम इसे छोड़कर, उसको पकडेंगे, तो वह पकड़ में आएगा। और अगर हम इसी में पड़े रहेंगे, तो उधर की गति नहीं हो पायेगी। इसलिए यह अच्छी तरह से समझ में आ जाना चाहिए, कि हमें क्या करना है। चार्ट बन जाना चाहिये। अन्दर से बाहर से, ऊपर नीचे से, अगली से, बगली से, पूरा समझ लेना चाहिये। जाने वाले को, साधना करने वाले को। ऐसा नहीं होता है। अगर एंकागी होकर चलेगा, तो सफलता नहीं मिलेगी। यह स्थायी विचार होता है। अगर हममें क्षमता आ गई है, तो सार्वभैमिकता आनी चाहिये। अगर सार्वभौमिकता नहीं आई है, तो तुम वहां पहुंच नहीं सकते हो। वहां अच्छा–बुरा, ऊँचा–नीचा, यह कुछ नहीं रह जाता। इसलिए साधक को

इन सबसे ऊपर उठकर, मन की एकतानता लानी चाहिये। तीव्र वैराग्य के द्वारा उठ सकते हैं। और पहुंच सकते हैं।

साधक को यह देखना है, कि मन को किस तरह से कन्ट्रोल किया जाय? देखना चाहिए, कि कोई आदमी ऐसा है, जिसने अपने मन पर कंट्रोल किया है। अपने शरीर को, विषयों से बचाया है। इन्द्रियों को विषयों से बचाया है। अगर ऐसा कोई दिखाई पड़ जाय, तो उससे लिपट पड़ना चाहिए। फिर उसे नहीं छोड़ना चाहिए। वही बताएगा रास्ता, जिसने देखा होगा। दूसरा कोई नहीं बता सकता, अपने से यह काम नहीं होता। दीपकजलता है, लेकिन उसके नीचे अंधेरा रहता है। एक दूसरा दीपक जला दिया, तो अंधेरा मिट जायेगा। तो अब एक गाइड की जरूरत है। एक मास्टर चाहिए। एक गुरू, जो मार्गदर्शन करे। जो जानकारी हम चाहते हैं, वह हमें बता दें। सबसे पहला जो साधन है, वह यह है। तो शरीर को मन के सहित, गुरू के चरणों में समर्पित कर दें। तुम्हें समझ में आता है, कि अमुक आदमी में यह क्षमता है, जो तुम्हें मार्गदर्शन कर सकता है, तो पूरे मन से, सच्चे भाव से समर्पण कर देना चाहिए। फिर तुम्हारे अन्तःकरण को टटोलकर गुरू स्वीकार कर लेगा। अगर स्वीकार भी न करें, और तुमने सही विचार और पूरे मन से, सही भाव से समर्पण किया है, और उसे पता चल जायेगा, कि अमुक आदमी हमारे प्रति समर्पित है, तो साधन में तुम्हें गति मिल जायेगी। उसका लाभ मिल जायेगा। इतनी ये प्रक्रिया है। फिर समर्पण के बाद, तुम्हारे लिए ठीक क्या है, क्या कमी है, कहाँ क्या खराबी है, यह खराबी पहले से है, या नई पैदा हो रही है, इससे बचने के लिए यह करना है, यह सब वह बता सकता है। यह तभी बताएगा जब तुम उसे मन, वचन और अन्तःकरण से समर्पित हो जाओ। और अगर समर्पित नहीं हुए, तो चाहे उसके पास ज़िंदगी बिता दो, तो न तुम उसे टचकर सकोगे, न उससे तुम्हें कुछ मिलेगा। न कुछ तुम्हें देगा। और अगर आत्मा से, सच्चे भाव से समर्पण है, तो तुम्हारे आत्मिक लाभ के लिए, कहाँ–क्या करना है– सब करेगा। तुम्हें राइज़ करता जायगा। तुम्हारे कल्याण के लिए समय–समय पर, इस जगह यह होना है, यह करना है– काम करेगा। अन्दर से बताएगा, बाहर से बताएगा। शान्ति देगा, अनन्त फल देगा। और अगर मनमानी चलोगे। अन्दर कुछ, बाहर कुछ, तो फिर यह तुम्हारे लिए ज़हर हो जायेगा और तुमको अपने से अलग कर देगा। ऐसा है यह। जैसे कहते हैं–

जलपय सरिस विकाय, देखहु प्रीति की रीति भलि।

विलग होय रस जाय, कपट खटाई परत पुनि ।।

कपट–खटाई के पड़ते ही। और, गुरू के बचनों में गुंजाइस। उसने कहा– इधर जाओ, और तुमने कहा नहीं, फिर जाएंगे। बस खतम। कपट–खटाई जहाँ पड़ी, सब बिगड़ जायगा। इसलिए साधक ऐसे मिलते नहीं हैं– गुरू तो परखे बैठे रहते हैं। और एक तो आजकल का प्रचलन बड़ा खराब हो गया है। साधना किसी को करना नहीं है। बस जीवन–यापन करना है। पड़े हैं, जीवन–यापन कर रहे हैं। तो ऐसे थोड़े कुछ मिलता है। कहां लिखा है, ये कोई बतायेगा? कहां ऐसा लिखा है कि ऐसे पड़े हैं, सत्संग सुनते रहे। ऐसे नहीं होता है। आजकल भारत में तो ऐसे भी गुरू हो रहे हैं, जो जाति के आधार पर अपने शिष्य बनाते हैं। साधन में जाति–पांत का क्या मतलब है? हाँ इसमें एक बात कही जा सकती है, कि साधन की भूमिकाएं हैं। कक्षाएं हैं। लेकिन यहां तो श्रेणी के हिसाब से छटनी होती है। तुम्हारे यहां भी, जो फर्स्ट क्लास वाला है, वह शुरू से लेकर फर्स्ट क्लास रहा होगा। तभी तो आई.ए. एस. हुआ। जो शुरू से थर्ड क्लास है, वह बी.ए. में फर्स्ट क्लास कैसे आएगा? वहां तक

पढ़ाई करेगा, कि नहीं। इसलिए श्रेणी की छंटनी होनी चाहिए। फर्स्ट वाले आई.ए.एस. सेकंड वाले पी.सी.एस. या कुछ और, जैसे भी होता है—तो इसके बगैर काम नहीं चलता है। श्रेणी तो बनानी ही पड़ेगी। जैसे किसान एक बैल खरीदकर ले जाता है तो वह हल में ठीक से चलता है। दाएं भी चलता है, बाएं भी चलता है। कोई नटवा होता है—वह ठीक से नहीं चलता। तो उसे सिखाना पड़ता है। सिखाने में कमी रह गयी, तो फिर वह नटवा, ज़िंदगी भर परेशान करेगा। ऐसेइ है न? देखे हो खेती किसानी? तो इस तरीके से, अगर शुरू से ही अच्छी ट्रेनिंग मिल गई साधक को, तो वह बहुत अच्छा है, साधक के लिए। और हम सबके लिए। जो विद्यार्थी शुरू से कमजोर रहता है, आगे भी उसके सामने दिक्कतें आती हैं—न समझ पाने की, आलस्य की। विषय—वासना में उलझेगा। तमाम तरह की दिक्कतें आती हैं। और जो छात्र शुरू से ही फर्स्ट क्लास है, 80—90 प्रतिशत वाला है, उसमें वेग रहता है। आलस्य कम रहेगा। उसे ऐयासी से मतलब नहीं रहेगा। पढ़ाई मे मन लगेगा। उसके सामने मित्रों की दिक्कतें कम रहती हैं। इस तरह से वह निकल जाता है। इसी तरीके से यह समझना पड़ता है। नहीं तो, ऐसे तो हम कई तरीके बता सकते हैं। साधना के नाम पर, कई धार्मिक—सम्प्रदाय बन गये हैं। उनके सबके अपने नियम हैं। सिद्धान्त हैं। लेकिन हम कहते हैं, कि साधना तो करनी ही होगी—पढ़ाई तो करनी पड़ेगी। चलना तो पड़ेगा। पहुंचना तो होगा कि नहीं? इसलिए साधना की प्रक्रिया एक ही है। सिद्धान्त एक ही है, लेकिन सही जानकारी न होने से, 90 प्रतिशत लोग जो ईश्वरोन्मुख हैं, उन्हें ईश्वर के सम्बंध में, सही ज्ञान ही नहीं हो पाता। 100 में एक या आधा पैसे साधना कर पाते हैं लोग। बाकी 99 से ज़्यादा लोग, आधे अधूरे ही रह जाते हैं। आज कल की कंडीशन यही है। अब कहते हैं, ईश्वर के यहां आनंद है। आनंद थोड़े है वहां। वहां तो कुछ नहीं है। न सुख है न दुख है। न ज्ञान है न अज्ञान है न क्रोध है न काम। न क्षमा है न दया। वहां कुछ भी नहीं है। जो, है से परे है, उसमें ये सब कैसे हो सकता है? वह सबसे परे है। इस तरह से भगवान एक ऐसा विषय है जिसके संबंध में कहते सुनते नहीं बनता। एक में एक को कैसे पकड़ा जा सकता है। वह कुछ है थोड़े। वह तो है से परे है। आंनद की बात तो ऐसी है, कि जब मन के सारे चिंतवन समाप्त हो जाते हैं, वह आकाशवत होने लगता है, तो अच्छा लगता है। और जब हो गए, तो फिर कुछ कहते—बताते नहीं बनता। एक में एक को कैसे देखा जा सकता है। एक में एक को कैसे कहा जा सकता है। एक में एक से बोलते नहीं बनता। एक में एक से ज्ञान नहीं बनता। एक से एक में काम नहीं बनता। एक से एक में क्रोध नहीं बनता। वह आत्मा का रूप है। वह सबसे बड़ा तत्व है, जो महान शक्ति है। वह सब में है, सबसे अलग भी है। वह सावयव भी है, निरवयव भी है। हम शरीर में हैं, तो इसका ज्ञान रहेगा। आत्मा में आत्मा का ज्ञान होगा। परमात्मा को सावयव और निरवयव दोनों का ज्ञान रहता है। वह जब चाहे तब सावयव, और जब चाहे तब निरवयव हो सकता है। और इन दोनों से परे भी है। ईश्वर कोई ऐसी चीज़ थोड़े ही है, कि उसे हम पकड़ लें, और मुट्ठी में बंद करके ले आएं, और फिर सबके सामने खोलें, कि यह देखो हमने ईश्वर को प्राप्त कर लिया है। इसलिए— जैसे को तैसा। अब हमें इस तरह से बताना पड़ेगा। इसलिए साधना का काम, तेज गति से ही सफल होता है। धीमी गति से, जो रोकने वाली बाधाएं हैं, ये एक्शन—रिएक्शन में आ जाती है। मुश्किल में पड़ जाता है साधक। राम, जब रावण को वाण मारते थे, तो उसका एक बूंद खून गिरता था, तो हजार रावण उससे पैदा हो जाते थे। इसका मतलब यह हुआ, कि जब कोई एक संकल्प, किसी बुराई का, मन में उठता है, तो उसमें स्पंदन होता है; और मन में हज़ार बार घूम—घूम कर, वही संकल्प आते रहते हैं। और तीव्रगति वाला साधक, उस संकल्प को एक बार में ही खत्म कर देगा। और आगे बढ़ जायेगा। वह पहले से ही ऐसा मूड

बनाकर रखता है, कि एक झटके में एक बाधा को पार कर लेगा, और निकल जायेगा। ऐसी तीव्र गति के लिए, जो बात आवश्यक है, वह है–तीव्र वैराग्य। और वैराग्य जो है, वह है–राग का त्याग। त्याग का त्याग। अनुराग कहते हैं– भगवान से प्रेम के साथ प्रार्थना की जाय। कि हे भगवान मुझे अपनाया जाय। मेरे अन्दर की कमियों को दूर किया जायं। आप मेरे ऊपर हावी हो जांय। मुझे वह तरीका बताया जाय, जिससे मेरा कल्याण हो जाय। ऐसे जब निष्कपट भाव से प्रार्थना की जाती है, तो गुरू की अनुकूलता (कृपा) मिलती है। और धीमी गति का साधक भी निकल सकता है। ऐसे उदाहरण देखे गए हैं। राजनीति में आए हैं, वैज्ञानिकों में आए हैं, महात्मापने में आए हैं। हमारे यहां कहा जाता है कि अखाड़े का लतमार, एक दिन पहलवान बन जाता है। निरा रद्दी साधक, आगे निकल जाते हैं– लगा रहे। धीरे–धीरे सब ठीक हो जाता है। तो हम यह नहीं कहते हैं, कि वे नहीं कर सकते, लेकिन ऐसे लोगों का परसेंटेज कम होता है। कोई–कोई धीमी गति वाले भी निकल जाते हैं।

यह साधना का विषय इतना बारीक है कि अनेक प्रश्न सामने आते हैं– ईश्वर क्या है? माया क्या है? आत्मा क्या है? जीव क्या है? हम क्या हैं? जीव कहां रहता है? हम कहां रहते हैं? कहां पहुंचना है? इन सब की जांच हो जाय। फिर साधना कहां से शुरू करें, कहां–क्या करना है, यह सब चार्ट बन जाय। और फिर शुरू करें। अब यह सब जानना–समझना, और उस पर स्टेप बाई स्टेप आगे बढ़ते जाना है। अगर तुम्हारे अन्दर क्षमता नहीं है, तो मास्टर क्या कर पाएगा। मास्टर कुछ नहीं कर पाएगा, और लड़का वहीं फेल हो जायेगा। और जो पास होने वाला है, अच्छा विद्यार्थी है, वह नहीं मानेगा। बार–बार पढ़ाई की बात पूछेगा, और पास होकर मानेगा। मास्टर चाहे जो करे। इसलिए यह समझने की बात है, प्रगति की बात है। बुद्धि होनी चाहिए, मेमोरी होनी चाहिए। और अगर यह नहीं है, तो हजारों मठ मन्दिरों में कथा, कीर्तन महात्मा लोग कर–करा रहे हैं। शहरों में जगह–जगह रोज हो रहा है। हजारों–लाखों लोग सुनते हैं, समझते हैं, और वहीं का वहीं झार–फूंक कर चले जाते हैं। व्यापार करते हैं। कितने लोग निकलते हैं? रोज नियम से शाम सुबह सुनते हैं, फिर अपना–अपना काम व्यापार करते हैं। फिर सुनने जाते हैं। एक प्रकार से अभ्यास है, शरीर स्तर का। पहले तो साधन की बात हर जगह मिलती नहीं। मिल भी जाय तो कोई करता नहीं। बस सुनते जा रहे हैं। तो क्या है? पहले नहीं सुनते थे, तो क्या कर लेते रहे– अब सुनते हैं तो क्या कर लेते हैं। ऐसे में लोगों को कई तरह के भटकाव भी हो जाते हैं। कोई एक हजार गुरिया का माला जप रहा है– गले में झोरी बांधे। कोई और किसी बाहर की क्रियाओं में उलझ गया। साधना कैसे कहां होती है, कुछ पता ही नहीं लगता है कुछ कर रहे हैं। उसी में लगे रह जाते हैं। ऐसी अनेक बाधाएं हैं। तो साधना का विषय सबसे बारीक विषय है। और जो विषय जितना बारीक होता है, उसमें उतनी ही कठिनाईयां होती हैं। समझ में नहीं आता, सबके। इसलिए जैसा विषय हो, वैसा ही समझाने वाला होना चाहिए। अब देखो एक मेडिकल वाला विद्यार्थी सी.ए. नहीं कर सकता है, सी.ए. वाला मेडिकल नहीं कर सकता। साइंस वाला आर्ट नहीं कर सकता, आर्ट वाला साइंस नहीं कर सकता। इसलिए सोचने की बात है, कि अपनी क्षमता–पात्रता के अनुसार साधना में लगें। भगवान से भक्ति की याचना करें। भगवान हमें अर्थ नहीं चाहिए, कुछ और नहीं चाहिए, बस आपकी भक्ति ही चाहिए। गोस्वामी जी ने लिखा भी है–

अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वान।
जनम–जनम रति राम पद, यह वरदान न आन।।

जनम–जनम में भक्ति मिलती जायेगी, तो भगवान भी पकड़ में आ सकता है। भक्ति मिलती रहेगी, तो कभी न कभी सायुज्य मुक्ति भी मिल सकती है। सारूप्य मुक्ति भी मिल सकती है। इसलिए भक्ति ही ठीक है। और अगर तुम भगवान से कहो–भगवान हमें सायुज्य मुक्ति मिले। सायुज्य मुक्ति मिल जाय। तो यह एम बन गया न? डिमांड हो गई न? डिमांड होने पर भगवान कहता है, अच्छा ठीक है जा। इच्छा होना, डिमांड होना, ठीक नहीं है, इस रास्ते में। यहां तो अनपेक्ष होना ही ठीक है। भगवान से भगवान की भक्ति या प्रेम ही ठीक है। तो ये समझने की चीज़ है। और समझ में आ जाय, तो साधना में लगने की बात है। और इसमें क्या रखा है–यह तो साँपों की लड़ाई में, जीभों की लपालप। बस बात करते रहे–

'बात–बात में बात है, बात–बात में बात।
ज्यों केले के पात में, पात–पात में पात।।

इसमें कुछ नहीं है। यह तो बातों का जाल है। यह बातों का बतंगड़ है। समझना चाहिए न? अब देखो, यह नाभि कमल है। यहां पोल है, आकाश है। श्वास से हवा आती है, उससे घर्षण या टकराहट होती है। यह इनर्जी बन जाती है। शब्द का संकल्प तैयार होगा। बीज आगे हृदय में आकर अंकुरित हो गया। कल्पना का रूप ले लिया। आगे और चक्रों में उठकर, कंठ में, मूर्धा में, और फिर वाणी में आकर, शब्द–भाषा के रूप में मुखरित हो गया। इसी शब्द को बाहर कार्य रूप में परिणत करते हैं, और यह चक्र चलता रहता है। जो भी इच्छा अन्दर होती है, पहले वाणी के रूप में व्यक्त होती है, फिर कर्म का रूप लेती है। तो जब तक इच्छाएं रहेंगी, यह चलता रहेगा। इच्छा रहित हो जाने से, यह सर्कुलेशन रुक जाता है। इसलिए पहली बात हुई, कि इच्छाओं का दमन किया जाय। क्योंकि इसी से संसार है। इच्छइ काया, इच्छइ माया, इच्छइ जग, उपजाया। इसलिए इच्छाओं का दमन किया जाय। इच्छा को कोई छोड़ता नहीं। जानते हो, इच्छा का दमन कैसे होगा? जब हमारा मन हमारा नहीं होगा। तो दे क्यों नहीं देते किसी को इसे? समर्पण क्यों नहीं कर देते कहीं? जब हम, हममें रह ही नहीं जाएंगे, इच्छाएं कहां रहेंगी? इसलिए यह काम तो अपने से करने का है। बिना अपने किए, दूसरा यह काम कैसे करेगा? समर्पण के बाद, हमारा हममें रह नहीं गया। अब हम कह सकते हैं, कि हमारा हममें है ही नहीं। तो इच्छाओं से बच जाओगे। इसके बगैर काम नहीं चलेगा। समर्पण के बाद, काम–साधक के संरक्षण का गुरू के पास आ गया। अब जो नहीं करते, या नहीं कर पाते, उन्हें तो बाबा डंडा उठाएगा। जैसे कोई बहुत अच्छा स्कूल है, तो उसमें फर्स्ट क्लास लड़के नहीं लिए जायेंगे, तो वह चलेगा? कोई अयोग्य होकर वहां से निकलेगा, तो रह जायेगी स्कूल की क्रेडिट? उस स्कूल की रह जायेगी, कंडीशन? बरबाद न हो जायेगा? इसलिए अगर नहीं डांटा जाएगा, नहीं सभांला जायेगा, नहीं अनुशासन में रखा जायेगा, तो काम कैसे चलेगा? इससे तो अच्छा है, कि वह हट जाय।

कबिरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ।
जो घर फूंकै आपनो चलै हमारे साथ।।

सीधी सी बात है। यहां न लल्लो है, न चप्पो। न लिहाज है। न संकोच है। न मुरउवत है, न कोई मतलब है। यह हम इसलिए बतला रहे हैं, कि जिसमें गुजांइश है, वह कर सकता है। अनेक छोटे–मोटे साधक होते हैं, जो अपनी कमियां ठीक कर सकते हैं, सुधार कर सकते हैं। एडजस्ट कर सकते हैं। साधना के रास्ते में लग सकते हैं। और हम तेज़ी का मतलब यह थोड़े कहते हैं कि तुम यहां नंगे होकर यहीं मर जाओ। साधक को चाहिए, कि

नियम से भजन–ध्यान करे। नाम जपे। श्वासा में जपे। पश्यंती में जपे। ध्यान करे। उसमें समय ज़्यादा से ज़्यादा लगावे। अन्तर्मुख रहे। अपनी प्रगति का निरीक्षण भी करे, कि हां, आज भजन में मन अच्छा लगा। आज ध्यान में भगवान का रूप अच्छा पकड़ में आया। भगवान सही जगह हृदय में बैठे। मुझे अपने पास बैठाया। रोज–रोज प्रगति होनी चाहिए। जब ध्यान–साधन अच्छा होगा, तो उत्साह रहेगा, अच्छा प्रतीत होगा। और जिस दिन भजन ध्यान सही नहीं होगा, मन में खिन्नता रहेगी। तब भगवान से विनती करे, कि हे भगवान मुझसे कौन सी गलती हुई है कि मेरी प्रगति रुक गयी। मुझ पर कृपा की जाय। तो धीरे–धीरे सब ठीक हो जाता है।

लय, लागत–लागत लागै।।
भय, भागत–भागत भागै।।

साधना के लिए ज़रूरी नहीं है, कि कोई बहुत पढ़ा लिखा हो। बिना पढ़े–लिखे हो। कोई भी डिग्री पा सकता है। विषय–विशेषज्ञ हो सकता है। जो करने में तत्पर हो जाता है, उसे सफलता मिल जाती है। सभी महात्माओं ने इस बात को माना है। लेकिन मुख्य बात है, इसमें लगने की। सब कुछ हो सकता है। क्या नहीं हो सकता है? कोई करे तो।

अब कोई साधक है। उसे कहा गया झाड़ू लगाने के लिए। उसे पसन्द नहीं आया। इधर–उधर कर दिया। यह गलत तरीका है। उसे तो यह सोचना चाहिए, कि मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ कि मुझे झाड़ू लगाने का मौका मिला। ऐसा क्यों नहीं सोचता? साधना का एक क्रम होता है। उसमें साधक को ढलना होता है। पहले शरीर के स्तर पर सेवा के द्वारा। फिर सूक्ष्म शरीर के स्तर में, मन के द्वारा, मन से भजन–ध्यान के द्वारा, विजातीय चिन्तन और संकल्प–विकल्पों को शान्त करके, फिर कारण में आ जाता है। तब सजातीय पार्टी के द्वारा विजातीय पार्टी को खतम करना होता है। यह हृदय कुरूक्षेत्र है। शरीर रथ है। इन्द्रियां घोड़े हैं। मन लगाम है। बुद्धि सारथी है। अनुरागी साधक–अर्जुन, रथी है। कृष्ण आत्मा है। विजातीय कौरवों की सेना, सजातीय पाण्डवों की सेना–दोनों के बीच में, यह खड़ा है। सजातीय ज्ञान की पार्टी, देवताओं की पार्टी। और विजातीय मोह, अज्ञान की पार्टी, राक्षसों की पार्टी। अब जब राक्षसों की पार्टी खतम हो गयी, तो देवता क्या करेंगे? अब देखो यह दुनिया दो से बनी है। दो आदमी, दो मकान यह दो नहीं। जैसे–रात और दिन, सुख–दुख, अच्छा–बुरा, ज्ञान–अज्ञान। ऐसे दो, जो एक दूसरे के अपोजिट हों। इनसे बनी है दुनिया। तो बुराई को जीत कर भलाई रह गयी। तो अब भलाई का भलाई में ज्ञान नहीं हो सकता। इसको अन्योन्याश्रय दोष कहते हैं। इसको अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए। विजातीय कौरव दल हार गया, सजातीय पाण्डवों का दल जीत गया। तो अब हम पाण्डवों का क्या करें? पूजा करें, कि क्या करें? ज्ञान से अज्ञान को जीत लिया। अज्ञान खतम हो गया। ज्ञान रह गया। अब बिना अज्ञान के, ज्ञान में ज्ञान का ज्ञान नहीं हो सकता। यह प्राकृतिक नियम है। आटोमैटिक नियम है एक का एक में ज्ञान नहीं होता। यह अज्ञान ही है, जो हमें ज्ञान का ज्ञान करा देता है। यह रात है, जो हमें दिन का ज्ञान करा देती है। अगर रात न हो, रात हमारे दिमाग से निकल जाये, तो बगैर रात के दिन का ज्ञान होगा? इसलिए जब अज्ञान खतम हो गया, और ज्ञान का जब हम आनन्द लेना चाहें, तो अज्ञान फिर खड़ा हो जायेगा। यह अन्योन्याश्रय दोष है। यह सबसे बड़ा दोष है। इससे मुक्ति का मार्ग रुक जाता है। इस दोष से बचना चाहिये। बचने की युक्ति हम बताते हैं। जब ज्ञान ने अज्ञान को समाप्त कर दिया, तो फिर ज्ञान का ज्ञान में आलिंगन न करो। उसके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो जाओ, और कहो, कि भाई अब मेरे शत्रु जो अज्ञान की पार्टी थी, वह समाप्त हो

गयी। अब तुम भी, अपनी पार्टी के साथ, उसी के रास्ते बिदा हो जाओ, इस प्रकार ज्ञान समूह का भी त्याग कर दे।

त्यागहिं कर्म शुभाशुभ दायक।
भजहिं मोहिं सुर, नर, मुनि नायक।।

— — — —

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिए, देखिय सो अविवेक।।

तो दोनों का त्याग करना है। इसके बाद साधक साधना नहीं करता, निकल जाता है। सर्कुलेशन से बाहर हो जाता है। सुषुप्ति के बाद तुर्या, और उसके भी आगे। ज्ञान आया, अज्ञान आया, सत्य आया, असत्य आया, दिन आया, रात आया यह दोनों चक्का चलते रहते हैं। कबीर ने कहा है कि

चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय।।

ज्ञान से अज्ञान खतम हुआ, ज्ञान रह गया। तो एक चक्का खतम होने से चक्की जाम हो जायेगी। दोनों खतम हो जायें, तो चक्की से मुक्ति मिल जाती है। तो इन दोनों को त्याग कर साधक इस सर्कुलेशन से बाहर निकल जाता है। ऊपर उठ जाता है। हायर लेवल प्राप्त कर लेता है, यह कल्याण का प्रशस्त मार्ग है। यही रास्ता है। और जो सर्कुलेशन में आता है, वह अलग है। जैसे तुमने साधना की। घोर तपस्या करके फिर डिमांड कर ली। जो ऐश्वर्य मिले, फिर भोग किया, और सर्कुलेशन में आ गये। फिर किया, फिर शान्ति मिली, उसका उपभोग किया, फिर आ गये। तो यह सर्कुलेशन चलता रहेगा। खतम नहीं होगा। इसलिए चाहना कुछ भी नहीं है। साधन भजन करना है। भजन का अर्थ है, मन विषयों में भागे न। भक्ति का मतलब है, भगवान से विभक्ति न हो। या यों कहें कि भग इति स भक्ति। भग के रास्ते से जो आवागमन है, उसकी इति हो जाये। आवागमन समाप्त हो जाये, वह भक्ति है। तो यह बिना विजातीय को खतम किये, और फिर सजातीय–विजातीय दोनों का त्याग करके इस सर्कुलेशन से बाहर हुये बगैर, नहीं होता। यही मुक्ति का मार्ग है। कल्याण का मार्ग है। इसके आगे तुर्या और तुर्यातीत की अवस्था, साधक प्राप्त कर लेता है। यह केवल बात ही बात नहीं है। साधक का इस अवस्था में, कम्युनिकेशन होता है। इसमें खाली बोध भर नहीं होता, साधक को कुछ मिलता भी है। वह अपने अन्दर महसूस करता है, कि मैं किससे बात कर रहा हूँ। मेरे पास क्या चीज़ है? मैं क्या हूँ? कैसा हूँ, इसका बोध होता है। साँपों की लड़ाई में, खाली जीभों की लपालप ही नहीं है वहां। वहां तो चमत्कार घटित होते हैं–

यथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं शैल बन, भूतल भूरि निधान।।

तो इस प्रकार साधक की यह प्रकृति हो जाती है। फिर इसके बाद साधक की क्रियाएं नहीं होतीं, कि यह करो, वह साधन करो। इस अवस्था में पहुंच कर, यह पूछने को नहीं रह जाता, कि इसके बाद क्या करना होगा? कोई एम.ए. पास करके, प्राइमरी में एडमिशन लेने आता है कभी? कि फिर से प्राइमरी करें, हाईस्कूल करें। तो इस तरीके से, साधना के सही तरीके से, महात्माओं की युक्ति से, इस ज्ञान को भी, सच्चाई को भी, मूल चीज़ को भी, परमात्मा को भी त्याग करके, निवृत्ति को ग्रहण कर लेते हैं।

- **मानस रहस्य 4**
- **मन का निरोध**
- **अन्तर्जगत**
- **सद्गुरूध्यान**

धृतराष्ट्र अज्ञान है, जो ईश्वर को नहीं देखता, अंधा है वह, अज्ञान है। गांधारी उसकी अर्धांगिनी है, जो उसके सिद्धान्त को, उसके स्वभाव को, धारण करने वाली प्रकृति है। अज्ञान के धर्म की जो धारणा है, वह प्रकृति, माया। वह गांधारी है। उसके दुर्मन, दुर्बुद्धि जैसी सैकड़ों संताने हैं। वह गांधारी बोल रही है, कि जिन अंगों में मेरी दृष्टि पड़ेगी वे अजर–अमर हो जायेंगे। इसका आशय है, कि मुझसे छुपा न रहे। अब यह माया, जो अजर–अमर है। तो जो माया के दायरे में रहेगा, जिस पर उसकी दृष्टि रहेगी, वह ईश्वरीय क्षेत्र से नहीं जीता जायेगा। उसका शरीर वज्र का हो जायेगा, और जो माया की दृष्टि से बाहर हो गये। प्रवृत्ति माया क्षेत्र में न रही। तो प्रभाव न रह जायेगा। निकाला जा सकेगा। यह साधक के अन्तर्जगत की बातें हैं। आध्यात्मिक है। एक तो यह संसार है। यह जो बाहर है। और एक दुनिया साधक के अन्तर्जगत की होती है। अब जैसे रामायण तो कॉमन हो गयी, और रामचरितमानस यह साधकों के लिए है। जो अन्तर्जगत से जुड़ कर साधना करना चाहते हैं। मानस शंकर जी के अन्दर की रचना है।

रचि महेश निज मानस राखा।
पाइ सुसमय शिवा सन भाषा।।

शंकर संत को कहते हैं। जो शंकाओं का निवारण करे, उसे शंकर कहते हैं। संत ही यह काम करते हैं, जो साधकों की शंकाओं का निवारण कर सकते हैं। ऐसे महात्माओं को, संत महापुरुष को, शंकर कहते हैं। इस दृष्टि से, मानस से अगर लिया जायेगा, तो सुरति चाहे भगवान में लगा दो, भक्ति करो। वह भी कर्तव्य है। चाहे दुनिया के कामों में लगा दो, वह भी कर्तव्य है। दोनों कर्तव्य ही तो हैं। समस्या क्या है? एक ईश्वर अनुकूल कर्तव्य है, दूसरा इस अनुकूल के प्रतिकूल कर्तव्य है। यह दो बनकर तैयार हो गये। अब यह बन्दर क्या है? क्या राम को, जो राजा थे, अगर उन्होंने त्याग किया था, तो उन्हें बन्दरों के बजाय मनुष्यों का समाज न बनाना चाहिये? आदमी की पलटन तैयार करते। लेकिन गोस्वामी जी ने बन्दरों को दिखाया। क्योंकि मानस के हिसाब से, बन्दर ही ठीक समझा गया। राम के साथ कम्पोजीशन में सुविधा होगी, आध्यात्मिक दृष्टि से। बालि कहते हैं, सबसे बली को। बली कौन होता है– कर्तव्य। और कर्तव्य में क्षमता होती है, कि जो उसके सामने होता है, उसकी ताकत उसमें आ जाती है। और उसकी अपनी ताकत होती ही है। तो दूसरा हार जाता है। ईश्वरोन्मुख जो सुरति होती है, वही उसका भाई है, सुग्रीव। संसारोन्मुख सुरति बड़ी बलवान होती है। यह दोनों अन्तःकरण में होते हैं। इसलिए सहोदर भाई हैं। कर्म की दृष्टि से, क्योंकि भजन करना भी कर्म है, और भजन का विरोध करना भी कर्म है। यह भाई तो है, पर है एक दूसरे के विरोधी। इसलिए इनका युद्ध होता है। अब थोड़ा पीछे चलो। यह पाँच तत्वों का जो शरीर है, यही पंचवटी है। जब शरीर के स्तर पर साधना कर लेता है साधक, तो पंचवटी में निवास हो जाता है। कुम्भज ऋषि के आदेश से। यह नाभि कमल ही कुम्भज है। जब इससे ऊपर उठ जाता है साधक, तब पंचवटी में निवास हो जाता है। तो जानते हो? साधक को हमेशा निरपेक्ष रहना चाहिये। जहां कुछ इच्छा हुयी, तो फंस गया–

इच्छइ काया, इच्छइ माया, इच्छइ जग उपजाया।

फंस गये, तो क्या होगा? इनर्जी चली जायेगी। शक्ति चली जायेगी। सीता चली गयी। मोह को मौका मिल गया। मोह रावण है। सीता को लेकर चला रावण। गीध मिला। गीध क्या है? यह मुंह है। इसका दाह किया। मुंह का कहना नहीं चल पाया। सीता को बचाने के लिए रावण से लड़ा। रावण ने पंख काट दिये। आगे कबंध मिला। जो पूर्व जनम के खराब कर्म हैं, वही कबंध है। जब कबंध को मार दिया, तो शक्ति के जाने से जो कमजोरी आयी–उसमें कुछ राइज हुआ–साधक। तो झट आगे, सन्तोषरूपी सबरी मिल गयी। मन की मस्ती रूपी मतंग ऋषि के दर्शन हुए। प्रेम रस रूपी पम्पासर मिल गया। फिर आगे चले, तो वैराग्य रूपी हनुमान मिल गया। वैराग्य आ जाने से, सुरति भगवान से जुड़ गयी– सुग्रीव से मित्रता हुयी। सुरति ही सुग्रीव है। जो संचित विजातीय कर्मरूपी बालि का विरोधी है। उसने राम को बताया, कि इन सात ताड के पेड़ों को जो एक ही बाण से गिरा देगा, वही बालि को मार सकता है। यह सात पेड़, साधना की सात भूमिकाएं हैं। जब साधक शुभेक्षा, सुविचारणा, तनु मानसा, सत्वापक्ष, असंसक्ति, पदार्थ–भावनी, तुर्यगा इन भूमिकाओं को पार कर लेता है, तो कर्म रूपी बालि को समाप्त कर देता है। उसको त्याग रूपी तारा, अनुराग रूपी अंगद, ब्रह्मज्ञान रूपी बन्दर मिल जाते हैं। नियम रूपी नल–नील की सहायता से, संसार रूपी समुद्र में, संयम रूपी सेतु की रचना करके, इस संसार रूपी समुद्र को, जिसमें विषय का जल भरा है, पार करके आशक्ति रूपी लंका पर चढ़ाई करके, मोह–रावण, क्रोध–कुम्भकरण, काम–मेघनाद, इन राक्षसों का वध करके, जीव रूपी विभिषण को राजा बना दिया। स्वरूप में स्थिर कर दिया। और शक्ति रूपी सीता को प्राप्त कर लिया। इस प्रकार अगर कर सकता है, तो अपने स्वरूप में स्थित होकर, निर्लेप रह सकता है जीवन में। निर्लेप, वेट रहित हो जायगा, भार रहित। फिर हवा में तैरना आ जाता है। तैरना रूप त्याग आ जाता है। यह सुषुप्ति होती है। इस तरह से सुषुप्ति से तुर्या। तुर्या से तुर्यातीत फिर तीतातीत अवस्थाएं मिल जाती हैं। फिर त्याग का भी त्याग हो जाता है। तीव्र त्याग का भी त्याग। उस स्थिति की अनुभूति हो सकती है, कहने में नहीं बनता। जैसे राकेट पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण तक काम करता है, फिर अंतरिक्ष में भार रहित हो जाता है। ईथर की तरह। निर्मल आकाशवत वह निर्लेप हो जाता है। निर्लेप रह सकता है। तो इस तरह से जब सारे कर्माशय निकल जाते हैं। यह समझने की चीज़ है। साधना तो शुरू में है। बैठने में अगर तकलीफ होती है, तो सुखासन से कर सकते हैं। उसमें भी नहीं बैठ सकते तो खड़े–खड़े हो सकती है। इसमें भी दिक्कत आती है तो पड़े में भी हो सकती है, करो चाहे जैसे। मन को रोकने से काम है। शरीर से मतलब नहीं। खास बात है मन को रोकना। खाने में रूके, उपवास में रुके, बैठने से रुके, उसे रोकना है। उसे रोको। और अगर तुम्हारा मन नहीं रुकता तो उसे साधना नहीं कहते, लक्ष्य है मन को रोकना। अगर तुम्हारा मन खड़ा हो जाता है तो तुम साधना कर सकते हो, राइज हो सकते हो, लक्ष्य को पा सकते हो। जितना ज़्यादा मन रुकेगा, उतना ज़्यादा विल पावर आयेगा। और अगर मन नहीं रुकता, तो समझ लो कि ज़्यादा और ज़्यादा मेहनत की ज़रूरत है। मन जितना चंचल होगा, उतना ही ज़्यादा एनर्जी रुकने पर पैदा करेगा। यह निश्चित है। मन अगर चंचल नहीं होता, तो रूकने पर एनर्जी नहीं पैदा करता। इसलिए साधक को मन की चंचलता से उद्विग्न होने के बजाय उसे रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। मन को लगाना है, एक जगह। यह कैसे एक विन्दु पर खड़ा हो जाये–एक प्वांइट पर मन का निरोध करना है। खड़ा करना है। यही भजन है। भज न, यह मन भागे न। बस एक जगह रहे। भक्ति। भग इति स भक्ति। यह शरीर माता के भग से पैदा होता है। भग इति, अब उसमें फिर से न जाना पड़े। ऐसा इलाज हमें करना है। भगवान हमें ऐसा बना दे,

कि फिर से जन्म न लेना पड़े। दूसरा भगति का मतलब है कि भागने की इति। इतना भागे इतना भागे, कि भागने की कोई जगह नहीं रह गई। 84 लाख योनियों में जब भागने की इति हो जाय, वह भक्ति है।

वक्ताओं के मुख से अगर सुनों, तो ज्ञान को अलग बताते हैं, भक्ति को अलग बताते हैं– दोनों में झगड़ा भी करा देते हैं। लेकिन यह गलत तरीका है, ऐसा है नहीं।

देखिये रामायण में क्या कहते हैं–

'ज्ञानहिं भगतिहिं नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा।।'

दोनों अभिन्न अंग हैं। ये अलग नहीं हो सकते। जब हमको समझ में आ गया, कि ईश्वर का स्वरूप यह है, (यही ज्ञान है)। फिर हम पकड़ लिये भगवान को यह भक्ति है। और जानकारी ज्ञान है। तो दोनों एक ही हुये न? पहले जानकारी हुई–फिर पा गये। तो इस तरीके से अन्तर नहीं है, एक ही हैं।

हां, तो कोई भी आसन हो, तुम्हें उसमें बैठने से कमर में दर्द आ गया, या और कहीं दर्द हो गया, या अभ्यास नहीं है– तो उसको बदल दिया जा सकता है। फिर शुरू करो। लेटकर करो–अगर पड़े–पड़े नींद आ जाती है– खड़े–खड़े करो। अगर ऐसे नहीं आता है, तो चलते–चलते करो। करना है, इसमें कोई दिक्कत नहीं। बदला जा सकता है। और यह हम पहले कह चुके हैं, कि साधन आलराउंड होना चाहिए। ऐसा नहीं कि हम बैठ जायं, तब तो हमारा ध्यान लग जाय, और जब खड़े हो जायं तो लगे ही नहीं। तब तो फिर माया अच्छी न हमसे पीठ फेरी? जब हम ध्यान करेंगे, तब तो भगवान हमारे प्रेजेन्ट रहेंगे, हमको बचा लेंगे। और जब खड़े हैं–चलते हैं, खाते हैं और ध्यान नहीं है, तो फिर उस समय तो भगवान रहेंगे नहीं। भगवान नहीं रहेंगे, तो माया आ जायगी। हमने बताया है न, कि माया रहेगी या भगवान। जब भगवान नहीं रहेंगे, तो (हमारे मन में) माया कंट्रोल कर लेगी। जब माया नहीं रहेगी, तो वो (भगवान) कंन्ट्रोल कर लेंगे। तो ऐसे कैसे काम चलेगा? इसलिये हम बैठे रहें, तो भगवान को लिये रहें। खड़े रहें तो भी, भगवान को लिये रहें। सो जायं तो भी, भगवान ही बैठा रहे अंदर। हम कभी जगह न दें, अन्य को। अगर जगह देते हैं, तो फिर उठाकर टंगड़ी हमें फेक देगी माया। तो भैया, ये सब सोचने की बातें हैं। इनको पकड़ लेना चाहिए। और नहीं तो बदलो। और नहीं बदलोगे, तो काम ही कैसे चलेगा? फिर से शुरू करो। हाँ, इतना ज़रूर है कि अगर मन नहीं लगता है, बड़े वेग से दौड़ता रहता है–चिंतवन में। तो नाम जपो–श्वासा से। जपते–जपते–जपते जब थोड़ा मन की गति में खुमारी आ जाय, सुस्ती आ जाय (वेग थम जाय) तब फिर ध्यान करो। ऐसा नियम है। तब फिर, ध्यान लग जायगा। और जब ऐसे ध्यान करोगे–दौड़ रहा है पचास किमी. की स्पीड से, तो एक दम कैसे रुक जायगा? ब्रेक लगाते–लगाते काफी दूर तक जाकर रुकेगा। तो ब्रेक है, नाम। मन दौड़ रहा है। अभी खाने मे जा रहा है, पीने मे जा रहा है, घर में जा रहा है, स्त्री में जा रहा है, चारों तरफ दौड़ रहा है। अब हम नाम जपने लगे– , ॅ, ॅ। तो एक ही चीज़ पा गया न। तो जो चारों तरफ दौड़ रहा था, वह रुका। और जब नाम जपते–जपते, थोड़ी सुस्ती आ जाए, तो फिर ध्यान में लगा दो। यह तरीका है। और पहले ही ध्यान करोगे तो नहीं रुकेगा। स्पीड में है। जैसे बताया जाता है, कि कुंभकरण क्रोध का प्रतीक है। और मोह का रूप रावण है। अब अगर इन्होंने तपस्या करके वरदान प्राप्त किया, तो पूछा जा सकता है, कि क्या क्रोध और मोह भी कभी तपस्या करते हैं? क्या उन्हें ऐसा होना चाहिये? तो देखो, अध्यात्म है तो अन्दर की

चीज़, लेकिन वह स्थूल जगत पर आधारित है। अब जैसे नारद के भी माता–पिता रहे। इन्द्र के भी रहे। सनक सनंदन के भी माता–पिता हुये। यहां तक कि पृथ्वी, जल, वायु, आकाश के भी माता–पिता कहे गये। लेकिन यह बात किसी के दिमाग में आयेगी, कि पृथ्वी के माता–पिता भी हो सकते हैं? उसी तरह जैसे तुलसीदास ने लिखा है, कि शंकर जी की सती नाम की जो स्त्री थी, जब पिता के यज्ञ में मर गयी, तो पार्वती के रूप में हिमांचल के द्वारा मैना नाम की स्त्री से पैदा हुयी। हिमालय तो पहाड़ है, अब यह बात किसी के दिमाग में आयेगी? इस तरह के बड़े विचित्र–विचित्र कथानक भरे पड़े हैं, तो इनको हमें अन्तःकरण में ट्रांसलेशन करना पडेगा। अब शंकर जी के विवाह में, सारे देवता बराती रहे, भूत–प्रेत भी बराती रहे। शंकर–पार्वती अनादि देवता रहे। उधर विवाह के समय गणेश की पूजा करते हैं, जबकि गणेश इन्हीं के पुत्र कहे गये हैं। इस तर्क का समाधान तुलसी ने इस तरह से किया है कि–

कोउ अस संशय करै जनि, सुर अनादि जिय जानि।

ये देवता अनादि हैं, अजर–अमर हैं, आलौकिक हैं। तो इस तरह से इनका समाधान ऐसे नहीं मिल सकता है। जब हम साधना में उतरेंगे, तो समझ में आयेगा कि बाहर की दुनिया के अलावा एक अंतर्जगत भी है। स्थूल शरीर जो यह दिखता है, यह तीन हिस्सों में बंटा है। 1. स्थूल शरीर, 2. सूक्ष्म शरीर, 3. कारण शरीर। स्थूल शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश पाँच तत्वों का है। सूक्ष्म शरीर 17 तत्वों से बना है 10 इन्द्रियां, 5 प्राण, मन और बुद्धि। जो है तो स्थूल के साथ, लेकिन उससे पृथक है। सो जाने पर, शरीर के साथ नहीं रहता। मरने पर, स्थूल शरीर को, सूक्ष्म शरीर छोड़ देता है। इसलिए मानना तो पड़ेगा, कि दोनों अलग–अलग हैं। और उसके अन्दर जो कारण शरीर, जो बोल रहा है, यह अलग है। स्थूल शरीर का अधिष्ठाता शंकर। सूक्ष्म का ब्रह्मा, और कारण का विष्णु है। तीन शरीरों के तीन अध्यक्ष होते हैं। ये मिल कर काम करते हैं। इसलिए तीनों शरीर मिलकर एक हो जाते हैं, अलग रहते हुये भी। अब इसमें एक सजातीय अवयवों का समूह है। और एक विजातीय पार्टी है। तो यह ब्रह्मा तो दोनों को बनाता है। सजातीय–विजातीय दोनों को वही रचता है। यह प्रकृति का आटोमैटिक कांस्टिट्यूशन है। वही बुद्धि, जब उसमें अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ जाता है, तो वही ब्रह्मा है, विधि है। वह दुख–सुख, अच्छा–बुरा, प्रकाश–अंधेरा दोनों का रचयिता है। सृष्टि में संतुलन बनाये रखना उसका काम है। बताओ अब दुनिया में लड़की ही लड़की पैदा हो जायें, तो काम कैसे चलेगा? संतुलन बिगड़ न जायेगा? इसलिए ब्रह्मा रावण, कुम्भकरण को भी वरदान देता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विजातीय तत्व, और ज्ञान, वैराग्य, विवेक, सन्तोष, क्षमा, दया आदि सजातीय, दोनों रहेंगे। तभी इस संसार का संचालन, ईश्वरीय संविधान के अनुसार, संतुलन बनाकर होता है। इसलिए जो भी काम करे, उसमें ब्रह्मा का आशीर्वाद ज़रूरी हो जाता है। हम जब अन्तःकरण के स्तर पर साधना में उतरते हैं, तो हमारे अच्छे विचारों को भी उसका आशीर्वाद मिलता है, और यदि बुरे विचार आते हैं, तो उन्हें भी वह आशीर्वाद दे देगा। जब हम त्याग की वृत्ति अपने में लावेंगे, तो वह ब्रह्मा हमारे त्याग में वृद्धि करेगा, और यदि हम मोह को लायेंगे, तो मोह की वृद्धि कर देगा। क्रोध की वृद्धि कर देगा। इसलिए उसने रावण को, कुम्भकरण को, और विभीषण को, उनकी

रुचि के अनुसार आशीर्वाद दिया। लेकिन ब्रह्मा का काम सृष्टि में संतुलन बनाये रखना भी है। अध्यात्म में रावण मोह है। मोह की वृत्ति हमारे अन्दर बढ़ जाती है। यही उसका तपस्या करना है। मोह में क्या होता है? यह सब मेरा है, यह सब मेरा है। लेकिन अब जब क्रोध का नम्बर आया, तो, क्रोध तो बड़ा भयंकर होता है न? मोह में क्या है–मेरा है, मेरा है। बढ़ने पर वैसा प्रभाव नहीं होगा, जैसा क्रोध में होगा। क्रोध तो सब चौपट कर देगा। सबको खा जायेगा। तो सरस्वती के द्वारा उसकी बुद्धि में परिवर्तन कर दिया, और कुम्भकरण ने 6 माह सोने का वर मांगा। उसे वर मिला–6 माह सोओ, और एक दिन के लिए जागो। यह तो हम तुम्हें जबरजस्ती कम्पोजीशन करके समझा रहे हैं। लेकिन यह एक महात्मा के हृदय की संरचना है। यह बाहर के इतिहास में ऐसी घटना हुयी है कि नहीं, इससे हमें मतलब नहीं है। हुयी भी है, तो पीछे हुयी होगी। हमें अपने अन्तःकरण में, जहां से हमें मतलब है, वहां से लेना है। इसमें यह क्रोध है। क्रोध बहुत भयानक है। लेकिन यह हर समय बना नहीं रहता है। कुछ समय रहता है, फिर शान्त हो जाता है। 6 माह सोने का यह अर्थ है, कि हमारे अन्दर क्रोध निरन्तर जागृत रहने वाली बुराई नहीं है। हम अपने घर परिवार, परिवेश और अपने अन्तःकरण में क्रोध के सम्बन्ध में ऐसा देख सकते हैं। लेकिन जब क्रोध जागृत होता है, तब विध्वंश कर देता है। सन् 62 में चीन और भारत में जागृत हुआ, युद्ध हुआ और पचासों हजार सैनिक मारे गये। यही तो कुम्भकरण के विषय में लिखा है न? जब एक दिन को जागता था, तो हजारों घड़े मदिरा, हजारों भैसें खा–पीकर, विध्वंश करके, फिर सो जाता था। यही तो हुआ हिमालय में। थोड़े समय के लिए जागा, पचासों हजार को खा गया। फिर सो गया फिर दो तीन साल बाद पाकिस्तान के युद्ध के रूप में फिर जागा। कितना बड़ा आकार है इस क्रोध का? ऐसे होता है–क्रोध। यह तो बाहर की बातें हैं। हम तो अन्तःकरण की बात करते हैं। तुम तो मानव हो! मानव के अन्दर अनेक देवता और अनेक राक्षस रहते हैं। इन सभी की अपनी–अपनी क्षमताएं है। सभी को वरदान मिले हुये हैं। किसी को ब्रह्मा का, किसी को देवताओं ऋषियों से वरदान मिला है। तो देखो शरीर ही ब्रह्माण्ड है। इसमें आशक्ति लंका है। मोह रावण है, क्रोध कुम्भकरण, काम रूपी मेघनाद इसमें रहते हैं। हां, तो हम कह रहे थे, काम मेघनाद है। यह बड़ा प्रभावशाली तत्व है। भगवान राम जब लंका विजय कर लिये, तो ब्रह्मा आदि देवता और ऋषि मुनि आये। उनमें कुम्भज श्रेष्ठ थे। उनकी स्तुति करने आये। उनसे राम ने यह प्रश्न किया, कि आप बतायें, कि यह क्या बात है कि मेरे इस वनवास में कोई बड़ी भारी संतुलन बिगाड़ने वाली स्थिति नहीं आयी, लेकिन इस मेघनाद ने डावाँडोल कर दिया है। उसमें कौन सी ऐसी बात है? आप लोग बताइये।

मेघनाद को इस तरह से भगवान राम ने सबसे ज़्यादा ताकतवर माना है। यह रावण से अधिक बलवान था। था तो उसका लड़का, लेकिन उससे अधिक शक्तिशाली था। रावण को इन्द्र ने जीत लिया था– तो फिर इसने जाकर इन्द्र को हराया और अपने पिता को छुड़ा लाया था। इसलिये इसको टाइटिल मिला था– इन्द्रजीत कहलाता था। बादल के समान इसकी गर्जना थी, इसलिए मेघनाद कहलाता था। यह मेघनाद है, काम। इसका आकार,

प्रकार रावण और कुम्भकर्ण की तरह बड़ा और भयानक नहीं है। कहीं आया तो नहीं ऐसा? साधारण, दो हाथ, दो पैर का साधारण सा दिखाया जाता है। लेकिन सबसे ज़्यादा बलवान–

मुनि विज्ञान धाम मन, करै निमिष महं क्षोभ।

बड़े–बड़े ऋषि मुनि भी, जहां स्त्री के सम्पर्क में आये, तो नष्ट हो गये। उसकी सारी तपस्या नष्ट हो जाती है। इस तरह से कामदेव सबसे बलवान है। अब देखिए गोस्वामी जी ने कम्पोजीशन किस तरीके से किया है। कुम्भकर्ण को सबसे ज़्यादा भयंकर और लम्बा चौड़ा दिखाया है, तो क्रोध के मामले में सटीक बैठता है। देश–विदेश, चीन पाकिस्तान तक विस्तार हो जाता है इसका। मोह रावण को भी दस सिर, बीस भुजा वाला दिखाया है। राजा है मोह। हनुमान ने लंका जला दिया, रावण ने मय दानव से कहा, फिर वैसी ही बना दिया। यह मन ही, मय दानव है। मोह के अधीन है–मैं मेरा। इस तरह से इसको अन्दर से लेना पड़ेगा। लोभ नारान्तक है। कपट कालनेमि है। अभिमान अहिरावण है। इसी शरीर में बायीं तरफ काम, क्रोध, लोभ, मोह विजातीय रहते हैं। इसी में दूसरी तरफ सजातीय तत्व हैं। सूक्ष्म शरीर में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब जो व्रह्मा है, वह दोनों को वरदान देता है। अब तुम्हें चाहिये कि बुराई और अच्छाई में लड़ाई रच लो। अच्छाइयों से बुराइयों को जीत लो। और जब बुराई नष्ट हो जाये, तो अच्छाइओं को भी बिदा कर दो। अगर इनका त्याग नहीं किया गया, तो अन्योन्याश्रय दोष से फिर विजातीय तत्व जीवित हो जाते हैं। यह आटोमैटिक सिस्टम है। इसलिए ज्ञान, विवेक, वैराग्य, सन्तोष, क्षमा, दया आदि का भी त्याग करे, फिर त्याग का भी त्याग कर दे। ज्ञान से जब अज्ञान को जीत लिया जाता है, तो अज्ञान, ज्ञान में बदल जाता है। जब ज्ञान का त्याग कर दिया जाता है, तो विशेष ज्ञान बन जाता है, और जब उसका भी त्याग किया गया, तो तुर्या मिल गया। हम आगे निकल गये। हम सर्कुलेशन से बाहर हो गये।

गुरू का ध्यान इसलिए करते हैं, कि वह जागृत होता है। उसके अंग–प्रत्यंग में वह शक्ति जागृत होती है। वह एकदम तैयार एनर्जी है। और दूसरे लोगों के पास, रहती नहीं। इसलिए जब ध्यान किया जायेगा, तो उनकी एनर्जी से साधक को मदद मिलेगी। गुरू में चुम्बक की तरह यह क्षमता होती है, कि तुम्हारे मन को पकड़ ले। तो जब हम उनका ध्यान करते हैं, तो हमारी क्षमता अगर काम नहीं करती, तो गुरू की ताकत से हमें मदद मिलती है। और अगर ध्यान को और बारीक करते हैं, तो सही ध्यान मिल जायेगा। और अगर स्थूल ध्यान किया जायेगा, तो हाथ देखेंगे–तो हाथ अलग है, आँख देखें–तो आँख अलग है, मुँह देखेंगे–तो मुँह अलग है। इस तरह से फिर वही बीमारी तैयार हो जायेगी, जिससे हम भागना चाहते हैं। इसलिए ध्यान के लिए ठीक तरीका यही है, कि अपने इष्ट को हृदय में लेकर उनके सामने हमेशा–हमेशा के लिए अपना समर्पण करें, और उनके चरण के अंगूठे का नख देखें। उसमें भी एक तिल जैसा बिन्दु देखें। उसमें मन स्थिर करने का अभ्यास करें। फिर धीरे–धीरे उस तिल को, और छोटा करके देखने का अभ्यास करें। मन को स्थिर करने का यह तरीका है। और महापुरुष का ध्यान हम इसलिए करते हैं, कि जब हम उनका ध्यान करेंगे, तो उधर उन्हें पता लग जाता है। वह पता लगा लेते हैं, कि इतने टाइम कौन उन्हें ध्यान में पकड़ रहा है। यदि साधक सही रूप में हृदय में पकड़ लेता है, तो निश्चित ही कम्युनिकेशन हो जाता है। और जब वह जान जायेंगे, तो अपनी इच्छा से हमें राइज कर

सकते हैं। यही तरीका है–राइज करने का, उठा देने का । यह सब रहस्य है। वैसे कोई नियम इसमें इस तरह से लागू नहीं होते। यह आलौकिक क्षेत्र है, इसमें लौकिक नियम–कानून लागू नहीं होते। ईश्वरीय क्षेत्र में, देश–काल से परे की बातें हैं। रहस्यमय है यह सब। यह आलौकिक क्षेत्र है, लौकिक नियमों का सहारा लेकर नहीं चलता है। अब जैसे, नाम जपते हैं, तो बैखरी से राम, राम, करोड़ों बार जपने से जो फल मिलता है, मध्यमा से एक करोड़ जपने से मिल सकता है। पश्यंती से एक लाख से ही मिल सकता है। परा से एक बार नाम लेने से ही मिल सकता है।

बारक नाम जपत जग जेऊ।
होत तरन तारन नर तेऊ।।

बारक नाम–एक बार नाम लेने से, तर जाता है, और दूसरों को तार देने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। वह कैसा नाम है? तो वह उल्टा नाम है। राम, राम, राम यह जप है, इसका उल्टा अजप, अर्थात् अजपा जो जपा न जाये। यही अजपा उल्टा नाम है जो बाल्मीकि ने जपा था।

उल्टा नाम जपत जग जाना।
बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।।

लोग जानते तो हैं नहीं। इसलिए कह देते हैं मरा, मरा जपते रहे। ऐसा थोड़े ही है। ऋषियों ने बता दिया, श्वासा ऊपर जाती है तो रा, नीचे आती है तो म। जप बाहर होता है। उलट कर अन्दर की ओर होने लगा। इस तरह बाल्मीकि ने उल्टा नाम जपा। अजपा जपा तो व्रह्म के समान हो गया। अरे, यह कोई बड़ी बात थोड़े है? यह तो मामूली सी चीज़ है। क्या नहीं हो सकता, क्या नहीं हो सकता है? इस तरीके से यह सब विधियां हैं। महापुरुषों ने जो बता दिया है। लेकिन यह समझ में आती है, तो इनकी सही एडजेस्टिंग होनी चाहिये। खाली बातों से कुछ होता नहीं। असली बात है, मन की गति को धीरे–धीरे कम करना। ध्यान में, या जप में, पहले पहल मन बार–बार भागता है। बार–बार पकड़ कर फिर उसी में लगाओ मन की गति कुछ धीमी होगी। फिर और धीमी होगी। यह सब प्रैक्टिकल चीज़े हैं। बताने से क्या होता है? यह बड़ी बारीक बातें हैं।

एक ज्ञेय है, एक ज्ञाता है। साधक जो है। वह उसके सामने अपना समर्पण करता है। तो यह कई तरीके से हो सकता है। यह तो साधक की अपनी रुचि है, जैसे करे। अपने इष्ट को हृदय में बैठा कर, उनके चरणों में समर्पण करे, और अनुनय विनय करे कि– हे भगवान! क्या मैं इतना पापी हूँ, कि आप मुझे स्वीकार नहीं कर सकते है? मुझे अपनी शरण में, अपने चरणों में, जगह नहीं दे सकते हैं। अब मैं कहां जाऊं भगवान! मैं आपकी शरण में आ गया हूँ। मुझे स्वीकार कीजिए। मुझे अपने स्वरूप में मिला लीजिए। इसके लिए जो उपाय हो सके, आप ही करें। भगवन मैं आपका ही हूँ। मैं आपकी शरण में हूँ।

जनम–जनम लगि रगर हमारी।
बरउं शम्भु न तु रहउं कुमारी।।

मैं आपको छोड़कर कहां जाऊं? मेरी रुचि आपके चरणों में लग गयी है। आप भगवान हैं, सर्व समर्थ हैं, मेरा उद्धार कीजिए। आप मेरे इस मन को, अपने चरणों में लगाइये। यदि आपने कृपा करके, इस मन के कंचन को, अपने स्वरूप की कसौटी पर कस कर खरा नहीं बनाया, तो क्या कभी इसका सुधार होगा। यह मेरा मन माया में ही लगा रहने वाला है। यदि

आपने इसे पकड़ कर अपने चरणों में नहीं लगाया, तो कभी मेरा उद्धार न हो सकेगा। यह मन माया में ही फंसाए रहेगा। मैं नीच से नीच, निकृष्ट से निकृष्ट हूँ। फिर भी आपकी महान कृपा है, कि मुझे आपने अपनी शरण दे दी है। हे भगवान! मैं यह नहीं कहता, कि मैं आपके लायक हूँ। मैंने सुना है, कि एक सदन कसाई था। एक रैदास था, इन सभी का उद्धार किया है आपने। तो क्या ये सब किस्से झूठे हैं? क्या आपकी शरण में, मेरा उद्धार नहीं हो सकता? इस तरह से, अपने को छोटा बनाते–बनाते, और उन्हें महान से महान बनाते–बनाते, काम बन जाता है। अपने अहंकार को समाहित करने का, यही तरीका है। इगो को इसी तरह से खतम किया जाता है। और कोई दूसरा तरीका थोड़े है। अपने को छोटे से छोटा बताना, और हल्का से हल्का बनाना, यही तरीका है। अपने को छोटा से छोटा बनाते–बनाते इतना हल्का होते जाना, कि वह पारदर्शी हो जायेगा। आकाशवत हो जायेगा। तो स्वीकृति मिल जायेगी। हम पारदर्शी ही तो, नहीं हो पाते हैं। आकाशवत नहीं हो पाते। आकाश कोई वस्तु नहीं। पृथ्वी नहीं, जल नहीं, गैस नहीं, निर्मल आकाशवत होना है। कैसे हो सकते हैं आकाशवत, यह बताओ?

अब जैसे कोई लाठी मारे, उस आदमी को। वह कैसे बचत करेगा? या तो लाठी–डण्डा से रोकेगा, नहीं तो हाथ से रोकेगा, या तो पीठ कर देगा उस ओर। तो जो निरवयव है, वह है सबसे मूल्यवान। उसी में है सब–दारोमदार। इसलिए देखना चाहिये, कि हमारे हृदय में जो हमारे इष्ट का स्थान है, उस पर कोई मोह रूपी रावण न बैठ जाय। अज्ञान रूपी धृतराष्ट्र न बैठ जाय। काम, क्रोध, लोभ आदि कोई दानव न बैठ जाय। यह ऐसी जगह है, जहां हम जिसे देखते हैं, वही हम हो जाते हैं। यह चीज़ मन से तैयार होती है। इसलिए ध्यान का अर्थ दूसरा हो जाता है। गुरू को सर्वोपरि मानते हैं। अल्टीमेट मानते हैं, अन्तर्यामी मानते हैं, तो फिर उसी को देखते–देखते–

देखते–देखते क्या से क्या हो गया।
खुद ही बन्दा खुदा हो गया।।

तो गुरू को देखते–देखते, रूप तो हट जायेगा, और गुरू के पास जो कशिश है, ताकत है, जिससे वह गुरू बना है, वह हमें मिल जायेगी। फिर वह हमें अपने में मिला लेगा।

फिर न गुरू न चेला, पुरुष अकेला।

फिर गुरू ही कहेगा, मेरा ध्यान न करो।

छाओ–छाओ हो फकीर गगन कुटिया।

गुरू न चेला पुरुष अकेला। तो यह सब बारीक रहस्य की बातें हैं। इस तरीके से भक्ति रोते–रोते की जाती है। फिर जब साधक को कुछ उपलब्धि हो जाती है, तो उसमें इगो आ जाता है। जैसे गोस्वामी जी ने विनय पत्रिका में लिखा है। इतना रोया, इतना रोया है भगवान के लिए। तो यह भक्ति का एक पीरिएड होता है। और जब साधक को, कुछ मिल जाता है। भगवान थोड़ा अंगुली पकड़ा देते हैं। तो फिर अंदर से बल मिल जाता है। गर्व आ जाता है, फिर उसे शंका समाधान अन्दर से होने लगता है। हायर लेवल के जो साधक होते हैं, उनको बाहर से पूंछने की ज़रूरत नहीं रहती।

- **ध्यान–विधि**
- **विश्वासं फलदायकम्**
- **श्रेयष्कर साधन**

हृदय एक ऐसी जगह है, कि इसमें जिसे बैठा लिया जाता है, वही प्रत्यक्ष होने लगता है। राम जब सीता के वियोग में उसके ध्यान में थे, तो हर कहीं सीता ही दिखने लगी। लक्ष्मण ने कहा यह आप कैसी पागल सी बातें करते हैं? यहां सीता कहां है? राम ने कहा–लक्ष्मण। मैं जिधर देखता हूँ, सीता ही दिखाई पड़ती है। तो यह हृदय का ऐसा विधान है, कि इसमें जिसे जमा लिया जाता है, वह सर्वे सर्वा हो जाता है। तो जो साधकों के लिए ध्यान का सबसे अच्छा तरीका है, वह यह है, कि जिसे वह सुप्रीम समझे, उसी का ध्यान करे। चाहे व्रह्मा का ध्यान करे, चाहे शिव का। चाहे गुरू का ध्यान करे। उसे सुप्रीम होना चाहिये और जब उसका ध्यान करेगा, तो जो उसके गुण–धर्म होंगे, वे सब साधक में आ जाते हैं। यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन, मूलबन्ध, देह की समता, नेत्रों की स्थिति, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। ये इतने साधन के अंग हैं। साधक को, इनको उपयोग में लाना चाहिये।

ध्याता ध्यान और ध्येय।

ध्येय वह जिसका हम ध्यान करते हैं। ध्याता वह है, जो हर समय ध्येय को धारण करता चले। खाते–खाते, पीते–पीते, हंसते–हंसते, रोते–रोते हर समय, जो ध्येय को धारण किये रहे। यह तो नशा है। अगर नशा हो गया, तो बस फिर। उसे लोग कहते हैं, कि पागल है। हां, तो वह कहेगा, कि मैं पागल हूँ। पागल, पा गया और गल गया। तो जब ऐसा हो गया, तो वह जहां जायेगा, वहां उसे वही दिखाई पड़ेगा। यही ध्यान है। और यह जो ध्यान की बातें हैं, यह थ्योरिटिकल बातें है। हम तो प्रैक्टिकल बात करते हैं। अब तुम, जब ध्यान करने बैठते हो, तो मन इधर–उधर भागता है। अनेक तरह की बातें आती हैं। जो सही ध्यान करने वाले साधक हैं, उनके सामने भी यह बातें आती हैं। इसका कुछ कारण होता है। असल में तुम्हारे रूप को लेकर, किसी की ओर से, कोई विचार वातावरण में आ गया, अथवा तुम्हारे अपने ही पूर्व में किये हुए संकल्प, आकाश में मौजूद रहते हैं, जो ध्यान के समय तुम्हारी फ्रिक्वेन्शी में आ जायेंगे। इससे दिक्कत आ सकती है। दूसरे अगर तुम्हारा सुरा–संगम सही नहीं है, तो भी ठीक ध्यान नहीं जमता। हमारा लक्ष्य सही नहीं होगा, तो इसे ध्यान नहीं माना जायेगा। यह जो श्वासा चलती है, यह ऐसे नहीं है, कि यहां से ऐसे गयी और ऐसे आयी। नाक के बायें स्वर को चन्द्र–नाड़ी, और दाहिने को सूर्य–नाड़ी कहते हैं। जब दोनों समगति से चलती हैं, सुषुम्ना होती है। यह ध्यान में सहयोगी है। दिन में ध्यान के समय चन्द्र नाड़ी बाँया स्वर, और रात्रि में ध्यान के समय सूर्य–नाड़ी दाँया स्वर, चलना चाहिये। तब ध्यान में बाधा नहीं आयेगी। इसलिए ध्यान में बैठने के पहले, श्वास ठीक कर लेना चाहिये। इसके अलावा पेट अधिक भरा हो, खाना ज़्यादा खा लिया है, तो ध्यान नहीं लगेगा। आसन ठीक नहीं है, तो भी बाधा आयेगी। ऐसे ही शरीर के कष्ट आदि अनेक दिक्कतें आती हैं। इन सबको ठीक करके ध्यान में बैठना चाहिये। अब गुरू के ध्यान के सहारे, हमें सुई के छेद से होकर निकलना है जैसे –

धड़ धरती का एकै लेखा, जो बाहर सो भीतर देखा।

गुरू को हृदय में बैठाना होगा, हृदय में आसन तो है नहीं। आसन बिछाना होगा, गुरू को बैठाना होगा, उनके पास खुद को भी बैठना होगा। उनको प्रणाम करो, दर्शन करो। उनका सिर कैसा है, माथा कैसा है? ऐसी आँखे हैं, ऐसे कान हैं, ऐसे वक्षस्थल, ऐसा पेट है। ऐसा वेश है, इस तरह से बैठे हैं। ऐसे हाथ हैं, ऐसे पैर हैं, ऐसे पैर का अंगूठा है, ऐसे नख हैं। अंगूठे को धो लिया, धोकर जल पी लिया। फिर पूजन करो, स्तुति करो–बस यही ध्यान है। जितना समय इसमें लग जायेगा, वह पुण्यकाल है। इसके विपरीत बाहर के विषयों में जो समय गया, वह पाप काल है। एक मिनट का पुण्य काल, एक करोड़ मिनट के पाप काल का शमन कर देता है। तो इस तरह से ध्यान करते–करते, आगे का रास्ता मिल जाता है।

देखो, एक भगत रहे। भगवान के प्रेमी भावुक। भगवान की मूर्ति पूजते थे। फिर एक बड़ा मन्दिर बनवाया। उसमें भगवान की मूर्ति पधराई। यज्ञ भण्डारा किया। तमाम लोग आने–जाने लगे। यह कहानी है। भगत पुजारी बन गये। मन्दिर खूब चला। लेकिन कुछ दिन बाद, मन्दिर–मूर्ति का आकर्षण कम हुआ। लोग कम आने लगे। पहले जैसे चढ़ावा न आने लगा। वहीं पास में एक फक्कड़ महापुरुष रहते थे। अपने में मस्त। कोई आता–जाता, तो उनको गाली–गलौज करके भगा देते। उनकी ख्याति सुन कर ज़्यादा लोग आने लगे। भीड़ टूट पड़ी। महात्मा गाली–गलौज करते, तो भी भीड़–भाड़ बढ़ती जाती थी। यह देख कर मन्दिर के पुजारी ने अपने भगवान के सामने कहा– हे भगवान! मेरे ही आँखों के सामने, मंदिर में सवा मन का भोग लगता था। छप्पन–भोग लगता था। अब सवा सेर भी मुश्किल है। उधर वह बाबा, लोगों को गाली देता है, तब भी लोग घेरे रहते हैं। तो फिर क्या हुआ, कि एक दिगम्बर महात्मा के वेश में भगवान मन्दिर में आये। बोले पुजारी जी दण्डवत, दण्डवत पुजारी महाराज! पुजारी ने भी कहा दण्डवत बाबा। कहो किधर से आये? वो बोले, हमारी यहां पास में सन्तों की जमात पड़ी है। रात को एक बड़ा अचम्भा हुआ, कि सुई की नोक के बराबर छेद से, अस्सी हजार ऊंट निकल गये। पता नहीं कहां चले गये। हम सारे महात्मा, उन्हीं ऊंटों को ढूंढ रहे हैं। पुजारी ने सुना। बोला हट कहीं का झूठा बाबा। अरे! कहीं सुई की नोक बराबर छेद से, अस्सी हजार ऊंट निकल सकते हैं? साधु होकर झूठ बोलते हो। बाबा घूम कर उस फक्कड महात्मा के पास गये और यही बात कही। तो वह अपनी मस्ती में मस्त महापुरुष, अपने नशे से कुछ उतरे। यह नशा होता है। जिसे यह नशा छा जाता है, वह फिर उसी में मस्त रहता है।

कहे मंसूर मस्ताना, ये हक दिल मैंने पहचाना।
वही मस्तों का मय खाना, उसी के बीच आता जा।।

तो वह बाबा, उसकी बात सुनकर जोर से हंसे और बोले, अरे कौन सी ऐसी अचम्भे की बात है भाई। यह जो सुई की नोक बराबर छेद से निकल गये ऊंट। भगवान की मर्जी से तो, बिना छेद के ही निकल सकते थे। उसकी शक्ति से क्या काम नहीं हो सकता? तब वह नागा, भगवान विष्णु के रूप में प्रकट होकर पुजारी से बोले। देखो, तुम जीवन भर मर गये पूजा करते–करते, लेकिन तुम्हारे अन्दर यह विश्वास नहीं आ पाया, कि भगवान ऐसा भी कर सकते हैं। इस महात्मा को देखो, सबको गाली देता रहता है, न पूजा करता है न कुछ करता है, फिर भी उसका विश्वास ही फलीभूत हो रहा है।

विश्वासं फल दायकम्

तो इस तरह से विश्वास आ जाये, तो ठीक हो जाता है। भृंगी कीड़े की तरह। भृंगी कहीं से कीड़े को पकड़ ले आता है, और मिट्टी का घर बनाकर, उसमें रख लेता है। फिर

उसे भिन–भिन आवाज कर करके भृंगी बना देता है। अपने रूप में ढाल देता है। तो मन, एक कीड़े की तरह है। इसमें हम जो कुछ भी भर देंगे, वह वैसा ही रूप ले लेता है। इसी के लिए यह सब ध्यान, भजन, साधन, सब बनाया गया है। यह झूठा संसार है। झूठ को झूठ से मारा जाता है। जैसे कहीं कोई झूठ–मूठ भूत खड़ा हो जाता है, तो वह झूठे मंत्रों–जंत्रों से जाता है। झूठ को झूठ से मारा जाता है। 'टिट फार टैट'। तो इस प्रकार से विश्वास पैदा करना है। अपने अन्दर एक चार्ट बनाना पड़ेगा। जबरदस्ती विश्वास के आधार पर, यहीं हृदय में। सब ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदि के रूप। रावण का रूप दस सिर का। दस इन्द्रियां ही उसके दस सिर हैं। ऐसे ही एक सम्पूर्ण चार्ट अन्दर तैयार हो जाता है। यही सब करना है।

इंगला, पिंगला, ताना भरनी, सुषमन तार से बीनी चदरिया।
झींनी–झींनी बीनी चदरिया। बीनत–बीनत मास दस लागै.....

तो इस प्रकार से यह चदरी बीननी पड़ती है इसमें कुछ समय लगता है। बीनते–बीनते बन जाती है। इसका अर्थ अच्छी तरह समझ लो–

ध्यानमूलं गुरोमूर्ति; पूजा मूलं गुरोर्पदम्
मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यम्, मोक्षमूलं गुरोर्कृपा।।

इसलिए जो हमें सबसे सुप्रीम लगे, उसे लेना चाहिये। पहले गुरू के सामने समर्पण करके, अपनी मन की शंकाओं का निराकरण कर लें। और जब मन साफ हो जाये, तो ध्यान करें। जब हम ध्यान में बैठें, तो प्रसन्नता होनी चाहिये। किसी बड़े आदमी से मिलते हो, तो थोड़ा मुस्कराते हो। चाहे बनावटी ही हो। इसी प्रकार जब ध्यान में जाये, तो प्रसन्नता होनी चाहिये। चाहे बनावटी हो। सचमुच में हो, यह अच्छी बात है। और यदि कोई ऐसा प्रसंग आ गया, कि उसकी मन में चिन्ता करनी पड़ रही है, तो ध्यान में बैठना ठीक नहीं। क्योंकि मन को वह चिन्ता पकड़े रहेगी। मन तो एक ही है, चाहे उसे ध्यान में लगाओ, चाहे चिन्ता में लगाओ। कुर्सी तो एक ही है, चाहे उसमें भगवान को बैठा दो या चिन्ता को। इस तरीके से पहले मन को ठीक कर लो। मन में खुशी, खूब खुशी होनी चाहिये। सौभाग्य मानना चाहिये, कि मुझे भगवान के समीप होने का, ध्यान–भजन का, यह क्षण मिल रहा है। प्रसन्नता मन में रहेगी, तो ध्यान के सहयोगी भाव जागृत होते हैं। बाधक भाव दबे रहते हैं। चिन्ता आदि निष्प्रभावी रहते हैं। ध्यान में मन ठीक से लगता है। सेवा करनी पड़ेगी। तुम्हारे पास तो बहुत से साधन हैं। तुम्हें तो सब कुछ करना पड़ेगा। भजन तो एक सम्पूर्ण प्रक्रिया है। भगवान कोई आदमी थोड़े ही है, कि बुला लिया और आ जायेगा।तुम ने जो जनम–जनम से बेइमानी की है, हाथ ने की है, आँख ने की, जीभ ने की है। तो इन सबका जो कर्जा है, उसे चुकाना पडेगा। इसी के लिए सेवा करे, जप करे, ध्यान करें। और जब कर्जा चुकता हो जायेगा, तो भगवान तो तुम्हारे हृदय में बैठा है। यह सब करते–करते आगे गुरू बताने लगते हैं, कि अब ऐसा करो, ये करो, ये करो। तो फिर उसकी प्रगति होती जायेगी। नाम, रूप, लीला, धाम। सेवा, भजन के द्वारा पुण्य का धन बढ़ाना है। जो जनम–जनम का कर्जा है, पाप रूपी कर्जा माया का। उसे पटाने के लिए, पुण्य इकट्ठा करके, कर्जा से छूट जाता है। जहां कर्जा चुकता हुआ, तो माया के यहां से छुट्टी हो जायेगी। वह कह देगी, कि भगवान! तुम्हारे फलां आदमी का कर्जा चुकता हो गया। बस फिर भगवान के पास होने का रास्ता खुल गया। जप, ध्यान, भजन, सेवा, योग, साधना, यह सब इसी के लिए है। यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन, मूलबंध, देह की समता, नेत्रों की स्थिति, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये सब बहुत से अंग हैं। यह सब सब्जेक्ट हैं। जैसे पढ़ाई के लिए जब

शुरू में स्कूल जाता है लड़का, तो उसे सब सब्जेक्ट पढ़ने पढ़ते हैं। 10वीं 11वीं में फिर चार–छः सब्जेक्ट रह जाते हैं। एम.ए. में पहुचते–पहुंचते एक विषय रह जाता है। ऐसे ही है न? तो ऐसे बढ़ता ही जायेगा। लेकिन ऐसा नहीं है। केवल एक से भी हो सकता है। केवल जप करने से भी काम हो सकता है। लेकिन 24 घण्टे जप में मन न लगेगा, तो फिर बेइमानी करेगा। इसलिए जब जप में न लगे, तो सेवा में लगा दो। तो इस तरह से धीरे–धीरे कर्जा चुकता जायेगा और हम भगवान के क्षेत्र में आ जायेंगे। इस तरह से धीरे–धीरे क्षमता आ जायेगी।

गुरू भगवान के चरणों का ध्यान करते हैं। क्योंकि उसमें ज़्यादा क्षमता है। मस्तक के बजाय चरणों में। अब जैसे कहते हैं, गुरू महाराज के चरणों में प्रणाम। गुरू महाराज के दासों के चरणों में प्रणाम। भगवान के दासानुदासों के चरणों में प्रणाम। तो इसका मतलब और अधिक क्षमता की बात है। जितनी दीनता का भाव बढ़ेगा, उतनी ज़्यादा क्षमता बनती जायेगी। तो गुरू के चरणों में प्रणाम, यह साधारण है। और दासानुदासों के चरणों में प्रणाम, यह असाधारण है। इसमें ज़्यादा क्षमता बनती है। अपनी दीनता और भगवान की महत्ता, जिसमें ज़्यादा से ज़्यादा बने। अधिक से अधिक आदर सूचक जो हो, उसमे क्षमता अधिक होगी। इसलिए चरणों का महत्व विशेष होता है।

हम ऐसा साधन खोज कर अपनायें, जो सार्वभौमिक हो। जो सब जगह पहुंच सकता हो। सब पर लागू हो। जो जहां–जहां ईश्वर की गतिविधि हो, वहां तक उसकी भी व्यापकता हो, ऐसा साधन सबसे अच्छा रहता है। और जो खण्डित है। देश करके बाधित है। काल करके बाधित है। यहां भजन होता है, बाहर जाने पर, वहां जाने पर, वहां नहीं होता। यह भजन अच्छा नहीं माना जायेगा। सबेरे भजन में बैठे तो मन लग जाता है, और दोपहर में मन नहीं लगता। तो यह भजन अच्छा नहीं माना जायेगा। इस तरह से जगह या देश के बदल जाने से, समय के बदल जाने से, जो बाधित हो जाये, वह ठीक नहीं। हम जहां बैठें वहीं मन रुक जाये। जब जिस काल में बैठें मन की गति को रोक दें। यह भजन अच्छा माना जाता है। और जो देश, काल, व्यक्ति, परिस्थिति से बाधित हो, वह उत्तम नहीं माना जायेगा। जो साधन भजन देश, काल, भाषा, आदि की सीमाओं से बाहर, सार्वकालिक–सार्वभौमिक हो, सीमाओं से बाहर हो, वह उत्तम माना जायेगा। उससे ईश्वर को पाने में सफलता मिलती है। क्योंकि ईश्वर सीमा रहित है। सार्वभौमिक है। इसलिए सार्वभौमिक साधना ही ईश्वर से मिला सकती है। इसलिए करने वाले तो बहुत करते हैं, सबेरे भजन करने बैठते हैं फिर दिन में दूसरे काम, बिजनेस वगैरह होते हैं, फिर रात में दूसरे काम, सोते समय। यह भजन की गति, अच्छी नहीं कही जायेगी। भजन की गति निरन्तर होनी चाहिये। पहले सुबह बैठो, सुबह–शाम बैठो, जब समय मिले तब बैठो, धीरे–धीरे इसे बढ़ाते रहो। अन्त में ऐसा होना चाहिये, कि अनवरत भजन चलता रहे। ऐसी युक्ति मिल जाये, कि निरन्तर भजन होता रहे। बताने वाले तो तुम्हें बतायेंगे, कि लगातार 24 घण्टे श्वासा में भजन करना चाहिये। लेकिन भजन ऐसे नहीं किया जाता। भजन का तरीका जो हम बताते हैं, वह अलग है, और जो शास्त्रीय ज्ञान है, वह अलग है, भजन इस तरह नहीं किया जाता है। भजन तुम जितना भी करो, 10 मिनट करो, 1 मिनट करो लेकिन उतने में ही वहां पहुंच जाओ, जहां निशाना है, जो लक्ष्य है। भजन चाहे 10 घण्टे करो, 24 घण्टे करो, 1 मिनट करो लेकिन उसमें मन को निशाने पर पहुंचना चाहिये। जो सबसे महान है, सबसे परे है, उसमें मन को टच होना चाहिये। अगर उससे मन टच होता है, तो श्वासा खड़ी हो जायेगी। और श्वासा खड़ी हो जाने पर, पीछे का फार्म जल जायेगा। और जल जायेगा, तो

तुम मुक्त हो गये। फिर बोलो, हंसो, खेलो, कूदो, मस्ती काटो, ऐसा सिद्धान्त है इसका। लेकिन यह बताने से, यह होता नहीं है। लोग कहते हैं, भगवान ऐसा है। कैसा है भगवान–

बिनु पग चलै, सुनै बिनु काना, कर बिनु करै करम विधि नाना।

वह चलता है लेकिन पैर नहीं है, खाता है लेकिन मुंह नहीं है, सुनता है लेकिन कान नहीं हैं। मतलब है निर्लेप स्थिति में महात्मा की रहनी कुछ ऐसी ही होती है। कि वह खाता है लेकिन खाने के संस्कार नहीं बनते। सुनता है लेकिन सुनने के संस्कार नहीं बनते। हम जो बता रहे हैं, तुम लोगों की समझ में नहीं आता है। समझ में आता है तब, जब साधन में उतनी गति हो। क्योंकि प्रैक्टिकल बातें हैं। ऐसे समझ में नहीं आतीं। अब आदमी कोई पत्थर का थोड़े ही है, जो 24 घण्टे श्वासा में लगा रहे। लेकिन बताया ऐसे ही जाता है। लगते–लगते जब भगवान की कृपा से मन की गति रुक जाती है। ध्याता ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी में, एकतानता जहां आयी और अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ा, बस हो गया काम पूरा। इस पर हम तुम्हें एक उदाहरण बताते हैं सुनो बैठकर– एक राजा था। उसकी एक रानी थी। महल में रहते थे। उनके शौचालय की सफाई करने, मेहतर आया करता था। एक दिन वह मेहतर, कहीं से उस रानी को देख लिया। मुग्ध हो गया। अब वह दिन–रात, उसी रानी के रूप का चिंतवन करता रहता। ऐसा मुंह है, ऐसी नाक है, ऐसी आँख है आदि। ऐसा चिंतवन इतना तीव्र हो गया, कि वह मेहतर पागल की भाँति हो गया। उसकी पत्नी ने उसका हाल जाना–समझा, और रानी के पास गयी। रानी से बताया, कि मेरा पति तो आप के रूप सौन्दर्य में पागल हो गया है। मैं कहीं की न रही। रानी ने सुना, और समझदार थी रानी। उसने सोचा, कि तीव्र आकर्षण किसी का कहीं हो जाये, तो वह तो कुछ भी कर सकता है। उसमें अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब भी आ सकता है। ऐसा विचार करके रानी ने उस मेहतरानी से कहा, कि देखो, तुम जाकर अपने पति से कहो, कि रानी ने कहा है, कि तुम नदी के किनारे जा कर बैठो। आँख मूंद कर हृदय में रानी को देखता रहे। फिर मैं आ कर उससे मिलूंगी। मेहतरानी लौटकर घर आयी। मेहतर से रानी की बात कही। तो वह तुरन्त भाग कर गया नदी के तट पर, और बैठकर रानी का ध्यान करने लगा। तुरन्त ही समाधि लग गयी। चारों ओर हल्ला मच गया। लोग देखने आने लगे। ऐसा महात्मा है। जो भी सुनता भागा चला आता। राजा को भी खबर लगी। उसने भी महात्मा के दर्शन की तैयारी की। रानी को भी साथ लिया। नदी तट पर पहुंचे। रानी तो सब रहस्य जानती थी। एकान्त करके, सबको अलग करके, उसके पास जाकर बोली, आँखें खोलो। देखो, जिसके लिए तुम बैठे हो, वह रानी मैं आ गयी हूँ। उसे तो समाधि की मस्ती मिल गयी। असली महारानी मिल गयी थी। तो होता ऐसे है। जब मन एक जगह रुक जाता है। ध्याता, ध्यान और ध्येय में जब एकतानता आ जाती है, तो जैसे पुरूष और स्त्री के संयोग से गर्भाधान होता है। बच्चा पैदा हो जाता है। वैसे ही मन के एकाग्र होने पर, बुद्धि में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब आ जाता है। गर्भाधान हो जाता है। और फिर अन्दर ही अन्दर भगवान पैदा हो जाता है। उसका (मेहतर का) हुआ क्या? रानी के ध्यान में तन्मय होने से ध्याता, ध्यान और ध्येय की एकतानता हो गयी। ध्याता मन जो ध्यान करता है, ध्येय–जिसका ध्यान करता है, और इन दोनों का जो ज्ञान, ध्यान है। ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान–ध्याता, ध्येय और ध्यान–यह तीनों की त्रिपुटी एक हो जाये, तो उस समय जैसे ऋतु काल में, पुरुष के संयोग से स्त्री को गर्भाधान हो जाता है, वैसे ही एकतानता की स्थिति में, साधक की बुद्धि में, अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ जाता है, और गर्भाधान हो जाता है। उस स्थिति में बुद्धि को, ऋतम्भरा प्रज्ञा कहा जाता है। ऋतु काल वाली बुद्धि। उसमें अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब

धारण करने की क्षमता होती है। और फिर थोड़ा समय लगता है। ईश्वर का जन्म हो जाता है। लेकिन एकतानता ज़रूरी है। और ऐसी एकतानता हो, कि भगवान उसे तस्दीक कर दे। परीक्षा लेकर तस्दीक कर दे। थोड़ा सा टाइम लगेगा, जब बुद्धि खड़ी हो जायेगी, तो चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ जायेगा, तो ईश्वर की पैदाइश हो जायेगी। तो इस तरीके से, उसको क्या हुआ कि वह एकाग्र हो गया था। एकाग्रता की ही ज़रूरत होती है। एकाग्र हो जाये, चाहे गुरू के चरणों में हो जाये। एकाग्र होना चाहिये। लेकिन गुरू के चरण वन्दनीय हैं। परम्परा से हमारे संस्कारों के अनुकूल हैं। इसलिए उनसे ज़्यादा लाभ होगा। और नहीं तो, तुम पत्थर में गकाग्र हो सकते हो, तो उससे भी काम हो जायेगा। लेकिन उसके लिए नए संस्कार बनाने पड़ेंगे। राम नाम क्यों जपते हैं? क्योंकि परम्परा चली आ रही है। उसके संस्कार हैं पहले से, इसलिए सरलता रहती है। गुरू के चरणों की मान्यता है। नई कोई चीज़ लेकर चलेंगे, तो उसके लिए संस्कार बनाने पड़ेंगे। बहुत सी इनर्जी खर्च होगी। तो उसको क्या हुआ? मन एकाग्र हुआ। ध्याता, ध्येय और ध्यान में एकतानता आयी। बुद्धि में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब आ गया। और रानी तो छूट गयी कहीं। उसे मिल गई महारानी। अब वह निहाल हो गया। अन्दर ही अन्दर मस्त हो गया। उसे ऐसा लगा, कि पता नहीं अन्दर क्या है, कि भरपूर है सर्वत्र–वही–वही। अब यहां रानी–वानी सब उसी में खो गयी। सर्वत्र वही, सम्पूर्णता से भर गया है। रग–रग में दिखाई पड़ रहा है। तो जब उसने कहा, कि आँख खोलो, मैं आ गयी रानी, तो उसने कहा कि अरे! कौन सी रानी? यहां तो असली रानी आ गयी है। तो अब यह जो मन है, वही है– मेहतर और जो सुप्रीम है ध्येय, उसे ईश्वर कहो, कुछ कहो, वही है रानी। तो जब मन अपने ध्येय में ऐसा तल्लीन हो जाये, कि अपने को उसमें विलीन कर दे। तो फिर

देखते–देखते क्या से क्या हो गया।
खुद ही बन्दा खुदा हो गया।।

तो जैसे चित्त चूना है, और हृदय हल्दी है। दोनों मिल कर एक तीसरा रंग बनाते हैं। चूना अपनी सफेदी छोड़ देता है, और हल्दी अपनी पीलाई छोड़ देती है। दोनों मिल जाते हैं, तो लाल रंग आ जाता है।

इसलिए कबीर ने कहा कि–

माई धोबिन बाप चमार, वहिकर जनमल हम बनवार

ध्यान ही धोबिन है। चित्त से भजन किया जाता है, ध्यान किया जाता है तो तीसरी चीज़ तैयार होती है।

भजन जितना मजबूत होगा, उतना ही यह संसार कमजोर पड़ेगा। भजन कमजोर होगा, तो यह बलवान होगा। इसकी तो उल्टी खुराक है। इसलिए यह सबसे ज़रूरी है, कि जितना हम करें–सही करें। बैठ कर राम–राम, वाणी से जपो, फिर मौन हो जाओ। श्वासा में मन को खड़ा कर दो। और देखो ऊपर जाती है तो रा, नीचे जाती है तो म। मन देखता रहे, बोलो न, जपो न। मन को खड़ा करके ध्यान लगाओ। जब मन इसमें लगा रहेगा। तो भजन बलवान होगा। और वह संसार निर्जीव हो जायेगा। और जब मन उसमें रहेगा तो वह (संसार) बलवान हो जायेगा, और भजन निर्जीव हो जायेगा। तो यह श्वासा को लेकर खड़े हो जाओ। आँखे बन्द कर लो और बस सुनो, और बस देखो। रा म, रा म, ओ म, ओ म चौबीस घण्टें में 21608 श्वास चलती है। हर श्वासा में एक नाम आता है।

मन मूरख सोवै महा चेतन को नहीं चैन।

इसको तो चैन नहीं है, और मन हमारा बाग रहा है, बाग रहा है– विषयों में। इसलिए यह बलवान हो जाते हैं। इसको दबा लेते हैं। तो इससे साधक उबर नहीं पाता, और उसे ग्लानि आ जाती है। ग्लानि होने पर, भजन–साधन छोड़ बैठता है। साधक गिर जाता है। तो यह अक्सर देखने को मिलता है। नियम यह है, कि इसमें हमें लगना है। चाहे हम 10 मिनट करें, लेकिन सही करें। नाम में मन को लगावें। जब मन हटे, तो फिर पकड़ कर लगावें, फिर हटे, फिर लगावें। यही तो राम–रावण का युद्ध है। वह हमको खींचे, हम उसको खींचे। इसी का नाम युद्ध है, इसी का नाम संघर्ष है, इसी का नाम तपस्या है, इसी का नाम युद्ध है। राम–रावण युद्ध कहो। महाभारत युद्ध कहो, चाहे देव–दानव युद्ध कहो। सजातीय–विजातीय युद्ध कहो। चाहे साधना कहो। चाहे भजन कहो। चाहे कुछ भी कहो। ये सब एक ही नाम हैं। तो इस तरीके से यह हमारी कमजोरी का कारण है, जो हमें ऐसी परेशानी आती है। इसलिए हमें बारीकी करनी है। यह समझ लो, कि मन कहीं जाये न। अब अगर यह भी समझ में नहीं आता, तो बस जैसे शरीर में तिल है, इसी तिल को देखो। उसी में मन को खड़ा कर दो, मन को वहां से हटने न दो। दूसरे किसी विषय के साथ मन जाये ही न। तो बस, झट वह कमजोर हो जायेगा। इस तरह से कमजोर होते–होते, और मन हमारा रुकते–रुकते, गुरू भगवान की कृपा हो जायेगी, तो सब काम हो जायेंगे। इतना सा तरीका है। बस इसको पकड़ लेना है बारीकी से, तो मानों भगवान पार कर देंगे।

- **गुरूचरणों का ध्यान–हृदय में**
- **मानस–रहस्य**
- **सावयव–निरवयव**
- **दुनिया समझे हमको पागल**

कोशिश यह करना चाहिए कि हमारा ध्यान इतना परिपक्व हो, इतना अविचल हो, इतना चिन्ता रहित हो, इतना संकल्पों का त्यागमय हो, कि ध्यान हमारा सही लगे। अब हम नहीं जानते कि हम सो रहे हैं, कि जाग रहे हैं। कि हम ध्यान कर रहे हैं। हमारा लक्ष्य एक होना चाहिए। अब यह किस ढंग से दिखाई पड़े। हमारा तो इष्ट एक है, कि हम ध्यान करें। ओर 'ध्येय एक स ध्यान।' ध्येय रहे, ध्याता ध्यान नहीं। ज्ञेय रहे ज्ञाता, ज्ञान न रह जाय। जब ध्येय रहेगा, जब तुम्हारे पास ज्ञेय रह जायेगा, तो उसका जो परिणाम है–यह जो प्रश्न आता है, यह वह जाने। तुर्या में पहुंचाता है, यह वह जाने। सुषुप्ति में पहुंचाता है, वह जाने। हमारा तो ध्येय एक होना चाहिए। और वह ध्येय, ध्येय। ध्येय के अलावा कुछ नहीं।

ध्यान में गुरू के चरणों के अंगूठे को देखते हैं। तो देखने वाला, जो हमारा मन है, वह ध्याता। जिसे देखते हैं, वह है ध्येय। और इन दोनों का जो ज्ञान है, इनकी जानकारी है, वह है ध्यान। ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। ध्याता, ध्येय और ध्यान। तो जैसे गुरू को हृदय में बैठा कर उनको कमीज़ पहना दिया, दाढ़ी ऐसी हैं, जटाएं ऐसी हैं, यह कोई ध्यान थोड़े ही है। गुरू महाराज को हृदय में इसलिए बैठाते हैं, कि उनमें जो कशिश है, जो क्षमता है, वह हममें भी आती है। यह हृदय एक ऐसी जगह है, जहां हम जिसे जमा लेते हैं, वही–वही सब जगह दिखने लगता है। काम को बैठा दो, तो काम ही काम दिखेगा। स्त्री को बैठा दो, तो स्त्री ही स्त्री दिखेगी। इसलिए गुरू को बैठाते हैं, क्योंकि वह सुप्रीम है। उन्हें बैठाने से, उनकी ओर से हमें कुछ मिल जायेगा। इसलिए बैठाते हैं। उनमें क्षमता है, कि वह हमें अपने में आब्जर्व कर लेते हैं। इसलिए गुरू के चरणों में, उनके अंगूठे का ध्यान करें। उसमें भी सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दु पर मन को लगायें। लगाते–लगाते मन को शून्य कर दें। यह सबसे अच्छी ध्यान की स्थिति बनती है। मन शून्य हो जाये। अब यह साधक की बुद्धि की बात है, कि उसका मन श्वासा में लगता है, कि गुरू के ध्यान में लगता है। जिसमें लग जाय। श्वासा में न लगे, तो ध्यान में लगाये। ध्यान में न लगे, तो श्वासा में लगाये। श्वासा का जप भी, ध्यान में सहयोगी होता है। ध्यान से श्वासा को मदद मिलती है। एक जगह मन लग जाये, तो हर जगह लग सकता है। हृदय में ध्यान हो सकता है, तो बाहर भी हो सकता है। इसलिए गुरू के ध्यान की एक विधि है। वह जानना चाहिये। हृदय में ध्यान करने का मतलब इतना ही है, कि गुरू भगवान के पास जो है, वह सब हमें दे डालें। वैसे तो ध्यान, एक देशीय नहीं है। सार्वभौमिक है। ऐसा नहीं है कि वह देश करके बाधित हो, काल करके बाधित हो, यह हम पहले ही कह चुके हैं। लेकिन हृदय में ध्यान का मतलब यही है, कि गुरू की कशिश हमारे में आ जाये। क्योंकि हृदय चुम्बकीय क्षेत्र है, यह सबसे ऊंची चीज है। इसलिए ध्यान के लिए हृदय को ही बताया जाता है। वैसे तो त्रिकुटी मे भी ध्यान करने को कहा गया है। नाभि कमल में भी बताया जाता है। कहीं भी हो सकता है, लेकिन हृदय का ध्यान अच्छा है। इसका नियम यह है, कि हम ध्यान करें, उसका ध्यान करें, जो सबसे अधिक क्षमतावान हो। गुरू से हमें कुछ लेना है। इसलिए अगर वह कुछ दिक्कत भी पैदा करे, तो भी सेवा करके उनसे ले लें। गाय का दूध आदमी

निकालता है, तो उसकी लात भी उसको खानी पड़ती है, पर वह छोड़ता नहीं। ऐसे ही जो भी हो, गुरू को पकड़ना चाहिये। सेवा करके, उनसे उनकी चीज (क्षमता) को लेना चाहिये।

अनाहत जो चक्र है। यह ऐसा चुंबकीय क्षेत्र है कि इसमें जिस महापुरुष का ध्यान किया जाता है, उसकी महानता को, वह चुम्बक पकड़ लेता है। और जब पकड़ लेगा, तो हमको ताकत देगा। इसलिए वहां महापुरुष का ध्यान किया जाता है। इसी प्रकार हम अगर ओ–म, ऐसा देखते हैं, यह विधि पुरातन है। ओ––कहने पर श्वासा निकली तो जो अन्दर खराबी भरी है–वह निकल गई। और म––में मुंह बंद हो गया। अब तो खराबी अन्दर न जाने पाएगी। रा निकल गई, म मुंह बंद हो गया। तो जो बीमारी थी निकल गई, फिर आ नहीं पाई। और इसी में अगर हृदय प्लेटफार्म बन गया, चिंतवन रूपी यात्री बैठ गए। इच्छा रूपी ट्रेन बन गई। संकल्प–विकल्प डिब्बे बन गए–और, आ रही है, जा रही है। अब वहां कोई सुपाड़ी खा रहा है, कोई तमाखू खा रहा है, कोई बीड़ी पी रहा है। तमाम गंदा कर देते हैं। तो अनाहत अगर गंदा हो गया, तो भगवान फिर आऐगा? इन्फेक्शन में आएगा? इसलिए शुद्ध होना चाहिए। गंदा न होने पाये। जो अन्दर–वही बाहर, निष्कपट –

'निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।'

तो इसलिए श्वासा एक तरफ जाय– अन्दर जो गड़बड़ियां आ गई हैं तो रा–– निकल गई। म–– अब आने न पावें, फिर से। चुप हो गए। फिर मौका ताको, निकाल दो जो इकट्ठे हो गए हों–विकार। फिर निकाल दो, फिर बन्द कर दो रास्ता। इस तरह से निकालते–निकालते, विकार सब निकल जाएंगे, तो शुद्ध रहेगा। और फिर हृदय की कुर्सी में, जहां मोहरूपी रावण बैठा था, उसे मार कर गिरा दो और भगवान राम को बैठा दो। तो यह दूसरा विषय है। यह तो शरीर है। यह शरीर असत्य है। सत्य तो आत्मा है, जो पारदर्शी है। वह इसके अन्दर है। उसे कोई–कोई जान पाता है। और यह शरीर को तो सब कोई जानता है। यह शरीर असत्य को बनाने के लिए असत्य की ही ज़रूरत है। बिगाड़ने के लिए भी असत्य की ही ज़रूरत है। अगर तुम्हारे सामने भूत आ जाय और तुम रायफल लिए हो, तो क्या गोली मारने से मर जायेगा? और अगर कोई डाकू आ जाय और तुम जन्त्र–मन्त्र से काम लो, मंत्र काम करेगा? उसके लिए बंदूक लगेगी, रायफल लगेगी। तो 'टिट फार टैट' जैसे को तैसा। छोटी–छोटी लड़कियां अपनी बहनों से, माता से जो सीख पाती हैं, वही सब करती हैं। कपड़े के गुड्डा–गुड़िया बनाती हैं–हो सकता है आज न बनाती होंगी, बाजार में बने बनाए मिल जाते होंगे। गुड्डा–गुड़िया की फिर शादी करेंगी–फिर बारात आएगी फिर बाजा, गाना–नाचना सब करेंगी। जितना होता है–शादी ब्याह में। फिर धीरे–धीरे वही लड़की जब बड़ी हो गई तो फिर माता–पिता ने शादी कर दी। तो फिर वो–गुड्डी कहां छूट गई। ताक में पड़ी रह गई। फिर नहीं ध्यान देती है, उस गुड्डा की ओर। वह लड़की? अब असली गुड्डा मिल गया–वो नकली काम नहीं करेगा। नकल से नकल को खतम करके, असल में जाना है। हम कहते हैं कि राम ने रावण को खतम करके, राक्षसों को खतम करके, बंदरों का त्याग कर दिया। और बंदर विनय कर रहे थे, कि भगवान अब आपको प्राप्त करके, हम क्या वहां नरक में जायें? सुग्रीव, अंगद, विभीषन, कोई जाने को तैयार नहीं था। लेकिन राम ने कहा, भाई अब मेरे दुश्मन कोई रह नहीं गए, तो मैं यह पलटन क्या करूंगा। बढाओ घोड़ी, चलो जाओ। अब मुझे तुम्हारी ज़रूरत नहीं है। दुर्गुण थे, तो सद्गुणों की ज़रूरत थी। अब दुर्गुण चले गए, तो तुम भी जाओ। और अगर तुम नहीं जाओगे, तो दुर्गुण फिर जिन्दे हो जाएंगे। यह आटोमैटिक सिस्टम काम करेगा। इसलिए परेशानी कौन भोगेगा?

फिर से दुश्मन आ जाएंगे–परेशान करने। कोई इतने से पूरा नहीं हुआ–सीता का परित्याग कर दिया। दुर्गुणों का त्याग कर दिये सद्गुणों को त्याग दिये–योगी का काम है। शक्ति का त्याग नहीं करता, तो वह परम्परा खतम हो जायेगी। दुर्गुणों का त्याग करके, सद्गुणों को त्याग नहीं करता, तो परंपरा खतम हो जायगी। उसूल की परंपरा खत्म हो जायेगी। जो निवृत्ति मार्ग की ओर जाने वाली परंपरा है, वह खतम हो जाएगी तो राम चेता। और फिर सीता का त्याग किया। त्याग का त्याग किया, और त्याग के त्याग का त्याग किया। दुर्गुणों का त्याग करके, सद्गुणों को लिया, और फिर सद्गुणों का त्याग करके, ताकत लिया, और फिर उस ताकत का भी त्याग करके, तत्व में लीन हो गया। सबसे उच्च कोटि–जो सुप्रीम लेबल है। वह उत्तम पुरुष अलग है। सुप्रीम लेबल का वह तत्व आत्मा है। उसे पाना है। उसमें मुकाम बनाना चाहिए। यह हायर लेबल का ईश्वर नहीं–सुप्रीम लेबल पर। जहां सर्कुलेशन खतम हो जाय। इस तरीके से ध्येय आना चाहिए, तब साधक की संसार से निवृत्ति होगी। इसमें पूर्वजन्म के पुण्य भी काम करते हैं। पुण्य, अनेक जन्म की, बनी बनाई इनर्जी। पुण्य कहते हैं– इनर्जी। मैटर नहीं, इनर्जी। शुद्ध शक्ति के रूप में, जिसका कहीं भी प्रयोग किया जाय। वह शुद्ध इनर्जी उसका नाम पुण्य होता है, हिन्दी में। अनेक जन्मों की कमाई जो है, उसका ट्रान्सफार्म होकर– अपने कर्तव्य का पुण्य के रूप में ट्रान्सफार्म हो जाता है–वह जमा है। जब साधक आगे बढ़ता है साधना में और अगर उसके पास पुण्य नहीं है, तो वह आगे नहीं बढ़ सकता है। तो पुण्य में इतनी बड़ी ताकत है, कि जैसे शरीर रूपी गाड़ी है, पुण्य रूपी पेट्रोल है। ऐसे मान लो हृदयरूपी इंजन है। गाइड गुरू उसका चालक है। ब्रेन बैटरी है। दशो इंद्रियां टायर ट्यूब हैं। और संसार घटिया है। सत्य–रोड है, सच्चाई। तो उसमें अगर चढ़ा ले जाय। अगर गाइड संसार रूपी घठिया के ऊपर चढ़ा दे, तो ईश्वर मिल जाय। संसार रूपी घटिया के ऊपर। इसमें कोई गड़बड़ी आ जायगी–इंद्रियां बहकने लगें, कोई इधर जा रहा है, कोई उधर जा रहा है, तो हो गया फिर। या फिर ब्रेन काम नहीं करता तो स्टार्ट ही नहीं हो रही गाड़ी। बिना पेट्रोल के कैसे चलेगी? एक महात्मा रहे, तो उन्होंने एक चेला बनाया। तो गुरू बाबा ध्यान में बैठे रहे। वह चेला सेवा में लगा रहा। एक सेठ रहा। चेला था, वह भी। उसका व्यापार विदेशों से होता था। बड़ी–बड़ी नौकाओं में बैठ कर कहीं जा रहा था। एक बार कहीं तूफान में फंस गया। तो गुरू बाबा को स्मरण किया, कि गुरू बाबा बचाइये–बचाइये। गुरू बाबा तो ध्यान में रहे। और जो चेला सेवा में रहा, उसको संकल्प मिल गये (सेठ के)। चेला को पहले मिल गए। इतने में गुरू बाबा आए। तो बोला गुरू बाबा, आप साधना करते रहिए, मैंने ठीक कर दिया है। अब उसकी नौका नहीं डूबेगी। तो गुरू बाबा ने कहा, अरे! तुझे कैसे पता चल गया? हमारे नाभि की बात, कैसे जान गए? तो फिर नाभि से नाभा–नाभा। उस साधक का नाम नाभा हो गया। वह बहुत अच्छे महात्मा हुए–नाभादास। जब उसके गुरू बाबा न रह गए, तो उन्होंने एक बड़ा यज्ञ किया। सबको भोजन कराया। तुलसीदास उस समय थे। तो इनको भी न्योता दिया। तुलसी दास ने सोचा, रहने दो–कौन जाय? सम्मान सहित ले जायं, तो जाना चाहिए। नहीं ले गए। तो नहीं गये। तो फिर नाराज हो गये, नाभादास। तुलसी को पता लग गया, तो फिर भागे ये। जहां मंगतों की पंगत लगी थी, उसी में घुस कर बैठ गये। और पत्तल नहीं थी, तो जूती में लेकर खाने बैठ गये। फिर नाभादास को पता चला, तो उठाकर ले गए। फिर ढंग से बैठाया। ऐसी है यह महात्माओं की दुनिया।

हनुमान लंका में गये। तो पहले रावण का लड़का, अक्षय कुमार मिल गया, उसे मारा। इस तरह से कई लड़के थे, रावण के। प्रहस्त था, मेघनाद था, और थे। ऐसे ही नारान्तक था। कुम्भकर्ण जैसे भाई थे, परिवार था। तो रावण है, तो ये सब हैं। अन्तःकरण में इन्हें,

साधक एक–एक करके मारता जाता है। एक–एक पर कन्ट्रोल करता है, और आगे बढ़ता जाता है। पंचवटी से लेकर यहां तक, इनकी छावनी है। जिसमें त्रिशिरा है, खरदूषण है। इनके 14 हजार राक्षस हैं। सबसे प्रबल है, ईर्ष्या, स्पर्धा–मैं आगे बढ़ जाऊं। मैं पिछड़ा जा रहा हूँ मेरे साथ उसने ऐसा किया, मैं ऐसा करूंगा। यह कम्पटीशन, बैर–विरोध, यह सब राक्षसों की छावनी है। ये 14 हजार राक्षस हैं, जो 14 अध्यात्मों को खाते हैं, पकड़–पकड़ कर। जिसमें सबसे पहले अटैक करती है, वह प्रकृतिरूपी सूपनखा जो हमारे साधन को नष्ट कर सकती है वह सूपनखा इन राक्षसों को जगाती है,सचेष्ट करती है। देखो, तुम पड़े सो रहे हो, तुम्हारे रहते मेरी यह दशा हो गयी। मेरी नाक कट गयी है। तब ये लोग जाग जाते हैं, और कहते हैं, हम ऐसा कर देंगे, वैसा कर देंगे। ऐसे, अकड़–अकड़ कर चलते, दिखाये जाते हैं–रामलीला में। है सब अन्दर का नाटक। समझने वाले समझते हैं, और जो नहीं समझते, उनसे मतलब नहीं है। साधक के हृदय में यह लड़ाई अनवरत चलती रहती है। जब वह भजन करने लगता है। तो चाहे भजन कहो, चाहे युद्ध कहो, चाहे साधना कहो, ये तीनों एक ही के नाम हैं। नाम अलग–अलग हैं, क्रिया एक ही है। प्रारम्भ में साधक छोटे–छोटे दोषों पर विजय प्राप्त करता है। इच्छा को मार लिया। आसक्ति को हटाया। दूसरों की निंदा से हट गई, दूसरों की बड़ाई करने से, आसक्ति हट गई। ईर्ष्या से हट गई। द्वेष नहीं करते। झूठ नहीं कहते। ऐसे हम धीरे–धीरे इनसे अनासक्त होते जाएंगे, तो देखो, ये कहीं चले नहीं जाते हैं। ये अजर–अमर हैं। दानव और देव दोनों अजर–अमर हैं। ये कभी किसी को दिखाई नहीं देते हैं। ये आकाशवत होते हैं वेटलेस होते हैं। इनमें वजन नहीं होता। ज्ञान, वैरागय, क्षमा दया, संतोष इनमें वेट नहीं होता। इन्हें कोई पकड़ नहीं सकता। ये चाहे इधर चले जायें, चाहे उधर चले जायें। इन्हें कोई देख नहीं सकता। ये निरवयव रहते हैं। ये तो सूक्ष्म जगत की समाज है। ये तो सूक्ष्म जगत–अन्दर की–अन्तःकरण की–चीज़ है। बाहर तो सूक्ष्म जगत है नहीं। तो इस तरह से साधक के अन्तःकरण में ही, ये देव और दानव, सुर और असुर, देवता और राक्षस, ये निवास करते हैं। किसी साधक के हृदय में, कभी कोई हारा, तो कभी कोई जीता। यह संघर्ष चलता रहता है। यही राम–रावण युद्ध या कृष्ण–कंस युद्ध या और कोई लड़ाई कहो, यही है। यह तो सदैव बना रहता है। इसलिए, यह समझ लेना चाहिये, कि यह युद्ध कभी जा नहीं सकता। यह जा सकता है तब, जब साधक ही रुचि पैदा करे।

रामायण के अनुसार, सबसे पहले रावण के लड़के मरे, और रावण सबसे अन्त में मरा। तो हम बताने लगते हैं, कि रावण मोह का प्रतीक है, यह काम का प्रतीक है यह लोभ का प्रतीक है, यह क्रोध का प्रतीक है। और मोह इन बुराइयों का राजा है। गोस्वामी जी ने ऐसा लिख दिया, तो क्या ये सब मरते ही चले गये? ये मरते नहीं हैं। ये तो अजर–अमर हैं। हां साधक का पिंड इनसे छूट जाता है। साधक अनासक्त हो जाता है। इनके प्रति एक–एक करके। फिर समूह में आ जाते हैं। उन्हें भी जीत लेता है। और फिर रावण भी मर जाता है। और जीव रूपी विभीषण, ब्रह्माकार होकर राजा बन जाता है। जिस साधक के अन्तःकरण में यह प्रक्रिया हुई, वह मुक्त हो गया। खुशी मिल गयी। खुशी कहां हुई थी–राम राज्य में। तो विभीषण और राम में कोई अन्तर नहीं है (जीव और ब्रह्म) दोनों एक ही है जब एकाकार हो जाते हैं। ओत–प्रोत हो जाता है। और जब ऐसी अभिन्नता हो गई तो राम राज्य ही विभीषण का राज्य हो गया। अवध बन गयी, बदल कर आसक्ति। साधक अनासक्त हो गया। व्यापक हो गया तो, व्यक्तिगत उसका उद्धार हो जाता है। और अनंत संसार, जो अनंत काल से है, अनंत दुर्गुणों, सद्गुणों से भरा हुआ है। अनंत कलाओं से परिपूर्ण है। उसका अन्त नहीं होता। वह तो आटोमैटिक है। चलता रहता है। बस एक साधक के अंदर यह समाप्त हो

जाता है। अपने स्वरूप में मिल जाता है। यह व्यक्तिगत उसकी साधना के फलस्वरूप, उसमें घटित होता है। और परमात्मा जो व्यापक होता है, जब उसे तसदीक कर देता है, तो मुक्त हो जाता है। और इसके पीछे बहुत सी बातें हैं। रावण का विनाश एकाएक तो होता नहीं है। साधक शुरू में छोटी–छोटी बुराईयों पर हावी होता है। फिर धीरे–धीरे समझ काम करती जाती है, तो छोटे–छोटे राक्षसों को मारता जाता है। फिर और बड़ों को। एक–एक करके मारता गया, बढ़ता गया। बारीकी आ गयी, तो रास्ता दिखा दिया गया। निकल जाता है। कल्याण हो गया। प्रक्रिया सबके लिए एक ही है, अलग–अलग नहीं है।

अब तुम्हारे लिए साधक के लिए सबसे पहले समझना है कि साधक के अंदर यह क्रिया होती है। क्रिया कहां से होती है? क्रिया वहां से होती है, जहां परस्पर विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण होता है, उसमें क्रिया होती है। असल में, ये ऐसे तत्व हैं, जो सूक्ष्म हैं। हम लोग तो स्थूल जगत के निवासी हैं। यहीं के नियम–कानून में रचे–पचे हैं। इसलिए बातें चाहे स्थूल जगत की हों, या सूक्ष्म जगत की, हम अपने ही ढंग से उन्हें लेते हैं। अपने ही पैमाने से नापते हैं। इसलिए यह बताने में, और समझने में बड़ी दिक्कत या त्रुटि आती है। सूक्ष्म जगत की बातों को, स्थूल जगत के कायदे–कानून से लेने से, ठीक नहीं बैठता। अब जैसे हनुमान है, बहुत बलवान है। इच्छा को मार सकता है। आसक्ति को मिटा सकता है। अभिमान या अहंकार को मार सकता है। तो अन्तःकरण में ज्ञान है, वैराग्य है, अनुराग है, विवेक है तो ये अलग–अलग नहीं हैं। जो अनुराग है, वही वैराग्य है, जो वैराग्य है वही ज्ञान है, और जो ज्ञान है वही विवेक है। ये सब एक ही बातें हैं। इनमें से कोई भी, कहीं भी क्रिया कर सकता है। इसलिए इस मूल चीज़ को हमेशा याद रखना चाहिए। अपने अन्दर देखना चाहिए कि यह कैसे हो रहा है? हम बताएं, तो साधक को छोड़ना नहीं चाहिए। जो इनर्जी ज्ञान में काम करती है, वही इनर्जी विवेक में काम करती है। जो गाइड की अंतर्जगतीय क्षमता, एक में काम करती है, वही दूसरे में काम करती है, तीसरे में करती है, चौथे में काम करती है। ताकत तो एक ही है। यह तो हमारे यूज़ करने का तरीका होना चाहिये। तो कौन, किसे मारता है, यह मतलब नहीं है। यह एडजस्टिंग अन्दर रहती है। यह तो बताने का तरीका है। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। प्रसंग तो दूसरे–दूसरे हैं। कथानक बन जाते हैं, और है वहां कुछ नहीं। अन्तःकरण में ये सब घटित होने में समय थोड़े लगता है। बताने में तो समय लगता है। इसलिए यह कम्पोजीशन समझ लेना चाहिये। अन्दर की कलाबाजियां, बिना इसके पकड़ में नहीं आतीं। अब जैसे रावण का है, तो एक–एक करके मरते गए। तो फिर दूसरे को बुलाया, फिर तीसरे को, कुंभकर्ण को, नारान्तक को बुलाया। सब मरते गए, तो अहिरावण को खबर कर दिया। अहिरावण मनडोल पताला। उसे खबर मिली तो उसने कहा, क्या बात है भाई? तो बताया कि अरे! तुम वहां पड़े मस्ती काट रहे हो, यहां ऐसा–ऐसा हो गया। तो देखो रावण को सभी ने कहा है, कि तुमने खराब काम किया। राक्षस भी जानते हैं। सद्गुण और दुर्गुण दोनों एक हैं। लेकिन यह सुप्रीम लेबिल में, जब हम पहुंचेगे, तब। और जब हायर लेबिल में हैं, तब तक दुगुर्ण, दुगुर्ण हैं, और सदगुण, सदगुण हैं।

तुलसी दास जी ने ऐसा कम्पोजीशन इसलिए दिखाया है, कि वह बताना चाहते हैं, कि सद्गुण और दुगुर्ण एक दूसरे के पूरक हैं। सद्गुण, दुर्गुण की पैदाइश करते हैं। और दुर्गुण, सदगुणों की पैदाइस करते हैं। इसलिए दोनों एक समान हैं। जब तक निम्न श्रेणी में हैं, तब तक दुर्गुण में फंसे रहते हैं। जब हायर लेबल पर आ गए, तो संघर्षरत होकर, सद्गुणों का सहारा लेकर, दुर्गुणों को समाप्त करते हैं। और सुप्रीम लेबल पर, दुर्गुण–सद्गुण दोनों से परे, गुणातीत हो जाते हैं। दुर्गुण का सद्गुण में ट्रांसफार्म हो गया। सद्गुण का ट्रांसफार्म गुणातीत में हो गया, और गुणातीत का परमात्मा में ट्रांसफार्म हो गया। वहां तुरीया हो गई। और अहं जो है वह दृष्टा में बदल गया। और दृष्टा, दृश्य से परे हो गया। अज्ञाता, ज्ञाता में बदल गया। ज्ञाता, विज्ञाता में बदल गया। विज्ञाता, अविज्ञाता में बदल गया। जागृति, स्वप्न में बदल गई। स्वप्न, सुषुप्ति में बदल गई। सुषुप्ति, तुर्या में बदल गई। तुर्या, तुर्यातीत मे बदल गई, और फिर वह तीतातीत हो गई। एक अवस्था में कैसा क्या होता है? दूसरी में कैसे–कैसे होता है? फिर तीसरी में, फिर उसके बाहर हो गये। आगे बढ़ गये। तो यह सब बड़ी बारीकी से समझना चाहिये। खूब बुद्धि लगाकर समझो। हाँ, तो यह बात बताने वाले थे हम, कि साधक क्या करता है।

साधक जब साधना में रत होता है, और जब अच्छी साधना करता है, तो पहले रावण के संबधियों को मारता है। फिर और अच्छी साधना करता है, काफी ऊंचे स्तर की, तब कुंभकर्ण आदि को मारता है। फिर हाइएस्ट लेबल पर जाकर, अहिरावण को मार पाता है। यह अहंकार है, जो पाताल में रहता है। अहंकार सबसे गहराई में छिपा रहता है। अहंकारी का सिर नीचा, ऐसा भी कहा जाता है, इसलिए भी इसे पाताल में रहना दिखाया गया है। अहंकार में यह क्षमता है, कि यह आत्मा को भी दबा लेता है। राम लक्ष्मण को ले गया, हरण करके। और देवी में बलि देने को था। मतलब आत्मा को भी छा लेता है। यह विभीषण का रूप बना लेता है। जीव का रूप ले लेता है। इसलिए यह सबसे आखिर में मारा जा सका। अहंकार में जो क्षमता है, वह काम, क्रोध, लोभ आदि मे नहीं है। यह विभीषण का रूप बना लेता है, आत्मा का रूप बना लेता है। ऐसे कृष्ण चरित्र में आता है कि पौण्ड्रक एक राजा था। वह स्वयं को कृष्ण कहने लगा– पौण्ड्रक–कृष्ण। तो इसी प्रकार जो यह अहंकार है, साधक को बहुत आगे तक नहीं छोड़ता है। अब साधक को देखो, जब उसे काम पर विजय मिल गयी।

क्रोध को जीत लिया। लोभ पर विजय मिल गयी। इच्छाओं पर भी काफी काबू पा लिया। तो उसे अन्दर ही अन्दर बड़ी ताकत महसूस होती है। उसका साहस बढ़ जाता है। उसके अन्दर एक प्रकार का 'ईगो' तैयार हो जाता है। उसे लगने लगता है, कि अब तो मोह ही को जीतना है। एक साहस, हौसला बढ़ जाता है। इस तरह यह है तो शुद्ध भाव, लेकिन यह ईगो, आत्मा को ढक लेता है। अहिरावण विभीषण के रूप में आ गया। राम और लक्ष्मण को ले गया। तो साधक के हृदय में जब ज्ञान–राम, विवेक–लक्ष्मण, वैराग्य–हनुमान इनको यह लगा कि अब क्या है? अब मोह–रावण भर तो रह गया है। अब कोई बात नहीं है। तो यह जो ईगो आ गया, यही अहिरावण है। विभीषण का रूप ले कर आ गया। विभीषण है जीवात्मा, राजा है। उसका कहना ज्ञान राम, विवेक लक्ष्मण सभी को मानना है। आत्मा सर्वोपरि है। हनुमान से पूछा गया, कहां गये राम लक्ष्मण? बोले पता नहीं रात में विभीषण आये थे। तब विभीषण ने बताया, कि मेरा रूप अहिरावण ही बना सकता है। उसी ने राम लक्ष्मण का हरण करके पाताल में छिपा रखा है। साधक के अन्तःकरण में जब अहंकार आया, तो ज्ञान–विवेक विलीन हो गये। तब छटपटाता है। पता करता है। आत्मा से संकेत आता है, कि यह अहंकार का परिणाम है। अब अहंकार को मिटाकर, ज्ञान विवेक को फिर से पाना है।

तो यह काम कौन करेगा? यह काम हनुमान से ही होगा। जो मान या अभिमान का हनन करता है, वह हनुमान है–वैराग्य। तो अब साधक वैराग्य का सहारा लेता है। तब यह अहंकार नष्ट होता है। वह अन्दर भगवान से क्षमा याचना करता है, कि मुझसे भूल हो गयी। मैंने मान लिया था, कि मैं साधना में आगे बढ़ गया हूँ। मैं इस अभिमान का त्याग करता हूँ। इस तरीके से वैराग्य–हनुमान, अहंकार–अहिरावण को मारकर, ज्ञान, विवेक–राम, लक्ष्मण को फिर से ले आते हैं। थोड़े से समय में यह सब हो जाता है। बाहर की घटनाएं इतने कम समय में कैसे होंगी? इस तरह से यह अध्यात्म चलता है।

अब रावण को ले लो, रावण मोह है– मोह सकल व्याधिन कर मूला। यह बड़ा बलवान है। इस रावण के दस सिर हैं। सूक्ष्म जगत में दस इन्द्रियों से भोग करता है। इसलिए दशानन कहा जाता है। यह मेरा यह मेरा यही मोह है। और यह तेरा यह तेरा यही प्रेम है। सूक्ष्म शरीर से अटैक करता है, इसलिए यह बीस भुजा वाला है। माया के लिए रोता रहता है, इसलिए रावन कहा जाता है। कायारूपी कैलाश में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब शंकर है। उसे उठाने गया, तो हाथ दब गया था। बहुत रोया इसलिए रावन नाम पड़ गया। यह सन्तों को परेशान करता है। सन्तों से कर वसूल करता है। तो इस तरीके से धनुष वाण लेकर इसे मारते हैं। ध्यान ही धनुष है, ज्ञान तरकश है। इसी में यह वाण भरे रहते हैं। वाण क्या है? यह वाणी, जो शब्दों के रूप में मार–मार, सत्य क्या है–असत्य क्या है? शब्द से पता चलता है। गलत को गलत किया जाता है। तो इस तरह से बीस और दस तीस और एक आकाश में। क्योंकि आकाश में यह रहता है। आकाश में जो रहने लगता है। वह बहुत पावरफुल हो जाता है। इस तरह इसे इक्तीस बाणों से खत्म कर दिया जाता है। राम की विजय हो जाती है। रावण का दाह संस्कार करके फिर विभीषण को राजा बना दिया जाता है। जीवात्मा ही विभीषण है। फिर राम राज्य हो जाता है। विभीषण व्यापक तत्व है। और राम ऐटम है। ज्ञान वशिष्ठ है, भक्ति कौशिल्या है, कर्म कैकेयी। उसमें एडजेस्ट हो जाओ, बस काम खत्म हो जाता है। इच्छा से रहित हो जाओ। बाहर से खत्म कर दो, अन्दर एडजस्ट हो जाओ। बस फिर आखिर में, त्याग का त्याग कर दो। शक्ति का भी त्याग कर दो। सीता का भी त्याग कर दिया गया। इस तरह महापुरुष जो होता है, वह परमात्मा का भी त्याग कर देता है। वह परमात्मा संसार में अनुगत होता है। यह दृश्य है वह दृष्टा है। और महापुरुष दृश्य–दृष्टा दोनों से परे होता है। इसलिए राम को स्वयं कहना पड़ता है– राम ते अधिक राम कर दासा। तो इस तरीके से साधक को ध्यान देना चाहिये कि यह कम्पोजीशन कैसे बैठेगा? हां, बैठेगा तो तभी, जब हम क्रिया करेंगे, प्रेक्टिकल करेगें। नहीं करोगे तो भुला जाओगे। बैठा नहीं पाओगे। गड़बड़ हो जायेगा। रटने से काम नहीं बनता। जो लोग ज्ञान के सूत्र बोलते हैं, करते कुछ नहीं हैं, उन्हें कुछ नहीं मिलता। इसके लिए विश्वास होना चाहिये। बगैर विश्वास के परिणाम नहीं मिलता– बिन विश्वास भगति नहीं। तो बगैर विश्वास के, वह ज्ञान हमें परिणाम नहीं देता है। कार्य में परिणत नहीं कर सकता। और जब विश्वास होता है, तो ईश्वर स्पष्ट हो जाता है। अनुभूति हो जाती है। यह हो तो जाये, लेकिन अन्दर एक ऐसी बीमारी लगी है, कि विध्न डाल देती है। अन्तःकरण में यह जो तर्कना है, कि ऐसा नहीं ऐसा है। यह नहीं यह हो सकता है। यह सही है कि, वह सही है। ऐसी जो तर्कना है, साधक साधना करते हुये इसके चक्कर में पड़ जाता है। यह जो तर्कना है, यह ताड़का राक्षसी है। कहानी ऐसी है, कि विश्वामित्र यज्ञ करते थे, तो ताड़का और उसके दो लड़के, मारीच और सुबाहु यज्ञ में विध्न डालते थे। तो वह असफल हो जाते थे। अब साधक में विश्वास आ गया है। अब यह धुरी बन गयी अब इसी मे तुम्हें रहना है। अलग नहीं जाना है। अवध कहीं

बाहर अलग नहीं है। इसी शरीर में अवध है। इसी में आसक्ति–लंका भी है। अलग नहीं है। सार्वभौमिकता होनी चाहिए। देश करके बाधित नहीं, कि यहां भजन हो सकता है। वहां नहीं। सार्वभौमिक होना चाहिये। भजन की जगह अपना अन्तःकरण है, जो हर जगह, हर समय, समान रूप से अपने में है। समय और देश करके बाधित न बनो। तो जब साधक में विश्वास आया, तो तर्कना आ गयी। तर्कना को समाप्त किया तो सुबाहु जो मन का खराब स्वभाव है–आ गया। अब जैसे मन में स्त्री का चिंतन करने की आदत पड़ गयी, या धन का चिंतन करने की आदत बन जाये, तो यह आदत जल्दी छूटती नहीं। ऐसा स्वाभाव ही सुबाहु है, मन ही मारीच है, जो स्वाभाव को बल देता है। ये दोनों तर्कना के प्रभाव से, साधना में विघ्न डालते हैं। लकिन जब विश्वास दृढ़ हो जाता है, तो भगवान से कम्यूनिकेशन हो जाता है। और तर्कना समाप्त हो जाती है। स्वभाव भी मर जाता है और मारीच को दूर हटा दिया जाता है। तो यह गोस्वामी जी के अन्दर का कम्पोजीशन है। हो सकता है कि किसी साधक के अन्दर या हमारे अन्दर किसी और तरह का कम्पोजीशन बने। गोस्वामी जी ने श्रृंगी ऋषि को पहले लिया, विश्वामित्र को बाद में लाये। हो सकता है कि हमारे अन्दर विश्वामित्र पहले आ जाये। यह साधक की रुचि के अनुसार होता है। किसी में भाव तीव्र होता है, ज्ञान या जानकारी कुछ मन्द होती है। किसी में कुछ, किसी में कुछ। ऐसे में भिन्नता होती है। किसी के कर्म अच्छे होते हैं, समझ कम होती है। किसी के पूर्व पुण्य ज़्यादा हैं, तो वर्तमान के कमजोर हैं। तो इससे साधना में भिन्नता आती है।

गोस्वामी जी की थिसिस के हिसाब से, जैसे ही साधक के अन्दर विश्वास दृढ़ हुआ, तर्कना मिट गयी, वैसे ही आश्रम में पहुंचे, कि पत्र आ गया, राजा जनक के यहां से। राम और लक्ष्मण को फलाहार करा रहे हैं विश्वामित्र, कि उतने में ही दूत, पत्र लेकर आ गये। और बोले, हम राजा जनक के दूत हैं, आपको निमंत्रण भेजा है, राजा जनक जी ने। और कहा है कि मेरी पुत्री सीता का स्वयंवर है, आप कृपा करके ज़रूर पधारें। मैं अपने को भाग्यशाली समझूंगा, आपके दर्शन करके। तो विश्वामित्र ने कहा, कि अच्छा हम ज़रूर आयेंगे।

उधर राम–लक्ष्मण को बताते हैं, कि राजा जनक की एक अति सुन्दर कन्या–सीता का स्वयंवर है। वहां से निमंत्रण आया है। चलोगे हमारे साथ? तो राम लक्ष्मण ने कहा, कि जैसी गुरू महाराज आपकी आज्ञा। तो इससे यह समझ में आता है, कि यह सब क्रिया एक दूसरे से जुड़ी चली आ रही है। चाहे कथाकार या लेखक, कुछ भी यहां का वहां जोड़ कर लिख दे, लेकिन यह है क्रिया। अब जब तर्कना मार दी गयी, तो विश्वास दृढ़ हो गया, तो यौगिक क्रिया मिल गयी। जनक का पत्र मिल गया, जनक माने पिता जिससे कोई चीज पैदा होती है। सूक्ष्म में योग ही जनक है। योग से शक्ति–सीता, पैदा होती है। शर्त है धनुष। ध्यान ही धनुष है। जब ध्यान टूट जाये, यानी ध्याता, ध्येय और ध्यान की त्रिपुटी में एकतानता आ जाये। ध्यान का अन्त हो जाये। धनुष वह भी शंकर का। शंकर, जो अधिष्ठाता है इस काया काशी का, सबसे पावरफुल। शंकर सन्त को कहते हैं। प्रकृति की तरफ से परशुराम उसका अध्यक्ष है। पुरुष रूप में है, प्रकृति में। प्रकृति की ओर से एक्जाम लेने वाला है। तो जब ध्यान की पूर्णता हो जाती है, तो शक्ति मिल जाती है। जैसे हमने बताया कि पैट बदलने से गाड़ी एक लाइन से दूसरी लाइन पकड़ लेती है। इसी तरह स्थूल की लाइन से सूक्ष्म की पटरी में पैट बदल कर जा सकते हैं। यौगिक क्रिया, ध्यान की पूर्णता से, शक्ति मिल जाने से, ईगो आ जाता है। यद्यपि वास्तव में अभी वह, शक्ति सम्पन्न नहीं हुआ है। जहां थोड़ी सी प्रगति हुयी, थ्योरिटिकल ज्ञान मिला, थोडा कम्यूनिकेशन हुआ, तो साधक मान बैठता है,

कि व्रह्म हो गया। दशरथ गद्दी में बैठाना चाहता है। जब कि अभी अन्दर कचड़ा भरा पड़ा है। अभी तो बस, सजातीयों में ही रहे। मोह सकल व्याधिन कर मूला। अभी तो इन्हें मारे बिना, गद्दी में कैसे बैठेगा? राम–राज कैसे बनेगा? अभी तो स्थूल की साधना हुयी है। अवध की प्रक्रिया पूरी हुयी है। स्थूल की साधना को ही अन्तिम मानकर, दशरथ जो गलती कर रहे थे, उसे सम्भाल लिया, कर्तव्यरूपी कैकेयी ने। राम को वनवाश रूपी अन्तर्जगतीय साधना में प्रवेश देकर।

चौदह वर्षों के लिए। चौदह आध्यात्म ही चौदह साल हैं। दस इन्द्रियां और चार अन्तःकरण। इन चौदहों का कर्जा चुकाना है। यदि पूर्व जन्म के पुण्य न होते, तो यहीं अधूरे में साधना रुक जाती। साधक का पतन हो जाता। अन्तर्जगत में प्रवेश करते ही अर्थात् वनवास पर निकलने पर, प्रथम वास तमसा भयो, त्याग ही तमसा है। त्याग आ गया। संसार का त्याग हुआ और निषाद मिल गया। निषाद पूर्व जन्मों के पुण्य को कहते हैं। गुह का अर्थ है, गुप्त किये हुये पूर्व पुण्य, वह है निषाद। यह पुण्य साधक को चित्रकूट तक पहुंचाता है। अर्थात् इसके प्रभाव से, साधक चित्त की गति को कूटने में सफल होता है। भजन रूपी भरद्वाज से मिलते हुये। बीच में कुछ अलौकिक अनूभूतियों से मिलते हुये। बाल्मीकि से मिले। उन्होंने 14 भवन बताये और चित्रकूट में निवास बताया। पहले सजातीय गुणों को जोड़ा, विश्वास दृढ़ किया, तर्क समाप्त हुआ और उसका एक्जाम हुआ जनकपुर में फिर सूक्ष्म साधना में प्रविष्ट हुये, जब चित्रकूट आ गये, चित्त को कूट लिया, कामदगिरि में निवास किया, कामनाओं को, इच्छाओं को कुछ मिटा दिया, तो उसका एक्जाम हुआ स्फटिक शिला में। फिटनेस हो रही है, अब यहां। मन में जो इन्द्रियों की तरफ से अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब है वह है इन्द्र। और इनकी जानकारी का नाम है, जयन्त। तो इसने सीता को चोंच मार दिया। शक्ति को आहत किया। साधक में जो क्षमता आयी थी, उसे आघात लगा। तो यह तो होता ही है, साधना में। साधक थोड़ा उठता है, फिर कोई अड़चन आ जाती है, फिर उठता है, फिर गिरता है। यही तो साधना है। ऐसे ही एक साधना करने वाला साधक था। तो हमसे बताया, कि हम तो पतित हो गये। बताया कि जब हम ध्यान में बैठे, तो यह गाना मन में आ रहा था। उसने गा कर बताया–

'परन तोरा टूटल ओ भगतिनियां।
जब तू रहली गरभ बास में कहवां से कइली दतुनियां।
परन तोरा टूटल ओ भगतिनियां।'

तो इस तरह से साधक को कभी–कभी गिरावट आती है। जब कभी साधन में सफलता मिली और ईगो आया, तो भगवान उसे ठीक करने के लिये गिरा देते हैं। होता तो वह अहंकार को दूर करने के लिए है, लेकिन साधक पतित मान लेता है, अपने को। पतित होता नहीं है। पतित तो है ही, अब पतित क्या होगा? पतित तो पहले से ही रहा है न। अब तो गिरते पड़ते आगे बढ़ रहा है। इसलिये साहस नहीं खोता है– अगर अच्छे गुरू का समझाया हुआ है तो। अब अटैक होता है, तो शक्ति पर ही तो होगा, राम पर थोड़े होगा, लक्ष्मण पर थोड़े होगा, शक्ति पर ही होगा। उसी का ास होगा। जयंत का चोंच मारना क्या है? कोई विषय सम्बन्धी पूर्वकाल की बात जब साधन काल में स्मरण आ जाती है, यही है चोंच मारना। और फिर जो सावधान साधक है। मन की इस हीनता को जानकर, साधना में इतना तल्लीन हो गया कि वह विषय का चिन्तन, तीनों लोकों में कहीं जगह नहीं पा सका और सरन्डर होकर नष्ट हो गया। सींक धनुष सायक सन्धाना। सींक का मतलब है– सूक्ष्म सुरति। गहरी सुरति। ध्यान की गहरायी ऐसी, कि उस दुर्गुण को फिर कहीं जगह न मिल

सके। तो अब हमें फिटनेस मिल गयी। थोड़ा गिरने को हुये, और फिर संभल गये, तो ताकत बढ़ गयी। तो अत्रि–सतरज तम इन तीन गुणों से अतीत। और अनसूया– असूया कहते हैं माया को। माया से परे। यह अवस्था साधक को मिल गयी। वहां स्वरूप में स्थित हो गया साधक। और फिर एक धक्का लगा, विराध के रूप में। उसे खतम किया, तो फिर प्रगति हो गयी–सुतीक्ष्ण–तीव्र ध्यान में लीन हो गया। तो कुण्डलनी जागृत हो गयी। कुम्भज या अगस्त मिल गये। वहां बड़े अस्त्र–शस्त्र आदि मिल गये। तो यह जितनी तरक्की होती है, सब माया की है। स्वभाव से जो रहित स्थिति है, वह माया रहित है। काल, कर्म, स्वभाव, गुन ये चारों होते हैं। हर किस्म के ये होते हैं। लेकिन ये चारों माया के क्षेत्र में कार्यरत हैं। साधना काल में, और गैर साधना काल में अंतर आता है। साधक जिसे साधना बतायी गयी है, और आम जनता जो साधना नहीं करती, थ्योरिटिकल याद करके बताते हैं, उसमें बहुत अन्तर आता है। वह अपनी–अपनी रुचि के अनुसार– और रुचि हर आदिमी की अलग–अलग होती है। यह जो मनुष्य का शरीर है, उसमें जो स्प्रिट–आत्मा है, वह पावरफुल है। सबके पास बराबर क्षमता है, सब इन्डिपेन्डेन्ट हैं, और सब की परमात्मा से आत्मा की टच है। लेकिन टच होते हुए भी, उनके क्षेत्र अलग–अलग हैं। जैसे बूंद और समुद्र। बूंद भी पानी और समुद्र भी पानी, दोनों की जाति एक है। लेकिन क्षेत्र या दायरा अलग है। बूंद का क्षेत्र छोटा है, और समुद्र का विशाल क्षेत्र है। एक व्यष्टिगत है, एक समष्टिगत है। इसलिये वह ज़्यादा पावरफुल है। उसमें ज़्यादा क्षमता है। लेकिन इन दोनों मे एक ऐसा रहस्य है, कि अलग होते हुए भी एक हैं। भेद होते हुए भी अभेद है इनमें। और यह इस कारण से है, कि परमात्मा के दो रूप हैं। एक निरवयव और एक सावयव। इसलिये जब हम निर्गुण को पकड़ते हैं, तो वह सगुण बन कर बैठ जाता है। और जब हम सगुण में जाते हैं, तो निर्गुण हो जाता है। इस तरीके से उसके पास दो कलाएं हैं। मनुष्य के पास एक कला है। इसलिये दो कला होने से वह आटोमैटिक रूप ले लिया है। वह अपने जैसे अनके रूप बना सकता है, और क्रिया भी कर सकता है। नाना प्रकार से चमत्कार कर सकता है उसके पास वीटो है, विल पावर है, कुछ भी कर सकता है। अब यह जो मन है, मारीच। मन जो है, सारे के सारे कर्मों का मूल कारण है, उसको मन कहते हैं। मन को मारीच कह दिया जाता है। मन को माया भी कह दिया जाता है। मन को संकल्प–विकल्प भी कह दिया जाता है। तो कार्य के हिसाब से उसके नामकरण का रूपान्तर होता जाता है। ऐसा नियम है। जैसे कोई चीज़ है, जो एक क्षेत्र में काम कर रही है, वह उसी क्षेत्र की कही जायेगी। यही सब जो अभी माया क्षेत्र में काम कर रहे हैं, प्रयास करने पर ईश्वरीय क्षेत्र में जाकर काम करने लगते हैं। लेकिन यह बदलते हुए जाते हैं। जैसे सुबाहु है, अगर यह ईश्वरीय क्षेत्र को ग्रहण कर लेता है, तो वही राक्षस, देवता बन जायेगा। अगर वही देवता, गलत काम करे, तो राक्षस बन सकता है। यह एक धारा है। इसलिए जो कर्तव्य है, उसके अनुसार रूपान्तर होता चलता है। सही का गलत, और गलत से सही हो सकता है। सुबाहु को इस जगह हमने इस तरह प्रयोग कर लिया। स्वाभाव जो भगवान के भजन मे न लग कर, पुरानी आदत बस स्त्री में चला जायेगा, और किसी में चला जायेगा। इसी प्रंकार मन भी उसी के साथ चला जाता है। लेकिन राम ने, सुबाहु को मारा, मारीच को नहीं मारा। वहां से हटा दिया। इसका मतलब यह है, कि जब दृढ विश्वास साधक मे आ जाता है, तो तर्कना और बुरा स्वभाव छूट जाता है। और मन का रूपान्तर हो जाता है। मारीच के पास जब रावण गया, तो कुटिया में बैठे नमःशिवाय, नमःशिवाय जप रहा था। रावण ने कहा–मारीच यह क्या करते हो? तो उसने कहा, कि अब मैं भगवान का भक्त हो गया हूँ। नाम जपता हूँ। तो उसने कहा कि नहीं, तुम मेरा कहना करो। मृग बन जाओ, उसकी पत्नी का हरण करना है। तो खैर, ये तो सब नाटकीय तौर

तरीके हैं। यह सब बनाना पड़ता है। लेकिन असल बात यह है, कि साधना में विघ्न आते–जाते हैं। साधक उन्हें पार करके, आगे बढ़ता जाता है। अगर विघ्न न आये, तो साधना मे वह तेजस्विता नहीं आ पाती। जिसका मन भागे ही न, उसे संघर्ष नहीं करना होता। उसे डिग्री थोड़े मिलेगी। वह तो मन भागे विषयों में, और साधक उसे पकड़ कर लगाये–भजन में। विघ्न आवे, बीमारी आवे, और मन विचलित होने न पावे। लेकिन यह होगा कैसे, कि भारी से भारी दिक्कतों को भी हम हंसते–हंसते स्वागत करें। दिक्कत आये, और हम कहें कि आओ। आओ भाई, हम तुम्हारा स्वागत करते हैं। बीमारी आये तो कहो, कि आओ बीमारी आओ, तो बीमारी, बीमारी नहीं रह जायेगी। वह ट्रांसफार्म होकर, बीमारी रहित अवस्था बन जायेगी। त्याग का मतलब यह होता है। ऐसे माया का त्याग, जो साधारण रूप में बताया जाता है–वह अलग है। महापुरूष जो होते हैं, वह विघ्न–बाधाओं का स्वागत करते हैं। आओ आ जाओ, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। जब हम स्वागत करने को तैयार हैं, तो उसे बदलना पड़ेगा। दुख जो आ रहा है, वह सुख बन जायेगा। दुख तो इसलिये आ रहा था, कि हम उसे चाह नहीं रहे थे। अब हम स्वागत करने को तैयार हैं, तो फिर उसे बदलना पड़ेगा। दुख की जगह, सुख बनना पड़ेगा। नहीं तो वापस चला जायेगा। इस तरीके से अगर साधक में, यह सब तरीके आ जायें, तो वह राइज हो जाता है। आगे बढ़ जाता है। उठ जाता है।

ऐसे एक कचडखाना बाजार था। एक जगह वहाँ कचड़े में एक फकीर, बाबा के भेष में पड़ा रहा करता था। कोई कुछ दे तो खा ले, या फेंक दे। चाय दे तो पी ले, नहीं तो उसी में पेशाब कर दे या फेंक दे। ऐसे पड़ा रहे, और उसके मुंह से बस एक ही शब्द निकलता रहे–

'एक अन्दर दो बाहर फट गया, फट गया, फट गया।
एक अन्दर दो बाहर फट गया, फट गया, फट गया।'

बस यही कहता रहे। लोग सोचा करें कि यह कोई सी.आई.डी. है, या तो पागल है, या महात्मा है। कोई सी.आई.डी. होता, तो कुछ दिन रहता, फिर दूसरा वेश बनाता और चला जाता। वह महात्मा था, और बहुत दिनों से महात्मा था। ऐसे महात्मा होते हैं, जो पागल की तरह दिखायी पड़ते हैं। दुनिया हमको पागल समझे, हम दुनिया को पागल समझें। तो अब यह जो बोल रहा था, तो उसका क्या मतलब था? असल मे जब साधना करते–करते उसका ज्ञाता और ज्ञान, ज्ञेय में समाहित हो गये, उसे अनुभूति मिली। बस उसी अनुभूति का मंत्र वह जप रहा था। एक अन्दर दो बाहर फट गया, फट गया, फट गया। एक जो ज्ञान दृष्टि है, दिव्य दृष्टि है–एक है। अन्दर की चीज है। और यह जो बाहर की आंखें है–दो हैं। तो अन्दर की ज्ञान–दृष्टि खुल गयी, तो बाहर की अज्ञान दृष्टि से दिखने वाला प्रपंच निर्मूल हो गया। फट गया, समाप्त हो गया। या हर शरीर में, अन्दर तो एक ही बात है। और बाहर, नर–मादा दो तरह के शरीर हैं। तो अन्दर का मिल गया, तो बाहर का यह भेद मिट गया। जितनी परेशानी है, उसे अच्छा मानना चाहिये। अगर बुराई नहीं होगी, तो भलाई का भलाई में ज्ञान कैसे होगा? अगर रूलाई नहीं होगी, तो हंसाई का हंसाई में ज्ञान कैसे होगा? यह तो दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। ऐसे ही रावण है। रावण कभी मरता नहीं है। भगवान राम जब चित्रकूट में थे। तो अत्रिमुनि ने बताया कि विराध नाम का राक्षस है, जो ऐसे कुछ मुनियों को खा जाता है, जिनको असावधान होते देखता है। उनको खा

जाता है। नर भक्षी है। तो वह उन मुनियों को खा जाता था, जो लंगोटी के कच्चे थे, लालची थे, जो अन्दर से कमजोर थे, जीव के कच्चे थे, तो उनका तो भक्षण होना ही है। तो एक ही क्रिया ठीक है। बुराई आ गयी, अगर उसे सजा नहीं हुयी, तो सद्गुण हल्ला नहीं मचायेंगें, कि इसको सजा क्यों नहीं हुयी? इसलिए जो साधना करने वाला, साधना नहीं करता असावधान हो जाता है, गन्दा हो जाता है। मन को विषयों में दौड़ा देता है, उसको तो खा ही लेगा। नहीं खायेगा तो नियमावली भंग होती है। हम कहते हैं कि कोई डाकू है, और वह पकड़ गया। उसे सजा हो गयी। तो सजा तो उसे होनी ही चाहिये। चाहे हम हों, चाहे तुम हो, चाहे कोई हो। इसलिये इस सृष्टि में जो कोई भी है, सब भगवान ही तो है। चाहे रावण हो, चाहे सूपनखा हो, चाहे सुबाहु हो, चाहे कोई भी हो। यह तो जब तक क्लियर दिग्दर्शन नहीं होता, तब तक की यह खोजबीन है। इसलिए हम कहते हैं कि भूत को उसी के जैसे झूठ–मूठ मंत्रों से मारा जाता है। बाहरी दुश्मनों को, इन औजारों से मारा जाता है। तो इसलिए इसे बनाना पड़ता है। साधक जब साधना नहीं करता, तो उसके सामने यह संसार का रूप रहता है। भगवान बाहर खड़े रहते हैं। गौण रहते हैं, और चारों तरफ विहार रहता है। ऐसी कन्डीशन रहती है। और जब थोड़ा सहारा बौद्धिक स्तर का मिल जाता है, तो सोचता है कि हम लाइन में तो आ गये, लेकिन अभी साधना करनी बाकी है। यह माया में जितने काम, क्रोध, मोह ये दुश्मन हैं, यह मरते नहीं हैं। यह मर जायें सब। माया मर जाये, तो भगवान मिल जाये। तो उसके अन्दर दो समूह बन गये। माया के समूह को बुरा मान लिया, भगवान के पक्ष को भला मान लिया। बुराइयों को दुश्मन बना लिया, भलाइयों की मदद से इन्हें खतम करता है। अगर किसी अच्छे सद्गुरू की कृपा मिल गयी, तो साधना की युक्ति पा जाता है। और सद्गुणों के द्वारा, दुर्गुणों पर विजय पा लेता है, तो वहाँ थोड़ा मोरल ऊंचा हो जाता है। कुछ गर्मी आ जाती है। ताकत मिल गयी। थोड़ा ईगो आयेगा, तो ठकुरई आ जाती है। यह साधना तीसरी श्रेणी की है। बैचलर लेवल की है। अब साधक को मालूम रहता है। कि ज्ञान जो मिल गया, हमें उसे आलिंगन नहीं करना है। अगर ज्ञान का आलिंगन किया, तो जो अज्ञान समाप्त किया गया था, वह फिर से जिंदा होकर खड़ा हो जायेगा। क्योंकि ज्ञान का ज्ञान में अकेले ज्ञान नहीं हो सकता, बिना अज्ञान के। इसलिए ज्ञान को पकड़े रहना ठीक नहीं। तो कुशल साधक समझता है, कि अब यह सब जिनकी सहायता से मैंने रावण आदि को मारा है, उन्हें बिदा करना है। राम ने यही किया। जब रावण को मार कर आये, तो बंदरों से कहा, कि देखो भाई अब जो मेरा काम था, वह समाप्त हो गया। अब तुम सभी लोग जाओ, सब जाओ। तो कोई प्रार्थना करता है, कोई रोता है कि हे भगवान आपको छोड़कर हम कहां जायें। तो राम ने कहा, कि नहीं नहीं, तुम सब जाओ। विभीषण अब तुम अपना काम देखो। सुग्रीव, तुम अपना काम देखो। अंगद तुम अपना काम देखो। जामवंत, तुम अपना काम देखो। तो अब एक श्रेणी और बढ़ गयी। अब वहां न सजातीय रह गये, न विजातीय रह गये। अब आकाशवत हो गया, विस्तृत हो गया। अब उस जगह दो तीन मुरासिले और हैं। तो इस तरीके से तुम किसी भी तरीके से लग जाओ, तो आगे रास्ते का ज्ञान होता जाता है।

- **स्थूल, सूक्ष्म, कारण**
- **आटोमैटिक सिस्टम**
- **सजातीय – विजातीय**
- **परमार्थ – पथ**

यह स्थूल शरीर का तरीका तो जानते ही हो, पाँच तत्व से बना है। ये पाँचों तत्व हैं– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। ये पाँच तत्व अपंचीकृत पंचमाहभूत हैं, इनको पंचीकृत पंचमहाभूत बनाना है। हम वह शैली बताते हैं– इसे वेदान्त शैली कहते हैं। अब जैसे पृथ्वी है। इसमें ये जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्व भी मिले हैं। पृथ्वी में आवाज भी आती है। कभी–कभी हरकत भी करती है, वायु की तरह। आग भी निकलती है। पृथ्वी में तरलता भी होती है। और पृथ्वी ठोस भी होती है। तो पाँचों तत्व हो गये न पृथ्वी में। इसी प्रकार जल में भी पाँचो तत्व हैं। और वायु में भी अग्नि में भी हैं। और आकाश में भी पाँचों तत्व हैं इस प्रकार ये पंचीकृत पाँच तत्व 5 ग 5 = 25 प्रकृतियां बन जाते हैं। यह तो हो गये तुम्हारे अपंचीकृत पंचमहाभूत और पंचीकृत पंचमहाभूत ये स्थूल जगत के हो गये। अब सूक्ष्म जगत को देखो वाक्यांश, घ्राणांश, रसांश आदि ये जो पांच तंमात्राएं हैं, इनके अंश हैं, जिनसे यह क्रिया करता है। वह हैं इसमें। तो ये पाँच ज्ञानेन्द्रियां– कान, नेत्र, जिह्वा त्वचा, नाक व इनके विषय जिनमें ये क्रिया करती हैं। शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गंध, ये पांच विषय हैं। पांच कर्मेन्द्रिया हैं– हाथ, पैर, गुदा, लिंग और वाक्। ये दस इन्द्रियां हो गयीं, और पाँच कोस अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय। कोई–कोई पाँच प्राण लेते हैं। और मन, बुद्धि तथा अहंकार को ले लो तो अठारह। नहीं तो मन और बुद्धि भर को लो, तो 17 तत्वों का यह सूक्ष्म शरीर होता है। इनसे क्रियाएं होती हैं। यह शरीर मकान हो गया, और इसके अंदर ये काम करने वाले कर्मचारी हो गए। और ये सब, काम करने की ताकत जहां से पाते हैं, वह कारण शरीर है। और ये दोनों–स्थूल और सूक्ष्म–ये कार्य हो गए। तो कारण, कार्य में अनुगत होता है। और कार्य कारण में अनुगत नहीं होता। कार्य जो है दृश्य है, और कारण दृष्टा है। दृष्टा सत्य होता है। दृष्टा, दृश्य में अनुगत होता है। और दृश्य, दृष्टा में अनुगत नहीं होता। इसलिए दृश्य का ट्रांसफार्म होकर दृष्टा बन जाता है। कार्य, कारण में बदल जाता है। जब हम जान गए कि हिमालय की बर्फ पानी है, तो बर्फ, पानी बन जाती है। जब तक नहीं जानते, तो सफेदी या और कुछ कहते हैं। बर्फ कार्य है, पानी कारण है। दृश्य असत्य है, और उसका तीनों कालों में अभाव है। और दृष्टा एक रस रहता है। देश–काल करके बाधित नहीं है। इसलिए जब दृश्य बदलकर दृष्टा बन जाता है। तो दृष्टा ही दृष्टा रह जाता है। तो तुम अपने आपको फील करो। काम हो गया। तो इस तरीके से कारण शरीर क्या है?– जो स्थूल, सूक्ष्म को ताकत देता है, उसको कारण कहते हैं। सबका मूल कारण है। सबसे बारीक है। और जो सबसे बारीक है, वही सबसे ज़्यादा ताकतवर होगा। आजकल जैसे विज्ञान वाले भी मानते हैं, कि परमाणु का विखंडन कर दिया जाय, तो बहुत बड़ी इनर्जी पैदा होती है। तो यह सिद्धान्त है, ईश्वर के सम्बंध में भी लागू होता है।

जो सबसे सूक्ष्म है, वह सबसे महान है। तो इस तरह से यह कारण बहुत महत्वपूर्ण है। तो कारण में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब विष्णु है। विष्णुका जो वर्णन मिलता है शास्त्रों में, वह ईश्वर के रूप में है। शंकर भी ईश्वर है, ब्रह्मा भी ईश्वर है। इन सभी के पास वीटो है। ये तीनों ईश्वर हैं। लेकिन जहां कोई समस्या आई, तो विष्णु के पास जाते हैं। इसलिए विष्णु

सीनियर हैं। ये लोग जूनियर हैं – मोटे पदार्थ हैं और वह मालीक्यूल है थोड़ा बारीक है। तो इस तरीके से इनकी पहुंच होती है। तो अब यह समझ में आ गया होगा, कि कारण शरीर का क्या मतलब है, सूक्ष्म शरीर क्या है?

हां साधना की दृष्टि से कारण अज्ञान है। हां अज्ञान ही मूल कारण है। लेकिन जब सतोगुण रजोगुण तमोगुण का प्रंसग आएगा तो सतोगुण विष्णु है, रजोगुण ब्रह्मा है, तमोगुण शंकर है – ऐसा बताना पड़ेगा। जब अवस्था का प्रसंग आ गया तो जागृत का शंकर, स्वप्न का ब्रह्मा और सुषुप्ति का विष्णु को बताना पड़ेगा। और देवता का प्रसंग आ गया तो स्थूल के शंकर, सूक्ष्म के ब्रह्मा और कारण के विष्णु को बताना पड़ेगा। ये सब प्रसंगानुसार बताना पड़ता है। ये तीनों गुण हैं – इनके परे जाना है। त्रिगुणमयी माया है और गुणातीत होना है। इन तीनों गुणों के–प्रकृति के सर्कुलेशन से बाहर होना है। इसका एक तरीका है। जैसे हम कभी–कभी कहा करते हैं कि – साधक जब साधना करता है तो अज्ञान पर विजय पा लिया। किसके द्वारा – ज्ञान के द्वारा। तो ज्ञान को पाकर, आनन्द लेने लगे। तो ऐसा नहीं होता कि हम ज्ञान का आनंद लेते रहें, भजन करते ही रह जायं। तो ऐसे नहीं चलता – ऐसे करोगे तो जो मरे थे रावण का परिवार (अज्ञान आदि) वे फिर से जिंदा हो जायेंगे। यह आटोमैटिक सिस्टम है– यह नियम है। जैसे दुनिया में सब लोग सुख चाहते हैं, दुख कोई नहीं चाहते। तो मान लीजिए कि दुनिया से दुख विदा हो जाय। दुख रह न जाय। अब बचा सुख। तो बताओ, क्या दुख की गैर हाजिरी में, सुख का ज्ञान हो सकेगा? यह तो दुख की मेहरबानी है, कि सुख का ज्ञान करा देता है। यह तो रात की मेहरबानी है, जिससे दिन का ज्ञान होता है। और दिन की मेहरबानी से रात का ज्ञान होता है। इसलिए ईश्वर की जानकारी अगर लेनी है, तो ईश्वर की निन्दा भरपूर होनी चाहिए। और ये जितनी स्तुति या भक्ति ईश्वर की, ज़्यादा होती है, उतना ही उसका मिलना कठिन होता जाता है। ईश्वर का विरोध भरपूर होना चाहिए। ईश्वर की भक्ति कोई न करे, तो तत्काल ईश्वर मिल जाय। ईश्वर का नाम न लो, और सब माया ही माया हो जाये, तो तत्काल ईश्वर का प्रादुर्भाव हो जायेगा। इसका फारमूला हम बताएं, कि कैसे हो जायगा? तो इसका अनुपात होता है। अनुपात कैसे? अब जैसे ईश्वर की मान्यता समाज में 95 प्रतिशत तक बढ़ गई, और 5 प्रतिशत न मानने वाले रह गए। तो 95 प्रतिशत में एक प्रकार का ईगो आ जायगा, और उसका परिणाम क्या होगा, कि उसकी 95 प्रतिशत की जो क्षमता है, वह 5 प्रतिशत की ओर चली जायगी। धीरे–धीरे ईश्वर की मान्यता घटते–घटते 5 प्रतिशत रह जायेगी और अमान्यता 95 प्रतिशत पहुंच जायगी। तो अमान्यता–पक्ष का ईगो बढ़ेगा। कि हमीं हैं, और कोई नहीं है–ईश्वर ईश्वर। तब फिर वह उधर की इनर्जी है जो, वह फिर आ जाएगी मान्यता–पक्ष में। ऐसे चलता रहता है। बस यह दुनिया की गति है। इसी तरह से व्यक्ति के अन्दर होता है। हर आदमी के अन्दर चलता है। तुम कुछ भी करके देख लो, यही नियम चलेगा। क्योंकि यह स्वाभाविक प्रक्रिया है। यह कृत्रिम थोड़े ही है। यह आटोमैटिक तरीका है। इसलिए हम ईश्वर की जितनी ज़्यादा मान्यता करेंगे, उतना ही ईश्वर क्लिष्ट होता चला जायगा।

जब प्रहलाद को उसके बाप हरिण्यकशिपु ने बहुत कष्ट दिया– पहाड़ से गिराया, आग में जलाया, अनेक तरीकों से, तो नारद जी से नहीं देखा गया। भगवान विष्णु के पास गये और बोले–हे भगवान! अब देखा नहीं जाता। आपके भक्त प्रह्लाद को बहुत कष्ट दे रहा है, यह राक्षस हरिण्यकशिपु। आप कुछ करिये। विष्णु ने कहा नारद! तुम ऐसा कहते हो तुम्हारी बुद्धि खराब हो गयी है क्या? अरे प्रह्लाद को जो कष्ट दिये जा रहे हैं–वही कष्ट तो हरिण्यकशिपु को नष्ट करेंगे। प्रह्लाद को कोई कष्ट थोड़े होता है। वह तो देखने वाले को ही, ऐसा लगता है। प्रह्लाद को तो प्रेम के आवेश में कुछ पता ही नहीं चलता। तो इस प्रकार जिस साधक के हृदय में प्रेम रूपी प्रह्लाद पैदा हो जाता है, वह काल को भी छका डालता है, और उसका कुछ नहीं बिगड़ता। जब ऐसा प्रेम आ जाता है, तो नर से नारायण बनकर, उसे पा लिया जाता है।

जो प्रकृति की साम्य अवस्था है–इसमें चेतन का प्रतिबिम्ब कारण है। यह प्रकृति की साम्य अवस्था, तीनों गुणों से निकल जाने पर आती है। प्रकृति से ऊपर उठ जाय; कोई इच्छा न रह जाय–तीनों देहों की, और जो कुछ दिखाई–सुनाई पड़ता है, उससे हम मुक्त हो जायं। इसीलिए ध्यान और नाम बताया जाता है, कि बारीक बनो, बारीक बनो।

देखो एक कितना अच्छा उदाहरण है– जब हनुमान गए लंका में सीता का पता लगाने तो सोचा, कि कैसे क्या करना चाहिए? कला तो उसमें थी ही; और जिसके पास कला होती है, वह फंस नहीं सकता। किसी न किसी तरह से निकल जाता है। तो हनुमान ने सोचा कि लंका के राक्षसों से आगे लड़ना पड़ेगा। इनका पता किया जाय कि इनके पास कितनी क्षमता है। कैसे, क्या इनका काम धाम है। कैसे योद्धा हैं, कैसे इनका शासन है? क्या इनके खजाने है, कैसे क्या है इनके पास? यह सब देखना चाहिए। तो उसने पेड़ तोड़ना शुरू किया, बाग उजाड़ दिया, रावण के पुत्र अक्षय कुमार को पेड़ उखाड़ कर मार दिया, वह मर गया। रावण को पता चला तो उसने मेघनाद को भेजा। शस्त्र लेकर आया। तो हनुमान को पकड़ के बांध ले गया। हनुमान ने सोचा, कि हमें तो हर बात का पता लगाना है। इसलिए बंध जाना चाहिए। यह हमारा करेगा क्या हमारे पास तमाम कलाएं हैं। अपने को दुबला–पतला करके, जब चाहें निकल सकते हैं–बंधन से। अगर ज़्यादा होगा, तो इतने बड़े हो जायेंगे कि बंधन क्या काम करेंगे?

तो ये सब साधक के अन्तःकरण की लीला है। महाभारत, साधक के अन्तःकरण की लीला है। ये दो तरह के साधकों के अन्तःकरण की बात है। दोनों साधकों की साधना का शुरू और एण्ड ;म्दकद्ध एक जैसा है। अब उसमें गतिविधियाँ अलग–अलग हैं। इसने कितनी कैसी साधना की, उसने कैसी साधना की? इससे दोनों की क्रियाओं में अन्तर आ सकता है लेकिन मूलतः बहुत ज़्यादा अंतर नहीं है। जैसे शुरू में उसकी थीसिस क्या है? दोनों की करीब–करीब एक जैसी है। जैसे इन दोनों के शीर्षक को लें–एक का नाम है, महाभारत और एक का नाम राम चरित मानस। महाभारत का अर्थ है–महा डिग्री है, महान। भा का मतलब है ज्ञान और रत, लगा हुआ। महाभारत। जो महान ज्ञान में रत है। जो साधना में रत है। जो ईश्वर की खोज में लगा है। जो अपने स्वरूप को जानना चाहता है। जो आद्योपान्त सिद्धान्त है। जो थीसिस है–इसका नाम क्या है–महाभारत। उसमें वह लगा हुआ है। इसी प्रकार एक

दूसरा जो साधक है, रामायण के अनुसार लगा हुआ है। तुलसीदास ने रामायण नाम न देकर, नाम दे दिया 'रामचरित मानस'। इसका अर्थ भी समझना होगा। राम जो एक रस सर्वत्र रम रहा है उस व्यापक राम के चरित मन से। वही तो है। जब दुर्योधन का अंत हो गया और पांडव जीत गए। राज्य हो गया उनका, तो क्या राज्य किया उन्होंने? वे उदासीन होकर निकल गये। विजातीय पार्टी का अन्त हो गया, तो साधक ने अपने हृदय से सजातीय पार्टी को भी निकाल दिया। हिमालय में जाकर गल गए। ऐसे ही रामायण में भी है। विजातीय पार्टी का लीडर रावण होता है, और सजातीय पार्टी का राम होता है। और दोनों में संघर्ष होता है। संघर्ष होते–होते जब राम की विजय हो जाती है, रावण मार दिया जाता है। तो विभीषण को राज्य देकर, यानी जीव को ब्रह्म बनाकर–व्यापकता देकर, काम खतम हो गया। राजा का मतलब है–ईश्वर की प्राप्ति हो गई–ईश्वर से भी बड़ा कोई राज्य है क्या? बस फिर राजगद्दी हो गई। फिर विभीषण, सुग्रीव, अंगद सबका त्याग कर दिया। तो इस तरह से इन दोनों का अथ और ;म्दकद्ध एक सा है। अब उनके योद्धाओं की क्रिया क्या है। वह भी करीब–करीब कई तरीके से मिल जाती है। इनके जो विशेषज्ञ हैं, डाक्टर हैं, जो थीसिस बनाने वाले हैं, करीब–करीब एक जैसा देते हैं। उधर धृतराष्ट्र एक तरफ अंधा अज्ञान है–एक तरफ पुण्य रूपी पाण्डु है। इधर भी एक तरफ मोह रूपी रावण है–दूसरी तरफ ज्ञान रूपी राम है। दोनों का तालमेल बैठ जाता है। दोनों का भाव एक जैसा आता है। संख्या की गणना भी एक जैसी है। पदुम अठारह यूथप बंदर। तो उधर भी 18 अक्षोहिणी सेना बताया है। अब इनके योद्धाओं के विषय में भी एक ही जैसे वर्णन मिल जाते हैं। विजातीय पार्टी में पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, दुश्शासन आदि रथी, महारथी, अतिरथी बड़े–बड़े अनगिनती योद्धा थे। और
इधर भी पांचों पांडव थे। बाकी सहायक थे। सात अक्षोहिणी सेना इधर थी–ग्यारह अक्षोहिणी उधर थी। लेकिन इधर मुख्य पांच पांडव थे–इनमें एक धर्मराज युधिष्ठिर थे। उनके ये चार भाई भीम, नकुल, सहदेव, अर्जुन। तो ये दो पार्टियां हैं, यह कम्पोजीशन है, साधक के अन्तःकरण का। साधकों की अपनी–अपनी रूचियां हैं। साधना हम भी करते हैं, तुम भी करते हो, लेकिन रुचियां भिन्न–भिन्न होती हैं। हमको नमकीन अच्छा लगता है। तुमको मीठा अच्छा लगता है। तुम्हारे स्प्रिट (आत्मा) और हमारे स्प्रिट में कोई जातभेद का अन्तर नहीं है। तुम्हारे शरीर और हमारे शरीर में कोई अन्तर नहीं है। यह तो रुचि है – जिसमें अन्तर होता है। वो जो महाभारतीय ढंग का साधक है, उसने सीनियरटी को थोड़ा कम लिया है। उधर जो रामचरित मानस में वर्णन है, उसमें राक्षसों को भी बहुत बलवान बताया गया है। मोह रावण महा बलवान था ही, काम मेघनाद भी बहुत बली था, कुंभकर्ण, नारांतक, अहिरावण आदि आदि। और इधर राम की तरफ भी एक से एक बलवान योद्धा थे। सुग्रीव महाबली था। वैराग्य रूपी हनुमान बहुत बलवान, अनुराग रूपी अंगद आदि सभी बड़े–बड़े बलवान थे। जामवन्त–जानकारी। सब महान बलवान हैं।

तो यह कलप भेद करके लीला है। यह हमारे काया में जब कल्याण हुआ, तब ऐसा चरित हुआ। तुम्हारे काया का जब कल्याण होगा, तो तुम्हारे अंदर कैसा चरित्र होगा। कैसे उसके पायक लोग हैं। क्या मनुष्य और बंदर मिलकर लड़े राक्षसों से, या मनुष्य ही मनुष्य लड़े। जैसे महाभारत में मनुष्य मनुष्य लड़े। और रामायण में मनुष्य और बंदर मिलकर लड़े–राक्षसों से। तो ये प्रकृति–भिन्नता हो जाती हैं। लेकिन उसके चार्ट में अन्तर नहीं है। इधर लक्ष्मण बड़े भारी वीर, राम के भाई धनुर्धर थे। उधर अर्जुन को धनुर्धर माना गया। उधर दुर्योधन को भी गदा युद्ध में भारी बलवान माना गया। साधकों को बहुत छोटी–छोटी इन

बातों के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिये। मूल बातों को पकड़ना चाहिए। उन्हीं को लेकर साधना करनी चाहिए। क्योंकि हमारी मंजिल बड़ी लम्बी है। कोई साधक यही देखता रहे, कि इस संसार रूपी जंगल से भटकते–भटकते अमुक आदमी कैसे निकल गया। कैसे गंतव्य स्थान तक वह पहुँचा। दूसरा कैसे पहुँचा। तीसरा कैसे पहुँचा। यह जानकारी ज़रूरी है। शायद है, इससे हमें कुछ मदद मिल जाय। लेकिन हमारे पास इतना टाइम तो नहीं है, कि हम इसी में लगे रह जायं। हमारी तो एक–एक घड़ी निकलती जा रही है। हम तो चाहते हैं, कि हमारा रैपिड प्रमोशन हो जाय। जल्दी से जल्दी गंतव्य पा जायं। इसीलिए उसके मूल सिद्धान्त को समझना चाहिए। छोटी–छोटी बातों में नहीं पड़ना चाहिए। जब समझ में आ गया, तो उसका ट्रांसलेशन कर लेना चाहिए, अपने में ढाल लेना चाहिए। तो इस तरीके से चलो। और सबसे बड़ी बात, यह जो तर्क–वितर्क और खोजबीन, यह प्रोज–पोएट्री के भरोसे हमारी प्रगति नहीं होगी–हमारी प्रगति तो चलने से होगी। करने से होगी। रामायण पढ़ते रहने से हमें क्या मिल जायगा? मिलेगा तो हमको चलने से। एक आदमी है–भोजन खा रहा है, और हम देखते रहें तो उसके खाने से हमारा पेट भरेगा क्या? पेट भरने के लिए, तो खुद खाना पड़ेगा ना? प्रश्न यह है। इसलिए जानकारी से हम पकड़ में आ जाएंगे। पहुँच नहीं पाएंगे। लम्बी मंजिल है। हमारे पास टाइम नहीं है। इसलिए फोर्स के साथ–जैसे राकेट दागे जाते हैं– एक लाख–दो लाख, तीन लाख किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से, तो वहां गुरूत्वाकर्षण के बाहर रोकते–रोकते–रोकते दूसरे ग्रह की कक्षा में जाकर 100 किमी की गति से पहुंच जाता है। वैज्ञानिक लोग ऐसा गणित लगाकर, उसे फोर्स देकर छोड़ते हैं। तो सत्संग सबसे बड़ी चीज़ है। सत्संग से बड़ा कुछ नहीं होता। सत् कहते हैं–जो तीनों कालों में अबाधित, एक रस वस्तु है। पहले और अब हर समय रहती है। जिसे सत् रज तम ये तीनों प्रकृति के गुण, बाधित नहीं कर सकते। मन और चित से, उसका साथ करना–सत्संग है। मन से उसका संग करना। वह कैसे मिल जाय? तो हर चीज़ में, हर बात में मालीक्यूल परमाणु मिलते हैं–तो छाँट–छाँट कर और संजोकर रख लें। जब रख लेंगे, तो वो हमें काम देंगे। पर ऐसे नहीं–सत्संग में बहुत से लोग व्यास बन जाते है। रामायणी बन जाते हैं, आचार्य बन जाते हैं, शास्त्रीय बन जाते हैं। और समाज में बोलना शुरू कर देते हैं–वह हैं नासमझ। वो यह नहीं समझते हैं कि शास्त्र क्या है? छः शास्त्र हैं। शास्त्र का मतलब है, शस्त्र। शास्त्र–शस्त्र। वह एक कला है– युक्ति है उसमें। उस युक्ति को हम ले लें। वह युक्ति करते–करते वाण बन जायगी। ध्यान रूपी धनुष बन जायगी। फिर उससे मार सकते हैं–काम को, क्रोध को, लोभ को। यह शस्त्र हैं–यही उसको नाम दिये गए हैं। आज इनका अपभ्रंश हो गया है–पुस्तक बना दिया है। यह पुस्तक नहीं है। यह पुस्तक तो अब बन गई हैं। पहले नहीं थीं। इतिहास उठाकर देख लो। यह कागज तो अब बनाया गया। पहले कागज नहीं था, तो शास्त्र कहाँ था–वेद कहाँ था, पुराण कहाँ थे? तो श्रुति–स्मृति। शिष्य, गुरू के पास आया। गुरू ने अपनी स्मृति के आधार पर शिष्य को सुनाया, शिष्य को स्मरण करा दिया। सुना और स्मरण किया। श्रुति और स्मृति। इस तरह से यह परम्परा से चलते रहे। श्रुति–स्मृति, श्रुति और स्मृति। इसके अलावा और तो कुछ मिलता नहीं। समाज में परिवर्तन होता रहता है–एक चीन का यात्री यहाँ आया था इंडिया में–इतिहास में आता है–उसने लिखा है, कि यहाँ रात में घरों के किवाड़ खुले रहते थे, कोई ताला नहीं बंद करता था–कोई चोर था ही नहीं। तो जब समाज में समत्व, सद्भावना, अच्छाई, आ जाती है, तो समाज में सतयुग आ जाता है। जब बुराई का त्याग और अच्छाई को ग्रहण करने वाला समाज होता है, तो त्रेता युग होता है। जब समाज में दोनों को लेने की या द्विविधा की स्थिति रहती है, कि माया भी मिल जाये भगवान भी मिल जाये, तो द्वापर युग होता है। और

जब समाज में चारों ओर कपट ही कपट का बोलबाला हो जाता है, तो कलियुग होता है। ऐसा नहीं कि पहले सतयुग इतने से इतने तक रहा, फिर त्रेता इतने से इतने रहा, फिर, द्वापर, ये सब ना समझी की बातें हैं। यह काल करके बाधित नहीं होती संसार की गतिविधि। यह आटोमैटिक प्रक्रिया है। यह ऐक्शन–रियेक्शन है। इसको जो मान लेते हैं, वो बरबाद हो जाते हैं। इसे अलौकिक मानकर चलें। यह है नहीं, फिर भी है। इसे आश्चर्यवत् क्यों नहीं देखते है? यह जैसा तुम देखते हो वैसा है नहीं। यह मेरा घर है, यह मेरा कम्बल है, यह मेरा राइट है, यह मैं हूँ फलां का, मेरा कोट है–यह ऐसा है नहीं। यह जैसा रूपों में आता है, वैसा नहीं है। यह दूसरे ढंग का है। समझ काल में पाया हुआ संसार का दृश्य झूठ है, और अनुभव काल में पाया गया संसार का दृश्य सही है। इसलिए अनुभव को पाने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा है नहीं, अगर है तो बताओ, कोई चीज़ सही है? किसी को कभी मिली? जो कहता है मेरी चीज़ है। क्या उसको कभी मिली? जो कहने वाला है, वही गायब हो जायगा, तो चीज़ कहां से मिलेगी?

'मात कुंवारी, बहू लरकौरी, ननंद दरेरा खाय।
देखन हारी के बेटवा होइगा लिये परोसिन जाय।।

यह जो माया है, कुंवारी है। इसको कोई पुरुष, पत्नी नहीं बना पाया। शादी नहीं कर सका, इससे। यह अलौकिक है। इस तरीके से, यह उसी से शादी करती है, उसी के पैर दबाती है, जो पुरुष अलौकिक बन जाता है। जो सर्वत्र हो जाता है। जो देश–काल अबाधित सार्वभौम महात्मा, ऐसे पद को प्राप्त कर लेता है। जो इससे हमेशा–हमेशा के लिए अलग हो जाता है। जो इसके गुणधर्मों में कभी भी प्रकट नहीं होता है। ऐसे महापुरुष के यह पैर दबाती है।

माया, ईश्वर और सद्गुरू ये तीनों अलौकिक हैं। इसलिये इस संसार को आश्चर्यवत् देखना चाहिए। जो संसार में देखते हैं, कि यह मेरा है– उनकी दृष्टि अच्छी नहीं, उनकी दृष्टि का ट्रान्सफार्म होना चाहिए। रूपान्तरण होना चाहिए। अभी साधना नहीं करते। साधना से कुछ मतलब नहीं। इसलिए आश्चर्यजनक देखना चाहिए। चौंकना चाहिये हमेशा। हर चीज़ पाते हुए तुम्हें अलौकिक महसूस करना चाहिए। देखते हुए हर चीज़ को, अनदेखा बनाना चाहिए। ऐसा हम बता रहे हैं– समझ में आ रहा है? समझ से परे की बात है। आश्चर्यवत् देखना चाहिये, आश्चर्यवत् रहना चाहिए। आश्चर्यवत् वरतना चाहिए। यह आलौकिक है। यह है नहीं, और फिर है। जैसे लाइट लगाओ कॉच पर तो रिफ्लेक्शन होता है–वह है नहीं, फिर बगैर हुए, मान नहीं सकता। वही यह संसार है। ईश्वर रूपी जो भा है, ज्ञान है, प्रकाश है, उसका यह रिफ्लेक्शन है। वही, यह है नहीं तीनों कालों में, फिर भी हो रहा है। और इसका होनापन तुमने मान लिया, तो फिर इसके क्रिया–कलाप में तो तुम्हें जाना ही पड़ेगा। और जब तुम्हें जाना पड़ेगा, तो तुम बच नहीं सकते। इसलिए मूलतः कार्य में अपड़ के देख, कर्म को अकर के देख। यह सब स्तम्भ खड़ा है। इसमें हरकत नहीं है। यह जो हरकत है– यह काला दिख रहा है, सफेद दिख रहा है भगवा दिख रहा है–यह स्थूल दृष्टि में है। जो हमारी ज्ञान दृष्टि है, उसमें हरकत नही है–वह स्तम्भ है। वह एक रस सर्वत्र भरा हुआ है। कोई जगह उससे खाली नहीं है– सर्वत्र परिपूर्ण और उसमें हरकत नहीं है, निस्पंद। तुम्हारा स्वरूप यह है। इसको पाना है–इसमें रुकना है–इसमें डटना है। तो फिर डटते–डटते,

डटते–डटते, झगड़ा करो, रोओ, गाओ। और ऐसे नहीं कि नियम अपना कर लिया और बैठ गए। ऐसे नहीं। तब यह कथा, पोथी, भागवत और रामायण और महाभारत काम करेगी, ऐसे नहीं काम चलेगा। और इसमें बड़ी कलाबाजी है, कदम–कदम पर। ज्यों–ज्यों हम ऊपर चढ़ेंगे त्यों–त्यों ट्रांसफार्म होता चला जायेगा। एक अवस्था में यह रूप रहा दूसरी में फिर बदल कर यह हो गया, तीसरे में फिर यह हो गया और इसकी अन्दर से एडजस्टिंग होना चाहिए। यह कला बुद्धि में समझने से नहीं होगी। बुद्धि में चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ना चाहिए। तब वह हमारे यहाँ काम करेगी। तब ठीक रहेगा काम। ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा–बुद्धि हमारी ऋतु में भर गयी और जब उसमें चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ गया– गर्भाधान हो गया, वह काम करेगी और वह होना चाहिए। वही अलौकिकता है। वही नशा है, वही आवेश है। वह नशा हर समय चढ़ा रहना चाहिए। और जब वह नशा रहेगा तो पैट बदल गया। तो जो गाड़ी अभी तक प्रवृत्ति मार्ग मे चली वह खड़ी हो गई। तो इस तरीके से आगे पीछे जो हम बताते हैं, समझकर चलना चाहिये और पिटी पिटाई बातों से कुछ होता जाता नहीं है। निम्न श्रेणी की बातें हैं। पहली भूमिका की बातें हैं–दूसरी भूमिका की बातें है। तीसरी भूमिका की बातें हैं। चौथी भूमिका में यह नहीं रह जायेगा। जागृत अवस्था, स्वप्न अवस्था में नहीं रह जायेगी। स्वप्न से जब सुषुप्ति में जायेंगे तो– स्वप्न नहीं रह जायेगी। तुर्या में जाने पर सुषुप्ति नहीं रहेगी। तुर्यातीत में जब पहुंच जायेंगे तो तुर्या नहीं रह जायेगी। इस प्रकार से इनको सबको रूपान्तर करते चलते हैं। और यह सब कला अपनी बुद्धि से नहीं आती, यह निरवयव होता है। कोई ताकत देता है। और चेतना का प्रतिबिम्ब जब बुद्धि में पड़ जाये। उसके हम पात्र बन जायें। ऐसी भूमिका बन जाये, तो फिर समझ काम कर जाती है।

जब हम अनसूया में थे तो एक बार ऐसा हुआ कि हमारी छड़ी गिर गयी और कमंडल बिगड़ गया। तो महाराज जी ने कहा, फ्यूचर में तुम गिर सकते हो– तो हमें बहुत ग्लानि हुई। तो हम सोचे कि फेल हो गए। भारी दिक्कत आई थी। तो फिर हम दो एक रोज खाए पिये नहीं, बहुत खराब हालत में रहे। फिर पूछे, कि क्या कोई उपाय है, बचने का? कोई तरीका है क्या, कि ये छड़ी गिरे नहीं, ठीक हो जाये। और कर्तव्य रूपी कमंडल ठीक हो जाय। तो कहा हाँ है–कपड़े फेंक दो, नंगे हो जाओ– और माघ का महीना था–तो कहा, मौन हो जाओ और कोई इच्छा न करना, और घूमो। तपस्या करो, त्याग करो। त्याग से क्या नहीं हो सकता? अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि मन तो वायु से भी वेगवान है। कैसे वश में होगा? तो कृष्ण ने कहा 'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते'। अभ्यास करो, अभ्यास से क्या नहीं हो सकता? हंगर स्ट्राइक कर दो, कि हम मर जायेंगे, कट जायेंगे–तो फिर जल्दी से सप्लाई होगी। भगवान के यहाँ भी ऐसा चलता है। त्याग करो। हाँ तो किसी ने बताया था कि चित्रकूट की 84 कोश की परिक्रमा की जाती है। तो हमने सोचा यही ठीक रहेगा, ठंडी–ठंडी दो महीना घूमने में तबियत भी मस्त हो जायगी, और ठीक रहेगा। तो कपड़े फेंक दिये, और निकल पड़े। तो हम फिर गये चित्रकूट से सूरजकुंड, फिर नांदी, फिर राजापुर फिर मानिकपुर, फिर धारकुंडी, फिर सुतीक्षण आश्रम आ गए। दो महीने लगे। कोई ले जाये, धूनी लगा दे, तो रात में तापते, दिन में खा पीलें जो मिले, नहीं तो कोई न ले जाय, तो पेड़ के नीचे पड़े रहते। पुआल वगैरह में, पड़े रहते। ऐसे फिर आ गये, तो बताया कि सब ठीक हो गया मामला। तो क्या नहीं हो सकता करने से, और करेगा नहीं तो कुछ नहीं होगा।

तो जब काम हो जाय, तो उसका भी त्याग कर दे। लेकिन ऐसा नहीं, कि पहले से कर दे–बनावटी करने लगे। इसके लिए अंतर्जगत से हमें कम्यूनिकेशन होना चाहिए। हमको अनुभूतियाँ मिलनी चाहिए। हमको पता चले, कि अब हम इस लेविल पर आ गये, अब ये करो। वह जो कुदरत है, उसमें क्षमता है–वह हमें बताए। तब साधक को बोध होना चाहिए। और जो इस तरीके से बोध करेगा, वह सही बोध माना जायेगा। सही तरीका माना जायेगा। और ऐसे नहीं कि, दस बीमार आदमी आए, और बिना दवा कराए पांच ठीक हो गए। तो यह कोई आशीर्वाद है–अरे दस में से, सब तो मर नहीं जायेंगे। आधे तो ठीक होंगे ही। यह सब गलत तरीका है–ईश्वर में आस्था कम करने के लिए है। मेरे विचार से तो सीधा तरीका है, कि हमारे पास अन्तःकरण है और इन्द्रियाँ हैं। अन्तःकरण यह मन बुद्धि चित्त अहंकार है, और इनके पीछे कोई ऐसी अदृश्य सत्ता है– जिसे हम सब लोग आत्मा कहते हैं। और वह आत्मा, परमात्मा का ही अंश है। और वह आत्मा, परमात्मा से विछोह प्राप्त होने के कारण, उससे भिन्न प्रतीत होता है। लेकिन निरंतर उसकी गति परमात्मा की ओर बनी रहती है। जैसे वायु समुद्र से पानी शोषित करके बादल बना देती है, और फिर बादल हिमालय जैसे पहाड़ों की चोटियों पर वर्षा करते हैं। एक बूंद गिरी, दस बूंद गिरी, हजार बूंद गिरी और बहुत सी बूंदें गिरी, तो पानी एक नाली का रूप लेकर चल पड़ता है। जिधर वह चलना जानता है, जिधर ढलान है। फिर कई नालियाँ मिलकर नाले का रूप ले लेगा, चलता रहता है। फिर नदी बना लेते हैं, फिर चलता रहता है, और चलते–चलते वहीं पहुंच जाता है– समुद्र में, जहां से चला था। मेरे विचार से परमात्मा समुद्र के समान है, और हम सब लोग बूंद के जैसे हैं। किन्हीं अदृश्य कारणों से, हम उससे भिन्न हो गए हैं। और जहाँ–तहाँ गिर गये हैं। और हम सभी अंश अपने अंशी परमात्मा के पास पहुँचना चाहते हैं।

कौन ऐसा है। जो नहीं चाहता परमात्मा को। कुछ ऐसे लोग होते हैं, जो कहते हैं हमें नहीं ज़रूरत है परमात्मा की, तो उस बुद्धि में लगी है आग, माया की। वह विषय में फंस गया है–उसी में आनंद मानने लगा है। कोई काम में फंस गया है। कोई पैसे में फंस गया है। कोई और चीज़ में फंस गया है–फंसा पड़ा है, लेकिन जब छूटेगा तो उधर ही जायेगा। इस तरीके से, हर आदमी का यह कर्तव्य है, कि हम अपने अन्तःकरण को शुद्ध करें। और अन्तःकरण की शुद्धि, बगैर निर्मल हुए, नहीं हो सकती–पवित्र हुए बगैर नहीं हो सकती। और पवित्र तभी होंगे जब हम आकाशवत् हो जायें। दूसरा कोई तरीका तो है नहीं। चाहे ध्यान से आकाशवत हो जायं। सबसे मन हमारा हट जाय। न खाने में रह जाय, न पीने में रह जाय, न सोने में रह जाय, कहीं न रह जाय, बस स्तम्भवत हो जाय। चाहे किसी तरीके से हो जाय। चाहे नाम से हो जाय। तो उसी स्वरूप को प्राप्त करने के लिये, प्रयासरत रहना चाहिये। फिर ये इद्रियां, अगर हम ईश्वर की ओर जायेंगे, तो ये दूसरा रूप धारण कर लेंगी। और अगर नहीं जायेंगे, तो फिर दूसरा रूप धारण कर लेंगी। यह मोटी सी बात है। सबकी समझ में क्यों नहीं आती? तो इस तरीके से हमारा धर्म यह है, कि हम यह प्रयत्न करें कि हम अपने मन को खड़ा कर सकें। इसमें एक ही तरीका है। बहुत से साधकों को यह भ्रम हो जाता है, कि मन को जब हम चौबीस घंटा नाम में खड़ा रखेंगे, तब जाकर यह मन ठीक होगा। ऐसा नियम नहीं है–ऐसा तरीका नहीं है। तरीका यह है, कि हम उसकी स्पीड बढ़ाएं। वेग बढ़ाएं। तीव्र गति दें। और कुछ टाइम नियत करें– दो महीना–चार महीना, साल–दो साल। और इतने समय में, मन को कंट्रोल करें। और अन्दर से इसकी तस्दीक हो जाय, तो फिर समझो काम हो गया। अगर तस्दीक नहीं होता, तो फिर हमें बोध नहीं होगा। और अगर परमात्मा की स्वीकृति हो जाय, कि हाँ, तुम्हारा यह काम हो गया तो फिर बोध हो जाता है। फिर यह सब दुनिया रहती है, और वह दुनिया से अलग हो जाता है। फिर वह जीवित रहता

है, और जीवन–मुक्त रहता है। वह जीवन–मुक्त कहलाता है। तो इस तरीके से, उस स्थिति को पाना है। और मरने से मुक्त नहीं होता, मरने से तो पैदा होना पड़ेगा। इसी शरीर में रहते–रहते, इस लिमिट को पार करना है। इस नियमावली को पार करना है। यह जीवन है, इसको पार करना है। और उसमें सहयोग परमात्मा का, मिलना चाहिए। वह खुद हमें राइज करे, उठाए। हमें बताए कि यह करो, यह ठीक है, यह ऐसा है। और यह सब, उधर से मिलता है। जहां साधक साधना करने लगता है, अंग फड़कन होने लगेगी। स्वप्न में संकेत आने लगते हैं। और भी तरीके हैं–आवाज मिलने लगेगी। लेकिन साधक की कमी है, कि पकड़ नहीं पाता। कैच नहीं करता। यह सब कैच करने के लिए, उसमें स्पीड होनी चाहिए। तीव्र वेग होना चाहिए। त्याग का त्याग होना चाहिए। तब वह पकड़ लेगा। तो समझ में आ जाएगा। और अगर धीमी गतिवाला है, तो कम्यूनिकेशन कर नहीं पाता। इसलिए साधक अगर यह रूपानन्तर कर ले, इतनी स्पीड ले आए, तो वह दिन दूर नहीं.....।

रात भरे को जोर लगावे छोरि दिए भरि मासा।

कबीर ने तो सब कुछ कह डाला है। कुछ बाकी नहीं छोड़ा है। लेकिन जब कोई करे। तो इस तरीके से, साधना करना बहुत ज़रूरी है, और स्पीड। और अगर इस तरह साधना बन जायगी, तो फिर भगवान भी हर अंग में चैतन्यता दे देंगे।

''आगे आगे राह देत है, पीछे राखै नीत।
ना हां कहै, नहीं ना बोलै, है दोनों के बीच।।''

न बोलता है, न हां कहता है और सब चीज़ समझा देता है। कैसे समझा देता है यह उसका अपना तरीका है। यह हमारे समझने में क्यों रह जाता है–क्योंकि हमारी स्पीड कमजोर है। हम साधना करते हैं–लेकिन साधना में तीव्र बुद्धि नहीं है। तीव्र वैराग्य नहीं है। तीव्र लगन नहीं है। तो पहले दर्जे के नहीं हैं, तो हमें टाइटल कैसे मिल जायेगा? डिग्री कैसे मिलेगी? थर्ड क्लास को तो कोई अपनाता नहीं, फेलियर को तो कोई अपनाता नहीं। तो इसलिए यह शरीर ही ब्रह्माण्ड है, प्रवृत्ति ही लंका है, मोह रावण है–राजा है, क्रोध कुंभकर्ण है, लोभ नारान्तक, अभिमान अहिरावण है, कपट कालनेमि है, विभीषण जीव है, जो सब बताता है–लेकिन लात–घूंसा खाता रहता है। पराधीन है इसी में। दस सिर थे–रावण के। उसको दशरथ में ट्रान्सफार्म करना है। दशों दिशाओं में हम अर्थ में हो जायं। परमात्मा रूपी अर्थ में हो जायं, तो रावण खतम होने लगेगा–दशरथ बनने लगेगा। बस ऐसे शुरू हो जायेगा, तो खाका बन जायेगा। अब झगड़ा होगा, तो राम जो हैं, रावण को मारेगा। देखिये जब रावण को बाण मारते हैं तो एक सिर काटते हैं, तो कई सिर बन जाते हैं। एक भुजा काटते हैं तो कई भुजा बन जाती हैं। एक बूंद खून गिरता है, तो कई रावण पैदा हो जाते हैं। तो एक चिंतवन मन में हो जाय–काम का हो जाय, क्रोध का हो जाय, लोभ का हो जाये, तो हजारों संकल्प तैयार हो जाते हैं। एक ही चीज़ के। एक स्त्री को याद कर ले कोई विषयी आदमी, तो वह रात भर उसे सोने नहीं देगी–संकल्पों–संकल्पों के ढेर लग जाएंगे। इतना ही तो लिखा है, गोस्वामी जी ने, और लिखा क्या है? सत्य का निवास आकाश में है। और आकाश हमारी नाभि में है। ऐसे रावण नहीं मरेगा। जब हम आकाशवत हो जायं। ऐसे नहीं मरेगा। समुद्र के इसपार से जब हम लंका में प्रवेश कर जायं। कैसे हो? और वह भी जब हमें विभीषण बताए। वही सबका मूल कारण है–जीवात्मा। वही जानता है–उसके अलावा कोई जानता नहीं। वही बताएगा, कि इसका निवास यहाँ है। यहाँ से हटाओ इसे, तब मरेगा। तो इस तरीके से जो विचार, जो सजातीय भावना–ध्यान में आई, और वही वाणी से निकल कर, आकाशवत हो कर, उसमें

सिद्ध हो गई, तो रावण का हनन हुआ–रावण का नाभि से संबंध टूटा। तो अमृत, जो आत्मा है–नाभिकुण्ड में भरा हुआ है–रावण जो असुर है–हनन हुआ। सत् का सत् रह गया। जैसे अमृत वर्षा कहाँ हुई थी–दोनों के ऊपर। लेकिन भालू बंदर जी गए, राक्षस नहीं जिए। तो बन्दर सत् का रूप हैं–राक्षस असत् का रूप है। तो सत् सत् रहेगा। असत् असत् हो जाएगा–यही धर्म है, अमृत का। इसलिए जो गुण है–अमृत का, वही किया। सत् की विजय होती है, असत् का नाश होता है। इस तरीके से अन्तःकरण अड्डा है– इसका मोह का। जहाँ अन्तःकरण से हटा, तहाँ यह खतम हुआ। और जहाँ यह खतम हुआ, तहाँ एकदम रूपान्तर हो जाएगा। फिर विभीषण राजा बन जाएगा। पद दलित नहीं रह जायेगा। फिर जीव से ब्रह्म बन जाएगा। परमात्मा बन जायेगा। और जहाँ यह हुआ। तो बस जितने मिले थे सजातीय, उनका त्याग हो जाएगा। निशाचर भी खतम हो जाएंगे। इस तरह से सजातीय–विजातीय दोनों का त्याग हो जायेगा। दोनों से परे हो जायेगा। और अन्दर से आवाज़ भी आनी चाहिए–समझ भी आनी चाहिए। इस तरीके से अगर समझ कर किया जाय, तो ठीक रहेगा। बेटर रहेगा।

- **सार्वभौम सिद्धान्त एक**
- **माया–सीता**
- **समर्पण**
- **ब्रह्मास्त्र–नागपाश**
- **जब मन उलटि लग्यो एहि ओर**

जो नाथ ले काम क्रोधादिको, वह नाथ है। और जो काया को बीर बना ले, काम क्रोध इन्हें जीत ले वह कबीर है। तो ये महात्माओं के संप्रदाय सब एक ही हैं। अब समझ में आ गया होगा, कि जो मुनि है, वही ऋषि है। जो त्यागी है, वही वैरागी है, वही नाथ है। जो नाथ है, वही ब्राह्मण है। और जो ब्राह्मण है, वही विप्र है। इसलिए इनमें कोई अन्तर नहीं है। ये डिग्रियाँ हैं। ईश्वर को जो पा जाता है, ईश्वर को जो समझ लेता है, ईश्वरमय बुद्धि जब हो जाती है, उसके लिए ये अंतरजगत से, उसके मायने हो जाते हैं। उसके अन्तर्जगत से, वह चीज़ दिखाई पड़ने लगी, तो उसी का वह नामकरण हो गया। अब इसको ठीक से समझना है, तो देखिये, शुरू–शुरू में जब हमारे ऋषि–मुनि थे। सारा समाज, उन्हीं के अनुसार चलना चाहता था। उन्हीं की मान्यता थी। उस समय की पद्धति आज नहीं है। उस समय उनके आश्रम में, शुरू में जो आता था, वह छुद्र कहलाता था–छोटा कहलाता था। और जब रहते–रहते कुछ जान गया, तो वैश्य कहलाता था। अन्तःकरण में जो हानि–लाभ अर्थात् सजातीय–विजातीय को बढ़ाना घटाना–यह व्यापार, जो समझ जाय, तो फिर वैश्य हो जाता था। और फिर जब कुछ दिन और महापुरुष की सेवा में रहता है, तो फिर क्षत्रिय हो जाता है। क्षत्रिय के लक्षण यह हैं, कि वह अपने अन्तःकरण का, अच्छी तरह से विभाजन कर लेता है। सजातीय–विजातीय को समझ लेता है। एक ओर काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, अभिमान, कपट, ईर्ष्या, द्वेष, तृष्णा आदि का दल है, और दूसरी ओर ज्ञान, विवेक, वैराग्य, सत्य, क्षमा, सन्तोष, दया आदि का दल खड़ा करके, दोनों में संघर्ष कराके, विजातीयों पर विजय पा लेता है। तब फिर वह, ब्रह्म की प्राप्ति कर लेता है, और ब्राह्मण हो जाता है। लेकिन इधर बाद में, जब धीरे–धीरे समाज बढ़ने लगी। तो अपभ्रंश हो गये, इनके नाम के। सब अपने–अपने काम से भटक गए। अपनी–अपनी जात बना लिया। तो छुद्र से शूद्र हो गए। समाज बढ़ जाने से, जाति के रूप में लोग अपने को पुकारने लगे। क्रिया–कर्म और साधना रह न गई। लोग बस नाम के शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण रह गए। कोई सिंह लिखने लगा, तो कोई कुछ। नकल रह गई, असल खतम हो गई। ऐसे सब ऋषियों की संतान हैं कोई गौतम के हैं कोई शांडिल्य के हैं, कोई वशिष्ठ के हैं, कोई गर्ग के हैं, कोई भारद्वाज के हैं–गोत्र तो वही हैं, लेकिन सब बिगड़कर अपभ्रंश हो गया। अब उनमें है, कुछ नहीं–न तो विप्र हैं–जो विप्र के लक्षण होते हैं वो हैं नहीं। न तो ब्राह्मण हैं–ब्रह्म उनके अंदर प्रादुर्भूत होकर विराजमान हो, ऐसा भी नहीं है। तो केवल नाम भर के हैं। कुछ काल बाद फिर कुछ समाज सुधारकों ने इसका तरीका निकाला। सन्यास एक मार्ग निकाला, वैराग्य का मार्ग निकाला, उदासीन मार्ग निकाला–ऐसे कुछ मार्ग निकाले। इतिहास हमें बताता है, कि ऐसे समाज सुधारक हुये हैं। पुराना तरीका तो अपभ्रंश हो चुका था। अब जो साधना करते ही नहीं–ब्रह्म से मतलब नहीं रखते, वे भी ब्राह्मण कहे जाने लगे। जो संघर्ष की क्रिया जानते ही नहीं, घर में बैठे हैं, वे भी क्षत्रिय कहे जाने लगे। तो फिर कुछ मनीषियों ने नए शिरे से, साधकों का वर्गीकरण किया। जिनमें कुछ शैव हैं, कुछ वैष्णव वैरागी हुए–ऐसे, फिर हुआ क्या, कि इसमें हजारों किस्म के संप्रदाय खड़े हो गए। राम उपासक अनेक सम्प्रदाय हो

गए, देवी के उपासक अनेक हो गए, शिव के उपासकों के अनेक सम्प्रदाय हो गए, कृष्ण के उपासकों के अनेक संप्रदाय हो गए। तब फिर ब्रह्म शब्द को हटा कर सन्यास शब्द कर दिया गया। सन्यास जिसने कर लिया, संसार का त्याग कर लिया, तो मानो ठीक हो गया। संसार कहते हैं, जो संसरण करता है—जो चलता है, चलायमान है। जो चले उसका नाम है—संसार। दुनिया—जो दो से बनी है। दो कौन? दो व्यक्ति या दो गांव, दो वृक्ष या दो पहाड़। ये नहीं । ये तो, दो हो नहीं सकते, एक ही साथ है। इसलिए वे दो, जो एक दूसरे के अपोजिट हैं—जैसे दिन—रात, हँसी—रुलाई, सुख—दुख ये दोनों, एक साथ नहीं मिलते। इसलिए जिसमें ये दोनों रहते हैं— उसका नाम है दुनिया। दो अयन स दुनिया। लेकिन जानते हो। दुनिया में सब लोग सुख चाहते हैं, दुख कोई चाहता नहीं है। और सुख बगैर दुख के हो नहीं सकता। सुख का पूरक दुख है। दुख का पूरक सुख है। रात, दिन को पैदा करती, और दिन, रात को पैदा करता है। कल्पना करो, कि अगर दुख दुनिया से दूर हो जाय, तो क्या सुख में सुख का ज्ञान बनेगा? मेहरबानी है दुख की, जो हमें सुख का ज्ञान कराता है। यह रात की मेहरबानी है, जो हमें दिन का ज्ञान करा देती है। तो अगर यह युक्ति मिल जाय। यह समझ में आ जाय, तो हम भ्रम से दूर हो सकते हैं। तो प्रकृति की नियमावली, समझ में आ सकती है। कि यह क्या चीज़ है, यह कैसे सर्कुलेशन कर रही है? यह सर्कुलेशन आटोमैटिक है, स्वाभाविक है। जो चीज़ स्वाभाविक होती है, वह किसी के दिल—दिमाग की बात, इच्छा की बात नहीं रह जाती। वह प्रवृत्ति हो जाती है। इसलिए इसको अनेकचर्य कहते हैं, संसार में। इसलिए न तुम ब्राह्मण के पीछे पड़ो, न क्षत्रिय के पीछे पड़ो, न वैश्य के पीछे पड़ो, न शूद्र के पीछे पड़ो, तुम केवल भगवान के पीछे पड़ो। अगर तुम्हें पता लगाना है तो। और दूसरा कोई रास्ता नहीं है। अगर तुम भगवान को छोड़कर दूसरी तरफ जाओगे, तो मारे जाओगे। तुम्हारा कोई अता—पता नहीं रह जायेगा। एक ही रास्ता है—तुम्हें किसी चीज़ की जानकारी करनी है, तो ईश्वर के पीछे लगो। उसमें चाहे कितनी भी कीमत चुकानी पड़े। चाहे कितनी भी परेशानी उठानी पड़े, चाहे कितनी भी मेहनत करनी पड़े, लेकिन उसके पीछे पड़ो। वह तुम्हें हर चीज बता सकता है। वह एक ऐसा तत्व है, जो पहले भी था, अब भी है, आगे भी रहेगा। वह काल करके बाधित नहीं होता। वह देश करके बाधित नहीं होता—उसी का नाम है परमात्मा। इसलिए जो हमने बताया था, कि समुद्र से पानी, बादल बनकर उठा, और यहाँ—वहाँ बरस जाता है। फिर इकट्ठा होकर नाली बना लेता है नाली से नाला, नाला से नदी और फिर समुद्र में पहुँच जाता है। वैसे ही हम लोग भी अंशभूत के समान हैं। इसलिए मनुष्य मात्र का धर्म है, कि अपने अंशी परमात्मा से मिलें। हम उसके अंश हैं, परमात्मा हमारा अंशी है। उससे हमें मिलना ही है, चाहे कितनी भी परेशानी आवे। दिक्कत जब मिले, तो दिक्कत को आराम मान ले। क्योंकि तमाम परीक्षा होगी, इसलिए तमाम कहानी कुछ बताती हैं। एक मजनू था एक कोई लैला थी, एक शीरी थी एक फरहाद था, ये कहानी सुनी होगी। इस कहानी से हमें कुछ लेना—देना नहीं है, लेकिन अपना मतलब निकालना चाहिए। मजनू यह मन है। लैला वह लगन है, जो परमात्मा के लिए हृदय में जागृत होगी, लेकिन यह लगन अटूट होनी चाहिए। जितना तीव्र लगन होगी—उतना ज़्यादा प्रगति होगी, उतना ज़्यादा फायदा होगा। लैला एक राजा की लड़की थी। किसी जतन से देख लिया मजनू ने। देखकर वह पागल हो गया। लैली—लैली न खाय न पिये। अब चारों तरफ हल्ला हो गया। लोगों ने बादशाह को बताया, कि आपकी लड़की की बदनामी हो रही है—चारों ओर। यह कुंजड़े का लड़का, उसके पीछे पागल हो रहा है। तो राजा ने कहा—पकड़कर मार दो। गोली मार दो उसे। तो उस लड़की ने सुना। समझदार थी। उसने कहा पिता जी, ऐसा न करिये। अगर मार दिया जायगा, तो तसदीक हो जायगा

कि ज़रूर कोई बात थी, जबकि कोई ऐसी बात है नहीं। तो मैं एक युक्ति बताती हूँ—वह करिये। सब ठीक हो जायेगा। तो राजा ने कहा, अच्छा ठीक है—बताओ क्या युक्ति है। लड़की ने कहा कि सिटी के बाहर दूर, एक कमरा बनवाइये। और उसमें मेरा पलंग, गद्दा, तोषक, तकिया सब लगा दिया जाय। और पलंग के दोनों ओर, मिट्टी के दो नांद रख दिये जायं, और उनके मुंह रुमाल से ढके रहें। और एक वैद्य हमें दे दो बस, इतने से काम हो जायेगा। तो लड़की थोड़ा होशियार थी। उसने वैद्य से कहा, कि वैद्य जी, एक हमें दस्त की दवा दे दो, कि दस पंद्रह दस्त हो जायं। फिर एक दवा कै करने की भी दे दो। तो ऐसा ही किया। नादों में। और जानते हो जिसको दस पंद्रह दस्त हो जायं, और दस पंद्रह कै हो जायं, उसकी क्या हालत होगी? चेहरा काला पड़ गया। सारा नूर, जो चमक दमक थी शरीर की, सब खराब हो गई। तो ये जो टट्टी है—कितनी गंदी चीज है। अच्छे से अच्छे पदार्थ खाए जाते हैं और शरीर के अन्दर जाकर इतनी खराब गंदी चीज़ बनकर निकलते हैं। और उसी में सब क्षमता है। यह मल शरीर में रहता है, तो शरीर में क्षमता रहती है। उसी गन्दी चीज़ में। आयुर्वेद भी कहता है कि मल अगर शरीर में न रहे, तो यह जिन्दा नहीं रह सकता—

'दोष धातु मल मूलं हि शरीरम्।'

तो इस तरह से वह लड़की इस हालत में पड़ गई पलंग पर, और सिपाही से कहा जाओ, मजनू को बुला लाओ। कहना, लैला ने तुम्हें बुलाया है—तुमसे प्रेम करना चाहती है। अब वह पागल हो रहा था, आया बड़े चाव से। और जैसे ही किवाड़ खोला—तो वह लड़की पड़ी थी—बिलकुल चंडाली जैसी लगती थी। जो रूपरेखा चमक—दमक उसमें देखी थी, वह तो थी नहीं। मजनू ने कहा, यह तो लैला है नहीं। पूछा, क्या तुम्हीं लैला हो? लड़की ने कहा— हाँ, हाँ मजनू, आओ—आओ, बैठो। उसने कहा, अरे लैला, तुम्हारा वह हुस्न कहां गया? तो लैला ने कहा—हाँ, वह हुस्न मैनें इस नांद में रख दिया है। मजनू ने झट से रुमाल उठाया। उसमें कै भरी थी—मारे बदबू के हालत खराब हो गई। भागा बाहर को। लैला ने सिपाहियों से कहा, पकड़ो इसको, जाने न पावे। पकड़कर ले आए। लैला ने कहा, अरे, आओ—आओ मजनूं, वह तो मुझे धोखा हो गया। मैंने अपना हुस्न इधर वाली नांद में रखा है, गलती से उधर बता दिया। जैसे ही रुमाल उठाया उसमें टट्टी भरी हुई थी। भागा तौबा—तौबा करके। भूल गया सारा पागलपन। और फिर कहते हैं, उसका ट्रांसफार्म हो गया। तो इस संसार में कुछ है नहीं—सिर्फ चमक—दमक है। तो संसार की बात के पीछे, यह कहानी हमको याद आ गई। हाँ, तो इस जात—पात में कुछ रखा नहीं है। खूब गहराई से छानबीन कर लो, और ईश्वर के लिए पागल हो जाओ। और ईश्वर के लिए मचल जाओ। तो सब पता लगने लगेगा। और नहीं तो, वो एक अहीर था। सबके गोरू (जानवर) चराता था, और इसी से जो उसे मिल जाता था, उसका काम चल जाता था। तो एक रोज़ लेकर जंगल में गया। वहाँ देखा, कि एक महात्मा पूजा—पाठ कर रहे हैं। गया पास में, जाकर प्रणाम किया। जब चलने लगा, तो महात्मा ने उसे एक पत्थर की मूर्ति दे दी—कहा ले जाओ रोज़ घर में धूप दीप अक्षत से पूजा किया करना। ले गया—पूजा करता रहा रोज। एक दिन देखा कि एक चूहा, मूर्ति के ऊपर बैठा, जो चावल पूजा में चढ़ाए थे, बैठे खा रहा था। अहीर ने देख लिया। बस उसे लगा, अरे यह तो इस भगवान के ऊपर चढ़कर बैठा है। यह उससे बड़ा भगवान है, इसी की पूजा करना चाहिए। तो चूहा को पूजने लगा। एक दिन देखा कि बिल्ली, चूहे को भगाए है। तो उसने सोचा, यह तो उससे भी बड़ा भगवान है—बड़ी गलती हुई। मुझे इसी की पूजा करनी चाहिए। तो बिल्ली को पूजने लगा। उसी की धूप, दीप

आरती करने लगा। एक दिन किसी कुत्ते ने दौड़ाया बिल्ली को। भागी जान बचा कर। अहीर ने देख लिया। तो कहा, अरे! यह तो कुत्ता ही बड़ा है। वह तो इतना ही समझता था कि जो बड़ा है सबसे, वही भगवान है। कुत्ता को ही पूजने लगा। एक दिन अहीर की औरत ने देख लिया, तो मारा चार डंडा कुत्ता को। भागा क्यां क्यां करके। तो अहीर ने कहा, अरे! बाप रे बाप। बड़ी भूल हो गई यह कुत्ता भगवान नहीं, यह तो मेरी घरवाली ही भगवान है। उसी की पूजा कुछ दिन चली। एक दिन कुछ गलती किया औरतिया ने, तो मारा चार डंडा अहीर ने। तो समझा, अरे! यह तो बड़ी भूल में थे हम–भगवान तो हम ही हैं। तो देखिये, यह तो एक कहानी है। यह तो एक समझाने का माध्यम है। मनुष्य घूमते–घूमते वहाँ आता है, जहाँ उसका ठिकाना है। हाँ कमजोरी है–भटभटाना पड़ेगा। अगर समझ काम नहीं करती, तो इतने देवताओं की उपासना करनी ही पड़ेगी। और अगर कर गयी समझ काम, तो डाइरेक्ट एडमीशन होगा। इस तरीके से ऐसी यह लाइन है। इसलिए ईश्वर का रास्ता पकड़ो। ईश्वर की ओर चलो, और फोर्स के साथ चलो। फोर्स का मतलब यह नहीं है, कि तुम फोर्स (फौज) लेकर किसी से झगड़ा करो। फोर्स का मतलब है, कि भजन में तेजी लाओ। नाम में तेजी लाओ। साधना में तेजी लाओ। और नियम से करो। यह नहीं कि नियम टूट जाय। और इसके साथ–साथ, जो सांसारिक विषयों की तरफ मन दौड़ता है, उसको रोको। एक तरफ भजन करना है, और एक तरफ जो माया की तरफ हमारा विचार, हमारा मन दौड़ जाता है, उसे रोकना है। एक मन को दमन करना, एक मन को ईश्वर में लगाना, बस दो काम हैं। अनेक महापुरुषों ने, इसके तरीके बताए हैं। तो जो जैसा साधक हो, उसको वैसा तरीका ग्रहण कर लेना चाहिए। और उसमें फिर तीव्रता लाना चाहिए। समझकर ठीक से चले, तो मेरे विचार से तो, रद्दी से रद्दी साधक भी प्रगति कर सकता है। अनपढ़ भी कर सकता है, पढ़ा हो वह भी कर सकता है। सुजात हो वह भी कर सकता है, अच्छी जात का न हो, वह भी कर सकता है। सब कर सकते हैं। ईश्वर के दो रूप होते हैं। एक होता है निरवयव, एक होता है सावयव। निरवयव, निर्गुण, शुद्ध, बुद्ध, अलख, अजन्मा, अविनाशी, एकरस स्वरूप है। सावयव, जो सगुण लीला करता है। जो निर्गुण परमात्मा–स्वरूप है, उसका ट्रांसफार्म होता नहीं। उसकी शक्ति च्युत नहीं होती। नीचे नहीं आती–तो वह शक्ति वह रही, जो अग्नि में प्रवेश कर गई। और यह लीला बनावटी रहती है। तो भगवान भी टिट फार टैट–जैसे को तैसा बनाकर, बनावटी लीला करता है। काम, क्रोध सब असत्य हैं, संसार असत्य है। तो बनावटी से बनावटी को मारकर सही को ले लिया। यह एक तरीका है। तो एक स्वरूप है निर्गुण, जो सर्वत्र एक सा रहता है। एक सरूप है सगुण, जो लीलाधर है। अपने भक्तों के लिए। तो यह संसार झूठा है, तो ऐसे वह सरूप बना–बनाकर, लीला करता है। तो यह जो बनावटी सीता थी, उसको लेकर करता है। और वह जो सीता थी–अग्नि में प्रवेश कर गई। वह आह्लादिनी शक्ति थी। जानकी। जो निर्गुण ब्रह्म की शक्ति है। वह कभी च्युत नहीं होती। सदैव एकरस रहती है। हमेशा एकरूप में ही रहती है। इस तरह से, गोस्वामी जी ने यह बताया है, कि राम ब्रह्म है। और उसे इस उदाहरण से सिद्ध कर दिया है। और हायर लेबल में, जैसे विष्णु का अवतार है। यह एकांगी अवतार है। और उसमें सब हो सकता है। शक्ति का अपहरण हो सकता है–परेशानी आ सकती हैं, और भी बातें आ सकती हैं। अब जैसे भूत खड़ा हो जाय, तो यह रायफल काम नहीं करेगी। या फिर साक्षात् डाकू आ जाय, तो भूत वाले मंत्र–तंत्र काम नहीं करेंगे। तो जैसे को तैसा होना चाहिये। अगर भूत मिल जाय तो मंत्र–तंत्र से काम लेना होगा। इस तरीके से जो बाहरी लीला है, उसमें झूठी ताकत को बढ़ाकर परमात्मा अपनी जगह स्थित है। इसीलिए कहा

जाता है, कि परमात्मा कुछ नहीं करता है। परमात्मा न कुछ करता है, न बोलता है, न बताता है, न चलता है न फिरता है। एक रस है।

'न ध्यानं न ज्ञानं न जोगं न भोगं।
चिदानन्द रूपं शिवोहम् शिवोहम्।'

बस एकरस है। और नहीं ऐसे तो, परमात्मा के अनेक रूप हैं। हम पहले कह चुके हैं कि स्थूल का अलग है, सूक्ष्म का अलग है, कारण का अलग है। ये उसी परमात्मा की शक्तियाँ, अलग–अलग अपनी–अपनी जगह काम करती हैं।

वो मायिक क्षेत्र की बातें हैं। ये ईश्वरीय क्षेत्र की बातें हैं। मायिक क्षेत्र में कभी ईश्वर नहीं जाता। और न माया, ईश्वरीय क्षेत्र में प्रवेश करती है। और ईश्वर माया में ओत–प्रोत है। और माया ईश्वर क्षेत्र में ओत–प्रोत है। यह भी एक ढंग से ठीक है। और न माया है, न ईश्वर है। यह भी ठीक है। और माया भी है, ईश्वर भी है यह भी ठीक है। जो अनिर्वचनीय होता है उसमें तुम जो भी सिद्ध करो, वह सिद्ध हो जाता है। इसलिए पंचवटी का जो प्रकरण है, वह शुद्ध परब्रह्म राम की जो शक्ति है, उसको बताने के लिए लिखा गया है। बड़े व्यास परेशान हैं। अनेकों अर्थ करते हैं। लेकिन इस निश्चय पर नहीं पहुंच पाते, कि हम यह सही कर रहे हैं, कि नहीं। तो यह अनिश्चितता, समाज के हर आदमी में बनी हुयी है। कोई ऐसा आदमी नहीं है, जिसको निश्चितता आ गई हो। अनिश्चितता बनी हुयी है। इसलिए कि पदुम अठारह यूथप बंदर। अठारह पदुम बटालियन। एक बटालियन के लिए सौ डेढ़ सौ किलोमीटर, लम्बी सौ सवा सौ किलोमीटर चौड़ी जगह होनी चाहिए (लंका में) वहाँ इतनी संख्या में कैसे आ पाएंगे। तो यह बात ठीक नहीं लगती। इसलिये, कि यह सब जहां बैठाया जाना चाहिये, उसे तो लोग समझते नहीं। कहने वाला जो था–वह तो अंतर्जगत का भ्रमण करने वाला था। वाह्य जगत का आदमी था नहीं। और हम लोग उठाकर ले गए, उसे, दूसरे जगत में। यह बात है, दूसरे जगत की। उसके मापदण्ड दूसरे होते हैं। और हमारे (वाह्य जगत के) मापदण्ड हमारे अपने हैं। हमने तुमसे बताया, कि अगर अंतर्जगत में तुम्हारा एक पैसा कर्जा माया का, बकाया है, तो समझो बाहर जगत में एक लाख रुपया हो गया, मुद्रा में कितना अंतर हो गया। तो इस तरह यह अंदर वाला समाज दूसरे ढंग से चलता है। राक्षसों को किसी ने देखा तो है नहीं। रावण कैसा था, कुंभकर्ण कैसा था, मेघनाद कैसा था। देवता कैसे थे। इन्द्र कैसा था। वरुण कैसा था। ये सब कल्पना से बनाए गए हैं। जिसने देखा, उसने कहा नहीं, और जिसने देखा नहीं, उसने कहा। तो तालमेल नहीं बैठता। इसलिए–

''यानिशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।''

जिसमें यह संसार सोता है, उसमें संयमी जागता है। जैसा हम देखते हैं, यह ऐसा है नहीं। जैसा हम देखते हैं, वैसा विचारकाल में नहीं है, यह संसार। विचारकाल में यह दूसरे ढंग का है। तो फिर या तो हम बदलें, तो उसको प्राप्त करें। या तो वह बदले, तो हमको प्राप्त हो। इस तरीके से इसमें बहुत अन्तर है। तो जो समाज है राक्षसों की, और बंदरों की या दानवों की और देवों की, वह संकल्पों में उठती है। जानते हो–एक संकल्प में। एक इच्छा में, कितने चिंतवन आते हैं। इच्छा ट्रेन है। इड़ा और पिंगला ये पटरी हैं। संकल्प–विकल्प डिब्बे हैं, और चिंतवन यात्री बैठे हैं–उसमें। और हृदय प्लेटफार्म है। उसमें इन यात्रियों की भीड़ उतरती है। छंण–छंण में, सैकडों संकल्प–विकल्प आते–जाते रहते हैं–अब सोचो कि एक घंटे में करोड़ों चिंतवन, इनके माध्यम से, आते–जाते रहते हैं। कितनी बड़ी संख्या होगी? काम के संकल्प, क्रोध के संकल्प, लोभ के संकल्प, मोह के संकल्प,

भगवान के संकल्प, अच्छे संकल्प। ये तो, पदुम अठारह क्या? और भी ज़्यादा संख्या हो सकती है। गोस्वामी जी ने अठारह इसलिए कहा, कि आगे एडजस्टिंग करना है। पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, चार वाणियाँ और चार अंतःकरण। ये अठारह होते हैं। इनमें देव और दानव संघर्ष करते रहते हैं। अठारह अध्याय हैं, गीता में। गी–नाम इंद्रियों का, ता, त्याग हो जाय विषयों से, तो गीता समझ में आती है। तो ये अठारह जो तत्व हैं, इनमें एक एक अध्याय–18 अध्याय की ज्ञान गीता सद्गुरू बताते हैं। इसी प्रकार भागवत में 18 हजार श्लोक हैं ऐसे 18 और भी बहुत हैं। ये 18 तत्व हैं। जहाँ श्वासा है–वह स्वर्ग है। इस स्वर्ग की रक्षा कहां होती है–शरीर में, जहाँ श्वासा चलती है। इस स्वर्ग के लिए देव और दानवों में संघर्ष चलता है। इस तरीके से, अध्यात्म में अगर चलना है, तो इसे लाना ही पड़ेगा। और अगर नहीं लाओगे तो एडजस्टिंग सही नहीं आती। सही नट–बोल्ट नहीं बैठते, जैसा होना चाहिए। ये ऐसा स्वाभाविक नियम है। इसमें किसी का दोष नहीं है। जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी। जो दुनिया में रहते हैं, दुनिया की तरह देखते हैं–इसमें तुम्हारा दोष थोड़े है, कि भाई यह नहीं देखना चाहिए। देखना ही पड़ेगा।

भगवान अगर है, तो मनुष्य के अन्दर है। और मनुष्य इतना पागल थोड़े है। मनुष्य झूठ को सही और सही को झूठ बनाता है। लेकिन अपने स्वरूप को नहीं जानता। यह उसमें कमी है। अगर अपने को जान जाय, तो खुद आला–ताला हो सकता है। अपने को नहीं जानता, और अपनी खूबियों को दूसरे से बताने में लगा रहता है। उसका मूवमेंट उधर ही रहता है। इसलिए सही चीज़ बताने पर भी लोग सही की ओर नहीं जाते और सही का गलत अर्थ समझ लेते हैं। गीता के हर अध्याय में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अलग तरीके बताये हैं। अर्जुन तुम इस तरह से यह करो–तुम अब ऐसा करो–ऐसा करो। ज्ञान कहा, कर्म कहा, योग कहा। कई तरह से बताया। लेकिन अठारवें अध्याय में बताया, कि तुम मुझे समर्पण कर दो। फिर मैं देख लूंगा। लेकिन फिर तुम अपना मन लेकर कहो कि हमें वहां जाना है–तो अब तो तुम्हारा सब कुछ तुमने समर्पण कर दिया–अब न तुम्हारा शरीर रह गया, न टंगड़ी रह गई, न मन रह गया। यह समर्पण तो बहुत सोच समझ कर किया जाता है। समर्पण सहज नहीं है। समर्पण बहुत हायर लेबल की डिग्री है। समर्पण जब हो जाता है, तो फिर वह साधक निर्भीक हो जाता है।

समर्पण कर दिया हनुमान ने जब मेघनाद के ब्रह्मास्त्र के समक्ष। तो वह पकड़ ले गया। जब कामरूपी मेघनाद, मोहरूपी रावण के पास ले गया। तो अगर कोई बाहरी राजा होता और उसका छोटा लड़का मर गया था, तो वह शोक न मनाता? गोस्वामी जी ने कहीं लिखा है? क्या उसने शोक किया? क्या उसने दाह क्रिया किया? तो लड़का वहाँ होगा, तब तो शोक करे। वह तो अंतःकरण की चीज़ है। तो वैराग्य ही हनुमान है। हमारा जो वैराग्य है, वही मन के अंदर प्रवेश करके, ध्यान रूप में ध्याता के अंदर प्रवेश करता है और वहाँ जब हम शक्ति रूपी सीता को जान लेते हैं तो उसके संरक्षण करने वाले जो उसके रक्षक हैं उसकी गहराई को भी जानना ज़रूरी है। जब हम इतने तीव्रतर साधन में लगे हैं तो उसे भी जानना चाहिए। तो जब समर्पण हो गया तो बांध लिया ब्रह्मास्त्र में। ब्रह्मास्त्र क्या है? यह जनेऊ नहीं है–यह प्रकृति की नियमावली है। और प्रकृति की नियमावली बड़ी मालीक्यूल है। जो काम है, यही मेघनाद है। तो साधक पर कितना भी काम का वेग न आवे। अगर काम को हम जीत भी लें–और अगर कोई काम–भाव से अपने मन में हमारे स्वरूप को पकड़ें, हमें

याद करे–तो भी काम के प्रभाव में, हमें आना पड़ेगा। जैसे सिंहिका ने हनुमान की परछाईं पकड़ लिया तो फिर उसको मारकर, तब गए। इस प्रकार हमारे अंदर नहीं है–काम का आवेश, लेकिन अगर कोई हमारे प्रति काम–भाव बनाए, तो भी हमारे ऊपर एफेक्ट आता है। ऐसे ज्ञान के द्वारा उसे शमन करके निकल जायं, तब तो ठीक है– अगर नहीं निकलते, तो फिर यह ब्रह्मास्त्र बन जायगा, नागपाश हो जायेगा। काम के आवेश के जो संकल्प हैं, वही नाग हैं और उनका असर आ जाता है– साधक पर। लेकिन उससे फायदा भी है। अब हनुमान को बांध लिया। बांधा खड़ा है। रावण ने उसकी पूंछ में आग लगवा दिया तो उसने निकलकर पूरी लंका में आग लगा दिया–जला दिया। अभी तो हमारे वैराग्य ने कुछ नहीं किया है–जो विरोधी हैं, वो सब बने हुए हैं–इन्हें खतम किया जाय। तो और तेज वैराग्य आया–तीव्रतर। इस तरह से लंका जल गई, तो इधर की ताकत क्षीण हुई–सीता को बल मिला। रावण का ास हुआ। साधक को जानकारी मिली, कि इस तरीके से साधन किया जायगा, तो भगवान को प्राप्त करने में देर न लगेगी। जो परिणाम आता है, उसको अहंकार महसूस करता है, और यह मन। और इसी तरह यह दुनिया साधक के अंदर भी चलती रहती है। यह बाहर का संसार बहुत बड़ा है, और इसका छोटा रूप साधक के अंदर है–

धड़ धरती का एकै लेखा।
जो बाहर सो भीतर देखा।

आध्यात्मिक प्रक्रिया में लगा हुआ साधक, इस शरीर को ही हमेशा ब्रह्माण्ड मानता है। हमारा संसार इसी में है–बाहर की दुनिया तो बड़ी लम्बी चौड़ी है। यह है, और फिर नहीं है। यह अनिर्वचनीय है। यह न होना और होने के परे की चीज़ है– इसीलिए तो इसको अनिर्वचनीय कहा जाता है। और जो अन्दर का जगत है, यह छोटा रूप है– इसलिए इसको कंट्रोल करो, तो–

पहले यह मन सर्प था, करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुनचुन खात।।

मन को बदलना साधक का काम है। साधन गुरू की कृपा से होता है। साधन, साधक को करना होता है। इसलिए मन को बदलना है। जब यह मन इंद्रियों के साथ विषयों में लगा रहता है, तो यह सर्प कहा जाता है, और जब इंद्रियों को विषयों से हटाकर ईश्वरोन्मुख हो जाता है, तब सर्प–भाव को त्याग देता है, और सर्प का जो दुश्मन है–वह गरुड़ बन जाता है। और जब गरुण बन जायगा, तो ईश्वर की शरण में आ जायगा। उसी को वहन करता है। और जब तक यह सर्प रहता है, तब तक माया की शरण में रहता है। बस दारोमदार इतने में है–साधना का। तो जब यह मन सर्पभाव छोड़कर गरुण बन जाता है–तो अब यह समझना चाहिए, कि गरुण का काम क्या है? विष्णु की सवारी है, गरुण। विष्णु कहते हैं– जो सबसे बारीक है। उसको कहते हैं–विष्णु। उसको वहन करता है, यह। तब यह मन, इंद्रियों के साथ नहीं जायगा। विषयों की तरफ नहीं जायगा, ईश्वर के साथ रहेगा। तो फिर क्या होगा–

मन जब उलटि लग्यो यहि ओर।

मन जब माया क्षेत्र से उलटकर ईश्वर की ओर लग जाता है, और सब विषयों को छोड़ देता है, तब फिर दुनिया बदल जाती है। वह गरुड़ बन जायगा–इंद्रियाँ विषयों का त्याग

करके, ऋद्धि–सिद्धि बन जायेंगी। इंन्द्रियाँ ऋद्धि बन जायेगी–अष्टधा मूल प्रकृति, अष्ट सिद्धियाँ बन जायेंगी। सबका ट्रांसफार्म हो जायगा। अविद्या क्षेत्र था जो पहले वाला, जिसमें यह मन सर्प था, इंद्रियाँ विषयणी थीं। अब विष्णु क्षेत्र में आकर, मन गरुण बन गया विशुद्ध चेतन का प्रतिबिम्ब आ गया। इंद्रिया ऋद्धि–सिद्धि बन गई। तो इस तरह जब बदल जाती है दुनिया, तो वह साधक की हायर लेबल की स्थिति बन जाती है। ईश्वर की इच्छा से मायिक इच्छाओं का दमन हो जाता है–ईश्वर की इच्छा का नाश कभी होता नहीं है– और मनुष्य की इच्छा, मायिक इच्छाओं का नाश हो जाता है। इसलिए मन का रूपान्तर होने से, ज्ञान आ जाता है। हमेशा के लिए वह ज्ञानी बन जाता है। ईश्वर की कृपा

से साधक को पता चलने लगता है, कि कैसे क्या है? कैसे क्या होता है? यह जो थ्योरिटकल हम बताते जा रहे हैं, उसका वह प्रैक्टिकल करके देख लेता है। तो उसको सब चीज की अनुभूति आ जाती है, उसको समझ आ जाती है। कैसे करना चाहिए, कैसे चलना चाहिए, कैसे बोलना चाहिए, कैसे बैठना चाहिए। उसकी गति ऐसी हो जाती है। खाता है–खाने के संस्कार नहीं पड़ते–बोलता है, लेकिन बोलने के संस्कार नहीं पड़ते। वह सब कुछ करता है, लेकिन कुछ नहीं करता। इस तरह से रूपान्तरण हो जाता है। सब कुछ बदल जाता है। क्योंकि उसने मूल चीज़ को बदल लिया है। जो मन का सर्प रूप था उसे गरुण बना दिया है यह सबसे बड़ी चीज़ है। मन से ट्रान्सफार्म हो गया। मन से बदल गया। यह बताने में तो सरल है, लेकिन करने में बहुत कठिन है। अगर साधक दृढ़ होकर करे। जो स्वभाव परिस्थिति है, उसके वशीभूत न होकर, सिद्धान्त में दृढ़ता पूर्वक जम जाय, तो–सब कुछ हो सकता है। ऐसे ही साधकों ने तो पहले भी किया होगा न? ऐसे ही शरीर वाले, ऐसी ही उंगलियों वाले, ऐसे ही पेट–पीठ, हांथ–पैर वालों ने ही तो किया है। और करके हम–तुम लोगों के लिए रास्ता दिखाया है। यह सोचकर, कि हमारे आगे आने वाले फालोवर हमारी बातों को लेकर इसी तरह करेंगे–हमारा नाम रोशन करेंगे–हमारी परम्परा को चलाएंगे–ऐसे ही सोचा होगा न? तो आज तुम–हम सब लोग, सब कुछ कर सकते हैं। लेकिन उन नियमों को जानना बहुत ज़रूरी है– ऐसा नहीं कि उनका अपभ्रंश कर दिया जाय। सही का गलत, और गलत का सही कर दिया जाय।

अपभ्रंश होता कैसे है? तुम एक शब्द बोलना शुरू कर दो, तो दो–चार सालों में उसका रूप बदलने लगता है–इसी तरह भाषा–बोली बन जाती है, विचार बनते हैं–करने में आ जाते हैं। इसीलिए हमें चाहिए कि इन बातों के चक्कर में न पड़ करके। सिद्धान्त में, ध्येय में, दृढ़ हो करके, इच्छाओं का त्याग करके, भगवान में समर्पण करके–मन और बुद्धि सबको लेकर समर्पण कर दें, और पहले थ्योरिटिकल अच्छी तरह समझ लिया जाय, कि काम क्या करना है? हमको–कैसे करना है, कैसे चलना है– यह सब समझा जाय और जब समझ में आ जाय फिर उसको किया जाय। ऐसा मेरा विचार है। अब जैसे मानिकपुर हमें जाना है–हम एक उदाहरण रख रहे हैं–मानिकपुर जाना है, और रास्ता हमें नहीं मालूम। तो जो मानिकपुर गया हुआ है–उससे हमें मिलना पड़ेगा। उससे मिलकर पूछेगे–मानिकपुर कितनी दूर है? उसने बताया, 10 किमी. थोड़ी देर को मान लिया जाय। फिर पूछा–किधर है–तो उत्तर की तरफ। अच्छा तो फिर, कैसा क्या है वहाँ–बताया ऐसा–ऐसा है। और क्या है? तो कहा, वहाँ जंक्शन

है, चाहे जिधर की रेल में बैठकर, कहीं भी जा सकते हो। चाहे इधर की रेल में बैठ जाओ, चाहे उधर की रेल में बैठ जाओ, चाहे मेल में, एक्सप्रेस में, पैसेन्जर में–सब तरह की गाड़ियाँ वहाँ से आती जाती हैं। वहां सब कुछ मिलेगा–वहां पहुंचना भर चाहिए। बोले–अच्छा। तो जब आप गए मानिकपुर तो क्या दिक्कतें आईं–क्या सुविधायें मिलीं? तो कहा कि 5 किमी. तो बहुत खतरनाक है, वहाँ तो जान बचाना मुश्किल है। और आगे फिर 5 किमी. काफी सुविधाएँ मिलीं। तब फिर मानिकपुर पहुंचे। तो देखिये, यह तो एक उदाहरण है। अब इस दृष्टान्त को दार्ष्टान्त में जब घटाते हैं, तो मन को पूर्ण करना मानिकपुर है। मन सबका, यहाँ–वहाँ सेर, छटांकों में बंटा हुआ है। काम की तरफ, लोभ की तरफ, मोह की तरफ, ईर्ष्या की तरफ, द्वेष की तरफ चारों तरफ बंटा हुआ है। तो इसको सब तरफ से समेटना है। मन को पूर्ण करना है। अब कितना दूर है– 10 किमी.। तो दस इंद्रियाँ इनको वश में करना है। 5 ज्ञानेन्द्रियाँ हैं–सबसे मुख्य हैं। शब्द, रूप, स्पर्श, रस, गंध। यह 5 किमी. शुरू का मार्ग है। इन पांच को वश करना बहुत मुश्किल काम है। तो यह 5 किमी. कठिनाई वाला रास्ता है। जहाँ भालू, शेर, चीते मिलते हैं। चोर डाकू मिल जाते हैं। जो भी हमारे पास में हम लिए रहते हैं, सब छीन लेते हैं। तो ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर यही चोर–डाकू हैं। जंगल के रास्ते में बाहर कोई जाता है, तो चोर डाकू मिलते हैं। और साधना के क्षेत्र में जब कोई साधक अंतःकरण में प्रवेश करता है, तो वहाँ काम क्रोध ये डाकू मिलते हैं। और बरबस ये इंद्रियाँ, मन को अपनी ओर खींच लें जाती हैं। आंख रूप की ओर खींच लेगी, घ्राण सुगन्ध की ओर खींच लेगी, कान शब्द की ओर खींच लेंगे, हाथ स्पर्श की ओर खींच लेंगे, जीभ रस की ओर खींच लेगी, और हमारा सर्वस लूट लेंगी। तो सबसे पहले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ये चोर तुम्हारा भजन–धर्म रूपी धन है, उसे चुरा लेंगे। और अगर इनसे किसी तरह से बचे, तो भ्रम रूपी भालू अटैक करता है। उधर चिंतवन रूपी चित्ते घेरे पड़े हैं। इनसे बचते हो, तो संसार का भय रूपी शेर खाए लेता है। उनसे बचे तो शंका रूपी सर्प लपटे पड़े हैं। इस तरह यह भयानक अज्ञान रूपी जंगल का रास्ता पार करना है। शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श के पांच किलोमीटर। अगर तुम भाग्यशाली हुए और सही–गुरू का मार्गदर्शन, मिल गया और इसके द्वारा बताए अनुसार चलो, तो फिर कोई बात नहीं, फिर सत्य, शेखापुर मिल जायेगा। फिर हृदय–हेला गांव मिल जायेगा। और अगर हृदय में पहुँच गये, तो फिर मानिकपुर मिल जायेगा। यह सरल है, यह समझ में आता है। इस तरह मन को पूरा कर लिया, तो फिर जो इच्छा रूपी ट्रेन खड़ी है। इड़ा–पिंगला पटरी हैं, रेल की। इच्छा रूपी ट्रेन है, जो आती–जाती है। इसमें संकल्प रूपी डिब्बे हैं। विकल्प और चिंतवन रूपी यात्री बैठे हैं, और हृदय रूपी प्लेटफार्म है। इसमें यात्री आते–जाते, उतरते–चढ़ते रहते हैं। तो इस तरह से कोई साधक, अगर अपने अन्तःकरण रूपी प्लेटफार्म को साफ रखे। इच्छा रूपी ट्रेने, आती–जाती रहें। यात्री भी आएंगे–जाएंगे, लेकिन उसका दुरुपयोग न होने पाए, गंदा न कर पावें, डेरा न जमाने पावें। किसी साधक के अन्तःकरण में शुद्ध तरीके से यह सध जाय, तो फिर वही ईश्वर का भगत, सद्गुरू का लाल, कहलाता है। और भगवान–सद्गुरू, उसके अन्तःकरण को अपना निवास बना लेता

हैं। और ईश्वर जब चेतन का प्रतिबिम्ब डाल देता है, तो वह भाग्यशाली पुरुष–उसकी दुनिया बदल जाती है। उसके विचार बदल जाते हैं, तरीके बदल जाते हैं–उसके हृदय (घर) में, सब कुछ आ जाता है। उसकी कोई इच्छा नहीं रह जाती–ईश्वर की इच्छा से, उसके सब काम होते हैं। सब कुछ करते हुए–कुछ नहीं करता। इसलिए यह समझ में आ जाना चाहिए हर साधक के, कि असंग कैसे साधक रहता है। और सब कुछ करते हुए कैसे निष्क्रिय रहता है।

अब सबसे बड़ी बात तो यह है, कि वह कसौटी हमें कहाँ मिले, कि हम में श्वांसा रूपी जो सोना है, उसको कसा जाय। सतगुरू रूपी कसौटी के बिना, अगर हर आदमी इसे तय करेगा, तो गलत हो जायेगा। यह हम अपने से नहीं कर सकते। जैसे दीपक किसी कमरे में जला दो, तो वह स्वयं प्रकाश स्वरूप है, सबको प्रकाशित भी कर रहा है, लेकिन उसी दीपक के नीचे अंधेरा रहता है। इसलिए दूसरे दीपक की ज़रूरत होती है। तब उसका प्रकाश, उसके अंधकार को दूर करता है। इसलिए सबसे बड़ी ज़रूरत होती है–गुरू की। तो गुरू अगर जानकार मिल जाय (तो सब ठीक हो सकता है)। हाँ, गुरू तो एक अध्यापक को भी कहते हैं। शादी कराने वाले को भी गुरू कहते हैं। कोई भी मंत्र जो देता है, उसे गुरू कहते हैं– हाँ, कहाँ जा रहे हो गुरू? बनारस में तो रंगबाज को भी गुरू कहते हैं। सब जगह कहते हैं। लेकिन ऐसा नहीं। गुरू उसको कहते हैं जो हमारे अंदर प्रवेश करे। जो पर काया प्रवेश की क्रिया जानता हो। जो हमारे अन्तःकरण का रूपान्तर कर सकता हो। ये सब कलाएं जिसके पास हों, उसको सद्गुरू कहते हैं। और ऐसे जो योगिक क्रियाओं को समझे हैं, किये हैं–उनको हम मिलें, और उनके सामने अपने को समर्पण करें। जब हम उनको समर्पण कर देंगे, तब वह हमको देखेंगे। कहा गया है कि–

गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं।।
आरत अधिकारी जहं पावहिं।

गोस्वामी जी कहते हैं कि अगर आर्त अधिकारी मिल जाता है, तो महापुरुष उसके अन्तःकरण को समझते हैं, और उसके लिये जो उचित है, वैसा मार्गदर्शन करते हैं। इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि अपने हृदय में भावना जो है वही भाव भरत है। ज्ञान का प्रतीक राम है, विवेक लक्ष्मण है और सत्संग का प्रतीक शत्रुघ्न है। सत्संग सबसे महत्वपूर्ण होता है। शत्रुघ्न जो शत्रुओं का हनन करता है। सत्संग से शत्रुओं का हनन होता है। सत्संग कई तरह का होता है। एक तो यह भी सत्संग है जो हम बता रहे हैं, तुम लोग सुन रहे हो। एक वह सत्संग है कि तीनों कालों में जो अबाधित एकरस सद्वस्तु है उसे अपने चित्त में लायें–उसका संग करें। सत् को मन से मिला दें। तो वह सत्संग गुरू कराता है–सबसे वह सत्संग नहीं होता। किस तरह से हमारी प्रवृत्ति सत्संग में हो जाय।

'बड़े भाग मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सद् ग्रंथनि गावा।।'

बड़े भाग्य से जो मनुष्य शरीर मिला है–चौरासी लाख योनियों के बाद। यही अवध है।

'अवध सरिस मोहि प्रिय नहिं सोऊ।
यह प्रसंग जानै कोऊ–कोऊ।।'

अवध, अवधि कहते हैं–समय को। जो समय, मानव–तन के रूप में हमें मिला है। इस अवध का सारभूत (रहस्य) समझना चाहिए। इसमें दसों इंद्रियों को विषयों से रोकना चाहिए–साधक को, तब दशरथ बनेगा। और उसमें कुशलता हासिल हो जाय तो कौशल्या उसकी इनर्जी तैयार हो जायगी। फिर ये सद्‌गुण पैदा हो जाते हैं। हाँ, दिक्कत यह है कि बगैर विश्वास के परिणाम नहीं मिलता। बगैर विश्वास के अगर हम कुछ करते हैं तो विघ्न हो जाता है। जो यह तर्कना रूपी ताड़का हृदय में घुसी है, विघ्न डाल देती है–जब विश्वास रूपी विश्वामित्र जज्ञ करते हैं। उसके लड़के हैं–मारीच और सुबाहु। मन और मन का खराब स्वभाव, ये विघ्न डालते रहते हैं। तो जब विश्वास आएगा, विश्वास रूपी विश्वामित्र तुम्हारे अवध में आएगा, ज्ञान और विवेक को पा जायेगा। तब तर्कना रूपी ताड़का मारी जायेगी। तब जब मामला हल हो जायेगा–मन रूपी मारीच को हटा दिया जाएगा, स्वभाव को खत्म कर दिया जायगा, तब फिर योग क्रिया जागृत हो जायेगी। यज्ञ निर्विघ्न होने लगेगा।

- **सहज साधना–पथ**
- **आरत अधिकारी जहं–पावहिं**
- **योग–साधना**
- **समाधि–समत्व**

कोई कहीं पैदा होता है, तो उस गांव का होगा, उस भाषा का होगा, उस जाति का होगा, उस देश का होगा। उस कास्ट का कौन ईश्वर है, क्या सिद्धान्त है, कौन धर्म है–उसे लेकर चलेगा, तो फिर उसको वह बाधित करेगा। उसका विरोधी सिद्धान्त भी होगा। और दुनिया में अनेक भगवान नहीं हैं, भगवान तो एक ही है। अगर ईश्वर को अलग मान लिया जाय, आला ताला को अलग मान लिया जाय, मोहम्मद को अलग मान लिया जाय, राम को अलग मान लिया जाय, तो ये भी एक तरह से जाति–धर्म वालों के साथ होकर अलग–अलग हो गये। जाति–धर्म करके बाधित हो गया ईश्वर। जबकि ईश्वर अबाधित होता है। इसलिये हम यह कहते हैं, कि अगर थ्योरिटिकल को भी लेना है–प्रैक्टिकल के साथ–साथ, तो हमारी कोशिश यह होनी चाहिए, कि हम किस तरीके से अबाधित हों, सबको समाहित कैसे कर सकें? सबको ओतप्रोत कैसे कर सकें? हम जिस सिद्धान्त को लेकर चलें, वह सबमें ओत–प्रोत हो सके। सब में लागू हो सके, तो वह सिद्धान्त सही माना जायेगा। अगर हम वैष्णव हो जायं, तो फिर शैव कहेगा हमारा सिद्धान्त ठीक है। तो फिर नानक पंथी है, उदासी पन्थी है। कबीर पंथी है। ऋषी है, मुनि है, संप्रदाय तो भरे–पड़े हुये हैं। तुम्हारा सिद्धान्त ऐसा हो, जो सबमें ओत–प्रोत हो सके। और न हो, तो चार भागों में बांटा जा सकता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार–एक ही अन्तःकरण है। कहीं मन को ही अंतःकरण माना है। कहीं बुद्धि को ही अन्तःकरण कहा गया, और कहीं अकेले अहंकार को भी कहा गया। पूरे अन्तःकरण को मन के रूप में भी दिखाया गया है। सब्जेक्ट के अनुसार जैसी शैली बनती है, वैसे बताया जाता है। परमात्मा जो है वह व्यापक है, एकरस है, स्तम्भवत है और हलन–चलन से रहित है। आकाशवत है। करोड़ों वर्षों पहले जो हुआ था, उसको भी आकाश जानता है क्योंकि तब भी यह ऐसे ही खड़ा था। जब राम हुए, तो उसको भी यह आकाश देखता रहा होगा। सतयुग को भी देखा होगा। कृष्ण ने क्या–क्या किया, वह भी यह आकाश जानता होगा। तब भी रहा होगा। तो ऐसा कोई परमात्मा है, जो आकाशवत कहा जाता है, वह हलन–चलन से रहित है, सदैव एकरस है। उसमें न तो कभी सृष्टि हुई, न कुछ हो रहा है। ऐसा यह उसका स्वरूप है। ऐसा जब तुम्हें बोध हो जाएगा और यह स्वरूप तुम्हें प्राप्त हो जायेगा तब तुम्हारा यह भ्रम दूर हो जायेगा। यह दृढ़ता आनी चाहिए। हम बार–बार बताते हैं, कि लंका और अयोध्या अलग नहीं है। उसी का नाम लंका है, उसी का नाम अयोध्या है। वह साधक के हृदय मे हैं। अब तुम्हारा मन लंका की तरफ जायेगा, फिर अयोध्या की तरफ जायेगा–तो नहीं समझ में आएगा। लंका और अयोध्या एक ही अंतःकरण में है। वहीं राम बैठा हैं, वहीं रावण बैठा है। उसी में रावण की शक्ति निहित है। ये आकाश में बैठे हैं– आकाश को क्या कहते है? नभ कहते हैं–आकाश को। नाभि कहते हैं। अब वहां से संबंध जुड़ जाय, तो फिर पता लग जाय। तो यह एडजस्टमेंट अपने में होना चाहिए। यह हमारा मन, एक ईश्वर के शरणापन्न हो जाय। समत्व में शरणापन्न हो जाय। प्रकृति की विभिन्नताओं वाला न रह जाय। विभिन्न कारणों वाला न रह जाय, विभिन्न दुनिया वाला न रह जाय, यह एक धारा वाला हो जाय। सब मिलकर एक हो जाय। सब मिलते–मिलते पानी हो जाय। पानी परमात्मा है, और यह बरफ जो है यह संसार है। तो ऐसी ज्ञान की गर्मी का

जोर लगाओ कि यह संसार रूपी बरफ गल कर, परमात्मा रूपी पानी हो जाय। अब बरफ रहेगा या पानी रहेगा। बरफ तो बनावटी है, और पानी ओरिजनल है—स्वाभाविक है। बरफ को गलाना है। परमात्मा कहीं गया नहीं। बस सिद्धान्त एक है।

गोविन्द पादाचार्य हुये हैं शंकर के गुरू। शंकर का जो दर्शन है—उससे पहले गोविन्द्र पादाचार्य के गुरू गौड पादाचार्य हुये, उन्होंने लिखा था, अपनी थीसिस में, कि अभी सृष्टि हुई ही नहीं। मतलब यही है, कि यह है ही नहीं। इसे चित्त से हटा कर देखो—यह है ही नहीं। अगर इसको तुम ध्यान से नहीं हटाओगे और यही तुम्हारे ध्यान में बना रहेगा कि यह है, वह है, तो यह नानात्व, तुम्हें एकत्व की ओर नहीं जाने देगा। साधन का एक ही लक्ष्य सबसे प्रमुख है, कि साधन करते—करते साधन में आने वाली जो प्रक्रिया है, उसको हम भुला दें। अगर वो याद बने रहेंगे, तो साधन से मारे गए दुश्मन फिर पैदा हो जाएंगे। यह नियम है। इसलिए बचने के लिए, साधन में आने वाली प्रक्रिया को भुलाना पड़ेगा। अनेक कथानकों के माध्यम से सुना होगा, कि जड़ भरत ऐसे मस्त रहते थे। फलां महात्मा ऐसे रहते थे। उन्हें सब भूल जाता है। थोड़ा कुछ ज्ञान (संसार का) रहता है, लेकिन उतना, आम जनता की तरह, नहीं रह जाता। इस प्रकार का जब मस्ती का नशा आ जायगा, और ईश्वर का नशा छा जायगा, मस्ती का एक तम्बू छा जायेगा। फिर हमारा मन, उस तम्बू के बाहर जा ही नहीं पाता। अब जब भी मन कुछ सोचता है, विचार आते हैं तो उस तम्बू के बाहर जा ही नहीं पाते हैं। अनेक बातें आ सकती हैं—कि प्रचार किया जाय, हमारा नाम हो जायगा, जैसा कि आजकल बाबाओं में देखा जाता है। अब थोडी सी मेहनत कर दी जाय, इसके लिए तो यहाँ टूट पड़ेगी पब्लिक। तमाम तरह का विकास दिखाई देने लगेगा। लेकिन जितना भय गरीबी से या कमजोरी से था, उससे ज़्यादा भय इससे है, इस वैभव से है। तो जब अच्छाई भी बुराई की तरह दिखाई पड़ने लगे। बुराई तो बुराई है ही, जब अच्छाई, बुराई का रूप ले ले, तब तुम समझो कि अब हमारी प्रगति हो रही है।

बेचहिं वेद धरम दुहि लेहीं।

समझो, इससे बड़ी बुराई और क्या हो सकती है? हम तो यहाँ तक कहते हैं कि तुमने पढ़ाई की और डाक्टर हो गए, इंजीनियर हो गए। कोई वकील हो गया तो विद्या निरपेक्ष होना चाहिए। विद्या ईश्वर को दिलाती है। विद्या को बेचना नहीं चाहिए, पैसे में। हम डाक्टर हो जायं, लेकिन बदले में पैसा लेना ठीक नहीं है—अब कोई कुछ हमें देता है—अनपेक्ष रूप से तो वह ठीक है। लेकिन आजकल यह धंधा है। कथा सत्संग में जाएंगे। वहां बैठकर थोड़ी देर रो, धो, लेंगे और फिर लौटकर वहीं धंधे करेंगे, जो करते रहे हैं। रात को विषय में रहेंगे। दिन को वही सब बेइमानी चलती रहेगी। तो फिर ऐसे सत्संग से, ऐसे वक्ता के बताने से, क्या मतलब होता है? उससे बड़ा अभिशाप और क्या हो सकता है? तो सत्संग अगर अनधिकारी को बताया जाये— तो ठीक नहीं।

गूढउ तत्व न साधु दुरावहिं।।
आरत अधिकारी जहं पावहिं।

तो अनधिकारी को जो सत्संग बताया जाता है, उसका बुरा इफेक्ट उस बताने वाले के ऊपर आता है। वह बरबाद हो जाता है। वह नष्ट—प्राय हो जाता है। इसलिये यह अनिवर्चनीय विषय है। अन्तःकरण क्या है, कैसा है, यह हमारे ऋषि—मुनियों, अनुभव करने वाले महात्माओं की कल्पना है। जो पद्धति उन्होंने दिया है, उस पर आज हम सबको चलना है—चाहे गलत हो, चाहे सही हो। हम तो कहते हैं कि तुम भी लिखो। जो उन्होंने लिखा है—वह तुम भी लिखो। तुम्हारी भी अपनी एक थीसिस होनी चाहिए। साधक को, अगर इस

रास्ते पर चलना है, तो हर हालत में उसे तुलसी बनना पड़ेगा, हर हालत में उसे सूर बनना पड़ेगा, हर हालत में उसे कबीर बनना पड़ेगा। और अगर ऐसा नहीं बनता, तो मेरे विचार से वह सफलता नहीं पा सकता। यह बहुत मालीक्यूल विषय है, अनिवर्चनीय है, इसलिए सूर कबीर या और जो महापुरुष हुए हैं उन लोगों ने क्या कहा? प्रश्न तो यह है–तो साधक को अगर ज़रूरत पड़ जाये तो मेरे विचार से उन बातों को सुनना चाहिए। जो स्वतंत्र, संप्रदाय रहित, व्यापक वृत्ति के महापुरुष हुए हैं उनकी बातों को सुनना चाहिए। पढ़ना चाहिए। उनकी वाणी सुनने से साधक को फायदा होता है। और जो संप्रदायी हैं या बाधित हैं। संप्रदाय बाधित है, तो उनके विचार सुनने से–बाधा आएगी। साधक रूढ़ि ग्रस्त हो जाएगा।

ईश्वर की तरफ ले जाने के लिये महात्माओं ने रिसर्च किये– हैं खोज किये हैं। तो उसमें कई तरीके हैं–नाम है, ध्यान है यह अलग चलता है। इसकी मदद के लिये शरीर में कई चक्र या कमल हैं, उनको जागृत किया जाता है। उसमें दबाव पड़ता है। अन्तःकरण को रोकने के लिये। ये कमल कई जगह होते हैं। मुख्य रूप से ये छः जगह होते हैं। ये ऐसी जगहें हैं, जहाँ से शक्ति वेस्ट होती रहती है–व्यर्थ जाती है। इनको धीरे–धीरे जागृत किया जाता है। जब जागृत हो जाते हैं, तो जिस जगह जो शक्ति है, वह अपने को मिल जाती है। एक तरीका यह भी है। इस तरह से कई तरीके हैं। साधक का परीक्षण करके देखा जाता है, कि इसको यह गड़बड़ी है, इसको इस क्रिया की ज़रूरत है। इसके मुताबिक उसे दिया जाता है। इस साधक को यह दिक्कत है–इसे इस तरीके से फायदा होगा। इस प्रकार कपाल भाँती है, त्राटक है, नेती है, बस्ती है, धौती है। कई प्रकार ये षटकर्म कराये जाते हैं। जैसे ध्यान में मन नहीं लगता तो–क्यों नहीं लगता? कफ बढ़ गया है, या और कोई विकार हैं। तो योग में इसके लिए षटकर्म का विधान है। योग चार प्रकार के होते हैं–एक होता है हठ योग, एक होता है लय योग, एक होता है निष्काम कर्मयोग, और एक होता है राज योग। राज योग श्रेष्ठ माना जाता है। इस तरीके से हर साधना की गतिविधि अलग–अलग होती है। किस साधक की कैसी गतिविधि है। किस साधन में किसकी अभिरुचि है–वह साधन उसको दिया जाता है। दूसरा क्या है, कि बहुत से लोगों को शरीर में विकार हो जाता है उसको दूर किया जाता है–जैसे किसी का डाइजेशन ठीक नहीं है, तो उसके लिए बस्ती क्रिया है। अगर कफ है, तो धौती की जाती है। नासिका में गड़बड़ी है, तो नेती की जाती है। अगर मस्तक भारी रहता है तो, कपाल भांती की जाती है। फिर कपाल भाँती के बाद मस्तक ठीक हो जाता है तो फिर छठवीं क्रिया त्राटक की जाती है। त्राटक का मतलब है ध्यान। किसी एक जगह दृष्टि जमाकर देखते रहना। यही त्राटक है। बिहार में एक आदमी था। उसे किसी फकीर ने बता दिया, कि तुम सुबह जब सूर्य उदय हो तो उसमें त्राटक किया करो। तो वह सबेरे बैठ जाय और सूर्य जब उदयकाल में मुलायम रहता है, चन्द्रमा जैसे रहता है, उसे वह देखने लगा। उसे बता दिया कि देखते समय आँख की पलक न गिरे–टकटकी लगाकर देखा करो। तो वह रोज देखने लगा–एक मिनट दो मिनट करके बढ़ाते–बढ़ाते, एक–एक घंटे तक त्राटक करने लगा। घंटा, दो–दो घंटा त्राटक करने लगा। तो उसमें इतनी शक्ति आ गयी, कि जिस आदमी को एक बार देख ले, और जैसे वह आदमी नहीं है वहाँ, स्मरण में देखकर उसको पकड़ ले तो वह उसके पास आ जाय। ये शक्तियाँ हैं इंद्रियों की। अगर ईश्वर के लिए किया जाय, तो ठीक है। लेकिन कई तरह के लालच हैं–दुनिया के। इसको ऐसा करने से यह चमत्कार आ सकता है। इसकी भी दुनिया बड़ी भारी है। तो ये सब योग की क्रियायें हैं। इनकी ज्यादा जानकारी करने की ज़रूरत नहीं है। हाँ अगर हमारा ध्यान नहीं लगता तो सहायता के रूप में ज़रूरत पड़ने पर इनको करना चाहिए। तो जैसे हमारा शरीर रुग्ण है,

कुछ कमी है–उसके लिये ये हठयोग ईजाद किया गया है। पेट मे भारीपन रहता है–डाइजेशन ठीक नहीं है, तो ध्यान ठीक से नहीं होगा। उसका सिस्टम है इसमें–बस्ती कहते हैं–उसको। पेशाब करे, छींक करे और दस्त हो जाय तो इसको किया जाय। अच्छा, धौती है–तो अगर श्वासा में भारीपन होता है–हर श्वासा सरल–हलके से जाना चाहिए, पश्यंती में। जब हम अजपा जाप करेंगे, तो सरल से जानी चाहिए–हलकी श्वास चलनी चाहिए। जब रिनिक–धिनिक ध्वनि अपने से हो जाय। यह स्वाभाविक होना चाहिए। और अगर इसमें भारीपन है, तो समझना चाहिए कि फेफड़ों में या श्वासा की नली में, कफ का संचार हुआ है। तो धौती करते हैं। 15–20 हांथ लम्बा कपड़ा होता है–रेशम का, उसको चिकना करके–मुंह से अंदर डालकर साफ कर लेते हैं। तो कफ साफ हो जाता है, इसको धौती कहते हैं। इसे सिखाना पड़ता है। और जब नासिका में गड़बड़ी होती है। स्वर ठीक से नहीं चलते हैं तो नेती करते हैं। नेती में कपड़े की एक लम्बी बत्ती (नेती) बनाकर नाक के एक छेद से डालकर दूसरे से निकालते हैं। नाक में डालकर मुंह से निकालते हैं–और इस तरह सफाई कर लेते हैं। फिर ध्यान में बैठते हैं। ऐसे ही अगर सिर भारी है। सिर में बजन आ गया। तो ध्यान में दिक्कत आती है। तो फिर कपालभांती करते हैं। जल्दी–जल्दी तेजी से श्वास को खींचते–छोड़ते हैं–इसको कपालभांती कहते हैं। नौले, बस्ती, नेती, धौती, कपालभांती और त्राटक ये छः कर्म होते हैं। इनको करके, फिर ध्यान करना चाहिए। अब चक्र समझो। मूलाधर एक चक्र होता है–यह गुदा चक्र है। यह मूलाधार दो दल का होता है। दूसरा
स्वाधिष्टान यह चक्र जननेन्द्रिय के ऊपर होता है यह चार दल का होता है। मणिपूर चक्र नाभि को कहते हैं, यह छः दल का होता है। अनाहत चक्र हृदय को कहते हैं–जहां हार्टबीटिंग करता है–यह आठ दल का होता है। कंठकूप कंठ में है। इसमें मछली के आकार की एक नाड़ी होती है जिसमें पूर्व संकल्प इकट्ठे रहते हैं जो समय है–वह साधन उसको दिया जाता है। दूसरा क्या है, कि बहुत से लोगों को शरीर में विकार हो जाता है उसको दूर किया जाता है–जैसे किसी का डाइजेशन ठीक नहीं है, तो उसके लिए बस्ती क्रिया है। अगर कफ है, तो
धौती की जाती है। नासिका में गड़बड़ी है, तो नेती की जाती है। अगर मस्तक भारी रहता है तो, कपाल भांती की जाती है। फिर कपाल भाँती के बाद मस्तक ठीक हो जाता है तो फिर छठवीं क्रिया त्राटक की जाती है। त्राटक का मतलब है ध्यान। किसी एक जगह दृष्टि जमाकर देखते रहना। यही त्राटक है। बिहार में एक आदमी था। उसे किसी फकीर ने बता दिया, कि तुम सुबह जब सूर्य उदय हो तो उसमें त्राटक किया करो। तो वह सबेरे बैठ जाय और सूर्य जब उदयकाल में मुलायम रहता है, चन्द्रमा जैसे रहता है, उसे वह देखने लगा। उसे बता दिया कि देखते समय आँख की पलक न गिरे–टकटकी लगाकर देखा करो। तो वह रोज देखने लगा–एक मिनट दो मिनट करके बढ़ाते–बढ़ाते, एक–एक घंटे तक त्राटक करने लगा। घंटा, दो–दो घंटा त्राटक करने लगा। तो उसमें इतनी शक्ति आ गयी, कि जिस आदमी को एक बार देख ले, और जैसे वह आदमी नहीं है वहाँ, स्मरण में देखकर उसको पकड़ ले तो वह उसके पास आ जाय। ये शक्तियाँ हैं इंद्रियों की। अगर ईश्वर के लिए किया जाय, तो ठीक है। लेकिन कई तरह के लालच हैं–दुनिया के। इसको ऐसा करने से यह चमत्कार आ सकता है। इसकी भी दुनिया बड़ी भारी है। तो ये सब योग की क्रियायें हैं। इनकी ज्यादा जानकारी करने की ज़रूरत नहीं है। हाँ अगर हमारा ध्यान नहीं लगता तो सहायता के रूप में ज़रूरत पड़ने पर इनको करना चाहिए। तो जैसे हमारा शरीर रुग्ण है, कुछ कमी है–उसके लिये ये हठयोग ईजाद किया गया है। पेट मे भारीपन रहता

है–डाइजेशन ठीक नहीं है, तो ध्यान ठीक से नहीं होगा। उसका सिस्टम है इसमें–बस्ती कहते हैं–उसको। पेशाब करे, छींक करे और दस्त हो जाय तो इसको किया जाय। अच्छा, धौती है–तो अगर श्वासा में भारीपन होता है–हर श्वासा सरल–हलके से जाना चाहिए, पश्यंती में। जब हम अजपा जाप करेंगे, तो सरल से जानी चाहिए–हलकी श्वास चलनी चाहिए। जब रिनिक–धिनिक ध्वनि अपने से हो जाय। यह स्वाभाविक होना चाहिए। और अगर इसमें भारीपन है, तो समझना चाहिए कि फेफड़ों में या श्वासा की नली में, कफ का संचार हुआ है। तो धौती करते हैं। 15–20 हांथ लम्बा कपड़ा होता है–रेशम का, उसको चिकना करके–मुंह से अंदर डालकर साफ कर लेते हैं। तो कफ साफ हो जाता है, इसको धौती कहते हैं। इसे सिखाना पड़ता है। और जब नासिका में गड़बड़ी होती है। स्वर ठीक से नहीं चलते हैं तो नेती करते हैं। नेती में कपड़े की एक लम्बी बत्ती (नेती) बनाकर नाक के एक छेद से डालकर दूसरे से निकालते हैं। नाक में डालकर मुंह से निकालते हैं–और इस तरह सफाई कर लेते हैं। फिर ध्यान में बैठते हैं। ऐसे ही अगर सिर भारी है। सिर में बजन आ गया। तो ध्यान में दिक्कत आती है। तो फिर कपालभांती करते हैं। जल्दी–जल्दी तेजी से श्वास को खींचते–छोड़ते हैं–इसको कपालभांती कहते हैं। नौले, बस्ती, नेती, धौती, कपालभांती और त्राटक ये छः कर्म होते हैं। इनको करके, फिर ध्यान करना चाहिए। अब चक्र समझो। मूलाधर एक चक्र होता है–यह गुदा चक्र है। यह मूलाधार दो दल का होता है। दूसरा

स्वाधिष्टान यह चक्र जननेन्द्रिय के ऊपर होता है यह चार दल का होता है। मणिपूर चक्र नाभि को कहते हैं, यह छः दल का होता है। अनाहत चक्र हृदय को कहते हैं–जहां हार्टबीटिंग करता है–यह आठ दल का होता है। कंठकूप कंठ में है। इसमें मछली के आकार की एक नाड़ी होती है जिसमें पूर्व संकल्प इकट्ठे रहते हैं जो समय आने पर उद्भूत हो जाते हैं। ये कंठकूप भी दो दल का होता है। और फिर मूर्धा है। यह एक दल का होता है। यह मूल जगह है। इस तरह से ये छः होते हैं। इनमें ये कमल–दल होते नहीं है। अगर चीर–फाडकर देखा जाय, तो वहाँ कमल थोड़े हैं। यह बना लिया गया है, और बना इसलिए लिया गया है, कि इससे लाभ लिया जाता है। लाभ इस तरह से, कि यह संसार और यह मन यह सब झूठी चीज़ है। यह है नहीं–अगर है तो सिर्फ ईश्वर। जो सब में है। पहले भी था आज भी है, आगे भी रहेगा। काल करके भेद नहीं है उसमें। सदैव एक रस है। और जो यह भेद (संसारगत) दिखायी पड़ता है, यह उसकी गैर हाजिरी का दुष्परिणाम है। ईश्वर को न देख पाने से है। उसको न देखने से, यह दिखाई पड़ने लगता है। इसी बीमारी को दूर करने के लिए, साधना की जाती है। तो होता क्या है, कि साधना करते–करते साधक के मन की गति रुक नहीं पाती। सही एडजस्टिंग हो नहीं पाती। तो उसमें कुछ और ताकत की ज़रूरत पड़ती है। तो गुरू लोग जब समझते हैं कि ऐसी ज़रूरत है, तो फिर वो, इन कमलों को जागृत कराते हैं। श्वासा की साधना कराते हैं। जो हम, तुम लोगों को बताते हैं। चौबीस घंटे में 21608 श्वासा चलती है। और यह कुछ कहती है। ऊपर जाती है तो कुछ कहती है, नीचे जाती है तो कुछ कहती है। यह क्या कहती है–ओ–म, ओम, राम, रा, म, सो, हम्, सो–हम्। जिसको जो शब्द अनुकूल पड़ जाय, उसको वह कर सकता है। तो इस तरीके से, मन को खड़ा कर देना चाहिए और श्वासा के नाम को सुने।

'निरंजन माला घट में फिरै दिन रात।'

यह निरंतर चलती रहती है। कभी रुकती नहीं है।

'मन मूरख सोवे महा, चेतन को नहि चैन।'

चाहे तुम सोओ, चाहे जागो, चाहे रोओ, चाहे हंसो–श्वासा अपना काम करती है। इतनी अच्छी रफ्तार की चीज़, हमारे मन को एकाग्र करने वाली चीज़, हमको धरे–धराए मिली हुई है। इसमें महात्मा लोग बहुत संतुष्ट हुए, कि यह अच्छी बनी–बनाई माला हमें भगवान ने दे दी–आटोमैटिक माला दे दी। लेकिन यह पहले समझ में नहीं आती। क्योंकि यह हाई–लेबल की–ऊपर के स्तर की शिक्षा है। यह बहुत आगे की समझ है, साधना है, जाप है। पहले तो बाहर की माला जपना पडेगा। फिर मन की माला जपना पड़ेगा और जब मन की माला समझ में आ जायगी तब यह श्वासा की माला मिल जाती है। सबको एडजस्टिंग इसमें नहीं होती। कितना भी समझा जाय, जल्दी समझ में नहीं आती। साधक को श्वासा का जाप करना चाहिए–यह महत्वपूर्ण है। अपने मन को खड़ा कर दो–जपे न। यह न कहे रा–म। यह जप नहीं सकता। यह अजप है। जपा नहीं जा सकता। अगर जपेगा। तो राम, राम, ओम, ओम, यह है बैखरी में। और अजप, जप का अपोजिट–उल्टा। यह जपा नहीं जाता। यह तो जपने वाला जप रहा है। यह तो अजप है, अनहद है, आटोमैटिक है। उसको तुम–मन को खड़ा करके सुनो। यह अजपा है। उसको जपा नहीं जाता। वह तो कन्टीनिवस हो रहा है। वह तुम्हारे जपने से नहीं होगा। उसको खाली सुना जाता है। उसे तुम खड़े होकर सुनो। तो सुनते–सुनते यह मन रूपी मृगा, वाणी रूपी वीणा को सुनते–सुनते पकड़ में आ जायेगा। जैसे कहानी में तुमने सुना होगा कि कोई बहेलिया वीणा बजा रहा था तो मृगा आ जाता था। तो वो मृगा नहीं–मृगा काहे को आएगा। उसको वीणा की तान से क्या मतलब? यह तो लोगों की अज्ञानता है। ये तो महात्मा लोगों की बनाई हुई कहानी है। मृगा मन को कहा होगा, किसी महापुरुष ने आवेश में आकर। और जंगल इस संसार को कह गया होगा। और अगर यह अजपा जाप की वाणी रूपी वीणा बन जाय, किसी साधक के हृदय में, तो यह मन रूपी मृगा, संसार रूपी इस जंगल से निकल जायेगा और कल्याण हो जायेगा। ऐसी–ऐसी कहानियां बन जाती हैं, और फिर समाज में प्रचलन होता रहता है। ऐसे ये ढोंग धतूर बन गए। जो सही चीज़ है, जो आधार है उसमें जब पहुंचे आदमी, तब उसका पता चल जाता है। जब तक स्वयं अपने आपको प्रतीति नहीं लग जाती, जबतक हम आँख से नहीं देख लेते तब तक कैसे मान लेना चाहिए? यह विषय तो प्रैक्टिकल है। तो अजपा जाप जब एडजस्ट हो जाता है, तब फिर मेडिटेशन हो जायेगा। मेडिटेशन बहुत कठिन चीज़ है–सबसे कठिन चीज़ है। जितना बताने में सरल लगता है, उतना ही करने में कठिन है–अपार कठिन है। तो इस तरीके से मेडिटेशन का तरीका अजपा है–नाम है। नाम के कई टाइप या भेद होते हैं। बैखरी का होता है–बैखरी का जप करते–करते जब उसका कर्जा चुक जायेगा, तो अपने आप बैखरी वाणी, मध्यमा को रिपोर्ट दे देगी। और मध्यमा में अपने आप एडजस्टिंग हो जायेगी। किसी को बताने की भी ज़रूरत नहीं है, किसी से पूंछने की भी ज़रूरत नहीं है। और फिर मध्यमा में जपते–जपते जब हमारी एडजस्टिंग पश्यंती में पहुंचती है, तो फिर यह मधयमा पश्यंती को रिपोर्ट दे देगी और पश्यंती में तब तक जपना है, जब परा हमको अपने आप स्वीकार कर ले, और यह पश्यंती हमें परा में ढकेल दे। ऐसा नियम है–एक से दूसरे स्टेज में पहुंचने का। परा में जब पहुंच जाते हैं, तो फिर ध्यान में ठीक रहता है। परा वाणी का जो नाम होता है–वह बहुत महत्वपूर्ण होता है। मूलाधार से चलती है श्वासा। वहां से फिर नाभि–कमल को टकराती है–मणिपुर को। फिर वहां से अनाहत को टकराती है, फिर कंठकूप को टकाराती है–इस तरह सबको धक्का लगाती रहती है। ये सब कमल अधोन्मुख रहते हैं। ये जो हार्मोंस हैं शरीर में, आध्यात्मिक योग्यता पैदा करने वाले। ये जो कमल हैं, अधोगति वाले, वो सब श्वासा से टकराते–टकराते उर्ध्वमुख हो जाते हैं। खिल जाते हैं। और जब ये खिल जाते हैं, तो इन चक्रों में जो–जो ताकत निहित है, वह सब

अपने को मिल जायेगी। नाभि कमल में, मणिपूर चक्र में, लक्ष्मी और विष्णु का निवास है। इसी को कुंडलिनी भी कहते हैं। यह सर्पिणी के रूप में दिखाई जाती है। फोटुओं में तुमने देखा होगा सर्प की कुंडली में विष्णु को सुला देते हैं, और लक्ष्मी उनके पैर दबाती रहती हैं–वह नाभि कमल का चिन्ह है। महापुरुष की नाभि कमल का स्वरूप है। नाभिकमल में विष्णु रहते हैं–सबसे बारीक तत्व है, विष्णु। नाभि कहते हैं, नभ को, आकाश को। पृथ्वी सबसे बड़ा और मोटा तत्व है। उससे भी बारीक और बड़ा तत्व है, जल। उससे बारीक और बड़ा तत्व अग्नि है। उससे भी बारीक और बड़ा वायु है–गैस तत्व है, उससे हजारों गुना बारीक और बड़ा तत्व आकाश है। और उससे भी कई गुना बारीक और बड़ा ईश्वर है–महत्तत्व। और उससे भी बारीक और बड़ा तत्व है–मूल प्रकृति। और प्रकृति से हजारों गुना बारीक और बड़ा तत्व आत्मा है–आठवां तत्व। उस तत्व में हमें पहुंचना है। उसका रंग, हमारे ऊपर चढ़ जाय। माया का रंग हट जाय। प्रश्न यह है। जब उससे हमारा संबंध बन जायगा। उससे हम कनेक्ट हो जायेंगे। तब हम, वह हो जायेंगे। और जब वह हो जाएंगे। तब हम, यह नहीं रह जायेंगे। या तो बर्फ रहेगा या तो पानी रहेगा। दोनों तो रह नहीं सकते। जब ज़्यादा ठंड रहेगी तो बर्फ जम जायेगी–पूरा हिमालय सफेद हो जायेगा। और जब बर्फ को हमने गला दिया, तो पानी हो गया। या तो निरवयव रहेगा या सावयव रहेगा। तो इस तरह से जब हो जायेगा, तब अपने स्वरूप में आ जायेगा।

तो अजपा जपना चाहिए। जपते–जपते कुंडलिनी जागृत हो जायेगी, और लक्ष्मी–विष्णु का निवास हो जायेगा। उसकी क्षमता अपने में आ जायेगी और उसका असर पड़ने लगेगा–हर चीज़ में। और आगे बढ़ते हैं, तो फिर शिव और पार्वती मिल जाते हैं–हिमालय में। कैलाश में। काया रूपी कैलाश में–हृदय रूपी हिमालय में। सबसे महत्वपूर्ण–हृदय में, शिव और पार्वती मिल जाते हैं। जो कंठकूप है यहाँ ब्रह्मा और सरस्वती का निवास है। इन तीनों में जो साम्यावस्था है–वह सेंट्रल गवर्नमेंट है। वह आत्मा का स्थान है। वह सुप्रीम है–सबसे सुप्रीम है। वह तत्व कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता। अविचल है। एकरस है, व्यापक है, शुद्ध है। इस तरीके से, इन चक्रों की जागृति होनी चाहिए। जब ये जागृत हो जाते हैं, जो अजपा एडजस्ट हो जाता है। ध्यान भी होने लगता है। और फिर परफेक्ट भी होने लगते हैं। कम्यूनिकेशन भी होने लगते हैं, परिपक्वता आने लगती है। निरवयवता आने लगती है, और हर प्रकार के अच्छे लक्षण आने लगते हैं। जप को करते रहना चाहिए। यह मेडिटेशन में सहयोगी होता है। ये दोनों ज़रूरी हैं। नाम और रूप।

नाम रूप दुइ ईश उपाधी।

ये ईश्वर को, यदि कहीं फंसा हो–उसे खींच सकते हैं। वैसे उपाधी–टाइटल है। लेकिन उसको परेशान करने के लिए यह उपाधी हैं–उसको खींच सकते हैं–पकड़ सकते हैं। इसलिए, इनको पकड़े रहना साधक के लिए सर्वोपरि काम है। यह शैली है। लेकिन बहुत से लोग इसको नहीं मानते, वेदान्त को लेकर चलते हैं। कहते हैं, यह तो वैचारिक चीज़ है। जो चीज़ है ही नहीं, उसके लिये क्या करना है? वेदान्त कहता है, कि तुम शुद्ध हो, व्यापक, हो, एकरस हो। तो यह वेदान्त उनके लिये है, कि जो साधना करके पहुंच जायं आखिरी में। उनके लिए यह लागू होता है। हम ऐसा मानते हैं। एक ही चीज़ है, अलग–अलग नहीं है। ऐसे ही हजारों तरीके बने हैं–हजारों तरीके ईजाद हो गये हैं। जब से मानव रहा इस दुनिया में, तो यह खुराफात करते–करते दंद–फंद कर लिया है। और एक जाल रोप दिया है। अपने ही के लिए, कांटे बो दिये हैं। जितना तर्क–वितर्क करें, उतनी फांसी लगती चली जा रही है। और क्लिष्ट बनता जा रहा है–विषय। यह तो पर्सनल विषय है– यह सबके लिये नहीं

है। अनधिकारी के लिये नहीं है। लेकिन आजकल इस कलियुग में, यह भी आवश्यकता की चीज़ मान ली गई है। कि भाई, सब कोई कर सकता है। अब कहना तो सरल है, पर करना बहुत दुर्लभ है। जो तीव्र वेग वाला साधक है—जिसमें स्पीड है, जिसमें वेग है। वह साधक इन सबको सफलीभूत करता है। उड़ान भरता है। और जिसमें उड़ान भरने की ताकत नहीं है, हल्कापन नहीं है, त्याग नहीं है, तीव्रतर वैराग्य नहीं है, वह साधक इसका अधिकारी नहीं बन सकता। जैसे शुरू से ही जो लड़के स्कूल जाते हैं, उनमें से कोई—कोई काफी होशियार होते हैं। वो मास्टर के प्रिय बन जाते हैं। तो उन्हीं का नाम आता रहेगा। तो उसको एक हवा हो जायेगी। जो मास्टर बताएगा पकड़ता जायेगा—निकलता जायेगा, वह टाप में जायेगा। और जो लद्दर है, उसकी स्पीड धीमी है। सोचने की धीमी है, याद करने की धीमी है। समझने की धीमी है, हर चीज़ की धीमी है। तो धीमी वाले के सामने, बलात् मल—विक्षेप आ जाते हैं। इसलिए धीमी है। नहीं तो, जो मीटर—एंटीना उसके लगा है ब्रेन में, वही तो तीव्र वाले के भी लगा है। लेकिन वह उनको धीमी गति से चलाता है, और वह तेज गति से अपने इन उपकरणों से काम लेता है। तो धीमी वाले के सामने बलात् विघ्न आ जाते हैं, तेज वाला विघ्नों को काटकर झट निकल जाता है। ऐसे जो तीव्र गति वाला साधक होगा, उसके लिए यह साधना सरल पड़ती है। और जो धीमी गति वाला है उसे सरल नहीं पड़ती। इसलिए इसमें चाल बताई गई हैं। साधक कई किस्म के होते हैं—एक पिपीलिका चाल वाला होता है। एक साधक है जो—पिपीलिका चाल वाला—चींटी की तरह चलता है। अब चींटी को एक किलोमीटर चलने में बहुत समय लगता है। तो ऐसा साधक बहुत धीमी गति से आगे बढ़ता है। ऐसी उसकी समझ है, ऐसी उसकी साधना है। ऐसा ही उसका सब कुछ है। और एक है, पशु चाल वाला। वह थोड़ा उससे तेज है। और एक है, विहंग चाल वाला। जैसे चिड़िया इस डाल से, उस डाल में पहुंच गई। यह तीव्र गति वाला साधक है उससे भी बढ़कर, मुनमुनिया चाल वाला—मन की गति वाला। जिसके अनेक जन्मों के तपस्या के संस्कार होते हैं, और किसी कारणवश पतित होकर जन्म ही पूर्णता प्राप्त करने के लिए होता है। ऐसे कोई—कोई भाग्यशाली पुरुष होते हैं, कि जन्म लिया और सारी योग की प्रक्रिया अपने से आ जाती है। पूर्व जन्मों के संस्कार वश। उसका जो उल्लास था, उस जनम का, और जो बाधा आ गयी थी, जन्म लेने के कष्ट में ही वह कट जाती है, और पैदा होने के साथ ही, वह योगी बन जाता है। फिर वह तत्काल अपनी योग्यताओं के द्वारा परिणाम को प्राप्त कर लेता है। मन की चाल से उसको सब चीज़ मिल जाती है—इतनी तेज़ स्पीड होती है। इसलिए साधक को अपनी गति सुधारना चाहिए। अगर गति नहीं सुधारता, तो साधना नहीं सुधरेगी। अगर गति तीव्र करता जायेगा, तो बढ़ जायगा। तो इस तरीके से, यह समझ में आ गया होगा, कि योग कितने होते हैं। एक हठयोग है—जिसमें डाक्टरी के सिस्टम हैं। जो साधक को क्या परेशानी है, उसे दूर करने की क्रियायें बताता है। और एक लय योग है। लय योग यह है, कि हमें ईश्वर के प्रति लगन को बढ़ाना है। लगन तेज करना है। बार—बार उसी में जोर देना है। और एक निष्काम कर्मयोग है। यह एक और तरीका है। इसमें है कि हम कामना का त्याग कर दें। काम हम सब करें, लेकिन परिणाम की अपेक्षा न करें। कर्तव्य हम सब करेंगे, लेकिन परिणाम नहीं चाहते हैं—हम निष्काम भावना से करेंगे। हम झाड़ू लगाते हैं, लेकिन झाड़ू के बदले कुछ चाहते नहीं। हम भजन करते हैं, लेकिन भजन के बदले भगवान से कुछ चाहते नहीं। हम न खाना चाहते हैं, न पीना चाहते हैं। कुछ भी नहीं चाहते यह निष्काम योग है। इसमें जो कुछ भी किया जाता है, तुम्हारी भक्ति में शामिल हो जाता है। और जो तुम सकाम करोगे। सकाम ध्यान करोगे। सकाम भजन करोगे तो वह माया बन जायेगी। क्योंकि इच्छाएं तो

तुम्हारी बन्द नहीं हैं–लीकेज तो तुम्हारा चल रहा है, तो पुण्य रूपी पूंजी इकट्ठी नहीं होगी। इसलिए इसका वीटो नहीं बनेगा। तो दो चीज़ है दुनिया में–एक प्रवृत्ति मार्ग, दूसरा निवृत्ति मार्ग। प्रवृत्ति मार्ग वह है, जिसमें भजन करके खूब ऐश्वर्य कमाया, तपस्या करके वैभव कमाए, बड़े हो गए और मरे तो फिर नरक में चले गये। उसका भोग करने। फिर तपस्या किये, फिर कमाए, फिर भोग किये, फिर नरक में गए। तो यह सर्कुलेशन में आ गया–संसार में आ गया। यह प्रवृत्ति मार्ग है। और निवृत्ति मार्ग वह है, कि हम सबकुछ करें, और चाहें कुछ नहीं। हम परिणाम नहीं चाहते। हम निष्काम करना चाहते हैं। तो निष्काम भाव से की गई सेवा, भक्ति में शामिल हो जाती है। निष्काम भाव से की गई सेवा, यह निवृत्ति मार्ग है। फिर तुम्हें परिणाम मिल जायेगा। जब तुम्हारी कोई इच्छा नहीं है। तो 'इच्छई काया, इच्छई माया, इच्छई जग उपजाया।' तुम्हारी इच्छा है ही नहीं। तो जब किसी प्रकार की कामना नहीं होती, तो वह भगवान के पक्ष में चला जाता है–वह निवृत्ति मार्ग में होता है। उसका कल्याण हो जाता है। ईश्वर की प्राप्ति होती है। अब राजयोग क्या है। राजयोग सब योगों का राजा है। उसमें हर कुंडलिनी को जगाना पड़ता है, और शुरू से हर प्रक्रिया को चलाना पड़ता है। उसमें चारों योगों का सहारा रहता है। राजयोग वाला योगी ही, सबसे श्रेष्ठ कहलाता है। उसके पास सब एक्सपीरिएंसेज़ होते हैं। अनुभूतियां होती हैं। इसके पास अनुभव होते हैं। हाँ,

'तुम त्रिकालदर्शी मुनि नाथा।
विश्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा।।'

भगवान श्रीराम जब बाल्मीकि मुनि के पास गए तो कहा कि हे मुनिवर! आप सृष्टि को–जैसे हाथ में बेर को रखकर देखा जाता है–ऐसे देख रहे हैं। आप त्रिकालदर्शी हैं, तीनों कालों को जानते हैं। यह टाइटल उनको दिया गया। राम जब पैदा नहीं हुए थे, तभी राम की कथा बनाई थी, बाल्मीकि ने–रामायण में। कि तुम्हें इसे ऐसे करना है। तो इसलिये जो योगी होता है, वह राजयोग का है। उसमें दो प्रकार के योगी होते हैं–एक होता है युक्तयोगी। और एक होता है–अनजान योगी। अनजान योगी जो होता है, वह जब पता लगायेगा, तो उसे पता लग जायेगा कि फ्यूचर में ऐसी घटना होने वाली है। और युक्त योगी जो है, उसको वही शब्द निकलेगा जो उसे कम्यूनिकेशन से मिलेगा। तो पहले युक्त योगी के लेबल पर जायेगा। फिर वह अनजान योगी होगा। और ये दो धाराएं मिलकर एक हो जायेंगी, तब वह राजयोगी कहलाएगा। ऐसे ये शाखाएं चलती हैं। इस प्रकार इसमें तीन, प्रकार के महात्मा होते हैं–एक शून्यत्व वाले, एक भावत्व वाले, और एक पूर्णत्व वाले। पूर्णत्व वाला जो होता है, वही लास्ट वाला होता है। शून्यत्व और भावत्व पहले उठ जाते हैं। इस प्रकार इसमें कई तरह की व्याख्यायें हैं। यह भी एक बड़ी बीमारी है। ये टाइटल हैं। डिग्रियां हैं। जो पहुंच वाले महात्माओं को मालूम हो जाती हैं। उनके अन्दर इनकी लेबलिंग होती रहती है। कहां है, कितने हैं, क्या है, क्या है। अब आजकल दो तीन ही महात्मा हैं, बस और कोई नहीं ऐसा मिलता है। कहीं आत्मा की कोई क्षति हुई है, तो पता हो जायेगा। कहाँ, कैसे आत्मा एडजस्ट हुई है, उसका मिलन हुआ है। ऐसे–ऐसे अन्तर्जगत में ये कम्यूनिकेशन होते रहते हैं। यह कहने की चीज़ नहीं है। इसके लिये सबसे बड़ी चीज़ है–श्वासा। जैसा कि हमने एक दिन बताया था। यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन, मूलबंध, देह की समता, नेत्रों की स्थिति, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। ये पंद्रह अंग होते हैं। इनको सांगोपांग ढंग से साधक को लेना चाहिए। यम कितने होते हैं। नियम कितने होते हैं। त्याग क्या है। मौन क्या है। इनकी परिभाषा होती है। योग

की पुस्तकें देखने से इनका पता चल सकता है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण है–मूलबंध। यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन। इनके बाद आता है–मूलबंध। इसको ही पकड़ना है। इसमें अगर मन रम गया, तो यह मन धीरे–धीरे खड़ा हो जायेगा। मन जहाँ खड़ा हुआ, तो फिर पूरा काम हो जायेगा। मन रिकार्ड है–पूर्व का बनाया हुआ। जो रिकार्ड है अन्तर्जगत का वह सब जलकर भस्म हो जाएगा। मन को खड़ा होना चाहिए। तो इसके लिए श्वासा का जाप, सबसे सरल तरीका बताया गया है। चार वाणी हैं–बैखरी, मध्यमा, पश्यंती, परा। इन्हीं के अनुसार जाप होना चाहिए। ऐसे ही नाम आदि साधन भी चार होते हैं–नाम, रूप, लीला, धाम। और चार ही इनके परिणाम होते हैं–अर्थ, धर्म काम, मोक्ष। और फिर चार ये जो काल, कर्म, स्वभाव, गुन हैं, इनसे मुक्ति मिल जाती है। यही बंध हैं।

'फिरत सदा माया के प्रेरे।
काल कर्म स्वभाव गुन घेरे।।'

और भगवान हैं काल कर्म सुभाव गुन भक्षक। और जन रक्षक। इस तरह से भगवान इनके अपोजिट होते हैं।

'गुण सुभाव त्यागे बिना दुर्लभ परमानन्द।'

बगैर गुन–सुभाव को त्यागे परमानन्द नहीं मिलता। इसको समझे, खूब विचार करके और उस हिसाब से इसमें लगे। तो महत्वपूर्ण मूलबंध है, और मूलबंध के सहारे ही यह सब साधना चलती है। इसको पाकर, योगी परम प्रसन्न हो जाता है। और सरलता हो जाती है। दिक्कतें उसकी, दूर हो जाती है। जब सही एडजस्टिंग उसमें आ गयी, तो मन उसमें खड़ा रहता है, और पता किसी को नहीं चलता। और जब हम बाहर साधना करते हैं–स्वाध्याय करते हैं। बाहरी ढंग लेकर जाप करते हैं, और साधनाएं करते हैं, तो उसमें दूसरों की नज़र आती है। और जब हमको देखेगा, तो देखने वाला कुछ न कुछ हमसे बंटा लेगा। इसलिए श्वासा ऐसा प्रसुप्त (गुप्त) साधन है। कि इसमें अगर हम लगे रहें, तो कोई समझ नहीं सकता। जो देखेगा, ले नहीं सकता। वह समझ नहीं सकता। हर प्रकार से, यह शुद्ध है। इसमें सरलता है। और यह काफी मुफीद पड़ती है। इस साधना को ज़्यादातर महापुरुष अपनाते हैं, और अपने गंतव्य स्थान को, अपने लक्ष्य को, प्राप्त कर लेते हैं। इसी को करना चाहिए, तो साधना बढ़ सकती है। अब बढ़ने की बात है। तो हम अक्सर कहते हैं, कि जितना तीव्रता से चले। अब जैसे ध्यान में एक दिन बैठे दो दिन बैठे और तीसरे दिन कमर पिराने लगी, तो सोचे कि थोड़ा आराम कर लें, गड़बड़ा गये। यही कमजोरी है। तीव्र वाले जो होते हैं, वो कभी गड़बड़ी नहीं करते। नियम से समय पर बैठ जायेंगे और करेंगे। जितना ज़्यादा करेंगे, उसमें और बारीकी आएगी।

अब जैसे हमने अपने गुरू का चित्र ले लिया, ध्यान में। सिर ठीक नहीं। ऊपर भौंह गड़बड़ हो रही है। मुंह ठीक नहीं आ रहा है। फिर गर्दन ऐसी है। ऐसे–ऐसे पूरा देखता जाय। अगर सही नहीं आया, तो संतोष नहीं होना चाहिए। विनय करना चाहिए–हे भगवान! हमारा ध्यान सही क्यों नहीं आ रहा है? बार–बार करें। हे भगवान! मेरे पास कोई शक्ति नहीं है। मेरे पास जो कुछ है–मैं हूँ, मेरा मन है, अन्तःकरण है। वह सब चरणों में बार–बार समर्पित करके, जब अपने को संतोष हो जाय, तब फिर मानना चाहिए कि आज हमारा भजन ठीक से हुआ।

जानते हो; यह जो अड़गड़ बाबा हैं न। इनको हमने जब यह बताया था, तो जो स्वरूप शुरू में पकड़ में आया था, और वह पकड़ में न आवे। तो जब तक न आवै, बैठे रहें। पकड़ते–पकड़ते, छः–छः घंटा बैठे रह जायें। एकदम पागल हो जायं। एकदम पागल की तरह। तो इस तरीके से, जब लगन हो जाती है, तो ऐसे ही होता है। फिर ऐसे नहीं होता है, कि नहीं हुआ तो नहीं हुआ–क्यों नहीं हुआ? हमारी अपनी कमी है। क्यों नहीं झुंझलाते? क्यों नहीं तीव्र अनुराग से युक्त हो जाते? क्यों नहीं हमसे हो रहा है? हममें कौन कमी है? भगवान, क्या मैं इतना गिरा हुआ हूँ, कि आप मुझे उठा नहीं सकते। यह सब अनुराग–भाव अपने गुरू से, इष्ट के प्रति, होना चाहिए, रोना चाहिए, घबड़ाना चाहिए, लड़खड़ाना चाहिए तब फिर वो परमात्मा दयालु होते हैं–उठा लेते हैं। सम्भाल लेंगे, एडजस्टिंग दे देंगे। तो वह तरीका, इस प्रकार से है। जब साधक ऐसा करेगा, तब फिर साधक को बल मिल जाता है, क्षमता आ जाती है। उसके हृदय में नम्रता आ जाती है, और वह अपने गंतव्य स्थान की ओर चलने लग जाता है। और जो ऐसा नहीं करते हैं–दस नाम लिये और फिर छोड़कर चल दिये। थोड़ा मन लगा फिर मन ही नहीं लगता, तो कोई और कमी है। जैसे कभी–कभी मन इसलिए भी नहीं लगता कि ये इड़ा पिंगला (स्वर) गलत चल रहा हो, तो भी नहीं लगता। रात को सूर्य नाड़ी और दिन में चंद्र नाड़ी। चलना चाहिए। यह जानकारी होना चाहिए। अब तुम रात को ध्यान में बैठे, और बायां स्वर चल रहा है, तो मन नहीं लगेगा। इस तरह से बहुत सी बातें हैं, जो समझ लेना चाहिए तब उसकी धारा ठीक हो जाती है। समझ करके अभ्यास करें, तो कितना भी कमजोर होगा, वह निकल सकता है। भगवान के यहाँ तो सब तरह के भर्ती होते हैं। निम्न श्रेणी का भी होगा–अच्छी श्रेणी का भी भर्ती होगा। भजन करने का तो सबको समान अधिकार है। लेकिन अपनी–अपनी गति होती है। गति सभी के पास है। जो निम्न श्रेणी का है वह तीव्र गति पा सकता है और जो तीव्र गति वाला है वह निम्न में आ सकता है। इसलिए गोस्वामी जी ने भक्ति को ज़्यादा महत्व दिया। ज्ञान को कम दिया, वैराग्य को कम दिया, भक्ति को ज़्यादा महत्व दिया। तो साधन में जितनी तीव्र गति है, उसी का नाम भक्ति है।

पंथ जात सोहहिं मति धीरा।
ज्ञान भगति जनु धरे शरीरा।।

मनु सतरूपा, पति–पत्नी। मनु ज्ञान है, सतरूपा भक्ति। अब हैं तो दोनों पति–पत्नी। इनमें भेद तो है नहीं। भगवान की जानकारी करना ज्ञान है। और जानकारी के पश्चात लग जाना–अब हटना नहीं है। यह भक्ति है। तो दोनों एक हो गए–

अस विचार पंडित मोहि भजहीं।
पायहु ज्ञान भगति नहिं तजहीं।।

दोनों एक ही हैं, उनमें अंतर नहीं। और अगर कोई इन्हें अलग करके कहता है, कि ज्ञान अलग है, भक्ति अलग है, तो वह नहीं जानता। यह तो साधन सब एक ही हैं। ये तो विभिन्न प्रकार के उसके अवयव हैं। अंग–प्रत्यंग हैं। इसे गाड़ी कहते हैं–गाड़ी तो एकई है। चक्का अलग है, रिम अलग है, टायर अलग है, बाडी अलग है–ये कितने पार्ट्स होते हैं?

और इन सबका मिलकर नाम है–गाड़ी। इस तरह से जितने भी साधन के अंग हैं सबको लेकर चलना चाहिए। इस प्रकार से जो साधक, साधना करते हैं, और तीव्रतर वैराग्य लाते हैं और गति लाते हैं। तो वो भाग्यशाली अपने गुरू के लाल, अपने भगवान के प्रिय बन जाते हैं। और सफल हो सकते हैं।

समाधि के नाम पर, कुछ लोग कई तरह के स्वांग दिखाते हैं, समाज में। गड्ढे में बैठ जाते हैं–24 घंटे, 48 घंटे–ऐसा भी होता है। लेकिन जहां तक समाधी की बात है,यह तरीका अच्छा नहीं माना जायगा। अभ्यास के द्वारा, प्राणायाम किया जा सकता है–श्वासा को रोका जा सकता है। लेकिन जिस श्वासा को हमने रोका–एक घंटे, दो घंटे, दस घंटे, एक रोज, दो रोज, चार रोज, साल भर, आखिर फिर तो वह श्वासा चलेगी ही। इसलिए उसका वैल्यू तो कुछ नहीं है फिर हमें वहीं आना पड़ेगा। इसलिए ऐच्छिक समाधी जो करता है, तो वह नष्टप्राय हो जाता है। मेरे विचार से। समाधी का अर्थ सम के आधीन होना है। इसलिए हम जो समत्व को बार–बार बताते हैं। बार–बार आकाश की ओर निहारते हैं। आकाश का नाम बार–बार लेते हैं। उदाहरण देते हैं, कि ऐसे हम बने। सम के आदी हो जायें। सम, आदी स समाधी। उसको समाधी कहते हैं। वह कई किस्म की होती है। न्यूनतम होती है फिर उससे कुछ ऊँचे दर्जे की होती है। पातंजल योग दर्शन में भी आया हैं–सविकल्प समाधि, निर्विकल्प समाधि इस तरह से कई समाधी होती हैं। तो समाधी का अर्थ थोड़ा भेद करके, कई तरह से दिया गया है। लेकिन मेरे विचार से जो हम लोगों ने समझा है। उसके हिसाब से, समत्व के आधीन हम बन जायं–सम के आदी हो जायं। और वह आदत फिर छूटे न। (समत्व में स्थित रहे), और उसी में हम टंगे रहें। यह जो समाधी है। वही सबसे श्रेष्ठ होती है–और उसमें जब हम दृढ़ हो जायें, तो सब समाधियाँ दिख जाती हैं।

ऐसे ढंग से इस स्तर में जब साधक पहुँचता है, और उसमें उसकी रहनी हो जाती है, समत्व को प्राप्त कर लिया तो चाहे हो निम्न श्रेणी की, उसको समाधी मिल जाया करती है। फिर सविकल्प, फिर निर्विकल्प, फिर कैवल्य, अनेक समाधियों का वहाँ उद्‌गमन होता जाता है। वहाँ ऐसा नहीं है कि बैठ जाया जाय, और फिर समाधी लगाई जाय। यह तो साधना में जैसे आप आगे बढ़ते जायेंगे। और जो कोष्ठक हैं शरीर के, अवस्थाओं के, उनको प्राप्त करते जायेंगे, वैसे–वैसे ये समाधि देते जायेंगे, देते जायेंगे। इस प्रकार से हम सम के आदी बन गए। हम अमुक स्थिति के आदी बन गए। यह डिग्री मिल गई–यह डिग्री मिल गई। आखीर में फिर कैवल्य है। बीज, सबीज ये सब आती हैं। ये करने वाले नहीं, ये लिखने वाले लिखते हैं। और एक होती है–विदेह समाधी। विदेह समाधी, और जीवनमुक्त ये भी दोनों समाधि हैं। पुस्तकों में तुम कहीं भी पढ़ो, विदेह मुक्त को ऊंची डिग्री दी गयी है और जीवनमुक्त को नीची डिग्री। और प्रैक्टिकल में ऐसा नहीं है। प्रैक्टिकल में उसका ढंग है कि एक अवस्था आती है–जब स्पीड में साधक आगे बढ़ता है, उसमें शरीर का ध्यान नहीं रहता। उस अवस्था को कहते हैं–विदेह समाधी। और फिर जब वह अवस्था जीत ली गई। खा रहे हैं, खाने के संस्कार नहीं पड़ते, हाथ हिल रहा है, हिलने के संस्कार नहीं बनते। बोल रहे हैं–बोलने के संस्कार नहीं बनते। जब यह अवस्था आ जाती है। जीवन के जितने भी क्रिया कलाप हैं साथ–साथ चल रहे हैं, और फिर भी मुक्त हैं, यह सबसे ऊँची डिग्री है। आखिरी–

'जीवनन्मुक्त ब्रह्म पर,'

जीवन भी है, मुक्त भी हैं।

बिनु पग चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म करै विधि नाना।

तो प्रैक्टिकल में यह दिखाई पड़ता है। थ्योरिटिकल में इसे कम दर्जे का दिखाया गया है, विदेह अवस्था को आगे दिखाया गया।

इसलिए स्पीड भरो। भूख न लगे, प्यास न लगे। आप ऐसा कह सकते हो, जैसे नशा हो गया है–ईश्वर का। और जब तक वह न मिले, तब तक हम पागल हैं। यह बहुत दिन नहीं चलता। एक अवस्था होती है। और स्पीड से इसे प्राप्त कर लिया जाता है। और जहाँ यह प्राप्त हुई तहाँ–

'सुखी सिराने नेम'

फिर सारे नियम शान्त हो जाते हैं। फिर जो जीवन है, वह समर्पित हो चुका है। उसका न रह गया, भगवान का हो जाता है। और मुक्त की डिग्री मिल गयी, भगवान ने दे दी है। भगवान के कार्य सब उनके शरीर से होने लगते हैं–दूसरे हो नहीं सकते। उनके विचार बदल चुके, आत्मा बदल कर विष्णु बन चुकी है। इस तरह से उनका सब बदल जाता है, ईश्वर के गुण धर्म आ जाते हैं। जीव के गुण धर्म समाप्त हो जाते हैं। ऐसी जो अवस्था है–उसे जीवन मुक्त कहते हैं। उसे समाधी कहो, या अवस्था कहो या रहनी कहो। वह सबसे ऊंची मानी जाती है। तो इस तरह से समाधी, मेरे विचार से, सम के आदी होना चाहिए। तो आप सब लोगों से मेरा कहना यह है कि पढ़ो, और करने में ज़्यादा समय दो, और उससे तय करो। एक तरीका है–इसे समझने का। प्रयास किया जाय, कि हमारे अंदर जो समझ आई है, उसका एक खाका खड़ा हो जाय। हमारी समझ के अनुसार–यह ऐसे–ऐसे होना चाहिए। जब हम पुस्तक पढ़ें तो–उसमे अपनी समझ के अनुरूप खाका तैयार कर लें। तो ऐसा होगा कि तुम्हें परम संतोष आ जायेगा। सबसे बड़ी बात है, कि पुस्तकों में मतभेद जो मिले, तो उसे अपने अंतर्मन में लाकर, अपनी समझ के साथ एडजस्टिंग कर लेना चाहिए। हमारी अपनी एडजस्टिंग है–इन सबसे भी थोड़ा–थोड़ा सहारा मिल गया। और गुरू के वचनों से भी मिल गया। और जब सबको अपनी समझ के साथ एडजस्टिंग कर देंगे, तो वह अच्छा माना जायगा। और उससे कल्याण होगा। इस तरह से जो समाधि का अर्थ है वह सम के आदी से लेना चाहिए। समत्व में रहने की आदत। समत्व की रहनी। यह है–समाधि।

- करनेकीबात

- लीला–रहस्य
- तस्मात् योगी भवार्जुन
- प्राणायाम से भजन तक

जब हम श्वासा का जाप करेंगे। तब हम जान सकेंगे कि श्वासा जाप में नहीं आती तब श्वासा का काम क्या है? और जब श्वासा को हम, जाप में लेते हैं–और जाप के द्वारा श्वासा को अर्जित या अनुशासित कर लेते हैं, तब श्वासा क्या करती है? श्वासा और संकल्प में क्या अंतर है? किस जगह से संकल्प, श्वासा में ओत–प्रोत होकर बाहर आते हैं। और किस समय, श्वांस के साथ निकल जाते हैं–यह सब जानकारी जाप के द्वारा–अजपा, पश्यंती, परा, अनहद–इनके जाप से, पता चलता है। और अगर दूसरे ने इसका रिसर्च किया है, दूसरे ने इसको जपा है–वह जब बताएगा, तो उसकी गतिविधि, दूसरे के यहाँ फिट नहीं बैठेगी–इसका भी फर्क आ जाता है। क्यों आएगा, क्योंकि इस दुनिया की पीठ पर करीब पांच छः अरब आदमी हैं। करीब–करीब सब एक जैसे हैं–सबके अन्दर वही आत्मा है, सबके शरीर लगभग एक जैसे हैं। कुछ प्राकृतिक (भौगोलिक) कारणों से, कुछ लोग गोरे हो जाते हैं। खान–पान, भाषा–बोली में अंतर आ सकता हैं, लेकिन प्राण एक से हैं–प्राणों में चेतन का प्रतिबिम्ब जीवात्मा का है–तो इसमें कोई अन्तर नहीं है। इसलिए मूल वस्तु तो एक ही है।

लेकिन मूल वस्तु को, इस शरीर में, कार्यरूप में परिणत करने पर, अन्तर आ जाता है। जैसे एक ही माता–पिता से चार भाई पैदा हुए, तो चारों के शरीर एक जैसे नहीं होते–कुछ न कुछ अंतर होता है। जब 6 फुट के शरीर में अन्तर होता है, तो यह तो अन्तःकरण है। चार अंतःकरण हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार हैं। फिर उनके कार्य रूप में परिणत करने के लिये 10 इंद्रियाँ हैं। इन सबमें बहुत अंतर आ जाता है। इसलिए रुचि अलग बनी रहती है। और रुचि के अनुसार क्रिया बनती है। देखिये, हम उदाहरण देकर बतायें। जैसे महाभारत है। यह एक साधनात्मक चार्ट है। एक नाटक है। कैसे एक ऋषि ने अपने अंतःकरण में ईश्वर की प्राप्ति का अुनसंधान शुरू किया और कैसे अन्त किया? यह एक ऋषि की चार्ट है। यह इस प्रकार की है। रामायण दूसरे ऋषि की चार्ट है।

देवासुर–संग्राम तीसरे ऋषि की चार्ट है। मानव राक्षस संग्राम, चौथे ऋषि की चार्ट है। सुर–असुर संग्राम, पांचवें ऋषि की चार्ट है। कृष्ण, कंस की लड़ाई एक अलग ऋषि की चार्ट है। लोग अलग–अलग रिसर्च करते हैं, डिग्री पाते हैं। लेकिन अलग–अलग अपनी थीसिस करते हैं–एक ही तरीका तो है नहीं। इसलिए रुचि के हिसाब से, अलग–अलग, अलग–अलग हो जाता है। इसलिए साधक को इतना समझना पर्याप्त होता है, कि इसको कैसे जपा जाय? और इसका जपने का यह उद्देश्य है। और किस तरीके से इसमें जो अटैक होते हैं, जो विजातीयों के विघ्न आते हैं, उनको कैसे रोकना चाहिए। और इसमें जो सुविधाएं मिलती हैं साधक को, वो ये–ये हैं। इतना जानना चाहिए, साधक को। और करना चाहिए। फिर स्वयं उसे अनुभूतियां मिलेंगी, अनुभव होगा, कि मैं कहाँ पहुंच गया, मेरे सामने कैसा दृश्य है। पीछे क्या है, बगली में क्या है, दायें क्या है, बाएं क्या है। और क्या परिवर्तन हो गया। कितना आया, कितना नहीं आया। फिर आगे बढ़ेगा फिर एक्सपीरियंस आएगा फिर आगे बढ़ेगा। अब समझ में आ गया होगा। इस तरीके से ठीक रहता है। और अगर साधक करने में न जुटे और सोचे कि तर्क–वितर्क में काम हल हो जाय, तो यह नहीं हो सकता। चलना पड़ेगा। जहाँ तक प्रश्न है थ्योरिटिकल विषय का, वह अपनी जगह तक जायेगा। केवल हमें जानकारी दे सकता है। बातों से उस विषय की गहराई का कुछ पता लग सकता है। लेकिन थ्योरिटिकल है। प्रैक्टिकल तो तभी होगा, जब हम स्वयं उस पर चलें, और उसकी अनुभूति करें। और उसका अनुशासन करें। योगानुशासन। योग का अनुशासन। योग के ऊपर अपनी सवारी रखना (आरूढ़ होना)। योग को किया जाना। यह मतलब है। करते–करते मिल जाये, यह योग की शैली है। या प्रश्न हल करते–करते मिल जाय, यह दर्शन की शैली है। ज्ञान की शैली है। जिसमें साधना नहीं बनती है। जो वेदान्त कहा जाता है–वह एक अलग शैली है। सांख्य शास्त्र जिसको कहा जाता है। वह एक शैली है। खाली स्पेशल एडजस्टिंग होती है, उसमें। वार्तालाप से एडजस्टिंग होती है, और उस पर फिर तुम दृढ़ हो जाओ। जो चीज़ समझ में आ जाय, सुनकर एडजस्टिंग हो जाय, और उस पर तुम मचल जाओ। दृढ़ हो जाओ। निश्चय हो जाओ। बस इसको वेदान्त कहते हैं। 'अहं ब्रह्मास्मि' कहते हैं–वह दूसरा विषय हो गया। हम लोगों के यहां तो अच्छा इसको समझते हैं कि योग, भक्ति और ज्ञान। तीनों को वनथर्ड–वनथर्ड लेते हैं। यह अच्छी चीज़ है। इससे यह है कि सर्वांगीण साधक बनता है। वेदान्त को लेकर अगर तुम चलते हो, तो वेदान्त अनुभूतियों को नहीं मानता है। वेदान्त यह नहीं कहता कि भगवान में कोई आनन्द है। आनन्द है, तो अनानन्द पैदा हो जायेगा। अच्छा है, तो बुरा पैदा हो जायेगा। यह रिऐक्शन–ऐक्शन नियम है, दुनिया का। इसलिए पकड़ में नहीं आता। अन्योन्याश्रय दोष के वशीभूत नहीं होता, वेदान्त। इसलिए वह साधना दूसरे ढंग की होती है। और वह देहाभिमानियों के लिए कठिन भी है। ऐसा ऋषियों का मत है। और योग जो होता है। योग

का मतलब है कि अपने शरीर के जितने अवयव हैं। जिनको पहले के गुरू लोगों ने ऋषियों ने बताया है–उनको जागृत करने का, साधन मिलता है–योग से। जैसे–कमल, चक्र, कुंडलिनी है। मूर्धा में क्या है कंठकूप में क्या है–ये सब जगाने का मौका भी रहता है। ध्यान करने से, श्वासा के जप से, और साथ–साथ ज्ञान का सहारा भी लेते हैं। बिना ज्ञान के तो कोई चीज़ हो नहीं सकती। इसलिए वेदान्त का भी थोड़ा पुट रहता है। और योग ही योग और जागृति में पड़ जाएंगे, तो कहीं आनन्द आएगा, कहीं विह्वलता आएगी। कहीं चमत्कार दिखाई पड़ेगा, कही कुछ। तो उसमें भटकने का डर रहता है। इसलिए वही–लक्ष्य पर, एक धुरी (खूंटी) गाड़ दी जाती है, ज्ञान की। उसी धुरी में साधक दृढ़ रहता है। फिर यह क्रिया रूपी साधना करके, योग में जागृत रहता है। जो यह कहते हैं कि भक्ति मार्ग अलग है, ज्ञान–योग अलग है। वह तो एकांगी हो गया, जो अलग है। ऐसा नहीं। यह सर्वांगीण है। अपनी–अपनी जगह सब काम करते हैं। हमारे विचार से, सबको जगह चाहिये। और जब तक सबको सीान नहीं दिया जायगा, तब तक सार्वभौमिक अनुभूतियाँ नहीं आती हैं। इसलिए समष्टिगत अन्वय व्यतिरेक की युक्ति द्वारा चेतना का प्रतिबिम्ब प्राप्त करना है, तो इसको लेना पड़ेगा। इसलिए इसका अभ्यास ही सर्वोपरि है। अभ्यास करते रहना चाहिए। और यह नहीं हमको करना चाहिए कि अभ्यास करते समय हम चिल्लाएं, कि नहीं मिल रहा है। कि उठाये झंडा। भगवान के यहां यह नहीं करना चाहिए। जैसे कि प्रजातंत्र में लोग हल्ला मचा देते हैं। भगवान के काम में झगड़ा मचाना ठीक नहीं। यह तो हमारी गति के ऊपर निर्भर करता है। अगर ठीक गति से साधना की जाय, तो ऐसी कोई बात नहीं है कि प्राप्ति न हो। अगर हमारी गति में बाधा आती है। रुकावटें आती हैं। विक्षेप आते हैं, मल आतें हैं, आवरण आते हैं। और हम उनको हटाने में सफल नहीं हो पाते, तो अच्छे साधन वाले का भी पतन हो जाता है ज़रूरी नहीं है, कि तुम सफल हो जाओ। और यह भी ज़रूरी नहीं हैं कि कमजोर साधना वाले सब कमतर ही रह जायं। अगर पूर्व जन्म के पुन्य जागृत हो जायं, तो उसके सहारे वह भी निकल सकता है। इसलिए इसमें कुछ कहा नहीं जा सकता। साधक का मुख्य लक्ष्य यही होना चाहिए। कि नाम में लगे रहें। बैखरी वाणी, मध्यमा वाणी या पश्यंती वाणी या परा वाणी, जिसके हम अधिकारी हैं, उसमें। साधना हमारी, किस स्तर में पहुंच गई है। वह किस वाणी की मांग कर रही है, उस वाणी का, हमको जाप करना चाहिए। जिस वाणी का हम जाप करें–(जैसे पश्यंती) तो फिर ध्यान भी उसी स्तर का करना चाहिए। रूप का ध्यान बाहर भी हो सकता है, हृदय में भी हो सकता है। वाणी के हिसाब से रूप का ध्यान हो सकता है। इसी प्रकार लीला चार प्रकार की होती है। एक तो स्थूल सुरा संबंधी है। बैखरी वाणी से लेबल करेगा, फिर सूक्ष्म (स्वप्न) सुरा संबंधित अनुभव है–मध्यमा वाणी से लेबल करेगा। फिर जो सुषुप्ति सुरा संबंधित अनुभव है–वह पश्यंती वाणी को लेबल करेगा। फिर परा वाणी है–परावाणी का सम सुरा संबंधी अनुभव। इस प्रकार से चार तरह की लीला भी होती है। लीला वह कही जाती है, जो भगवान के, और साधक के बीच में क्रियाएं होती हैं। आदान–प्रदान होता है। जो हम लगन लगाए हुए हैं–भगवान के लिए, भगवान हमें अपनी शैली से हमारी साधना की योग्यता के अनुसार हमें सूचित करता रहता है। हमको सजग करता है, हमको बताता है, हमको गाइड करता है। वह संकेत के–अनुभव के–रूप में किया जा सकता है। लीला के रूप में किया जा सकता है। या रहस्य (रास) के रूप में किया जा सकता है। भगवान क्या रहस्य कर रहे हैं। ये सब एक्सपीरियंसेज़ हैं। इसे कहते हैं अनुभव–जो ऐसे समझ में नहीं आता है। एक्सपीरियंसेज़, अनुभूतियाँ। भगवान कृष्ण ने रहस्य (रास) किया था। क्या, रहस्य किया था? गोपियों के साथ में रहस्य किया था। तो, ये जो दस–पांच इंद्रियाँ है।, और

आत्मा कृष्ण है–यह रहस्य किया था। विरज में रहस्य किया था। जब साधक वीर्य और रज से विरत हो जाय अर्थात् स्त्री पुरुष के संयोग रूप जन्म–चक्र से अलग हो जाय तब यह रहस्य होता है। साधक के और भगवान के बीच में जो अनुभूतियाँ होती हैं। एक्सीपीरियंसेज़ होते हैं। और कम्युनिकेशन होते हैं। उन्हें वही समझाते हैं, और वही बता सकते हैं। उनके बीच में जो विशेष बातें होती हैं–उनको लीला कहते हैं, रहस्य कहते हैं। तो अलग–अलग सिस्टम है। अलग–अलग स्वभाव है। अब उस स्वभाव में हमें एक जनरल छाप छोड़नी है। हमें हरेक से कुछ ले लेना है–इससे भी लेना है, उससे भी लेना है, उससे भी लेना है, लेकिन देंगे हम अपने ढंग से। हमारा थीसिस हमारे ढंग का होगा। जैसे राम–रावण युद्ध तुलसी का है। महाभारत व्यास का है। अनेक ऋषियों का है–उनके अन्तःकरण में क्या क्रिया हुई–वो है यह। गोस्वामी जी कहते हैं कि मैं तो स्वंय अपनी अनुभूति के लिये लिख रहा हूँ, स्वयं अनुभूति के लिए। स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। अपने अन्तःकरण के सुख के लिए। मैंने सब कुछ यह पाया है। मैं ड्रामा थोड़े कर रहा हूँ, नाटक थोड़े कर रहा हूँ, दुनिया को खुश करने के लिए। वह तो स्पष्ट कहते हैं। लोग कहते हैं–समाज के लिए है। तो लोग कहते हैं। गोस्वामी जी ने तो नहीं कहा। जिसे ठीक लगता है, गोस्वामी जी की बातों को मान ले। बहुत से लोग रामायण को जला रहे हैं–नहीं ठीक लगता होगा। इसके लिए क्या कहा जाय? यह कोई कम्पलसरी विषय थोड़े ही है। तो इस तरीके से, अब यह क्लियर हो गया होगा कि हमको–तुमको उसमें लगना है। चाहे हम श्वासा को पकड़ कर चलें, चाहे हम ध्येय को पकड़ कर चलें। चाहे हम ज्ञेय को पकड़ कर चलें। अगर ज्ञेय को पकड़ कर चलते हैं तो ज्ञेय, ध्येय हो गया। ज्ञान उसका चिंतन हो गया, और ज्ञाता मन हो गया। ज्ञेय और ज्ञाता की जानकारी ज्ञान है। बस ये त्रिपुटी है। ज्ञेय हमारा इष्ट है–ध्येय हमारा इष्ट है, और ध्याता हमारा मन है। और ध्यान हो गई जानकारी। बस इन तीनों को हमें विलुप्त कर देना है। देखते–देखते न ध्येय रह जाय, न ध्यान रह जाय, न ज्ञेय रह जाय, हम गायब हो जायं। ऐसी अवस्था हम सबकी भी आनी चाहिए। श्वासा में लगे रहें। ऊपर जाय तो रा, नीचे जाय तो म। और मन चुप खड़ा, न कुछ सोचता है, न कुछ बोलता है। बस श्वासा को देखता है। इस तरह से देखते–देखते, देखते, जब तल्लीनता आएगी, और यह श्वासा तेल धारा सदृश्य बहेगी। तो श्वासा खड़ी हो जायेगी–एक समय आएगा। चाहे एक सेकेण्ड के लिए ही हो। चाहे एक मिनट के लिये ही हो। और जब यह श्वासा खड़ी हो जायेगी, तो तुम्हारा संसार से पत्ता कट जायेगा। तुम ग्रेविटी पार कर जाओगे। और तुम्हारे पास्ट टेंस का जितना भी (कर्म, संस्कार) रिकार्ड है, हमेशा–हमेशा के लिए जलकर भस्म हो जायेगा। आगे रिकार्ड रह नहीं जायेगा। उसको मुक्त पुरुष कहते हैं–यह बहुत कठिनता से मिलता है। इसमें बहुत सी बाधाएं भी आती हैं। हम इतनी मेहनत करें, परिश्रम करें, इतनी लगन करें, कि लगते–लगते मन भागे, तो मन को पकड़कर फिर लगावें, फिर भागे फिरे लगावें, और हम न भागें।

'मन जाये तो जान दे, दृढ़ करि राखु शरीर'

शरीर न जाने पाये। शरीर पतित न होने पाए। मन अगर विषय की तरफ भाग भी जाए। मन बाहर चला जाय तो कोई बात नहीं, लेकिन शरीर न जाने पाये। मन का कहना, शरीर न करने पावे, तब भी गुंजाइश है। तब भी साधक बचा रह सकता है।

जैसे पंचवटी में राम, सीता और लक्ष्मण रहते हैं और वहाँ अटैक आया। देखिये मन भागा। और कहां चला गया। स्त्री के पास चला गया। सूपनखा के पास चला गया। चला गया न? चाहे सूपनखा आई–चाहे वह गए–एक ही बात है। विवेक रूपी लक्ष्मण ज्ञान रूपी

राम हैं, और शक्ति रूपी सीता है। तो अगर (मन) जायेगा–तो हर्ज क्या होगा? अगर हम भगवान को छोड़कर भगवान की माया में विचरेंगे। और उपभोग करेंगे, तो हमारी शक्ति का ास होगा न? तो फिर किसी तरह से विवेक काम कर गया, तो सूपनखा से तो बचा दिया। वहां तो हानि नहीं हो पायी। लेकिन बड़ी भारी हानि यह हो गई कि उसने माया के केन्द्र (मोह) को न्योता दे दिया। रावण (मोह) को जगा दिया। उसने कहा कि तुम सो रहे हो। यह (राम) बहुत गड़बड़ कर रहा है। अरे! मोह (रावण) तू सो रहा है। खाते हो, पीते हो विषय करते हो–तुम सो रहे हो। यही कहा सूपनखा ने रावण को। तुम्हारी छाती पर तुम्हारी आंखों के सामने, दुष्मन ने मेरी क्या हालत कर दिया? तो सूपनखा प्रकृति है। मोह रावण है। क्रोध कुंभकर्ण है। आसक्ति शरीर में, लंका है। संसार समुद्र है। इसमें विषय रूपी जल है। काया रूपी किला है। और इनके ठीक अपोज़िट इसी (शरीर) को पंचवटी–छिति जल पावक गगन समीरा–ये पंचवटी बनाते हैं। जहाँ विवेक लक्ष्मण, ज्ञान रूपी राम और शक्ति सीता रहते हैं। ये दो जगह हैं। और यहीं झगड़ा होगा। ईर्ष्या, स्पर्धा आदि त्रिजटा, सूपनखा, खरदूषण, बाली, सभी रहते हैं– यहाँ पर। ये सबसे आगे की लाइन में है। वहाँ जो फोर्स लगा हुआ है, बार्डर में। कोई आये तो वहीं डाउन करना तुम। ईर्ष्या, अगर किसी की उन्नति देखते हैं, तो हमें ईर्ष्या होती है। स्पर्धा होती है, कि हमसे आगे निकला जा रहा है। लोगों के सुख सुन कर आग लग जाती है। लोगों के दुख सुनकर, खुशी होती है। बड़ा आनन्द आता है। ये ऐसे (राक्षस) सब पड़े हुए हैं हमारे ही अन्दर यहाँ। ये सब बाहर नहीं हैं–बाहर हैं भी, तो हमसे क्या लेना–देना। यह दुनिया बड़ी लम्बी–चौड़ी है। इसमें क्या–क्या नहीं है। इससे तुम्हें कुछ मतलब है (क्या)? न इससे तुम्हें कभी टच होना है, न इससे तुम्हारा कोई मतलब है–तो आखिर आदमी बाहर क्यों अर्थ लगाता है? ये तो क्रियायें हैं, हरकत हो रही है। पहले विचार, फिर आपकी हरकत। हरकत के पहले वही वाणी में आ जाती है–फिर कर्तव्य (क्रिया) में परिणत हो जाती है। चाहे लड़ाई ले लो–चाहे प्रेम ले लो, चाहे झगड़ा ले लो, चाहे आनन्द ले लो। चाहे कुछ भी ले लो। अन्दर की बात है, जो बाहर दिखती है। तो अन्दर की बात तो हम करते नहीं, और बस कहते हैं–दशरथ नाम का एक राजा था अयोध्या में। त्रेता युग में हुआ था, राम का अवतार वहां। तब तो राम एक देश और काल का हो जाएगा। लेकिन ऐसा नहीं। यह सब दुनिया का प्रभाव है। जब हम दुनिया में पैदा हो जाते हैं, तो माता–पिता के आनुवांशिक गुण आ जाते हैं, जो उनके अंतःकरण में होता है। वही संस्कार बनने लगते हैं। अनुवांशिक होते हैं। और वही ढंग हम मानने लग जाते हैं। जो भी किस्सा कहानी सुनने को मिली, उसको बाहर की दुनिया की तरह ले लेते हैं–ऐसे स्त्री रही होगी–ऐसे यह रहा होगा–बस। चाहे वह अंतर्जगत की बात हो, हम उसी ढंग से लेते रहेंगे। ऐसे नहीं। अब जब हम अन्तर्जगत की पढ़ाई में लग गये, एडमिट हो गये, तो हमें अंतर्जगत से अर्थ लेना चाहिए। और हम बाहर जगत ही पढ़ाई करते हैं, तो बाहर का लेना चाहिए। आध्यात्मिक दृष्टि से चलना है, तो तुम्हें आत्मा की तरफ चलना पड़ेगा। बारीक चलना पड़ेगा, वही अर्थ लेने पड़ेंगे। तो महाभारत में देखिए–कितने बड़े योद्धा हुए–कैसा झगड़ा हुआ। क्या–क्या झूठ और मलवे से भरा पड़ा है। लेकिन निकालने वाले उसमें दोनों अर्थ निकाल सकते हैं। आप उधर से निकल रहे हैं–दो आदमी झगड़ रहे हैं, तो कहते हैं–अरे भाई महाभारत न करो। इस प्रकार महाभारत को झगड़े का (पर्याय) रूप मान लिया है। झगड़े का प्रतीक मान लिया है। लेकिन देखिये, महाभारत का, क्या सीधा सा अर्थ है। महा कहते हैं डिग्री को, भा कहते हैं ज्ञान को, रत कहते हैं लगा हुआ। महान ज्ञान में जो लगा है, उसे कहते हैं–महाभारत। अब देखिये उसी में अर्थ निकल गया–और जगह–जगह अर्थ निकल जायगा। ऐसे ही रामायण का निकल जायगा, राम का

निकल जायगा। क्यों निकल जायगा–क्योंकि अन्दर की ही तो बुराई है–जो बाहर झगड़ा होता है, वह पहले अन्दर ही (विचार) पैदा होता है। पहले विचार बनता है, फिर क्रिया होती है–हम पहले बता चुके हैं। नाभिकमल में संकल्प उठता है–बीज रूप में होता है। हृदय में आकर अंकुरित हो जाता है, फिर कंठ में आकर वाणी के द्वारा स्फुरित होता है और क्रिया के रूप में सामने आ जाता है। चाहे झगड़ा करो। चाहे प्रेम करो। कुछ भी करो। दुनिया कर रही है। पहाड़ बना लो। नदी बना लो, मकान बना लो। सृष्टि बना लो। अब ये तो तुम्हारे करने से होगा। उसका कायदा बन गया। उसका फारमूला बन गया। उसको कौन रोकेगा? मन की गति अगर बाहर जाती है तो हम चूक गए। और इसका कारण भी हम बता देते हैं, कि तुम अपने अंतःकरण मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को सोचने के लिए मना नहीं कर सकते–वह तो सोचेगा। चाहे तो विजातीय क्षेत्र में विचरेगा या सजातीय क्षेत्र में विचरेगा। मन का काम हैं संकल्प करना, चित्त का काम है चिंतवन करना, बुद्धि का काम है विचार करना, अहंकार का काम है अहंकार करना। चाहे माया के क्षेत्र में उससे क्रिया कराओ, चाहे भगवान के क्षेत्र में कराओ। एक सजातीय क्षेत्र में है, दूसरा विजातीय क्षेत्र में है। एक विद्या क्षेत्र है, दूसरा अविद्या क्षेत्र है। अब उसे बदलना है। बदलना है, तो फिर उसके लिए दुनिया अलग से बनानी पड़ेगी। अगर बाहर भी कोई घटना हुई, तो हमें नहीं मानना है। उसे अगर मानेंगे, तो हमें जाना पड़ेगा उसमें। अगर जायेंगे, तो सोचना पड़ेगा उसे। अगर सोचेंगे तो कल्पना करना पड़ेगा। कल्पना करेंगे, तो उसमें भाग लेना पड़ेगा। भाग लेंगे तो नरक में चले गए। इस तरीके से, अगर तुम्हारे सामने कोई कहानी, कोई नाटक ऐसा आ जाता है, ट्रांसफार्म कर दो, ईश्वर में ले आओ। यह माया वाली न रह जाय। इन नेत्रों वाली न रह जाय। इन नेत्रों से तो मकान दिखाई पड़ेगा, जल दिखाई पड़ेगा, हवा दिखाई पड़ेगी और ज्ञान–नेत्र खोल दो, तो उससे ईश्वर की चीज़ दिखाई पड़ेगी। सजातीय दिखाई पड़ेगी। तो फिर, इसका अपने ज्ञान (नालेज) से एक ऐसा रूप बनाओ कि इसका रूपांतर कर लो। यह होते हुए भी न रह जाय और उस विज्ञान में विचरण करो। विद्या के क्षेत्र में, भगवान के क्षेत्र में, और उसी का सोचो, विचार करो। तो देखो तुम रहते हुए संसार में, संसार से अलग हो सकते हो। इसलिए हम इसको ऐसा कहते हैं। और अगर तुम ध्यान में भगवान के क्षेत्र में पहुंच गए और फिर निकले ध्यान से। तो तुम बाप को बाप मानोगे, जात को जात मानोगे, देश को देश मानोगे, भाषा को भाषा मानोगे तो फिर झगड़ा होगा न, तुम्हारे दिमाग में। इसलिए इनको हल कर लिया जाय–बाहरी वालों का। तो राहत मिलेगी, चलने में आराम मिलेगा। इसलिए यह सुविधाजनक ज्ञान है। महात्माओं का ज्ञान है। महात्मा लोग उसी दुनिया में विचरते हैं। इसलिए गीता में बड़े–बड़े शास्त्रों में स्पष्ट कर दिया है–

'या निशा सर्वभूतानाम् तस्यां जागर्ति संयमी।'

यहि जग–जामिनि जागहिं जोगी

जिसमें सब लोग सोते हैं, उसमें संयम करने वाला (योगी) जागता है। और जिसमें संयम करने वाला सोता है, उसमें दुनिया जागती है। उलटा हो गया। तो उसका अर्थ क्या करोगे तुम? यही तो अर्थ है, कि हम देखते हुए भी मकान को नहीं देख रहे हैं। हम तो मकान को माया जानते हैं। यह है ही नहीं। हम तो मकान को मन जानते हैं–मकान को मन ने ही निकाला। मन में बनाने का विचार आया होगा, फिर नक्शा बना होगा। फिर ये हुआ वो हुआ। इसलिए अगर ऐसा सुविधाजनक साधना में सहायक ज्ञान, तुम्हारे पास हो जाता है तो इसमें हर्ज ही क्या है? इसमें तो तुम्हें लाभ ही लाभ है। फ्यूचर में भी लाभ है, प्रजेन्ट में भी लाभ है। तो इस तरीके से सोचना चाहिए प्रश्न यह है कि हम जितना लगेंगे भगवान में

उसके नाम में ज्यों–ज्यों हम लगते चले जायेंगे, तो फिर वह अपने से रास्ता बताना शुरू कर देगा। यह तरीका सर्वोच्च माना जायेगा। जब हम लगते हैं, और नहीं लग पा रहे हैं, फिर जो उस रास्ते से गया है, उससे पूछते हैं। तो जो वह (बाहर) थोड़ा–थोड़ा बता देते हैं, वह थ्योरिटिकल होगा। और फिर तुम जब प्रैक्टिकल करोगे, तो वह ठीक नहीं होगा। इसलिए प्रैक्टिकल विषय, प्रैक्टिकल ही क्षेत्र में होना चाहिए। उसका प्रभाव ज़्यादा पड़ेगा। जैसे कोई कीमती चीज़ हमारे पास आ रही है। अब किसी ने बता दिया कि करोड़ों की चीज़ है, वह आपके पास आ रही है। अच्छा अब वहां से चल दी है। अब तीसरे ने बताया, कि वह इतनी बड़ी है, उसमें इतनी चमक है, फिर ऐसी है, फिर ऐसी है। तो उसके मिलने का जो आनंद है–उसमें थोड़ा अंतर आ जायगा। पहले से उसका (कल्पना में आनंद का) उपभोग करने लगे। दस पांच पैसा तो कर ही ले जायेंगे। तो उतना (आनन्द) घट ही जायेगा। वह अच्छा नहीं माना जाता। हमारे ऊपर सम्पूर्ण, सौ पैसा का असर होना चाहिए। जब वह मिले। छाप छूट जाय, हमारे ऊपर। दबाव आ जाय, उसका। फिर हम हटें न उससे। फिर ऐसा संबंध हो जाय, कि वह हमसे न हटे और हम उससे न हटें।
ध्यान धनुष का काम है, ज्ञान तरकश का काम है, वाणी वाण का काम है–बस इतना ही तो उसके पास है। विवेक लक्ष्मण का काम है और शक्ति सीता का काम है। यह साधक के अंदर की बात है। अवध कहते हैं शरीर को। एक अवधि के लिये यह शरीर हमे मिला है। दशो इन्द्रियाँ दशरथ हैं, भक्ति कौशिल्या है, कर्म कैकेयी है, सुमति सुमित्रा है। ज्ञान रूप वशिष्ठ है। श्वासा सरजू है।

'जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिशि सरजू बह पावनि।।
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं वासा।।

यह नई बात नहीं है। श्वासा में जो लीन हो जायेगा जो इसमें खो जायेगा–उसे प्राप्ति तो होगी। तो जब दसो इंद्रियों को हमने रोका, साधन में लगाया, ज्ञान–गुरू की कृपा से, इस अवध में। तो अब एक की ज़रूरत थी। रोज की परेशानी थी। मन रूपी मारीच यज्ञ नहीं करने देता। जानने नहीं देता ईश्वर को। यह स्वभाव रूपी सुबाहु हड्डी मांस फेंक देता है–विघ्न कर देता है। स्वभाव बन गया है, विषय करने का। स्वभाव बन गया है–मीठा खाने का, स्वभाव बन गया हे–नालायकी करने का, स्वभाव बन गया है–खराबी करने का। यह स्वभाव रूपी सुबाहु है। और मन रूपी मारीच है। और ये तर्कना रूपी ताड़का के दोनों लड़के हैं। तो अब क्या किया जाय। तो एक ही उपाय है–दूसरा नहीं है। अब विश्वास (आत्म विश्वास) रूपी विश्वामित्र आवे, कि हमारे पास ताकत आ गयी। हमको विश्वास आना चाहिए। तो जहाँ विश्वास अवध में आए। तहां वशिष्ठ बोले–दशरथ! चलो देखो, महर्षि आये हुए हैं–चलो उनके चरणों पर गिरो। उनको लाए, पैर धोये, बैठाए और कहा अहोभाग्य हैं, कि इतने बड़े महर्षि मेरे यहाँ पधारे। मेरा वंश तर गया, मेरा कुल कुटुंब तर गया। अब आप बताइये कि किस हेतु से यहाँ पधारे हैं, वह हेतु बताइये। जिससे मैं सेवा के लिए तैयार हो सकूं। उसे पूरा कर सकूं। तो वह बोले राजन् हम अपना हेतु बताएंगे। तुम बहुत अच्छे मालूम पड़ते हो। तुम सूर्यवंश के राजा हो। तुम नहीं पूरा करोगे, तो कौन करेगा? तो राजन्! मुझे राम को दे दो। राम और लक्ष्मण, दोनों भाईयों को दे दो। मुझे असुर सताते हैं, और मुझे ऐसी अनुभूति हुई है, कि इनके द्वारा काम होगा। तो दशरथ बोले–मैं इनको नहीं दूंगा। पहले तो सब देने को कहा था। लेकिन इतना मोह था। तो वशिष्ठ बोले, राजन्! ये राम को राम बनाने आए हैं। अभी राम अधूरा है। राम पूरा नहीं है। ये राम बनाएंगे इसको। इनके पास ऐसा फारमूला है, कि राम को राम बना देंगे। अभी यह

अधूरा है–इसे पूरा राम बना देंगे। इसलिए इन्हें दो, मोह का त्याग करो। तो फिर दे दिये। लेकर गये। तो पहले ताड़का मारी गई। ये जो तर्कनायें हैं हमारे हृदय में, यही ताड़का है। और मन रूपी मारीच है। और जो मन का बुरा स्वभाव बन गया है, यही सुबाहु है–यह सब विघ्न डालते हैं–हमारी साधना रूपी यज्ञ में। हमें अनुसंधान नहीं करने देते। हमें यज्ञ अर्थात् ईश्वर की जानकारी नहीं करने देते। तो एक ही चीज़ की कमी है हमारे पास, कि विश्वास नहीं है हमारे पास और अगर विश्वास हो जाय तो कार्य में परिणत हो जाय। तो जहाँ विश्वास (विश्वामित्र) आए अवध में। और राम लक्ष्मण को साथ लिये तहाँ फिर शुरू हो जायगा। तर्कना रूपी ताड़का को मारा। तर्कना हीन हुये। निस्तर्क हुए। कोई तर्क नहीं रह गया। तब क्या है? तब तो रैपिड प्रमोशन होगा। अब तो जल्दी से जल्दी आगे–ऊपर बढ़ जायेंगे। अपने साधन में आगे बढ़ जायेंगे। तब फिर गये। यज्ञ शुरू किये–जानने का प्रयास किये। सुभाव को खतम किया। परमानन्द की प्राप्ति हो गयी।

'गुन सुभाव त्यागे बिना दुर्लभ परमानन्द'

सुभाव को खतम किया और मारीच को दूर हटा दिया। फिर मारेंगे, वहाँ पंचवटी में। मन थोड़ा आगे जाकर खतम होता है। और फिर न्योता मिल गया। जनक राजा का न्योता। महर्षि पधारे–धनुष यज्ञ कर रहे हैं। धनुष जो तोड़ेगा, उसी के गले में, सीता वरमाला पहनाएगी। तो विश्वामित्र को थोड़े पहनाना था। यह क्यों कोई ख्याल नहीं करता–क्यों बुलाया था विश्वामित्र को? ऋषि तो उसी के पास तमाम थे। स्वयं जनक भी ऋषि (योगी) था। महान महात्मा था वह, ऐसा लिखा मिलता है। लेकिन नहीं। योग रूपी जनक। तर्कना रूपी ताड़का के मारे, मन मारीच और खराब स्वभाव के मारे जो हम अभी तक योग में आरूढ़ नहीं हो पा रहे थे। इन सबके रूप में जो बाधाएं थीं, वो जब हट गयीं और विश्वास जब दृढ़ हो गया। तो अब योगारूढ़ होने का समय आ गया। जनक– योग का निमंत्रण मिल गया। और जहाँ योगारूढ़ होने का समय आया–बोले, राजा जनक का न्योता आया है, राम–लक्ष्मण मेरे साथ क्या नहीं चलोगे? राम लक्ष्मण का न्योता तो नहीं था। राम–लक्ष्मण तो ज्ञान और विवेक हैं कोई आदमी तो हैं नहीं कि न्योता आवे। न्योता तो योग का साधक के लिये है। योग कोई आदमी तो नहीं है। योग है जिससे शक्ति जनम लेती है। क्षमता आती है साधक में। जनक का अर्थ है जिससे शक्ति जनी जाय। शुद्ध अर्थ जनक का होता है पिता, जिससे कोई चीज़ जनी जाय। पिता को जनक कहते हैं। जनक–योग। योग करेंगे, तो सीता–शक्ति पैदा होगी। तो न्योता आ गया–क्यों न्योता आ गया, क्योंकि जो बाधाएं थीं। तर्कना ताड़का, सुभाव–सुबाहु और मन मारीच। सबको हटा दिया गया। तो अब योग को मिलने में कोई दिक्कत नहीं रह गयी। तो योग रूपी जनक है। और ध्यान रूपी धनुष है। जो ध्यान रूपी धनुष को तोड़ेगा वह शक्ति रूपी सीता को प्राप्त करेगा। नाथ शंभु धनु भंजनि हारा। होइहैं कोउ एक दास तुम्हारा।।

तो वहां कोई राजा थोड़े ही है। यह तो एक रूपक बनाया गया है। वहाँ तो सब साधक हैं। और साधक को राजा कहना उचित ही है, वहां पर। राज किसको कहते हैं–धन को,

वैभव को। महापुरुष के पास भगवान रूपी वैभव है। उसके पास ध्यान रूपी वैभव है। इसलिए अगर साधक को राजा कह दिया जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होती। तो इसलिये राजा–साधक को कहा गया। जो सभी ध्यान रूपी धनुष में जूझे पड़े हैं। देखो जितने बड़े–बड़े राजा हैं सब। और सब उठते हैं अपने से, कि मैं तोड़ता हूँ–कि मैं अपने मन को रोक देता हूँ और मन रुकता ही नहीं। समझ में आता है? हां तो सभी साधक ध्यान रूपी धनुष पर ज़ोर आजमाइश करते हैं। उनमें कोई–कोई सफल होते हैं।

'नाथ शंभु धनु भंजनि हारा। होइहैं कोउ एक दास तुम्हारा।।'

'राम कहेउ जस भाजन सोई। नाथ कृपा तव जापर होई।।'

तो भाई, भगवान जिसको दे दे वही पाएगा। वही तोड़ेगा, वही सीता को वरेगा। और जो वर गया। तो हो गया–

'त्रिभुवन जय समेत बैदेही। विनहि विचारि वरइ हठि तेही।।'

त्रिभुवन जय समेत का यहाँ क्या मतलब था, यह कैसे कहा गया? तो साधक अपने स्वरूप को प्राप्त करता है, वह त्रिभुवन में व्यापक चीज़ होती है। हाँ बहुत सी बातें ऐसी हैं, भगवान की लीला बड़ी विचित्र होती है। समझना चाहिये और इसको अपने में लेकर, उसका सही अर्थ लेकर, उसको करना चाहिये। इस विषय में कहीं कोई दिक्कत हो, थ्योरिटिकल एड लेने की बात हो, तो उसे ले लेना चाहिए। लेकिन करना तो पड़ेगा।

'कौनिउ सिद्धि कि बिनु विश्वासा। बिनु हरि भजन न भव भयनासा।।'

अगर हम कोई साधना करेंगे और कुछ हमें चमत्कार दिखाई पड़ता चला जाय तो हमें अट्रैक्शन बढ़ता चला जायगा। है न ऐसा? पढ़ा–लिखा आदमी तो ये सोचेगा। कुछ दूर तक यह भी माना जायगा। कि चमत्कार आना चाहिए। तो फिर दृढ़ विश्वास आएगा। लेकिन कुछ देख करके, उसके साथ–साथ फिर अंधविश्वास भी लेना पड़ता है, इसमें। दोनों बाते आती हैं। ज़रूरत पड़ने पर सभी औजार इस्तेमाल किए जाते हैं। अब यह साधक विशेष के ऊपर है, कि किस तरीके से उसकी गतिविधि ठीक होगी। किसी साधक को, एक ही साधन, कई बार लेना पड़ता है। और इसमें परीक्षाएं बहुत आती हैं–बाधांए आती हैं–दिक्कतें आती हैं। तो दिक्कतों से साधक खड़े रह जाते हैं–बुद्धि काम नहीं करती। संशय आ जाते हैं, मल आ जाते हैं विक्षेप आ जाते हैं। विकार आ जाते हैं। बीमारी आ जाती है। योग करने में बीमारी बहुत आती है यह निश्चित आती है।

योग करत, रोग बढ़त।

गोस्वामी जी ने कई जगह लिखा है। इसमें यह नियम होता है। लेकिन योग करने वाले साधक इससे डरते तो हैं नहीं। क्योंकि वो मानते नहीं कि ये हमको आती हैं। बीमारी आती है–बाधा बाती है, तो हमको नहीं यह सोचना है। बीमारी आए तो हमको सौभाग्य सराहना चाहिए, कि हमको साधन के बिना आधा पाप कट गया। हाँ बशर्ते एक चीज़ का ध्यान रखना चाहिए कि हम परेशानी में कहीं फेल न हो जायें। दृढ़तापूर्वक डटे रहना चाहिए। दिक्कत ज़रूर होती है। प्रहलाद को दिक्कत हुई, ध्रुव को दिक्कत हुई। लेकिन दिक्कत के बाद शान्ति आती है। परेशानी आती है–लेकिन परेशानी को हम परेशानी थोड़े मानते हैं। हमतो उसमें इम्तहान मानते हैं, कि हमारी परीक्षा शुरू हो गयी। हमें तो खुश होना चाहिए, हमें तो इस योग्य समझ लिया गया कि हमारी परीक्षा होने लगी। गीता में भगवान ने कहा है–

''तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्मात् योगी भवार्जुन।।''

तपस्वी से योगी अधिक है, ज्ञानियों से योगी अधिक है, कर्मकांडियों से योगी अधिक है–'तस्मात् योगी भवार्जुन' – इसलिए अर्जुन तुम योगी बनो। ज्ञानी तो वेदान्ती हो गया, तपस्वी तपस्या करने वाला हो गया, कर्मकांडी ये आचार्य कर्मकाण्ड करने वाले–इन तीनों से श्रेष्ठ है, योगी। योगी वह होता हे, जो तीनों कालों की बातें जानने में योग्य हो। ईश्वर की अनुभूतियों को प्राप्त करे। उसके पास एक्सपीरियंस होना चाहिए। और ये ज्ञानी और तपसी इसको मानते नहीं हैं। इसलिए ऐसा जो योगी है, जिसके पास अनुभूतियाँ होती हैं वह त्रिकालदर्शी होता है। इसलिए वह सबसे ऊँचा माना जाता है–यह कृष्ण का सिद्धान्त है। इसलिए भाई, साधना करना सबसे श्रेष्ठ है। समझ में आया?

प्राणायाम के तीन हिस्से हैं– पूरक, कुम्भक और रेचक। एक ईश्वर को सब में देखना यह पूरक है। और एक ईश्वर में दृढ़तापूर्वक अपनी आस्था बनाना यह कुंभक है। और प्रपंच का निषेध रेचक है। यह वेदान्त का प्राणायाम है। इस तरह से साधक की योग्यता अनुसार कई श्रेणी की प्राणायाम होती है। फिर साधन की क्रिया के बीच में प्राण को अपान में अपान को प्राण में हवन करना यह श्वास की क्रिया है। वह दूसरा विषय है। तो यह साधक को अपनी एडजस्टिंग समझना चाहिए कि मेरी कितनी योग्यता है, और मैं किस प्राणायाम के लायक हूँ। कौन प्राणायाम मेरे लिए ठीक रहेगा। उसे ले लेना चाहिए। और इनका सबका उद्देश्य एक ही है। यह प्राणायाम जो पूरक, कुंभक, रेचक में श्वांसा खींची जाती है, सबसे निम्न श्रेणी की, शुरू शुरू की–यह इसलिए की जाती है, कि अपनी श्वासा के सुविधापूर्वक आने जाने का, नियम बन जाय। इसका एक विधान है। उसी के अनुसार नित्य नियम से प्राणायाम करके श्वास को संयमित किया जाता है। इससे श्वास–जप में सहयोग मिलता है। प्राण और अपान में हवन का आशय, यही श्वास का जप है। प्राण में जाय तो रा अपान में म। इस तरह से मूलाधार में इसका हवन होता रहना चाहिए। इसको लोग पश्यंती वाणी का जाप भी कहते हैं। इसमें साधक को लगा रहना चाहिए। लेकिन यह ऐसे नहीं होता है। यह तो तब होता है, जब अनपेक्ष हो जाय, साधक के अंतःकरण में कोई कल्पना (इच्छा–वासना) न रहे। इच्छा न हो। आरम्भ न हो। अनपेक्ष हो जाए–

'अनारम्भ अनिकेत अमानी'

अन्तःकरण में आरम्भ या संकल्प न हो। और अनिकेत–मन में अगर कोई संकल्प आता है, तो उसे अंतःकरण में रुकना नहीं चाहिए–अनिकेत का अर्थ यह होता है। उसमें जमावट नहीं रहना चाहिए। उसमें स्थायित्व न रहे। सोचा गया, और वह फिर निष्क्रिय हो जाय। परिणाम रहित हो जाय। यह कब होगा–जब हमारी पूज्य के प्रति आस्था हो जाय। सही आस्था हो जाय। और जब हम पूज्य के स्वरूप में स्थायित्व पा लें। ऐसी जब दृढ़ता आ जाती है, तब उसको पूजा कहा जाता है। वह तब आयेगी जब हमारी कल्पनाएं (इच्छाएं) खतम हो जायं। जब हमारी इच्छाएं चालू हैं–यह दरबार चालू है। मेरा यह काम हो जाता, मेरा वह काम हो जाता। मैं ऐसा हो जाता–मैं वेसा हो जाता। तो की हुई तुम्हारी पूजा से

पुण्य की जो कमाई हो रही है,वह कमाई खर्च होती जाती है। बच नहीं पाती। पूजा वह ठीक है जो कि इच्छा रहित हो। कर्म करो, साधना करो और परिणाम की कामना न रखो। अनपेक्ष साधना। इसको कहते हैं, समर्पण–साधना। 'मामेकं शरणं व्रज' – गीता में इसका बड़ा महत्व बताया गया है। कई साधनाओं के तरीके बताए, अर्जुन को। हर अध्याय में अलग–अलग। कि हे अर्जुन! यह भी तरीका है, यह भी तरीका है। यह भी रास्ता है–ये सब वहीं पहुँचते हैं। किसी एक को अपना लो, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। अर्जुन, हरेक में अपने को कमजोर पाता चला गया। तो अन्त में भगवान ने यही कहा, कि तुम कुछ न करो–तुम अपने को मुझ में समर्पण कर दो। फिर मेरा जो काम है, मैं करूंगा। बस! तुम शरीर, इंद्रियों सहित अपने को, मुझे समर्पित कर दो। कृष्ण एक गुरू का स्थान सुशोभित करता है। अर्जुन–एक शिष्य का स्थान सुशोभित करता है। तो इस तरीके से अगर ले लिया जाय, तो गुरू साधक की नाना प्रकार की इच्छाओं का, दमन ही कराते हैं। और जब इच्छाओं का दमन हो गया, तो उस भूमिका के ऊपर साधना रूपी वृक्ष जमता है, और उसमें फिर ईश्वर रूपी फल (परिणाम) आता है। ईश्वर रूपी फल लगता है। अगर तुम इच्छाओं का दमन नहीं कर सकते। कल्पनाओं को खतम नहीं कर सकते। यह इल्म अगर तुमको नहीं मिला है, तो तुम्हारी साधना भी व्यर्थ होगी। साधना सफलीभूत नहीं हो सकती। साधना करोगे तो–छः महीने का अनुष्ठान करोगे, फिर साल भर का करोगे, फिर बारह साल का करोगे, और उसके पीछे कुछ न कुछ परिणाम लेने की, फल की कामना रखोगे तो ये सब साधनाएं–भजन नहीं कही जातीं। भजन उसको कहते हैं जो अपेक्षा–रहित हो! जो देश ओर काल अबाधित हो। जो हमेशा के लिये लिमिट पार कर गया हो। ऐसी कोई कामना न हो कि इस काम के लिए करते हैं। हमको इसमें इनर्जी वेस्ट नहीं करनी है। तब हमको भजन का कुछ पता चलेगा।

- **जाही विधि राखै राम**
- **मूल बंध**
- **एक ही तरीका–समर्पण**
- **भजन–सत्संग और कर्मचक्र**
- **अहंकार–अहिरावण**

साधना में गति लाने के लिए नियम से सुबह–शाम भजन में बैठे। फिर बीच में बैठे, एक दो घंटे बाद फिर बैठे, फिर तीन घंटे बाद बैठ जायें। तो इस तरह से, दस मिनट जो हमारी बैठने की क्षमता है तो दस बार दस दस मिनट बैठें 24 घंटे में। तो प्रेसर बनेगा। तो यह लेने का तरीका, बुद्धि होना चाहिए। इसे हम किसी न किसी तरीके से ले सकते हैं। दूसरा एक और तरीका है। साधना में हमारी धीमी गति क्यों होती है। यह जो हमारी इनर्जी है, पूरी साधना में नहीं लगती। फिर सोच रहे हो, कि हमारी प्रगति नहीं होती। करते नहीं, और सोचते हैं, कि हम आगे बढ़ जायें– इसमें भी इनर्जी खर्च होती रहती है। फिर तर्क करते हैं, कि क्यों नहीं हो रही प्रगति? यह खराबी है हममें, यह खराबी है। इस प्रकार, हम एक जटिल मामले में फंस जाते हैं। ऐसा होना चाहिए, इतने टाइम हमें खाना मिलना चाहिए। इतने टाइम यह होना चाहिए, यह नहीं हो पाता, वह नहीं हो पाता–इन बातों में हम फंस जाते हैं। यही सोचें; और कुछ करें न। यह बाधा है। अनेक बाधाएं हैं। ये परिस्थितियाँ जो भौतिक जीवन की हैं, वो भी बाधाएं आ जाती हैं। उसमें जो हमारी ताकत है, इनर्जी है बहुत वेस्ट हो जाती है। जैसी भी कंडीशन हो–जाही विधि राखै राम ताही विधि रहिये। जैसे रखेंगे भगवान वैसे रहेंगे। अब इस परिस्थिति में न कुछ मांग करें, न ये सोचें कि ऐसा करें तब हम ठीक रहेंगे। बहुत से साधकों को तो यही फजीहत रहती है, कि देश से परेशानी, जगह से परेशानी। इससे साधना में दिक्कत आती है। समय से परेशानी, फिर परिस्थितियों से परेशानी। इसमें हमारी इनर्जी बहुत जाया होती है। बहुत नष्ट होती है। इसलिये प्रगति नहीं होती। अब इसमें साधक का एक ही तरीका है, कि पहले हम अपने अंतःकरण को इष्ट को समर्पित कर दें, और इच्छाओं से रहित हो जायं, और जाही विधि राखै राम ताही विधि रहिये। जो परिस्थिति आ जाय उसी को हम स्वीकार कर लें, कि यही हमारे लिए ठीक है। यही हमारा स्वभाव है, यही हमारी प्रकृति है। इसी में हमें रहना है।

हम जितना भी करते हैं–10 मिनट से ज़्यादा नहीं कर सकते। तो 10 मिनट सुबह बैठो 10 मिनट 8 बजे बैठें, 10 मिनट 10 बजे, 10 मिनट 12 बजे बैठें–ऐसे करते चले जायें–तो फिर प्रेशर बढ़ा सकते हैं। और फिर यह जो कायली है, कि भाई यह तो हम न कर पाएंगे, ऐसी जो कायली आती है, इससे छुटकारा मिल सकता है। और साहस आ सकता है। और जितना हम बाहर देखेंगे, तो जिस चीज़ का हम चिंतवन करेंगे, ध्यान खींचेगी। फिर ध्यान खींचेगी, तो उसका चिंतवन बन जायेगा। फिर उसी के संकल्प बन जाते हैं। यही तो हम बताते हैं, कि पैट बदल दो, इतनी ही तो बात है। चाहे बुड्ढा है। जाहे जवान। चाहे रोगी हो, चाहे निरोगी। रोगी होगा–तो धीरे–धीरे करे। इसका कोई मतलब नहीं। श्वासा को कोई बंद नहीं कर देगा। रोगी है, पड़े–पड़े करे। चाहे चलते–चलते करे। या तो बैठे–बैठे करे। नहीं तो सोते–सोते करे। तो अगर करने वाला है, तो कर सकता है। यह तरीका है। और नहीं तो, मोटी बुद्धि से, लम्बी चौड़ी बातें मार मार के, यहाँ सुनते वहाँ

सुनते, और सुनने की क्षमता है नहीं। उतनी बुद्धि तो है नहीं, कि जो सुनते हैं, उसे हृदयंगम कर सकें, समाहित कर सकें। तो बस बैठ जायेंगे, कि बाप रे बाप! यह हमारी समझ के बाहर है। हम नहीं कर सकते।

संकल्प आवें, इच्छाएं आवें लेकिन वही इच्छाएं हों, जो हमारे कर्तव्य में आने वाली हैं। हमारे कर्तव्य के विपरीत इच्छाएं न हों। जैसे हमारा मन है, मन ने मान लिया है, और मन को तो हमने दे दिया है अपने इष्ट देव को। अपने भगवान को। अब शरीर को तो हमने, समर्पण कर दिया है। अब जो भी अन्दर से आदेश होगा–बाहर से होगा तो समझ में आएगा। उसी हिसाब से हमको चलना चाहिए। और जब ग्लानि बनती रहती है, तो फिर साधना नहीं होती है। यह सब बेवकूफी है उसका कोई मतलब नहीं, चाहे तुम दस रोज बैठे रहो–चाहे दो रोज बैठे रहो। और अगर इसको छोड़ा नहीं, तो तुम चाहे कितनी कमाई करो, पैसा रुक नहीं सकता। इसलिए उसका खर्च जो हो रहा है, वह बंद कर दो। तुम बस संकल्प बंद कर दो, तुम्हारे सामने जो कर्तव्य है–वह कर्तव्य, तुम अपना कर्तव्य क्यों नहीं करते हो? तुम अपना कर्तव्य करो–परिणाम देने वाला दूसरा है। कर्तव्य करो। कर्तव्य हम, तब कर सकते हैं, जब हम अनपेक्ष हो जायं। केवल कर्तव्य आरूढ़ हो जायें।

''आरूरूक्षेर्मुनेर्योगे कर्म करणमुच्यते।
योगा रूढस्य तस्यैव समः कारणमुच्यतै।।''

जो योग में आरूढ़ होने वाला साधक है, तो उसे कर्मकरणमुच्यते, साधारण कंडीशन में। और वही उसके लिए ठीक है। अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। प्लानिंग नहीं बनानी चाहिए। चाहे वह धीमी गति का ही हो। कितने दिन में पहुँचे। इससे हमें कोई मतलब नहीं–चाहे गति तेज हो, चाहे धीमी हो। तो गति धीमी और तेज को हम छोड़ देते हैं। क्योंकि यदि अनपेक्ष है, तो धीमी और तेज का कोई मतलब नहीं। यह नियम है। इसलिए अनपेक्ष अगर हो गया, तो समर्पण हो गया–आलराउंडर हो गया।

'योगारूढ़स्य तस्यैव समः कारणमुच्यते।'

जो योगारूढ़ हो गया, उसके लिये है, कि समत्व ही देखे और कुछ न सोचे। इसलिए कर्म–आरूढ़ और योगारूढ़ दोनों स्थितियों में अनपेक्ष रहना चाहिए। इच्छाओं से रहित रहना चाहिए। आरम्भ से रहित रहना चाहिए, तब ही साधन सम्पन्न होता है। और यहाँ क्या है, कि हर साधक प्लानिंग करता रहता है–सोचता रहता है। यह सही, यह सही है। यह तो हमें पहले से तय कर लेना चाहिए, कि यहाँ से चलना है, यह सही है, और यह लक्ष्य है। अब बात सोचने की नहीं रह गयी। अब तो चलने की बात है।

जब विधि पूर्वक किसी चीज़ को समझाने का वक्त मिलता है, तो नियम का ख्याल किया जाता है, कि इस स्तर का यह साधक है, और उसके लिए इसी स्तर का साधन बताया जाता है। और जब जनरल सबके साथ बात होती है, तो एक जैसी बात सबके लिए बताई जाती है। चाहे वह बड़ा साधक हो, चाहे वह छोटा साधक हो। जैसे, श्वासा का भजन हम अक्सर बताते हैं, तो उसका मतलब यह है, कि यह मूलबंध है। मूल है। इसलिए यह छोटे से छोटे साधक को, मध्यम वाले को, सभी को यह बताया जा सकता है। इसमें फर्क नहीं पड़ता। फर्क इसलिए नहीं पड़ता, क्योंकि यह मूलबंध है। इसके बिना न वे साधन, जो पहले होते हैं–वो चल सकते हैं, और न वो चल सकते हैं, जो आगे चल कर होते हैं। मूलबंध को तो लेना ही पड़ेगा। इसलिए चाहे छोटा साधक आए–तो कहेंगे हां खूब भजन करना, श्वासा में लगे रहना। और जो उच्च कोटि के साधक हैं, उनसे भी श्वासा में भजन की बात गलत नहीं होती। भारी गड़बड़ी आ जाये कोई, दिक्कत आ जाय–तो इससे उसे

लाभ मिलेगा। और अगर निम्न कोटि का साधक है, तब भी चलेगा। अब श्वासा तो स्थूल से बैखरी से ले सकते हैं, मध्यमा से ले सकते हैं, पश्यंती से ले सकते हैं, परा से ले सकते हैं–कई तरीके हैं। यह तो परसनल है, उसका। इसलिए महात्माओं की अपनी शैली होती है। एक उनका (कामन) शब्द बन जाता है, जो छोटे बड़े सबके लिये लागू होता है। श्वासा का जप कामन है। सबके लिए बताया जा सकता है। कोई महात्मा अन्दर प्रवेश कर जाते हैं। बाहर कोई आया–हां ठीक है। मन से त्याग करो, बाहर से कुछ मतलब नहीं। तो इस तरीके से, चाहे साधक कमजोर ही क्यों न हो–उसे कुछ आगे की बात बताना ठीक रहता है। अगर कमजोर साधक है, तो कहेगा, हमें तो राम–राम जपना चाहिए। इतना तो वह जानता ही है। सामान्य हालत में–जब सत्संग का मर्म बताने का मौका नहीं है–ऐसे ही कुछ कहा जाता है, चलते–चलते। तो वहां फिर थोड़ी आगे की बात करना अच्छा रहता है। तीसरे क्लास का है, तो पांचवे क्लास की बात करें, तो उसे अच्छा लगेगा–सुनेगा। प्रभावित होगा।

श्वासा का जाप, थोड़ा हायर लेबल का है। इसलिए जो साधक निम्न स्तर का है, उसे थोड़ा हायर लेबल की बात बताना ठीक रहता है। और जो हायर लेबल का है, उसे तो हायर लेबल का बताना ही है। इसलिए इसको बताना उचित है, अनुचित नहीं है। अनुचित यों होगा, कि यदि वह विधिपूर्वक सत्संग के द्वारा प्रश्न करे, और फिर यही बात तुम बताओ। तब तो वही बताना उचित होगा, जो वह पूछता है। यहाँ तो अपनी तरफ से बताया जाता है न। इसलिए यह तो अपने मूड पर है। क्या नहीं दे सकता? आशीर्वाद दे रहा है। उसने डिमांड तो की नहीं। डिमांड अगर करे, तो फिर जो डिमांड हो, उसके अनुसार, निम्न श्रेणी का हो–निम्न श्रेणी का बताना चाहिए, उच्च श्रेणी का हो–उच्च श्रेणी का बताना चाहिए। हाँ ऐसे है। उसकी चीज़ को उसी को सौंप कर, बस पार हो जाय।

"तुझी ने सब कुछ दिखाया, तुझे क्या दीपक दिखाऊं? उसके अतिरिक्त और है कौन? यही तो प्रश्न है। और इसका हल तब मिलेगा, जब हम उसके पीछे पड़ेंगे। क्या कभी पकड़ में आऐंगे। ये तो हमारे ऊपर कंट्रोल किये हैं, और हमसे भिन्न हैं जैसे हमसे कहला रहे हैं, कि हम आपके थोड़े हैं। वो तो अजनबिया हैं, पता नहीं कहां से आकर बैठ गए हैं। अगर हम इस तरह न होते, स्थिति न होती, तो आते कहां से? यही तो सही मार्ग है। और हम ऐसा नहीं करते, सब तुम्हारे ही हाथ में आ जायेगा, तो फिर तुम्हें ज़रूरत ही क्या रहेगी समर्पित करने के लिए? तो फिर ज़रूरत ही क्या पड़ेगी तुम्हें, गुरू बनाने के लिए? तुम स्वयं गुरू हो। अब जब यह समझ में नहीं आता, तब न हम सिर ठोंक रहे हैं किसी के सामने? रो रहे हैं, गा रहे हैं, कि यह हल हो जाय हमारा। भारी दंद है। ये कहां के कौन हैं (सारे विकार), ये भूत, हमें पेरे पड़े हैं। नचा रहे हैं–चारों तरफ पता नहीं किसके हैं–ये। हमें यही नहीं पता है। तो फिर एक ही तरीका है। और तो कोई तरीका है नहीं। आज तक किसी को मिला नहीं। इसी के लिये महापुरुषों ने मार्ग तलाशा। तरीका यह निकाला, कि जो कुछ भी, और जिसके भी ये हैं–हम इनसे बचें। हम इनसे काम न लें। किसी को दे दें। अपने भगवान को दे दें। भगवान को मालिक बना दें। और हम तटस्थ हो जायं। हो सकता है, तब इनका पता लग जाय। तब इनकी गतिविधि का ज्ञान हो। तब इसके रूप का पता लगे। तब यह पता लगे, कि ये क्या रूप कला बदलते हैं, तो एक ही तरीका है, कि हम इनको यूज न करें। हम इनको समर्पित कर दें। कि हे भगवान आप इसे संभालिये। जैसे अर्जुन ने कृष्ण भगवान को समर्पण कर दिया, और उनके गाइडेंस में चलने लगे। बोले, आप मेरी लगाम संभालिये–आप चलाइये। तो जिधर चलाएं, उधर चलने लगे। वही पसंद आ गया। अपने से प्लानिंग बंद हो गई। अब आप जो कुछ करो, सब मुझे मान्य है। आप मेरे रथ को चलाइये।

मेरे शरीर को चलाइये। अब जब थोड़ा अनुराग हमारे हृदय में आ जाय। तो हम अपना अन्तःकरण अपने इष्टदेव को दे दें। और वह हमारा गाइड हो जाय। हमको देखे, हमको समझाए। ऐसा करोगे तो यह होगा, ऐसा करोगे तो यह हो जायगा। और वही हमारे इन यंत्रों का प्रयोग करे, हम न करें। तो इनमें जो भी चालाकी है, उनसे हम बचे रहेंगे। और जो त्याग करने में समर्थ है, वह इनसे निपट लेगा। उसके पास वीटो है, क्षमता है। इसलिए उसकी क्षत्र छाया हमको मिलेगी। उसकी क्षत्र छाया में, ये जो हरकत करेंगे, उसका लाभ उसकी दया से हमको मिल जायेगा। यही तरीका महात्मा लोगों ने बताया है। अगर आप यह कहेंगे कि हम समर्पण कैसे करें–जब हमारे ये नहीं है। तो आप यही बतायें कि आपके पास है ही क्या? क्या ये हाथ हैं तुम्हारे? ये पैर हैं तुम्हारे, पेट है, पीठ है– क्या है तुम्हारे पास, समर्पण करने को? कि पैसा, रुपया क्या समर्पण करोगे?

सत् का संग ही सत्संग है।

"सत्य वस्तु है आत्मा, मिथ्या जगत पसार।
नित्यानित्य विवेकिया लीजै बात विचार।।"

तो सत् क्या है। घूमकर अन्दर आना पड़ेगा। अपनी आत्मा, अपने को छोड़कर दूसरे को सत्य नहीं कह सकती। यह संसार दृश्य है–असत् है। आत्मा दृष्टा है। जब दृश्य का रूपान्तर होकर, दृष्टा में विलीन हो जाय, और दृष्टा ही दृष्टा शेष रह जाता है–उसको आत्मा कहते हैं। उसी सत्य का संग सत्संग है। लेकिन प्रारम्भिक सत्संग का मतलब है अच्छे का संग। सत्पुरुषों का संग, अच्छाई के साथ रहना। सजातीय विचारों को लेना। सत्संग सबसे बड़ी चीज़ मानी गयी है–शास्त्रों में। इसलिए, सत्संग का मतलब होता है कि हर बात हमारे दिमाग से गुजरे। और उनमें से सही बातों को लेने का अभ्यास करें। ईश्वरीय धर्म की जानकारी करें। रगड़ते–रगड़ते–रगड़ते उसकी जानकारी आ जाती है। तो फिर ये कृष्ण जो हैं, वो अनायास नहीं आ पाते। वो फंस जाते हैं–कहीं न कहीं, नुक्कड़ में। वहीं आते हैं नपे तुले, जो किसी की पकड़ में न आये। और जो सत्संग ज्यादा नहीं किये हैं, जो रगड़े–रगड़ाए नहीं हैं। उनके यहाँ कृष्ण कैसे आ जायेगें? जब सच्चा सजातीय पार्टी का हो जाता है। राम की पार्टी का। तो अगर एक संकल्प आ जाय राम का, तो चारों तरफ राम ही राम छा जायेगा। और हर चीज़ में राम आ जायेगा। जैसे रावण के दिमाग में रावण आ गया था। तो इसका कोई दूसरा उपाय नहीं है–एक ही उपाय है कि हम अपने विचारों को बदल डालें। हम सजातीय क्षेत्र के संस्कारों में गुजर करें। और उसी का सब कुछ करें। अब तुमको यह शंका है, कि ये भूत पटक कर कभी मार देंगे–इसमें रहते हुए। तो ऐसा नहीं होता। यह तुम्हारी थ्योरिटिकल शंका है। जब तुम प्रैक्टिकली इसमें आ जाओगे, तो तुम्हारे पास ऐसा वीटो आ जायगा, कि फिर उनका पता ही नहीं चलेगा। अगर रावण दिखाई देगा, तो सजातीय बनकर दिखाई देगा। अगर कुंभकरण दिखाई देगा–क्रोध हमको आएगा–तो फायदा के लिए आयेगा। काम अगर आएगा, तो भगवान का अवतार हो जायेगा। मोह अगर आयेगा, तो देश का कल्याण हो जायेगा। लोभ अगर आ जायेगा, तो समाज प्रगति कर जायगा। बुराई नहीं हो सकती, फिर ऐसा हो जाता है। वही महात्मा बनेगा वही साधक बनेगा। दूसरा तो बनेगा नहीं महात्मा की डिग्री तक कौन जायगा–उसकी पहचान है। चाहे हम हों, चाहे तुम हो, चाहे कोई हो। जब दीक्षान्त भाषण हो जाता है, और डिग्री मिल जाती है, तब उसका दूसरा रूप बन जाता है। और जब तक पढ़ रहा है तो चाहे प्राइमरी का पढैया हो, चाहे पी॰एच॰डी॰ का हो–तब तक वह स्टूडेंट ही है। और जब डिग्री ले लिया, तो सारे प्रोफेसर उसकी भूरि–भूरि प्रशंसा करते हैं। मास्टर आफ आर्ट्स हो गया। मास्टर आफ साइंस

हो गया। उसके पास विशेषाधिकार हो जाता है, बहुत बड़ा वीटो आ जाता है। आज तुम जो सोच रहे हो, इस अधीन मन से बात कर रहे हो, जो टिकाए नहीं टिकता, एक जगह। इसलिए समझ में नहीं आता। फिर तो मन इतना सबल हो जाता है कि बुरी से बुरी चीज़ को भली बना लेता है। यह इसके पास युक्ति आ जायगी। इसके पास शक्ति आ जायगी। गलत काम हो गया—गलत को भी सही बना लेगा। वीटो—विल पावर आ जायगा।

समझ में आया? हाँ, अगर सांपों की लड़ाई—यह समझ में आई, बस तेजी आ गयी बुद्धि में प्रकाश आ गया, ज्ञान आ गया। सब बदल गया। गलत काम हो गया—कोई बात नहीं, क्षमा हो गया, सही बन जायगा।

फिर वह जो करेगा, सही हो जायेगा। अन्तर्जगत पार्लियामेन्ट से दीक्षान्त भाषण हो जाना चाहिए। टाइटल मिल जाना चाहिए। डिग्री मिल जाना चाहिए। दीक्षान्त समारोह में डिग्री मिलती है ना? बस, रावण आवे चाहे उसका बाप आवे। वह भी ठीक है, वह भी ठीक है। जैसे अभी है कोई रावण के अलावा? राम का, अन्दर कुछ है नहीं, रावण ही रावण भरा है। राम को पकड़ा जा रहा है—राम आ नहीं रहा है। रावण का माहौल चारों तरफ से घेरे हैं। बस ऐसे ही हो जाता है। जब आप ग्रेविटी पार कर लेंगे, तो राम का माहौल आ जायेगा। रावण का कहीं पता नहीं रहेगा। जैसे अभी राम का नहीं आ रहा है। जब माया के क्षेत्र में हैं, तो राम का नाम लेने में भी मन नहीं लगता। आसक्ति लगी है। राम की तरफ मन को धकाते हो—विषय की तरफ दौड़ता है। ईर्ष्या की तरफ दौड़ता है। विरोध की तरफ दौड़ता है। ऐसे ही, जब साधक के दिल दिमाग में समझ आ जायेगी और राम ही राम हो जायेगा। तो बस इस मन में जो कुछ भी आएगा, राम का ही आयेगा। फिर रावण नहीं आएगा। फिर कोई डर नहीं। हम बार—बार कहते हैं। फिर सोते हुए सोने के संस्कार नहीं पड़ते, खाते हुए खाने के संस्कार नहीं पड़ते। इसलिए वह बोलते हुए बोलता नहीं, खाते हुए खाता नहीं, चलते हुए चलता नहीं। और वही सब में व्यापक है। अणु अर्थात् सबसे छोटा है, और वही सबसे बड़ा है, वही सब में व्यापक है। तो अणु रूप में तो हम उसे पकड़ रहे हैं, और जब इन्लार्जमेंट कर देंगे, तो व्यापक बन जायेगा। इसलिए सत् को पकड़े। ईश्वर को अपने में ले ले। आदमी जो भी कर्म करता है, चाहे भले करे, चाहे बुरे करे, वो सब जमा होते जाते हैं। संचित जो जमा हो गये। करता जाता है रोज, कन्टीन्यू, वो जमा होते जाते हैं—और वह जो सबसे पुराने वाले हैं वह प्रारब्ध बन जाता है। और फिर करने में आ जाता है, उसकी प्रेरणा बुद्धि में आ जाती है। इस समय जो प्रेजेन्ट में हम कर्म करते हैं—उसमें वनथर्ड भाग ले लेता है, यह प्रारब्ध। तो ऐसी एक रील बन गयी। वह भोगने में आ रही है, करने में आ रही है। बस यह है संसार। यही है दुनिया, और कुछ नहीं है। वर्तमान का क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध में परिणत होता चला जाता है। अब जब हमको भजन करना है। तो जो कुछ भी करना है, उसको अपने हाथ में ले लेना चाहिए। वर्तमान में कभी गलती नहीं करना चाहिए। गुरू के बताए हुए रास्ते पर ही चलना चाहिए। शरीर से सेवा हो निष्काम भाव से, मन से भजन हो निष्काम भाव से, और गलत काम न करें। इच्छाएं नष्ट हो जायं। इच्छाओं का दमन कर देना चाहिए। तो तुम कहोगे यह सब कैसे होगा? तो धीरे—धीरे करो। धीरे—धीरे अभ्यास करो, धीरे—धीरे कर्तव्य करो। लोभ न हो, मोह न हो। आशा, तृष्णा, विषय वासना, बेईमानी, बदमाशी, झूठ, कपट ये सब हमें त्याग कर देना है। ज्ञान, विवेक, वैराग्य इन्हें लेना है। इच्छा रहित रहना है। संतोष करना है। इस प्रकार की नीति से जो चलता है, तो जो वर्तमान में कर्तव्य हो रहा है, उसे वह सुधार लेगा। अब भजन शुरू किया। अब बुरे काम वह कर नहीं रहा, और भले काम करता जा रहा है। तो जो जमा होने वाली प्रक्रिया है, उसमें

भले ही जमा होते जाएंगे। जब बुरे हम करते नहीं, तो अच्छे ही अच्छे जमा होते जायेंगे। इसलिए जब दीर्घकाल तक मन को भजन में लगाए रहेंगे। मन को विषय की तरफ नहीं जाने देंगे–भजन में ही लगाये रहेंगे। तो अनेक जन्म पर्यन्त–'जनम जनम लगि रगर हमारी।, ''जनम जनम मुनि जतन कराही'। तो इस तरह से हमें गाली दे रहे हैं– हम नहीं बोलेंगे। हमें कोई भला बुरा कहता है, हम नहीं बोलेंगे।

'बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे।।'

तो जो हम प्रेजेन्ट में करते जा रहे हैं, सजातीय वाले, विजातीय वाले तो हो नहीं रहे। माया वाले तो हो नहीं रहे, ईश्वरीय हो रहे हैं। ईश्वर वाले करेंगे–तो ईश्वर मिलेगा और जब माया वाले करेंगे, तो माया मिलेगी। तो जब प्रेजेंट सुधर गया, तो फिर संचित जो हमारा है, वह भी भगवान के कर्तव्य वाला हो गया। वह भी सुधर गया। और जो पहले का खराब जमा है संचित, वह धीरे–धीरे (प्रारब्ध भोग से) चुक रहा है। वह जो पहले का भरा हुआ है, वह धीरे–धीरे खतम हो रहा है। वह प्रारब्ध हमारा प्रेजेन्ट में हमको डिस्टर्व डाल रहा है, और हम मानते नहीं हैं। और वह एक–तिहाई आता है, हमको विषयों में डाल रहा है, और हम जाते नहीं हैं विषयों में, और हम बरबस सुधार किये हैं। हमारे हाथों में बस यही प्रेजेन्ट का कर्तव्य ही तो है, और कुछ है नहीं। इसलिए जब हम इस साधना में लग जाते हैं, तो फिर संचित पूरे सजातीय कर्मों से भर जाता है। अब आप यह शंका कर सकते हैं, कि वह जो बुराई वाला प्रारब्ध जमा था, और वर्तमान में आता है, तो वह क्या करता है? तो वह हमारी बुद्धि को नष्ट करता है। लेकिन दो हिस्सा हमारा अच्छा है, और एक हिस्सा आता है–इसलिए क्या करेगा? व्याधि डाल सकता है, स्त्यान डाल सकता है, अविश्वास डाल सकता है, चोरी करा सकता है, झूठ करा सकता है–ऐसे विक्षेप डाल सकता है। और उन विक्षेपों को हमें सहन करना है हमें कहना है, कि भाई चाहे जो आए, हमें डटे रहना है। हमको चाहे कितना भी कष्ट मिले, लेकिन हम हटेंगे नहीं। तो इन सबको सहन करते हुए, दृढ़ विश्वास से साधना में लगे रहना चाहिए। जो कर्तव्य है–भक्ति में, भजन में या साधना में भी प्रारब्ध ही डालता है। इसी को कहीं प्रारब्ध कहा गया है, कहीं ईश्वरीय विधान कहा गया है। अलग–अलग सिद्धान्त हैं, मुनियों के। इस तरीके से जो आएगा उसको हम सहन करते जाएंगे। मान लिया किसी ने बहुत बड़ा काम चोरी किया वह जमा होगा तो वह सामने आ सकता है। उसमें बहुत बड़ी खराबी आ सकती है। जैसे हमने कभी बताया होगा, कि एक महात्मा थे नगवा के परमहंस, एक दारागंज के परमहंस, एक अजना के परमहंस तीनों बड़े अच्छे महात्मा थे। पब्लिक बहुत मानती थी। तो ये जो अजना वाले थे, ये पशु चराते थे। तो ब्रह्माण्ड में वाणी हुई, तो भाग दिये। हाथ में लाठी लिए रहते थे। कपड़ा–अपड़ा जो थे, छोड़ कर भाग दिये। तो जाके वहीं–अजना में बैठ गए। सरजू का बहुत बड़ा घाट है, और रेता ही रेता है 4–6 किमी. का। वही रेता में बीच में बैठ गए। फिर कम से कम 60–70 साल बैठे रहे। हमेशा–कपड़े नहीं पहनते थे–नंगे। न किसी से बोलते थे, और न कोई मतलब। एक लकड़ी लेकर एक जगह गाड़ देते थे–उसमें एक झंडी बांध देते थे। और कोई अगर लकड़ी गिरा देता तो उसे गाली देते थे, कि तुमने हमारी डंडी क्यों गिरा दी। रख आठ आना पैसा, यह जुर्म है। आठ आना पैसा–एक पंडित आता था उनके पास–वह उठाकर ले जाय, भोजन सामग्री लाए और बना कर खिलाये। वे अपने हाथ से खाते नहीं थे। पंडित उन्हें खिलाये, खुद भी खाए। बस ऐसे–ऐसे बहुत दिन बीते। बड़ा भारी शरीर था–काला एकदम हाथी जैसा शरीर था। वो लाठी जो शुरू की थी, उसको पकड़े रहते थे। उसमें उंगलियों के निशान जैसे गड्ढे पड़

गये। एक ही जगह बैठे रहे। न गर्मी में कभी छाया बनायी, न बरसात में छानी छवाए न छप्पर, न सर्दी में आग जलवाए, न वहाँ से हटे। ऐसे महात्मा थे। तो उनके साथ क्या व्यवहार हुआ।

प्रारब्ध क्या–क्या करता है–यह हम बता रहे हैं। इतने निर्लेप जो महात्मा थे। 70 साल एक जगह बैठे रहे, और उनके साथ बड़ा दुर्व्यवहार हुआ। तो कहाँ क्या निकल जाय। तो हुआ क्या कि गांवों में गरीब–अमीर रहते ही हैं। बहुत से अहीर थे गरीब और बाबू लोग जमींदार थे। तो गरीब आदमी ऋण लेते थे। जमींदार एक हजार का पचास हजार बनाकर वसूल करते। वो बेचारे कमाते–कमाते भर न पावें, तो उन्हीं के जूता सिलते, उन्हीं की नौकरी करते रहते थे। तो हुआ क्या, कि एक पंडित जो आता था, वह सबेरे चार बजे आ जाय, एक मुखारी लेकर। अपने हांथ से मुखारी कराता था, मुंह धुला देता था। इतने बीच में कोई आ जाय, लकड़ी गिराए, बाबा उसे गाली दे। वह आठ आना पैसा दे। पंडित पैसा लेकर बाजार जाय, सामान लाये, खाना बनाए, अपना खाय और बाबा जी को खिलाये। बस, इतना होते–होते बहुत दिन बीत गये और पंडित बुड्ढा हो गया। तो एक दिन बाबा जी से रोया और कहा, कि मेरा भी कर्जा पड़ा है, ज़मींदार का। और मैं चुका नहीं पाया कभी। पंडित बेचारा रोया–गाया, कह डाला। तो बोले, अच्छा जा तेरे घर में दूसरी डेहरी के नीचे खोद ले, और जो निकले उससे चुका दे सब करजा। गया, खोदा, तो खूब माल–टाल निकला। तो पंडित डलिया में भरकर पूरे गांव में घूमा, कि भाई जिसका कर्जा मेरे ऊपर हो वह अपना ले सकता है। तो दस रूपया अगर बताया, तो पंडित ने सौ रूपया दिया। गांव में हल्ला मच गया, कि इतना धन पंडित को कहाँ से आ गया? चर्चा हो गयी, कि बाबा की सेवा किया, बाबा ने सब कुछ किया। हो गया। महीना पंद्रह दिन में, गांव के चार अहीर कर्जा में दबे हुए, गरीब, आए रात को 12 बजे, बाबा के पास। बोले महाराज हमको भी कुछ दे दिया जाय, हमारा भी कर्जा पट जाय। हम बहुत गरीब आदमी हैं। बाबा जी ने कहा, भाई मेरे पास तो है नहीं। तो वो लोग बोले, महाराज जैसे पंडित को बताए हैं वैसे हमें भी बता दें, कहीं घर में, गली में, सार में, गड़ा हो तो हम भी कर्जा से मुक्त हो जायें। तो कहा कि भाई बड़ा मुश्किल है–तेरे यहां नहीं है, तो कहां बताएं? तो फिर वो बोले नहीं महाराज! आप भगवान हैं, दया कर दीजिए। भारी मुश्किल कर दिये। सबेरे चार बज गये। तो फिर बाबा ने कहा, कि देखो, एक युक्ति बतावें। जहां मैं बैठा हूँ, यहाँ बहुत सा धन गड़ा है। तो यह सोना तुम्हें तब मिलेगा, जब मैं न रहूँगा। तो ऐसा करो कि तुम अपनी लाठियाँ, मेरी गर्दन में आगे पीछे लगाओ। और दोनों ओर से पकड़कर दो दो आदमी जोर से दबाओ। और मेरी श्वासा देखते जाना, जब बंद हो जाय तो उठाकर सरजू में फेंक देना और सोना निकाल लेना। ले जाकर सबको बांट देना। तो बोले महाराज ऐसा न कहिए। तो बाबा ने कहा, और कोई उपाय नहीं है। यही आखिरी तरीका है। वो बहुत कहे, आखिर में बोले कि फिर जैसा कहो महराज! अपढ़ के कितनी बुद्धि! लगाए लाठी। बाबा लेट गए। दबाए जोर से। दबाए तो बाबा ने कहा–ये पापी प्राण हैं, जल्दी छोड़ नहीं रहे हैं–अच्छा इधर से दबाओ। दबाएं, फिर देखें, श्वासा चल रही हैं, इधर से दबावें, उधर से दबावें, खूब जोर लगाए। इतने में सुबह हो गयी–पंडित आ गया, तो शोर मचा दिया। अब गांव में हल्ला मच गया, भीड़ टूट पड़ी, अहीरों को मार जूतों, पार कर दिये। बाबा जी के गले में लाठी चिपक गई थी, और अहीरों के हाथ लाठी में चिपक गये थे। इसलिए भाग भी नहीं सके। खूब मार पड़ी। तब बाबा जी खड़े हुए, और गांव वालों को मना किया, कि इन्हें मत मारो। यह तो मेरे ही कहने से किया है, इन्हें मत मारो। इनका दोष नहीं है। पब्लिक मारे पड़ी थी। बाबा चिल्लाए, कि अरे भाई! इन्हें न मारो, इनका दोष नहीं है। मेरी बात तो सुनो! कहा–देखो, पूर्व जनम में ऐसे ही लाठी

लगाकर मैने एक आदमी को मारा था, वही मेरे प्रारब्ध में बैठा रहा है। तो मैं भजन करने से बच गया हूँ, नहीं तो मर ही गया होता। तो यह प्रारब्ध है। इसलिए यह हमारा दोष है। खबरदार! इन्हें न मारो। तो लोग मान गए। लाठी हटाए। तो इस प्रकार उनका पूर्व जन्म का अपराध, प्रारब्ध बनकर आया। भजन का प्रभाव था, कि बच गये, नहीं तो मर जाते। भजन से प्रारब्ध भोग, कुछ हल्का हो गया। फिर बाबा बहुत दिनों तक जीवित रहे, बाद में मरे। तो इस प्रकार यह प्रारब्ध चलता है। कुछ महात्माओं का मत है कि प्रारब्ध चलता रहता है क्रियमाण और संचित ये सुधर जाते हैं। प्रारब्ध तब ठीक हो जाते हैं जब यह प्रक्रिया पकड़ में आ जाय, जो हम बताते हैं–क्रियमाण सही हो जाय तो साधक निकल जाता है, तो फिर साधक लौटता नहीं है। उसे चस्का लग जाता है। भगवान उसे अट्रैक्शन देने लगता है। उठाता रहता है। फिर उसको मदद करता है। फिर संचित सुधरने लगता है–प्रारब्ध रह जाता है। तो वह भोगने में आता जाता है। और ये काफी समय तक चलता है। और जब धीरे–धीरे तीनों से निवृत्त हो जाता है, तब फिर मुक्त हो जाता है। प्रारब्ध तो आते चले जाएंगे, वह तो नियम है। जैसे माला में यह गुरिया आएगी, फिर यह गुरिया, फिर यह गुरिया। प्रारब्ध कोई बैठा नहीं रहेगा, टाइम लग सकता है।

जब राम ने अपने सहयोगियों (साधनों) के द्वारा रावण के अनेक पुत्रों को नष्ट कर दिया, भाइयों को नष्ट कर दिया, तो यह स्वाभाविक है कि जिस साधक के अंतःकरण में यह प्रक्रिया हो रही है, उसके अंदर एक ईगो आएगा ही कि हमने काफी कुछ कर लिया है अब मंजिल थोड़ी दूर ही तो रह गई है। हम बहुत आगे बढ़ गये। यह जो ईगो है, वही अहिरावण है। वह एक ही है–दो बन जाते हैं। गलत अहंकार विजातीय बन जाता है, सही अहं सजातीय बन जाता है। यह न सजातीय है, न विजातीय, आटोमैटिक है। जो बुद्धि में नहीं आता, जो समझ में नहीं आता, जो तरीके से नहीं हल होता, उसे आटोमैटिक कहते हैं। तो उसको निमंत्रण दिया गया। निमंत्रण दिया जाता है, तो दुर्गुण आता है। साधक ही निंमत्रण देने वाला है। उसी के निमंत्रण देने पर, सद्‌गुण या दुर्गुण आते हैं। दूसरा कोई है नहीं। हां, इस हिसाब से चले तो हल मिल जायेगा। नटबोल्ट बैठते जाएंगे। नटबोल्ट कसते चले जायेंगे।

वह (आत्मा) बुद्धि से परे है, मन से परे है, अन्तःकरण से परे है, सत, रज, तम तीनों गुणों से परे है। इसलिए उसका जो कांस्टीट्यूशन है, वह समझ में नहीं आता है। अगर तुम उसे बुद्धि के क्षेत्र में लेते हो, तो वह सरक कर निकल जायगी। और अगर ले लो, तो वह असली नहीं रह जायगी–कांच की मणि बन जायगी, वह हमारे अन्तःकरण मन बुद्धि से अलग हो जाती है। हम मन बुद्धि अंतःकरण से एक सीमा तक पहुंचते हैं। फिर जब हम इन्हें समर्पित करके गायब कर देते हैं, और जब हमारी डेथ हो जाती है। तब फिर वह हमें मिल जाता है। तब उसी की बुद्धि से उसी को समझना पड़ता है। इसलिए न अहिरावण का महत्व है, न रावण का महत्व है, न राम का महत्व है। तो ये विचित्र सराय है। इसलिए यह समझ में नहीं आते हैं, जब हम समझते हैं अपने स्तर से, कि भगवान को हम पकड़ लिये–पकड़ लिये, तो कांच की मणि रह जायगी–असली मणि निकल जायगी। इसलिए यह बुद्धि से नहीं समझा जा सकता, वह तो सेल्फ रिएलाइजेशन, आत्मानुभूति से ही समझा जायेगा।

हम जानते हुए दुर्गुणों को बुलाते हैं। जब हमें कोई लाभ होता है, भगवान की ओर हमारी प्रगति होती है, कुछ अन्तर्जगत से ऐसी अनुभूतियाँ हमें मिलती हैं। तो हमें खुशी मिलती है। तो जानते हो, उसी खुशी के साथ–साथ ईगो घुस जाता है। वह खुशी जहां आयी, उसके साथ ईगो आ जाता है। जहाँ तेल कम पड़ा, जहाँ हवा घुसी पाइप के अंदर, और फिर गाड़ी काम नहीं करेगी। तो मन में आया कि भाई हम हल कर लेंगे–तो ईगो आ जाता है। और वहां रावण–आवण कोई चीज़ थोड़े है। वहाँ ये

सब कुछ नहीं है, ये तो साधक के अन्तःकरण की बातें हैं, जिनका महापुरुषों ने एक नाटक के रूप में दिग्दर्शन कराया है। अब उस चित्र को तो अन्दर बना नहीं पाते, और वह नाटक जो उसकी नकल थी, उसको लोग असल मान लेते हैं। और उसी के पीछे पड़े रहते हैं। इसलिए यह किताबी शिक्षा नहीं है, जो समझ में आ जाये। यह तो उसी भाग्यशाली के लिये है, जो प्राण हथेली में लिये रहते हैं। जो गर्दन देने के लिए तैयार होते हैं। जो अपने को समर्पित करते हैं और सबसे ज़्यादा—जो हर चीज़ में आगे रहते हैं, त्याग में, अनुराग में—उनको यह पकड़ में आता है। अन्यथा यह बहुत क्लिष्ट विषय है।

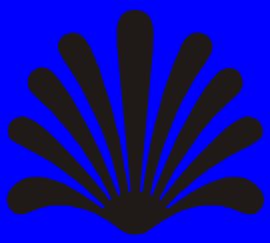

- **गुरू का गुरूत्व**
- **मामेकम् शरणं ब्रज**
- **सात भूमिकाएं**
- **इष्ट–संकेत (लीला)**
- **काम–मेघनाद**
- **संत की पहचान**

महापुरुष के पास एक ऐसी इनर्जी होती है, ऐसी कला होती है कि वह इन दो के झगड़े से निकल जाता है। उसके पास यह कला होती है। यह जो सजातीय और विजातीय है सुख और दुख, दिन और रात यह जो द्वन्द्व है सर्कुलेशन, जिनसे यह संसार चलता है, इनकी वह एडजस्टिंग कर ले जाते हैं। इससे वो परे हो जाते हैं। इसका मूल कारण यह है, कि एक तो अच्छा है, एक बुरा है। इसी से दुनिया चलती है। एक हमें अच्छा लगता है, एक बुरा लगता है। तो जिसने अच्छा लगने वाले का त्याग कर दिया है, वह बड़ी अच्छी गति को प्राप्त होता है। महापुरुष में सबसे महत्वपूर्ण बात है, कि वह त्याग का त्याग करता है। त्याग के त्याग का मतलब होता है, कि जैसे महापुरुष के अंतःकरण में यह क्रिया हुई कि अवध में राम का जन्म हुआ। तो अवधि कहते हैं समय को, अवध का मतलब समय। तो वह समय हमें बड़े सौभाग्य से 84 लाख योनियों का कर्जा चुकाते–चुकाते, यह नर देही मिली है। यह अवध मिली है–यह समय मिला है। नर देही में ही हम नारायण को जान सकते हैं। इसमें ही कुछ समझ में आता है। और तो किसी में है नहीं। अंडज, उद्भिज, श्वेदज किसी में नहीं। तो इसी अवधि में हो सकता है, यह समय अगर किसी को सौभाग्य से मिले–

'कबहुंक करि करुना नर देही। देत ईश बिनु हेतु सनेही।।'

बड़े भाग्य से मानुष तन मिलता है। इसको अवध कहते हैं।

यह जब हमें सौभाग्य से मिले–

अवध सरिस मोहि प्रिय नहि सोऊ। यह प्रसंग जानै कोऊ कोऊ।।

इसे सब नहीं समझते, कोई–कोई समझ पाता है। इसको तो जो गुरू लोगों के अन्डर से निकला है वह समझ सकता है। अवध तो नाउन है। अवध पहाड़ का नाम हो सकता है, गांव का नाम हो सकता है, किसी का नाम अवध हो सकता है। लेकिन अवध हम किस चीज़ को बता रहे हैं वह अवध। उसमें यह क्रिया होती है। उसमें जब दसों इंद्रियों में अन्वय व्यतिरेक की युक्ति द्वारा चेतन का प्रतिबिम्ब मिल जाय, तो दशरथ हो जाय। और भक्ति कौशल्या, कर्म कैकेई, सुमति सुमित्रा। ये इनर्जी आयेंगी इस अवध में। अगर हम प्रयास करें तो, अगर हम तीव्रतर वैराग ले आएं तो। तो फिर ज्ञान राम, भाव भरत, विवेक लक्ष्मण, सत्संग शत्रुघ्न आदि सद्गुणों के आने में देर नहीं लगेगी। कैसे कैसे आएंगे, यह सब हम बता चुके हैं। और इसके पहले इसी शरीर में मोह रावण, क्रोध कुंभकर्ण, काम मेघनाद, लोभ नारांतक, अहं अहिरावण, कपट कालनेमि आदि दुष्टों ने कब्जा कर लिया है। और इसमें जीव रूपी विभीषण पर कब्जा कर लिया है। तो यह जो अन्तःकरण है, यह अंतःकरण एक ऐसी

जगह है कि जब हम इसमें गुरू को देखते हैं, तो जो गुरु का गुरुत्व है, वह इसमें रह जायेगा। हमारा अन्तःकरण एक ऐसी चीज़ (उपकरण) का नाम बोला जाता है, कि जो उस जगह पर पहुँचता है–उसको वह कैच कर लेता है। जो वहां पहुँचता है उसको वह रख लेता है। तो ध्यान का मतलब यह है, कि उसके (इष्ट के) अन्दर जो इनर्जी है, ताकत है, जो शक्ति है, उसे हम रख लेते हैं। वह इनर्जी हमें प्राप्त करना है, इसलिए हम उसका ध्यान करते हैं। बस वही काम करेगी। अगर प्रेजेन्ट में हम गुरू को पकड़े हुए हैं, तो प्रश्न ही नहीं उठता कि काम आ जाय, क्रोध आ जाय, लोभ आ जाय, मोह आ जाय। उसके रहते नहीं आएंगे। इसीलिए गुरू का ध्यान सबसे ऊँचा माना गया है। और जब वह नहीं रह जायगा और गुरू की जगह हमी अपना वीटो–विल पावर बनाएंगे, तब धोखा खाएंगे। और गुरू को जिसने बैठा लिया, तो विजय ही विजय है। तो फिर गुरू आने नहीं देगा किसी चीज (विकार) को। यह प्रश्न ही नहीं उठेगा। और हल हो जायेगा। क्योंकि जब गुरू को देखेगा साधक, तो मन जायेगा नहीं–और जब नहीं देखेगा, तब जायेगा। जाएगा, तो सोचेगा आज हमारी कितनी प्रगति हुई, आज हमारा मुनाफा कितना हुआ। जो हमने विजनेस किया। तो आज चौगुनी प्रगति हुई। तो झट उसके साथ खुशी आएगी, और खुशी की बगली से ईगो चला जायगा। और ईगो घुस जायगा तो टंगड़ी ऊपर हो जायेगी, मूड़ी नीचे हो जायगी। यह है साधक का रोना–झगड़ना।

कर्ण, पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, ये काल करके, देश करके, भाषा करके बाधित हैं। इसलिए मरना था, तो मर ही जायेंगे, कोई मरवाता थोड़े है, किसी को। अर्जुन (अनुराग) एक ऐसा तत्व था जो देश, काल, अबाधित था। वह सार्वभौमिक था। वह समष्टिगत अन्वय व्यतिरेक युक्ति द्वारा चेतन का प्रतिबिम्ब लिये हुए था। और ये सब व्यष्टिगत थे। कर्ण दानी था, इसी बात का ईगो था। उसको वह टाल नहीं सकता, वह कहता, कि भाई ऐसा है, तो मैं इसे दूँगा। एक सजातीय ईगो होता है, एक विजातीय होता है। एक त्याग होता है, एक त्याग का त्याग होता है। एक ज्ञाता होता है, एक विज्ञाता होता है, एक अविज्ञाता होता है। तो इस तरीके से अज्ञाता, ज्ञाता, विज्ञाता, अविज्ञाता चार कोटियाँ बनती हैं। इसलिए यह ऐसा विषय है, कि उसमें कोई कानून नहीं बनता। कानून–कायदा खंडित हो जाएंगे। कर्ण दानी था–उसमें मर्ज हो चुका था, उसे बड़ा मानता था। पितामह भीष्म भ्रम है। इनके पास इच्छा मृत्यु थी। ये उसमें अकड़े थे, कि हमें कौन मारेगा, हमीं दस हजार रोज मारते हैं, तो हमें कौन मारेगा। और द्रोणाचार्य–द्वैत का आचरण। वह इस विषय को समझता ही नहीं। संसारोन्मुख वृत्ति थी उसकी। इसलिए ये तीनों बलवान थे। लेकिन ये सब दोष युक्त थे। अर्जुन एक ऐसा था जो 'मामेकं शरणं व्रज।' उसके पास आत्मा थी। उसको भी डिग्री दी गई थी 'धनुर्धर, लेकिन दूसरे कहते थे, वह नहीं कहता था। इसलिए अर्जुन की ज़रूरत है। आज हमें इस शरीर को रथ बनाना है, इंद्रियों को घोड़ा बनाना है। और आत्मा को गुरू को, अपना गाइड बनाकर लगाम पकड़ाना है। तो इष्ट के प्रति जो अनुराग है अपना, वह अर्जुन है। उसकी विजय होगी। और करने वाला कोई दूसरा बैठा है। उसने तो लगाम सौंप दी है, उसके हाथ में। और अगर स्वयं करता है। तो फिर ईगो आए बगैर मानेगा नहीं। फिर यह अहिरावण, विभीषण का रूप बनाए बैगर मान नहीं सकता। तो अपने हम मालिक न बने। मालिक बना दें दूसरे को। परमात्मा को। गुरू को। तो फिर कैसे आयेगा। अहंकार अहिरावण, फिर विभीषण का रूप धारण नहीं कर सकता। वह तो हमारी गलती से

हुआ–साधक की गलती से। और गलती ही गलती को पैदा करती है। जब हम दुर्गुणी हो जाएंगे, तो दुर्गुण आ जाएंगे। जब सद्गुणी हो जाएंगे, तो सद्गुण आ जाएंगे। इसलिए यह तरीका ठीक नहीं। तरीका यह ठीक है कि–न रहे बांस न बंशी बाजे। हम भगवान को सौंप दें। वह करे, हमारा–हम नहीं करते। यह सबसे अच्छा तरीका है। और फिर अगर बौद्धिक स्तर से कोई तरीका निकालते हैं, तो एक ही तरीका है, कि पहले हम दुर्गुणों को मारें। हम भी धक्का खाएं। इन्हें भी धकियाते चलें। और जब देखें, कि दुर्गुण खतम। तो सद्गुणों की पलटन को बुलाकर बाई नम्बर फालेन करें। और कहें, कि भाई जिस घाट से, ये तुम्हारे दुश्मन उतर कर चले गए, उसी में तुम भी निकल जाओ। अब जब दुश्मन रह नहीं गये, तो मैं पलटन क्यों चराऊँ? क्या जरूरत है तुम्हें भर्ती रखने के लिए, भागो सब। इस तरह से दुर्गुण खतम होते ही, जल्दी से जल्दी सद्गुणो का भी त्याग कर देना चाहिए। यह त्याग का त्याग हो गया। जब, दुर्गुणों को छोड़ा, तो त्याग हुआ, अब सद्गुणों को भी छोड़ दिया, तो त्याग का त्याग हो गया। त्याग का त्याग हो गया, तो सर्कुलेशन से ऊपर उठ जाएंगे। तो फिर इसमें, बीच में आकर हम पिसेंगे नहीं। ऊपर रहेंगे थोड़ा सा। यह बौद्धिक स्तर का साधन है। और वैसे तो अपनी बुद्धि से समर्पण ही ठीक है।

जैसे यह जीव है, विषयों में फंसा हुआ। ईश्वर की ओर चला तो एक सीढ़ी चढ़ा, फिर दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवी, छठवीं, सातवीं–सातवीं पर पहुंच गया तो ईश्वर को पा लेता है। ये सीढ़ियों, भूमिका कही जाती हैं। सात भूमिकाएं हैं। शुभेच्छा, सुविचारणा, तनुमानसा, सत्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थ भावनी और तुर्यगा–ये सात भूमिकाएं होती हैं ईश्वर प्राप्ति की। सात भूमिकाओं को साधक कैसे लेता है ? शुभेच्छा–उसका नाम है, जब साधक के मन में ईश्वर का भजन करने की इच्छा जागी। और एडमिट हुआ, शुरू में कि हमको ईश्वर का भजन करना है। तो अपने कल्याण की जिसे इच्छा होती है कि ईश्वर को प्राप्त करके इस संसार से मुक्त हो जायं। माया से घृणा होती है, भगवान में लव लगती है। उस शुभ की इच्छा–वह पहली भूमिका है शुभेच्छा।

और दूसरी भूमिका है, कि जब हम इतना ऊपर आ गए कि हमको ईश्वर का अध्ययन करना है, संसार से मुक्त होना है, (अपना कल्याण करना है)। इस पर अच्छी तरह से विचार करना। सुविचारणा। और तीसरी है तन–मानसा। तन ये शरीर और मानस ये मन। दो हिस्सों में बांट दिया। शरीर मकान जैसा है, और मन इसमें रहने वाला जैसा है। मन के अन्दर सद्गुण और दुर्गुण दोनों हैं। मन इनका सदुपयोग–दुरूपयोग कर रहा है। वो दिखाई नहीं पड़ते। तो साधक का काम है कि उनका पता लगाए कि मेरे मन में कौन–कौन (गुण–दुर्गुण) घुसा है। और फिर बुराई का त्याग करे, भलाई का संग्रह करे। सद्गुणों को पकड़े।

और फिर इसके बाद चौथी आ गई–सत्वापक्ष। अब दुर्गुण और सद्गुण दो बातें आ गईं–तो बुराई असत्व और भलाई सत्व। तो बुराई को छोड़े भलाई को पकड़े। सत्व के पक्ष में हो जायं। उसी का पक्ष ग्रहण कर लें। उसी में रहें। असत् का त्याग हो गया।

तो फिर इसके बाद पांचवीं भूमिका आती है–असंसक्ति। जब असत् का त्याग हो गया वह कहीं (मन में) रूकने नहीं पा रहा है, तो सत् बन जाता है–जब कहीं जगह नहीं पा रहा है। जो गलत चीज़ है वह सही के साथ मिली रहेगी, तो उसका पता नहीं चलेगा। सत्वापक्ष में जब हम सत्–असत् को अलग अलग कर देते हैं। तो अलग करते ही असत् नहीं रहता। क्योंकि असत् का कहीं अस्तित्व होता नहीं और सत् का कभी नाश नहीं। इसलिए बुराई

ट्रांसफार्म होकर सत्य ही सत्य बन जायगी। तो आसक्ति से रहित हो गये। एक का नाश, तो दूसरी रह गई–असंसक्ति। अनासक्त हो गये।

फिर पदार्थभावनी–फिर इसका त्याग कर दे, जो हमें भान हो रहा है कि हम अनासक्त हो गये। इसका अभाव कर दे। पदार्थ, अभावनी। अब पदार्थ–आसक्ति का त्याग कर दे। त्याग का त्याग कर दे। फिर उसके बाद तुर्यगा। तुर्यातीत। ईश्वर का स्वरूप, हो गया। इस प्रकार से महात्माओं के द्वारा ये भूमिकाएं बनाई गई हैं। उन्होंने हम सब लोगों को रास्ता दिखाने के लिए अपने तरीके छोड़ दिये हैं। इनको पकड़ कर आगे आ जायेगा तो कल्याण हो जायेगा। हर साधक को चाहिए, हर भूमिका पर अपने को एडजस्ट करते हुए आगे बढ़ता जाय। साधना बात का बतंगड़ नहीं है, कि तुमने हमको बता दिया, हमने दूसरे को बता दिया, दूसरे ने तीसरे को बता दिया और बस ज्ञान हो जाय। यह थ्योरिटिकल है। ज्ञान ऐसा है, कि जब हम करेंगे तो वही परमात्मा बताने लगता है, वह बोलता है।

आगे आगे राह देत है, पाछे राखै नीत।
ना हां करै, नहीं ना बोलै, है दोनों के बीच।।

वह बोलेगा, तुम्हें बताएगा, समझाएगा कि तुम्हें क्या करना है? कैसे करना है? यह गलत हो रहा है, यह सही है। पीछे यह हो चुका है, आगे यह होगा। कल कोई घटना होने वाली है, तुम होशियार हो जाना। पीछे जो यह घटना हो चुकी है, उसका रिएक्शन, यह आया है। तब जा करके यह अज्ञान का पर्दा हटता है। जन्म्–जन्मान्तर से जो मल, निक्षेप आवरण पर्दे पड़े हैं। तो जब ज्ञान का दीपक जले, तो उसका प्रकाश फिर इन्हें हटाता है। तब ईश्वर समझ में आता है, कि यह ईश्वर ऐसा है। यह ईश्वर त्रिकालदर्शी है। अब तुम भी पारदर्शी बनो। तुम यह शरीर नहीं हो। ये हाथ और पैर गुदा, आंख, पेट, पीठ, सिर ये तुम नहीं हो। तुम भी आकाश हो। हृदय में है क्या, पोल है। इसी को नभ कहते हैं, नाभि कहते हैं। नभ–नाभि। यहाँ पोल है तो आवाज आएगी, ठोस में तो आएगी नहीं। जानते हो यह आकाश कब से खड़ा हुआ है। अरबों–लाखों साल से यह पृथ्वी है। वह सबको देख रहा है। हजार साल पहले क्या क्या हुआ यह जानता है। और दस साल पहले क्या–क्या घटना हुई, यह भी जानता है। इसके कम्प्यूटर में सब भरा हुआ है। आकाश बन जाओ तुम। तो फिर आकाश जब तुम बन जाओगे। आकाश से भी सूक्ष्म। तो जब ऐसा तत्व तुम बन जाओगे तो पारदर्शी हो जाओगे – कम्यूनिकेशन होने लगेगा। फिर तुम्हें वो बातें आ जायेंगी कि–

'यथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं शैल बन भूतल भूरि निधान।।

और,

जो नहि देखा नहिं सुना जो मनहू न समाय।
सो जब मैं तहं देखेऊं वरन कवन विधि जाय।।

इसको बता भी नहीं सकते। उसे छोड़ा भी नहीं जा सकता। ऐसे–ऐसे चमत्कार आते हैं, ऐसे–ऐसे चमत्कार दिखाई पड़ते हैं। कभी जनरल घटनाएं आ जाती हैं, कभी सार्वभौमिक घटनाएं आएंगी। कभी दूसरे व्यक्तियों की घटनाएं आएंगी। दुनिया में क्या घटना घटने वाली है, जर्नल प्रश्न आ जाएंगे। ये तो मीटर है, जो दबा दो वही आ जायेगा। लेकिन इच्छा नहीं करना चाहिए। अनपेक्ष ही रहना चाहिए। क्योंकि परमात्मा अपने में किसी को मिलाता है, तो अपनी औकात नहीं देता। परमात्मा अपने में मिला ज़रूर लेता है, लेकिन अपनी ताकत को

असीम ताकत को उसे बताता नहीं। समुद्र में जो जाता है, वह तैरते–तैरते मर जाता है, समुद्र की गहराई को नहीं जानता है। लेकिन उसमें लीन हो जाता है, और अपनी योग्यता के अनुसार जान पाता है। इसलिए कुछ मर्यादा है। पर्सनल रूप में, नहीं समझ सकते उसको। वही समझाए, तो समझ सकते हैं। इस तरीके से प्रार्थना अपने इष्टदेव से निरंतर करो–हमारा मन उधर न जाकर विषय की तरफ चला गया, बुराई की तरफ चला गया, विजातीय की तरफ चला गया, अविद्या की तरफ चला गया। उसके लिये प्रार्थना करो, क्षमा याचना करो–यह मेरी गलती है। भगवान की कभी गलती नहीं सिद्ध करनी चाहिए। अगर तुम्हारी तरह से, सब भगवान के ऊपर डालोगे, तो तुम्हारा साधन पिट जायगा। गलती जो हो वह अपनी माने, और जो लाभ हो, वह भगवान का माने, यह तरीका अच्छा है। इसमें ईगो से बचत रहेगी। और साधक निरंतर लाभ उठा सकता है। यह सब बुद्धि का खेल है। कैसे एडजस्टिंग करना है। इसलिए सुदामा बन जाओ। यह जो शरीर है, इसमें जो ईश्वर का अंश है (जीव) वह सुदामा है, भगवान का प्रेमी है, भगवान का साथी है। भगवान का भाई है, भगवान का अंश है, और क्लासफेलो भी है। लेकिन परबस होने से काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर इनके वसीभूत होने से, उसकी–यह कंडीशन हो गई है, कि एक–एक दाना–दाना को भटक रहा है। और जीव की जो इनर्जी है, ताकत है, शक्ति है, भक्ति है उससे वैसा लालच दिखाकर बुरा काम करना चाहता है। यह कहानी सुनी देखी होगी। उसकी पत्नी कहती है अरे मर जाओगे। तो वह रोता है, कैसे जाऊं मेरे पास तो कुछ नहीं है। तो संसार में नाना प्रकार की अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये जीव अपनी इनर्जी का उपयोग करता है। तब वही आत्मा परवश हो जाती है। फिर काम, क्रोध, लोभ, मोह उसे मार–मार हलुआ बना देते हैं। वह ईश्वर का अंश–

'चेतन अमल सहज सुखरासी'

'सो मायावस परेउ गोसाईं। बंध्यो कीर मर्कट की नाईं।।'

तो उसकी शक्ति और उसकी भक्ति (इसकी पत्नी) कहती है कि जाओ, वहीं तुम्हारी दरिद्रता दूर होगी, लेकिर उसकी हिम्मत नहीं पड़ती।

'सन्मुख होय जीव मोहि जबहीं। जन्मकोटि अघ नासउं तबहीं।।'

सन्मुख कैसे हो ? सन्मुख है, वह काम, क्रोध के। तो भगवान के सम्मुख होने में तो दिक्कत जा रही है। उसके लक्षण समझना है। और जब चल देता है। तो देखिए यह दिल द्वारका है। कर्तव्य अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब कृष्ण है। अष्ठ सिद्धियाँ पटरानी हैं, सोलह हजार एक सौ आठ उपरानी हैं। ऐसे एडजस्टिंग करें। ऐसे नहीं कि कृष्ण हुए थे द्वापर में। आज इतने हजार साल हो गये। और जब थे, तब उन्होंने कल्याण भी किया लोगों का, अब नहीं हैं, तो अब कौन कल्याण करेगा? ऐसा नहीं माना गया। फिर दर्शन से विरोध हो जायेगा। फिर सिद्धान्त से विरोध हो जायेगा। सिद्धान्त क्या कहता है।

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंचित जगात्यांजगत्।'

ईश्वर सर्वत्र है, हर जगह है। वह काल करके देश करके अबाधित है। पहले था अब नहीं है, यह उसमें नहीं होता। वह पहले भी था, अब भी है, आगे भी रहेगा। काल करके बाधित नहीं होता, ईश्वर। वह सर्वत्र है–यह सिद्धान्त है। और अगर कृष्ण को तुम द्वापर का

मानते हो, तो अब नहीं है–यह काल करके बाधित होने का दोष आता है। इसलिए ऐसा दोष नहीं आना चाहिए। तो फिर ऐसा कौन तरीका है, कि ऐसा दोष न आए। वह तरीका है। भगवान (कृष्ण) कहां हुए? ब्रज में हुये। विरज किसको कहते हैं–रज और वीर्य इन दोनों से जो रहित स्थान है, उसे कहते हैं विरज। उस जगह आता है भगवान। न स्त्री लिंग न पुरूष लिंग–ऐसा स्थान। वहां क्या है? मन रूपी मथुरा है, ब्रह्मज्ञान रूपी वृंदावन है। कंठकूप से, श्वासा जब सम होता है, तो अमृत बरसता है–यह बरसाना है। नियम नंद गांव है। ये चार गांव, निज धाम यह अंतःकरण है–यहॉ पैदा होते हैं। नियम माने नंद बाबा के यहाँ, जसोमति माने जस को प्राप्त होने वाली भक्ति के यहाँ पले। और पैदा कहाँ हुये, कर्म रूपी कंस के कारागृह में। कर्म इस शरीर से होता है। और उसके अंतःकरण में। ध्यान रूपी देवकी और वसुदेव जो सब में बसा है। उसमें, जब ध्यान लग गया। कारागृह में इसी काया के अन्दर।

'गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु जानि गये सब कोय।'

और फिर लीला कहां की। कि जब साधक ने खूब जाप किया, पश्यंती वाणी से, परावणी से, और ध्यान सही आ गया। तो बस नाम, और फिर लीला का नम्बर आ गया। कृष्ण ने लीला की है, रहस किया है। लीला रहस्य। रहस्य का मतलब होता है कि जैसे तुम चले जा रहे हो, दो आदमी बात कर रहे हों। तो कहेंगे, क्या रहस्य है भाई? क्या कोई ऐसा (गोपनीय) प्रसंग है क्या? जो बताने लायक नहीं है–वही रहस्य है। (रास, रहस, लीला)। माने अनुभव, अनुभूतियाँ वो भगवान देते हैं। और हमेशा एक र की धारा–राधा और गो नाम इंद्रियाँ–गोपियाँ इनके बीच में रहते हैं। गो नाम इंद्रियां गोपियाँ हैं, और नाम की धारा, राधा है। इन्हीं से प्रेम करते हैं। लोग कहते हैं, द्वारका क्यों नहीं ले गये राधा को, जब उनकी पत्नी थी–पत्नी थोड़े थी। पत्नी तो वो थीं जो प्राप्त की थीं। ये तो प्रेमिका है। यह तो मथुरा में ही (ब्रज में ही) रह गई यहीं। हृदय में। वह श्वासा यहीं चलती है। फिर श्वासा से परे जब साधना हो जायेगी, तो यह बुझेगी नहीं। इस तरीके से, बहुत गम्भीर बातें हैं। और अगर हमें स्थूल साधना ही करनी है, ज़िंदगी भर। अगर प्राइमरी और हाईस्कूल ही पढ़ते रहना है, लड़के को ज़िंदगी भर, तो वह मास्टर आफ आर्ट और मास्टर आफ साइंस नहीं हो सकता। तो पहले यह साधना स्थूल में चलती है। और फिर सूक्ष्म में चलती है। और जब सूक्ष्म की चलेगी तो उसमें दूसरी बातें आती हैं। इन सब क्रियाओं की एडजस्टिंग होनी चाहिए। निगेटिव, पाजिटिव जुड़ गए, फिर हो गया। फिर उसकी वाणी, उसका तरीका, उसकी चमक, उसकी योग्यताएं सब दिव्य हो जाती हैं। ऐसा नहीं कि उसमें कमजोरी आ जाय, पुरानापन आ जाय, दिक्कत आ जाय, ऐसा कुछ नहीं। वह एक ऐसी चीज़ है–अलौकिक। इस तरीके से जो गाइड है वह उचित तरीके से उसका प्रच्छालन करता है। उसमें जो लिपटी हुई हैं, गलतियॉ जो घूम–घूम कर उसकी इनर्जी को वेस्ट करती हैं, उनको दूर करता है। उनको निकालना पड़ता है। जो सही हैं, उनको आगे बढ़ाना पड़ता है। इसलिए साधक की ताकत नहीं है कि वह अपने आप करे। इसको गाइड कराता है। गुरू कराते हैं। और ये गुरू भी कोई–कोई होते हैं, जो इसको समझ पाते हैं। सबके समझ में नहीं आता। क्योंकि यह इतना गम्भीर विषय होता है कि, इस गम्भीर विषय के लिये जन्म–जन्म तक मेहनत करनी पड़ती है, तब समझ में आता है।

शरीर एक स्थूल है, एक सूक्ष्म है, एक कारण है। ये तीन शरीर होते हैं। तीनों महत्वपूर्ण हैं। कभी कभी साधकों को ऐसा चिंतवन आता है कि हम कहीं जा रहे हैं और मर गये हैं। फिर आगे जा रहे हैं फिर आता है कि हमें किसी ने मार डाला। तीन तीन जगह मरना देखता है फिर भी अपने को पाता है कि मैं ज़िन्दा हूँ। इसका अर्थ यह हुआ है कि वह मर

नहीं गया उसको ज्ञान ने मार दिया है। तो उसका अर्थ यह होता है कि आगे चलकर वह साधक निश्चित साधना के द्वारा शरीरों के भेदों को प्राप्त करके आगे बढ़ सकता है।

इस तरह से यह आदान–प्रदान हमारे से हो रहा है। पराये से थोड़े हो रहा है। इसलिए कोई भी चीज़ है तो हम इच्छा रहित होकर अनपेक्ष होकर साधना करें। केवल भगवान के लिये, कल्याणार्थ, समर्पणार्थ और हम कुछ नहीं चाहते। भगवान! आपसे हम कुछ लेना नहीं चाहते। और कुछ नहीं करना चाहते, हम तो अपने मन और अन्तःकरण को शरीर को आपको सौंपना चाहते हैं। हम तो आपकी शरण में समर्पित होना चाहते हैं। अब आप हमको तौर तरीका युक्ति बताइये, कि हम आपको समर्पित हो जायं। हम नहीं जानते, आप बताइये। अपने इष्ट से पूछो। वो बताएंगे और फिर कैसे बैठें, कैसे बोलें? बोलने की शैली, तरीका, उठना, बैठना, ये सब बहुत बड़ी बात है। तो इस तरीके से तू दे, तू दे। ऐसे अनुकूल हो जायं, तो फिर हमें कोई दिक्कत नहीं रह जायगी।

काम, मेघानाद है। इसका अन्य राक्षसों जैसा भयानक रूप का वर्णन कहीं नहीं आया, न रामायण में न किसी ग्रंथ में सब जगह साधारण मनुष्य जैसा। और है सबसे बलवान, बाप से पीती से। इसका आकार बड़ा नहीं है, प्रभाव बड़ा है, इसकी क्षमता बड़ी है। उसकी लगन बड़ी है। तो जितने फोर्स से उसकी लगन होती है उससे चौगुने फोर्स से हमारी भक्ति में लगन होनी चाहिए। तब काम चलेगा। जितनी एक कामी आदमी की स्त्री के प्रति लगन होती है, उतनी से ज़्यादा हमारी अपने इष्टदेव की तरफ होनी चाहिए।

यही तो लिखा है गोस्वामी ने अपने मानस में –

'कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहिं राम।।

ऐसी तीव्र लगत हो अपने इष्ट में तब फिर वह काम करेगी। अब हमारी तो पिपीलिका चाल है, और उसकी विहंग चाल है। एक चिड़िया उड़ी और यहाँ से वहाँ पहुँच गई। और यहाँ चल रहे हैं–धीरे धीरे। कहाँ काम चलेगा ? हमारी उसी स्तर पर गति होनी चाहिए, तब हम इसको जीत सकते हैं, तब हम इससे कामयाब हो सकते हैं।

काम क्या करता है? एक तो उसके पास शक्ति है। बरछी है, उससे विवेक को लक्ष्मण को हनन करता है। और उसको जिन्दा करता है, हनुमान। हृदय रूपी हिमालय और उसमें श्वासा रूपी संजीवनी में लगन करके–श्वासा को खड़ी करके जिंदा कर देता है। तो फिर जब सद्गुरू के बताए हुए साधन से, वह मन का ट्रांसफार्म करता है। सर्प से गरुण के रूप, में तो फिर वह शंका रूपी सर्प को खा जायेगा। नागपाश कट जाएगा। हम बच जायेंगे (ज्ञान, विवेक बच जायेंगे) यह उसका मार्ग है, उपाय है।

एक महात्मा थे। खूब चमक दमक थी। मूड़ी मुड़ाए मूड़ी खूब चमकती थी। एक नदी के पास बैठ गये। जब बैठ गये, तो जो नाचगान वाले मसखरे होते हैं, उन्होंने देखा बाबा को बोले आज मज़ा आ जायगा। बाबा जी की मूड़ी को बजाएंगे, मज़ा पड़ जायेगा। तो जब मजमा जुटा, तो वो मारे बाबा की मूड़ी में और नकल करे फिर मारे। बस ऐसे–ऐसे हंसाई बढ़ती गई। बड़ी देर तक होता रहा। बाद में उसने जूते से भी मूड़ी में मारा। जब आधी रात हो गई तो उसमें एक बड़ा आदमी कोई था। उठकर बाबा जी के पास आया, बोला महात्मा जी! इस जोकर नकलची ने तो बड़ी ढिठाई किया। आपकी हँसी उड़ाई और आपकी बेइज्जती भी की। मुझसे नहीं देखा गया। और आप चुपचाप शांत बैठे रहे। कहिये तो, मैं इसकी पिटाई करा दूँ। तो महात्मा बोले, नहीं भैया। इसमें इसका दोष नहीं है यह तो इस

मेरे मस्तक का दोष है जो कभी गुरुजनों को, और किसी को नतमस्तक नहीं हुआ। इसलिए इसे इसके किये की सजा मिल रही है। अब यह फिर ऐसा न करेगा। इस तरीके से महात्मा बड़े क्षमाशील होते हैं, दयालु भी होते हैं। और सब सहन भी कर सकते हैं। तो यह ऐसा कुछ है, कि कुछ कहा नहीं जा सकता। इसलिए महात्माओं ने, बड़े ऋषियों ने, इस संसार को अनिर्वचनीय कहा है। इसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। इसलिए इसे देखते चलो। यह जैसा दिखाई पड़ता है, वैसा है नहीं। जो नहीं दिखाई पड़ता, वह है। जैसे यह पोल है। तो जो दिखाई पड़ता है, वह गल जाय, और जो नहीं दिखाई पड़ता, वह बन जाय। तब ठीक रहता है। त्याग करते चलो, लाइन पकड़ते चलो, सजातीय को बढ़ाते चलो, विजातीय को संकोच करते चलो। फिर जब इन दोनों की रूपरेखा बनी। उसका विस्तार बढ़ा, इसका खतम हुआ। तो फिर दुनिया बदल जायेगी। फिर पैट बदल जायगा, सिग्नल मिल जायगा। तो गाड़ी आगे बढ़ जायगी। फिर वह दुनिया दूसरी हो जायगी, यह दुनिया दूर हो जायेगी।

ये इंगला, पिंगला, दोनों रेल की पटरी हैं। इच्छा ट्रेन है। विकल्प डिब्बे हैं। चिंतवन यात्री हैं। तो जो भी चिंतवन रूपी यात्री, हृदय के प्लेटफार्म पर आयें, उन्हें बाहर करते जाओ। वहॉ टिकने न पावें, प्लेटफार्म गंदा न करने पावें। इन्हें निकालते जाओ। तो भगवान का वास होगा। और इसमें कपट, क्रोध, मोह, लोभ, काम ये सब बसने पाए तो विभीषण जीव की दुर्गति कर देंगे मार–मार कर। ये बहुत खतरनाक हैं, इसलिए इन्हें नहीं रखना है। निर्मल होना है–

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

जो हमारे मन में विचार (संकल्प) आएं, उन्हें बार–बार चिंतवन न किया जाय। उन्हें सोचते न रहा जाय। अगर उसे बार–बार हम चिंतवन करेंगे, तो उस दुर्गुण को (विषय को), खुराक मिलती चली जायगी। तो बलवान हो जायगा। तो सबसे अच्छा तरीका यह है, कि अगर हमारे अंदर बुरे विचार भूल से आ जायं, चाहे अंदर से आएं या बाहर से आएं। इन पर हमें सोचना नहीं। अगर अंदर से आएं, हम इसे ऐसे एडजस्ट करें, कि कोई पूर्व जन्म की ऐसी खराबी है, जो ऐसा जबर्दस्त प्रेशर डाल रही है। बरबस हमारे अंदर बुराई बनाने का प्रयास कर रही है। तो इसे हम अपने इष्ट की तरफ ले जायें। और कहें, कि हे भगवान! लगता है आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं। मैं थोड़ा सा भजन के रास्ते में आगे बढ़ा हूँ, तो आपकी रुचि मेरे विषय में यह बनी है, कि यह साधक कैसा है? तो आपकी कृपा से ही, मुझे सफलता भी मिलनी चाहिये। बार–बार यह करो। इसका रिएक्शन होता है, जिससे कि संस्कार पनप नहीं पाते। तो एक तरीका तो यह है।

और अगर हमें बाहर से कोई बुराई आती है। हर प्रकार की बातें साधक पर आ सकती हैं अनेक घटनाओं से होकर यह जीवन गुजरता है। और ये अनेक जन्म जन्मान्तरों के संस्कार समूह, सभी को पछियाये हैं–लगे हुये हैं। तो कदाचित बाहर से कोई बुराई आती है, तो समझना चाहिये कि यही टाइम है, जो मुझे संभलना है। जब कोई कुछ न करेगा, तब तो हम संभले, संभलाए हैं। पर जब हमें कोई बुरा कहे, और हमें बुरा न लगे–यह साधक का अच्छा लक्षण माना जाता है, और साधक आगे बढ़ सकता है। रामायण में भी कहा गया है–

'बूंद अघात सहंहि गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे।।'

और कहा गया है–

'संत असंतन कै अस करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी।।'

- **आधि–व्याधि**
- **ईश्वरोपासना**
- **अनुराग–वैराग्य**
- **तीव्रगति का महत्व**

आधि–व्याधि। व्याधि कहते हैं बीमारियों को, आधि कहते हैं, जो मन में इच्छाएं लगी हैं, कल्पनाएं लगी हैं, चिंताएं लगी हैं। तो इस तरह से शरीर की परेशानियाँ व्याधि, और मन की परेशानियाँ आधि कहलाती हैं। मन से जो संकल्प हों, बुद्धि से जो निश्चय हो, अहं से अहंकार हो, ये भी आधि के अंतर्गत आते हैं। और व्याधि क्या है, शरीर के रोग। किसी किस्म के रोग हों। इन आधियों और व्याधियों के वशीभूत होकर जीव, भगवान के सान्निध्य में होते हुये भी उसके सान्निध्य से छूट जाता है। इन्हीं आधियों–व्याधियों में फंसकर, अपने स्वरूप को भूल जाता है। जीव–धर्म में आकर जीवन से प्रेम रखने लगता है। और परमात्मा से विमुख हो जाता है। उसी का अंश उसी से अलग हुआ। यह कैसे होता है? तो यह नाभिकमल है, आकाश। हाँ इसका सबसे अच्छा उदाहरण वह भजन है –

प्रथम ओम् से शब्द हुआ है सो आकाश कहाया। और फिर इसी क्रम से वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पांच तत्व बने।

तो ये पांच तत्व और तीन गुण या ब्रह्मा, विष्णु, महेश। एक पालन करने वाला, एक पैदा करने वाला, एक मारने वाला। इस तरह से पांच और तीन, आठ तत्व की यह अष्टधा मूल प्रकृति बन गई। ये जो आठ तत्व की मूल प्रकृति तैयार हो गई, इसे आध्यात्मिक भाषा में कहते हैं – तुर्याष्टक। यह प्रकृति, ईश्वर का संविधान बन गई। अब यह जीव भूलवश नहीं जान सकता, कि मैं इससे कैसे मुक्त हो सकता हूँ। तोता और बंदर की तरह बंधा है, भ्रमवश।

गोस्वामी जी ने लिखा है –

'सो माया बस परयो गुसाईं। बंध्यो कीर मर्कट कीनाईं ।।

जैसे किसान धान के खेत में, तोता को पकड़ने के लिए, एक लकड़ी गाड़ देता है, और उसमें बांस की एक पोली बनाकर डाल देता है। और जब तोता आकर उस पर बैठता है, तो पोली घूम जाती है। तोता उल्टा होकर टंग जाता है। पोली को छोड़ता नहीं। छोड़ने का ख्याल ही नहीं रह जाता। क्योंकि उसे इस स्थिति में होनेका सेंस ही नहीं है, दिमाग में उसके। उसे भ्रम हो गया, कि मुझे यह लकड़ी पकड़े हुये है। यही मिथ्या भ्रम ही भीष्म है। इसको कोई नहीं जीत सकता। हाँ। भ्रम किसे कहते हैं। झूठे में सही की प्रतीति का नाम भ्रम है। तोते को भ्रमवश प्रतीत होता है कि किसी ने उसे पकड़ लिया है।

ईश्वर, वहीं हृदय में लेना पड़ता है, और तभी साधक में सुधार होता है। उसमें जब क्षमता नहीं आती, योग्यता नहीं होती, और उससे जब कहा जायगा, तो सही बात पर भी उसको बुरा लग जायेगा। वह समझेगा कि इनका कुछ स्वार्थ है, इसलिए ऐसा कहते हैं। इसको दुरुपयोग कहते हैं।

अब रामायण तो पढ़ते हैं। सभी कहते हैं–रामायण का पाठ करो, ज्ञान हो जायेगा। गीता का पाठ करो, ज्ञान हो जायेगा। ज्ञान कैसे हो जायगा ? जब तुम्हारे भीतर तो क्रिया होनी नहीं है–गीता का रोज पाठ कर लेना है। चित्त की गति बदलनी नहीं। रसास्वाद लेना ही

है। बेइमानी का स्वाद लेना ही है। कैसे काम चलेगा? ये सब बातें बहुत वैसी हैं। इसलिए–हर आदमी के लिए बताना ठीक नहीं रहता।

''आरत अधिकारी जहं पावहिं।''

जो सही पात्र हो, इसको समझने वाला हो, उससे कहा जाय तो ठीक रहता है। अब यहाँ, इतने बैठे हैं। सब एक जैसे तो हैं नहीं। बताने वाला तो एक ही जैसी बात करेगा। कैसे समझ में आयेगा? कोई थोड़ी सी बात पकड़ पा रहा है। कोई पकड़ते हुये भी, नहीं पकड़ पा रहा है। कोई इन बातों को समझता ही नहीं। कोई समझ रहा है, थोड़ा। लेकिन कर नहीं पाता। पहले ऐसा था, कि ब्रह्ममुहूर्त तीन चार बजे से मानते थे, और दिन निकलने तक–यह सबसे शुद्ध समय होता है। जानते हो, भजन कब होता है? जब आकाश शुद्ध मिले, तब मन कहीं नहीं जायेगा। आकाश शुद्ध कब होता है? बारह बजे तक आदमी जाग सकता है, कोई काम पर लगा हुआ है। दो बजे तक जाग सकता है। लेकिन ब्रह्ममुहूर्त में स्वयं नींद आ जाती है सबको, उस समय आकाश शुद्ध मिलता है। उस समय बैठ जाओ–ब्रह्ममुहूर्त में भजन करना चाहिए तो सही ध्यान लगेगा। सही मन रुकेगा। मन को ध्यान में लगायें, ध्यान में लगेगा। जप में लगाएंगे, जप में लग जायेगा। और जैसे उसे खड़ा करेंगे, खड़ा हो जाएगा। क्योंकि तब उसको खींचने वाले संकल्प नहीं हैं। और जब सब जाग गये और फिर तुम बैठे दिन में, तो फिर मन नहीं लगेगा। तमाम छनछन कर संकल्प दौड़ रहे हैं। एक नाड़ी है एक्सटर्नल, जो तमाम संकल्पों को फेंकती है। एक नाड़ी इंटरनल, जो बाहर के संकल्पों को पकड़ती है। कभी शान्त नहीं बैठती–और इतनी स्पीड हो जाती है इसकी, जैसे गाड़ी सौ किलोमीटर की स्पीड से दौड़ती है। अब तुम उसे रोकना चाहते हो–यह ध्यान है। जैसे कोई लड़का तेजी से दौड़ रहा है। वो रुकेगा? वो तो ब्रेक लगाते–लगाते कहीं दूर जाकर रुकेगा। इसलिए मन को रोकने का सबसे अच्छा तरीका यह है, कि पहले श्वासा का जाप करो। श्वासा में नाम लो। नाम से मन की गति धीमी हो जायगी। श्वासा को तो चैन नहीं है, लेकिन मन इतना पाजी है, कि दुनिया के विषयों में दौड़ रहा है। उसे लगा दो, श्वासा में। लेकिन जपे न, सुने केवल–अजपा इसे कहते हैं। सुने खाली। तो उससे मन की गति धीमी होगी। धीमी होते–होते क्या होगा, कि एक खुमारी जैसी आयेगी। नशा जैसा आयेगा। और जब नशा आने लगे, तो फिर ध्यान करो। अपने इष्ट को देखो। अपने मन से देखो और अपने को समर्पित कर दो। कि भगवान मैं आपका हूँ। मैं आपको ही देखना चाहता हूँ। मैं अपने इस मन को आपको सौंपना चाहता हूँ। यह मेरे वश का नहीं है, इसलिए मैं हार कर उसे आपको दे रहा हूँ। आप में क्षमता है, आप इसे पकड़ सकते हो, आप इसे बांध सकते हो। मेरी समझ में यह आया है कि आपके पास ताकत है। इन बलवानों को मैं आपको देता हूँ। आप इन्हे पकड़ लीजिए। और इन्हें आप अपने पास रखिए। मेरे पास नहीं–ये मेरी हालत खराब कर देंगे। गोस्वामी जी भजन में कहते हैं –

''मैंने आप से पैसा नहीं लिया। मैंने स्वयं अपने आपको, आपके सामने समर्पण कर दिया–अब आप चाहे मुझे काम से मरवाइये, चाहे क्रोध से कुटवाइये, मैं आपका हूँ। आप की ही नाक कटेगी, आपकी ही बदनामी होगी, अगर मेरी बेइज्जती होती है। इसलिए अब आप जानिये, मेरे पास कुछ नहीं रह गया है। मैंने अपने को समर्पण कर दिया है। मैं आपको समर्पित हूँ – सरेन्डर हूँ''। कितने गंभीर भाव हैं ? तो इस प्रकार कोई साधक, कंठ गदगद होकर और हृदय से द्रवित होकर प्रार्थना करे तो यही शुद्ध तरीका है–

'वरऊं शंभु नतु रहउं कुमारी। जनम जनम लगि रगर हमारी।।''

'जाकर मन रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम''

अब हमको शंकर चाहिए। कुछ भी हो जाय। इस तरह की दृढ़ता हो। ऋषि परीक्षा लिये और वो फेल नहीं हो पाये, ऐसा साधक हो।

'जनम जनम लगि रगर हमारी'। जनम जनम–लिमिट ही खतम कर दी। ऐसा जो प्रेम रूपी पार्वती और सत् जो आत्मा है शंकर। उसमें जब प्रेम हो जाय हमारा, वही भजन है। वही लगन है। जिसके हृदय में प्रेम है, भगवान के प्रति, वही पार्वती है। और जो सत् है–तीनों कालों में एकरस, शुद्ध, बुद्ध, अजन्मा, अरूप, अलख अविनाशी, ऐसा जो सत्य है, वही शंकर है। भगवान है। इष्टदेव है। गुरू है। आत्मा है। उसी के लिए मचल जाओ। रोओ–गाओ। मर मिटो। ऐसा है, यह रास्ता। इसके लिए तीव्रतर वैराग्य होना चाहिए–साधक में।

प्रथम श्रेणी, द्वितीय, तृतीय श्रेणी होती हैं। तो धीमा वैराग्य, तीव्र वैराग्य, तीव्रतर वैराग्य। श्रेणी बन गई। अनुराग अलग है। वैराग्य अलग है। अनुराग उसको कहते हैं, जब करूणा आए। अपने भगवान के लिये, अपने इष्टदेव के लिये, हमको रुलाई आए। करुणा आए। कि हम इतने गये गुजरे हैं कि भगवान हम पर दया नहीं करते, हम पर रहम नहीं करते। हममें इतनी बडी खराबी है। भगवान, हे इष्टदेव, मैं गया गुजरा हूँ। मुझ पर करुणा करो, मुझ पर दया करो, मुझे अपना लो। इस तरह से रोमांच हो जाय, कंठ गदगद हो जाय, अश्रु धारा बहने लगे–यह जो प्रेम की परिसीमा है, उसे अनुराग कहते हैं। लेकिन यह बहुत समय तक निरंतर नहीं बना रहेगा। कोई आदमी हो, खूब रोए, खूब करुणा करे, लेकिन वह लगातार रोता ही रहे–यह नहीं हो सकता। अनुराग, वेग या फोर्स के साथ आता है। और उस वेग के समय, जो प्राप्ति उसे होती है, वह कान्टीन्यू रहने लगे। अनुराग में भी रहे, अनुराग नहीं है तो भी रहे, बोलने में भी रहे, खाने में भी रहे, सोने में भी रहे, उसका नाम वैराग्य बन जाता है। और जब वह एकांगी होता है, तब वह अनुराग होता है। जब बंदर लोग अपना–अपना बल बखान कर रहे थे, समुद्र लांघने के लिये, सीता का पता लगाने के लिये, तो किसी ने कहा हम दस योजन उड़ान भर सकते हैं। किसी ने कहा हम बीस योजन जा सकते हैं, किसी ने कहा पचास योजन। और अंगद,

''अंगद कहइ जाऊं मैं पारा। जिय संसय कछु फिरती बारा।।''

मैं सौ योजन समुद्र के पार जा सकता हूँ। लेकिन लौटने में शंका हो जाती है। यह है अनुराग, अंगद। और फिर सबने हनुमान का गुण बखान किया। आप महाबली हैं, आप देश काल की सीमाओं से परे हैं, आप सब कुछ कर सकते हैं–आप सार्वभौमिक हैं। आप दिन में, रात में, सुबह में, शाम में, दुख में, सुख में, हर्ष में अमर्ष में हर समय एक सा रूप है आपका तो आपको तो कोई प्राब्लम नहीं होना चाहिए, आप जा सकते हैं, आ सकते हैं। आप अपने रूप का ख्याल करिये। हनुमान में एक दुर्गुण और था कि जब यह पैदा हुआ था तो इन्द्र ने बज्र मार दिया, तो इनकी माता अन्जनी ने हंगर स्ट्राइक कर दिया और हनुमान ने सूर्य को निगल लिया था, तो अंधेरा हो गया। सब देवता प्रार्थना किये, तब सूर्य को छोड़ा, तो सबने आशीर्वाद दिया। अग्नि ने कहा कि अग्नि तुम्हें जलायेगी नहीं, धर्मराज ने कहा। अजर अमर हो जाओ। किसी एक अपरिचित ने आशीर्वाद दिया था कि तुम्हें अपनी ताकत का पता नहीं रहेगा। तुम्हे कोई याद करायेगा तब याद आएगा। तो हम तुमसे पूंछते हैं, कि वह सबसे बड़ा देवता कौन था जो हनुमान को यह आशीर्वाद दे गया था। बताओगे ? तो सबसे बड़ा देवता वह देवी थी। उसने कहा था कि जब तुम्हें याद आएगा तो अहंकार–ईगो होगा और याद नहीं आयेगा तो अहंकार नहीं आएगा। इसलिए हनुमान को याद नहीं रहता था, अपनी ताकत का, अपने स्वरूप का। तो जामवंत–जानकारी रखने वाले का नाम है, जामवंत। बोले हनुमान

तुम याद करो। तुम्हारे अंदर बड़ी ताकत है। तुम याद करो, अपने स्वरूप को। तुम सब कर सकते हो। तब उनको याद आया। फिर समुद्र के पार गये। तो अब यह समझ में आ गया होगा कि शुरू में साधक अपने इष्टदेव से रोता–गाता है। अनुराग पैदा करता है। लेकिन कुछ टाइम बाद, अनुराग सार्वभौमिक हो जाय, इन्लार्जमेंट हो जाय, सर्वत्र हो जाय, सब परिस्थितियों में हो जाय, दिन में, रात में, सुख में, खाने में, चलने में जब सर्वत्र अनुराग बराबर रहने लगे, तो उसका नाम है वैराग्य। हनुमान–हनन करे जो मान का। यह अनेक बड़े–बड़े योद्धाओं को परास्त कर सकता है। समुद्र के किनारे बंदरों की पलटन लेकर पहुंचे राम। फिर वहाँ अपनी विनम्रता दिखाते हुये समुद्र की पूजा की, विनय की। कि भाई, तुम संसार के प्रतीक स्वरूप हो, इसलिए तुम्हारी हम पूजा करते हैं, तेरे को मना रहे हैं–कि कैसे इतनी बड़ी पलटन को पार ले जायं। जब समुद्र नहीं आया तो क्रोध आया। तो फिर अग्निबाण संधान किया और समुद्र सामने आ गया। राम ने पूछा कि तुम क्यों नहीं हमारी विनय सुने ? तो उसने कहा कि यह तो मर्यादा आपकी बनाई हुई है–यह तो समुद्र सदा ऐसा ही रहता है। इसमें तो कोई हरकत (संवेदन) होती नहीं, आप अपनी बनायी मर्यादा को चाहें खतम करें, चाहे रखें। एक तरह से समुद्र ने, राम को बोर किया। लाजवाब किया। राम ने कहा ठीक है, लेकिन यह बताओ कि कोई उपाय है कि हम सेना को लेकर पार जा सकें। तो उसने कहा, कि आपकी सेना में ही है। पहले से ही ऋषियों ने शाप दे रखा है। प्रकृति की नियमावली बनी हुई है। उसको आप क्यों नहीं इस्तेमाल करते। ये जो नल–नील दो बंदर हैं, लड़कपन में ऋषियों के बर्तन बगैरह सालिग्राम आदि पत्थर की चीजें समुद्र में फेंक देते थे, तो वे परेशान होते थे। तो ऋषियों ने आशीर्वाद दिया था, कि तुम जो भी पत्थर पानी में फेंकोगे वो तैरते रहेंगे। इसलिए ये हाथ लगायेंगे, तो बड़ी–बड़ी शिलाएं भी तैरती रहेंगी। यह पहले से नियम बना है। प्रकृति का। यह आज का नहीं है। यह संसार समुद्र है, विषय ही पानी है। साधक सदा से यह क्रिया अपने अंतःकरण में अनादि काल से करते आ रहे हैं–आप ही नहीं आ गए। मोह रूपी रावण की, जो आसक्ति रूपी लंका है, उसको विध्वंश करने के लिये, मोह–रावण के विनाश के लिये, यह अनुसंधान निरंतर चलता रहता है। लाखों लोग प्रयत्न करते हैं, और उसमें कोई एक गुरू का लाल, सफलीभूत होता है।

तो फिर राम ने सेतु बनाना शुरू किया। शंकर जी की स्थापना की। और फिर उस पार जाते हैं। सुबेल एक पर्वत है। वेल कहते हैं लेबल (स्तर)। सु की लेबलिंग। सु की चढ़ाई। शुभ की सीढ़ी पर जाकर, फिर वहां डेरा डाल देते हैं। और शाम हो जाती है। तो सुग्रीव बैठ जाता है। उसकी जांघ पर सिर रखकर राम लेट जाते हैं। और अंगद–हनुमान पैर दबाते हैं। लक्ष्मण वीरासन पर बैठ जाते हैं–पहरे पर। और जितने अंतरंग हैं, वो सब वहाँ रह जाते हैं। तो जानते हो, एक ऐसा प्रश्न है यहाँ–कि राम ने पूछा कि चन्द्रमा में ये क्या है, काली परछायीं। तो किसी ने कुछ बताया, किसी ने कुछ बताया किसी ने कुछ बताया तो हनुमान ने कहा कि भगवान यह आपका दास है, चन्द्रमा। हृदय में आपका रूप लेकर बैठा है–ध्यान करता है। फिर उधर देखा तो कहा यह गर्जना कैसी हो रही है? बादल की जैसी, क्या वर्षा आने वाली है? तो विभीषण ने बताया कि यह रावण का अखाड़ा है, सबसे ऊपर। वहाँ पर बैठा हुआ है। और मंदोदरी बैठी है उसके कानों के कर्णफूलों में लगे हीरे हैं, जो बिजली सी चमक जाती है। और जो तबला बजता है, नाच गाने हो रहे हैं, वह मानो बादलों की गर्जना है। राम ने कहा अच्छा, इतना निश्शंक है रावण। तो कहा हॉ, यही राजाओं की खूबी है, कि दूसरा यह न समझे कि यह घबराया हुआ है। बल्कि यह समझे, कि वह तो बड़ा निर्भीक और बेपरवाह है–तुम्हें कुछ नहीं समझता, यह जताने के लिये ऐसा कर रहा है। यह तो बाहरी कथानक है। वास्तविक आशय यह है कि जब बाहरी विषयों से इंद्रियों को हटाकर,

संयम रूपी सेतु बन जाता है, संसार रूपी समुद्र के ऊपर, साधक के विचार में। अन्तःकरण में प्रवेश कर जाता है। अभी तक तो बाहरी साधना चली स्थूल जगत की। अब अन्तर्जगत की साधना चलेगी। जब यह युद्ध शुरू होता है, तब यह सूक्ष्म जगत की साधना है। चाहे युद्ध कहो या साधना कहो या भजन कहो। इस तरीके से जब विभीषण ने यह भेद बता दिया, तो राम ने बाण मार दिया, तो क्षत्रमुकुट सब गिर जाते हैं। मंदोदरी के कर्णफूल टूट जाते हैं, अंधकार हो जाता है, गाना बजाने में रंग में भंग हो जाता है। बाण इतना करके वापस आ जाता है। यह कम्यूनिकेशन होता है। साधक जब साधना में सही रूप ले लेता है। अनुराग और वैराग्य चरण पकड़ लेते हैं। जीव रूपी विभीषण तीनों कालों की बातें बताने लगते हैं, फ्यूचर बताते हैं। सुरत सही स्वरूप में एडजस्ट हो जाती है। सुरति रूपी सुग्रीव की जांघ का सहारा ले लेते हैं राम। तब यह चित्त रूपी जो चन्द्रमा है, उसमें राम की परछाईं आ जाती है। फिर यह चित्त जहाँ–जहाँ जाता है, वहां उसे परमात्मा ही दिखाई पड़ता है। जब यह कंडीशन होती है, तो फिर यह जो मोह सकल व्याधिन कर मूला–जो रावण है, यह जो कलाबाजी करता है, उसमें रंग में भंग हो जाता है। जितने विषयोन्मुख इसके क्रिया कलाप हैं, हर्ष हैं, आनन्द हैं, विषय हैं वो सब रंग भंग हो जाता है। यह साधक की प्रथम सीढ़ी है। विजय का डंका। इस शरीर में जो आसक्ति है, वह लंका है। आसक्ति को नष्ट करता है। और जितने इसमें कलह किये हैं, उन्हें एक एक करके मारता है। और शुरू में ध्यान से यह समझ में आया है कि अंगद अनुराग अपने काम में ठीक है। वैराग्य हनुमान अपने काम में ठीक हैं। सुरति जो अपने स्वरूप को पकड़ना चाहती है, वह ठीक है। ईश्वर का अंश जो काम, क्रोध, लोभ, मोह के अधीन था। वह उनके कब्जे से निकलकर ईश्वर उन्मुख हो गया है। साधन उन्मुख हो गया है। वह जीव विभीषण, सब भविष्य की जानकारी बताने के लिये तैयार है। इतनी कंडीशन जब बन जाती है, तब साधक के हृदय में दृढ़ विश्वास जग जाता है, कि अब मेरा साधन सही ढंग पर है। अब परमात्मा, ईष्टदेव कृपा करेंगे।

जब साधक के अन्तःकरण में सजातीय–विजातीय में झगड़ा होता है, तब क्षत्रिय बन जाता है। अभी तक शूद्र था साधक, फिर बनिया हो गया कुछ दिन में। अब इस स्थिति में क्षत्रिय कहलाता है। तब ब्रह्मज्ञान रूपी बंदर, सुरति रूपी सुग्रीव, अनुराग रूपी अंगद, ध्यान रूपी दधिबल, वैराग्य रूपी हनुमान, नियम रूपी नल नील, जानकारी रूपी जामवन्त। जामवन्त सबसे पुराना है–यह व्रह्मा का पुत्र है। तो जब क्षत्रिय रूप आ गया। तो फिर झगड़ा–झगड़ा, लड़ाई ही लड़ाई। और जब लड़ाई करके राक्षसों को मार डाला। तो बंदरों की, देवताओं की विजय हो जायेगी। तो क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गया। ब्रह्म को पा जायेगा। तो शुरू–शुरू में साधक जब भरती होता है साधना में, तो शूद्र है, छुद्र है, छोटा है। फिर वह ट्रेंड होते होते, साधना करते करते, सीखते सीखते फिर सजातीय पार्टी को भर्ती करता है, विजातीय को हटाता जाता है। समझ आ गई। तो वैश्य हो गया। फिर झगड़ा शुरू होता है, तो क्षत्रिय हो गया। फिर विजय मिली और ब्राह्मण हो गया। 'ब्रह्मं जानाति स ब्राह्मणः।' ईश्वर की प्राप्ति हो गई। इस तरीके से जब साधक बढ़ता है, साधना में। तो पहली भूमिका में उसे कुछ नहीं आता। दूसरी भूमिका में थोड़ी दिक्कत आती है, तीसरी में तनुमानसा कुछ ठीक हो जाता है। चौथी पे थोड़ा ताकत आ जाती है। और सत्वापक्ष। अब सत्य का पक्ष ले लिया, असत्य का पक्ष जो अभी तक था, छोड़ दिया। तो फिर समझ में आ गया। सब कुछ बदलता चला जायगा। सब गुण धर्म अलग हो जाएंगे। प्रगति होती जायगी। फिर असंसक्ति–आसक्ति का नाश, पांचवीं भूमिका। संसार दिखाई पड़ते हुए दिखाई नहीं पड़ता। यह दीवाल दिखाई पड़ते हुए दिखाई नहीं

पड़ती–पोल दिखाई देता है। यह जो खम्भा है, यह जो पर्दा है, यह पर्दा नहीं दिखाई देगा यह ऐसा पोल दिखाई देगा, ऐसा (आकाशवत)। आसक्ति को खतम कर दो। जो पदार्थ है, इसका अभाव हो जाय–यह छठवीं भूमिका है। पदार्थाभावनी। यह चीज़ है, लेकिन हमें नहीं दिखाई देती। जब चाहते हैं, इसे गला देते हैं। जब चाहते हैं, इससे काम ले लेते हैं। यह हमारा वीटो है, पावर का काम है। इस प्रकार साधक के पास ताकत आने लगती है। वीटो बनने लगता है। और वह वीटो बार–बार काम करता है। रो–रोकर भक्ति होती है। हे भगवान हम इतने पापी हैं। हम क्या करें। आप कृपा करो।

ऐसे रोते–रोते भगवान को मनाओ, कि द्रवित हो जायं। अनुराग आ जाय। और जब उसका सहारा मिल जाय तो फिर (ललकार दो)–'मैं तोहि अब जान्यो संसार।
बांधि न सकसि मोहि रघुवर के बल प्रगट कपट आगार।।'

मैं तुझे अब जान गया हूँ संसार। तू मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। यह ईगो आ गया। लेकिन यह शुद्ध ईगो है। इसमें भगवान बोल रहा है। इसका दोष नहीं लगता। एक अशुद्ध ईगो होता है, एक शुद्ध ईगो होता है।

गोस्वामी जी क्या कहते हैं–

'बांधि न सकसि मोहि रघुपति केबल'

अब मुझे भगवान का सहारा मिल गया है। अब मैं सब कुछ कर सकता हूँ। कबीर जब इस अवस्था में पहुंचता है। तो कहता है–

'ठगिनिया क्या नैना चमकावै।
कबिरा तेरे हाथ न आवै।।
रूपा करके रूप दिखावै सोना कर चमकावै।
गले में डाल तुलसी की माला तीन लोक भरभावै।।'

मैं जानता हूँ (ऐ माया) तुझमें क्या कला है, कि ईश्वर का साधन करने वालों को पटक देती है तू। रूपा करके रूप दिखाती हो, सोना करके चमकाती हो कि यह किसी तरहसे फंस जाय। गले में डाल तुलसी की माला तीन लोक भरभावै। यह माया से कहने का तरीका है। तो एक ऐसी अवस्था आती है। जिसमें साधक को अपनी प्रगति ज़रूर मालूम पड़ती है। लेकिन विषयों से विरत रहकर सही ध्यान भजन करे तब।

अब जैसे तुम अपने इष्टदेव को अपने हृदय में देखते हो तो इसका यह मतलब नहीं कि हमने बताया तो हृदय में देख लो, और बाहर फिर माया को देखो। हृदय में देखने का तात्पर्य यह होता है कि सब जगह फिर वही वही हो जाय। जिस तरफ आंख जाती है, जो भी दिखाई पड़ता है और ध्यान से देखते हैं तो इष्टदेव उसमें दिखाई पड़ जाते हैं। इधर देखें, उधर देखें। जिस तरफ यह दृष्टि उठती है उधर हम अपने दष्टदेव को खड़ा देखें। तो फिर यह माया बेवकूफ बन जायेगी। वह तो कोई रूप ले आयी विषय के लिये और हम झट अपने गुरू बाबा को खड़ा कर दें कि ले दर्शन कर। जहां–जहां मन जाय, तहां अपने गुरू को धारण करते चले जाओ। धारणा, उसी का ध्यान बन जायेगा और फिर ध्यान से समाधी–सम के आदी बन जाओगे। और अगर भजन तुम्हारा, ध्यान कमजोर हुआ तो आंख मूंदकर तो भगवान को देखते हो और बाहर जब हो गये तो वही दुनिया। ऐसा नहीं। हम यह भी कर लें, वह भी कर लें। हम हंस भी लें, रो भी लें। दोनों काम एक साथ न होंगे।

इसलिए तुम भोजन बनाओ, सबसे बात करो, लेकिन तुम्हारी नज़र में नाचता रहे तुम्हारा गुरूबाबा। तुम्हारा इष्टदेव। उसे नहीं हटना चाहिए। और अगर उसे उठा कर इधर रख दिया और तुम फ्री हो गए, और रूप के पीछे दौड़ पड़े, सुगंध के पीछे दौड़ पड़े, स्पर्श के पीछे दौड़ पड़े तो फिर मार खा जाओगे। इसलिए हम कहते हैं, कि ध्यान तुम्हारा तीव्र गति वाला होना चाहिए। पिपीलिका चाल, पशुचाल, विहंग चाल, मुनमुनिया चाल। ये चार तरह की गति होती है, साधना में।

पिपीलिका चाल वाली साधना काम नहीं करेगी। विहंग चाल होनी चाहिए। यह चिड़िया यहाँ से उड़ी, और फुर्र से वहाँ पहुँच गयी। तुम्हारा इतना तीव्र ध्यान होना चाहिए, कि हृदय में देख ले और बाहर मन निकले तो यह पुस्तक नहीं दिखाई पड़े गुरू बैठा है। इधर देखते हैं तो, इधर यह तकिया नहीं है। गुरू बाबा बैठा है। उधर पाण्डेय जी याद आये, तो गुरू बाबा ही दिखाई पड़े। इधर पौराणिक जी याद आये, तो गुरू बाबा ही दिखायी पड़े। सर्वत्र गुरू बाबा आ जायेगा, अगर तुम्हारा ध्यान सही है। अगर ध्यान सही नहीं है, तो फिर हार खा जाओगे। फिर ये असर कर जायेंगे। कमजोर साधन माना जायेगा। इसलिए ऐसा साधन होना चाहिए, तीव्रतर वैराग्य होना चाहिए। वो हनुमान की बात वहाँ नहीं छोड़ दिये, हनुमान की ही बात हम कर रहे हैं। हनुमान बन्दर नहीं है। हनुमान कहते हैं, वैराग्य को। इतना तीव्र वैराग्य होना चाहिए, उसको उठाओ। पहले अंगद तैयार करो। अनुराग आये। फिर वह अनुराग, बढ़ते–बढ़ते वैराग्य का रूप ले ले। वैराग्य इतना तीव्र हो जाये कि बस कोई चीज़ नहीं दिखायी दे। तब तुम हनुमान हो सकते हो। तब तुम हृदयरूपी हिमालय से, संजीवनी–अमृत पैदा कर सकते हो। तब तुम लक्ष्मणरूपी विवेक को जीवित कर सकते हो। तब तुम हनुमान बनकर, गरुण को ला सकते हो। जीता हुआ मन–गरुड़। तब तुम राम लक्ष्मण को नागपाश से छुड़ा सकते हो। नहीं तो बँधे पड़े रहेंगे। बॅधे तो हैं ही, जब हम जिव्हा का कहना करते हैं, जब हम नेत्रों का कहना करते हैं–बॅधे तो हैं ही। इन्हें तब हम छुड़ा सकते हैं, जब तीव्र अनुराग हो, तीव्रतर वैराग्य हो। जहाँ–जहाँ हम देखें गुरू दिखाई पड़े। तब सब यह खत्म होने लगेगा। यह संसार सब गल–गल कर आकाश बनने लगेगा। यह संसाररूपी बरफ, ज्ञान की गरमी पाकर पिघलने लगेगा। और पिघलते–पिघलते यह परमात्मारूपी पानी बन जायेगा।

- **भय क्यों लगता है ?**
- **काग भुसुण्डि**
- **लव कुश**
- **कंस–कृष्ण**
- **वशिष्ठ विश्वामित्र**
- **साधना से कल्याण**

हमको भी भय बहुत लगता था। और हम आ गए यहाँ (धारकुंडी)। यहाँ गुफा में शेर रहता था। इधर जंगल में भी शेर रहते थे। आदमी कोई, यहाँ आता नहीं था। तो हम कहें, कहाँ आकर फंस गये? ये हमें खा डालेंगे–शेर भालू। कहाँ की सधुवई, कहाँ का दंद। तो हम बैठकर के सोचा करें, कि भगवान जाय भाड़ में, पहले इनसे कैसे छुटकारा मिले? यहाँ हम बाहर बैठा करें, गुफा में सफाई नहीं थी। गुफा में एक तरफ थोड़ा ऊँचा था। किसी ने धूनी लगा दी, तो हम बैठ गये। और रामपुर से दो आदमी आए थे, उन्हें हमने भगा दिया। बैठे तो एक सर्प दिखाई पड़ा, उधर देखे तो दूसरा सर्प, दिखाई दिया, उधर से बिलबिलाते चले आवें पाँच–पाँच सात–सात सर्प, तो हमने कहा अब यह कहाँ का ददं रच गया? भाड़ में जाय। कभी मन में यह भी आता था। हमने सोचा कि क्या किया जाय ? तो अन्दर से आया कि भगवान सर्पों में भी हैं, भगवान शेर में भी हैं। भगवान तो कण–कण में हैं। तो यह हमारी जानकारी की कमी है, यह साधक की अपनी कमी है। और कहते हैं कि–

''अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः।''

महात्मा के हृदय में अहिंसा प्रतिष्ठित हो जाती है, तो अपने और शेर एक साथ पानी पीते हैं। अहिंसा जहाँ प्रतिष्ठित हुई, तहाँ क्रोध का त्याग करके, बैर विरोध का त्याग करके, एक आत्मा देखता है। तो हममें यहाँ, यह सधुवई कैसे आयेगी? कैसे समझ में आयेगा? पहले तो यह भय दूर हो। तो फिर हम मेहनत किये खूब, दो तीन दिन। तो आया, कि अच्छा कोई जानवर आवे तो हम बतावें। ऐसे नहीं बनता। तो बस पहले तो एक अजगर निकला, फायं फायं करे। इतना बड़ा मुँह था, और तीन चार हाँथ निकलकर घुसा था। सुना था, कि यहाँ पर पाण्डवों को निगल लिया था। तो हमने कहा–गये अब! अब क्या किया जाय? तो हम लकड़ी जलाये थे। अन्धेरा हो गया था, रात के 8, 9 बजा रहा। तो वह ऐसे–ऐसे करते, थोड़ा इधर–उधर चला गया। फिर करीब डेढ़ सौ सांप निकले, और हमें चारों तरफ से घेर लिया। तो हमने कहा, ये हमें खा लेंगे। फिर वो नहीं बोले, सब निकल गये। यहाँ शंकर जी का जो शिवलिंग उधर नीचे में था। हमारा आसन इधर ऊँचे में था।

यहाँ पहले एक बाबा आया करे, तो बताया करे, कि यह शंकर जी की गुफा है– यहाँ आपको विघ्न आएगा। आप शंकर जी के ऊपर आसन लगाए हैं। शंकर जी नीचे हैं, यह ठीक नहीं है। वह कभी–कभी रहा करता था, फिर चला जाता था। तो कहा, यह सिद्ध जगह है। आप यहाँ न रहिये, ऊपर रहिये। यहाँ दो एक सिद्ध महात्मा, सतयुग वाले रहा करते हैं। वो आपको विघ्न डाल देंगे। तुम्हारी वृत्ति खराब हो जायेगी। तो हमने कहा, हो जायेगी, हो जायेगी। हम तो यहीं बैठेंगे। और कहीं अच्छा न लगे। यहाँ अच्छा रमणीय था। तो फिर उसने कहा, आप कैसे सभ्य महात्मा हैं, कि शंकर जी के ऊपर बैठे हैं। तो हमने कहा ऊपर न बैठें, तो कहाँ, नीचे बैठें ? पानी में ? फिर हमें उसे डाँटना पड़ा। हमने कहा तुम समझते

नहीं–छोटे छोटे लड़का होते हैं, तो माता पिता के कन्धें में चढ़ जाते हैं। टट्टी–पेशाब कर देते हैं। तो माता–पिता क्या कभी नाराज होते हैं ? अब ये हमारे बाप हैं, हमारे इष्टदेव हैं, हम इनके ऊपर न बैठें, तो क्या तेरे ऊपर बैठें? तेरे ऊपर बैठें, तो मर जाएगा। कमजोर बाबा। हमने कहा, हट उल्लू कहीं का, भाग! फिर मारे चार डण्डा तो भाग गया–फिर तब से वह नहीं आया। तो यह भय हमारी कमजोरी है। यह हमें आनुवांशिक कमजोरी मिल गई है, कि आओ शेर हमें खालो। हम ही बुलाते हैं, उसे। गांवों में माताएं बच्चों को डराती हैं, हव्वा आया, शेर आया। तो शुरू से भय के संस्कार बन जाते हैं। जैसे शेर आ गया, तो हमारे अन्दर जो भय का संकल्प आ गया है, कि खा लिया–खा लिया। यही हमारा संकल्प, शेर के अन्दर रिऐक्ट होकर, खाऊं–खाऊं का रूप ले लेता है। और अगर भय के बजाय यह आए कि जो आत्मा मुझमें है वही इसमें भी है। शेर, भालू, चिड़िया, सर्प, शत्रु सब में वही है। तो हमारे समत्व के संकल्प, उसके अन्दर भी जागेंगे। और वह अपने रास्ते जाएगा, हम अपने रास्ते जाएंगे।

तो इस तरह से, हमारे ही संकल्प, उसे बुलाते हैं। यह सही बात है। अब जैसे आदमी बूढ़ा जर्जर हो गया, तो कहता है, अब भगवान उठा ले तो ठीक रहे–तो स्वयं बुलाता है न मृत्यु को–तो झट मर जाता है। भगवान किसी को नहीं मारता है।

''कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाय''

वह तो गुणातीत है, निर्लेप है। इसलिए लोग भगवान पर यों ही दोष मढ़ते हैं–करने वाले खुद हैं। स्वयं अपनी इच्छा करके भोग रहा है। इसलिए इच्छाओं का दमन करिये। निरपेक्ष हो जाइए। निर्मल हो जाइए। संकल्पों का नाश करिए। तो निर्मल में कौन रहेगा? भगवान रहेगा –

निर्मल मन जन सो मोहि पावा

और जब शंका ही शंका भरी है, ऐब ही ऐब भरा है। इच्छा भरी है। तो फिर भगवान नहीं आएगा। अगर भगवान आ जाय, तो निर्भीकता आ जायेगी। और अभी क्या है, कि एक तरफ इच्छा करते हैं, एक तरफ भजन करते जाते हैं। जितनी आमदनी करते हैं, उतना खर्च करते जाते हैं। आमदनी ज़्यादा होगी, तो वीटो बनेगा। और खर्च ज़्यादा होगा तो कैसे बनेगा? इसलिए हम कहते हैं, कि अनपेक्ष होना चाहिए। ऐसे ढंग से जो साधक रहते है, वे सही हो सकते हैं। निर्भीक हो सकते हैं। साधक के जो लक्षण हैं, वो उसमें आ सकते हैं। साधन की सही कोटि में अग्रसर हो सकते हैं। स्तर है, अलग–अलग। इसलिए सबसे बड़ी चीज़ एक ही है, कि सजातीय गुणों का समूह, हमें स्वीकार हो जाय, और उनका साम्राज्य हो जाय। जब इतना हो जाय तो बस फिर सद्गुणों को भी विदा कर दे। उन मित्रों के सामने हाथ जोड़कर खड़ा जो जाय। कि भाई, अब हमारे दुश्मन समाप्त हो गए हैं, अब आप लोग भी अपने–अपने स्थान को जायं। उन्हें भी विदा कर दे। अगर हम सद्गुणों को बनाए रखते हैं, अपने पास, उन्हें पालते हैं, तो हो गया। ये तो बने हुए सद्गुण हैं। अब जो दुर्गुण जा रहे थे, वो लौट आएंगे। देखो, अज्ञान को भगाने तक, ज्ञान का काम है। ज्ञान का आलिंगन करते हैं, तो अज्ञान नहीं जाएगा। क्योंकि बिना ज्ञान के, अकेले अज्ञान में, अज्ञान का ज्ञान होगा नहीं। इसलिए ये दोनों एक ही हैं। न ज्ञान है, न अज्ञान है। ये एक ही चीज है। इसमें दो चीज़ बन जाती है। जब एक प्रसुप्त होती है, तो दूसरी खड़ी हो जाती है। दिन के सुबह 6 बजते हैं फिर धीरे–धीरे शाम के 6 बजेंगें। दिन प्रसुप्त हो गया–रात आ गई। 12 घण्टे दिन रहता है फिर रात आ जाती है, फिर दिन आ जाता है। यह कब से झगड़ा है, इनका। न रात हारे, न दिन हारे। 12 घण्टे दिन का, 12 घण्टे रात का, रोज। एक जाता है,

दूसरा आता है। पैदाइस, मृत्यु से लड़ रही है। मृत्यु, पैदाइस से लड़ रही है। अच्छाई, बुराई से लड़ रही है। बुराई, अच्छाई से लड़ रही है। दुख, सुख से लड़ रहा है। सुख, दुख से लड़ रहा है। इसलिए इनका झगड़ा नहीं खतम होता। हम समझते हैं, यह रात है, यह दिन है। यदि रात और दिन अलग–अलग दो चीजें होतीं, तो कभी न कभी दोनों एक साथ दिखाई पड़ते। रात दिखाई पड़ती है, तो दिन नहीं दिखाई पड़ता। दिन दिखाई पड़ता है, तो रात नहीं रहती। तो ये एक चीज़ है। इसलिए एक ही दिखाई पड़ता है। एक ही चीज़ को हम दो करके देखते हैं।

''एक अन्दर दो बाहर फट गया फट गया फट गया।
एक अन्दर दो बाहर फट गया फट गया फट गया।''

बस वही हाल है। इसलिए सबसे बड़ी बात यही है, कि हम अपने अंतःकरण को इतना पवित्र बनाएं, कि सद्गुण उसमें बरबस आते जायें। इतना पवित्र बनाएं, कि दुर्गुण सब निकल कर भाग जायें। फिर सद्गुणों को भी विदा कर दें, और दुनिया के सर्कुलेशन से बाहर हो जायें। फिर सर्कुलेशन में नहीं आना चाहिए। और अगर अन्योन्याश्रय दोष में आ गए, तो फिर उनसे कुछ नहीं हो सकता। इसलिए भगवान की ताकत नहीं, यह सब कुछ करने की। क्योंकि ईश्वर के क्षेत्र में यह सब अन्योन्याश्रय है। अन्योन्याश्रय दोष है, उसमें गुण दोष दोनों रहेंगे। अनादि हैं ये। यह काम, दास का है। हम अपने अंदर यह कर सकते हैं। संसार में तो, सत् असत् दोनों रहेंगे। ऋषियों, महापुरुषों के मार्ग में चलकर, हम यह कर सकते हैं। यह जनरल नहीं है, यह परसनल है। इसे करके कल्याण हो सकता है। बस यहीं से मुक्ति का मार्ग है। सद्गुरू कृपा कर दें। सत्–असत् से बाहर करदें, बस कल्याण हो जाता है। दुनिया से मतलब नहीं। इसका नाश नहीं है। पैदा होंगे–मरेंगे। इसलिए यह मुक्ति का मार्ग है। कल्याण का मार्ग है। जिस गुरू के लाल के भाग्यशाली के, हृदय में नाम–रूप के प्रति प्रेम पैदा हो जाय, वह इसे प्राप्त कर सकते हैं। तभी अभय आ सकता है। निर्भय हो सकता है।

नीलगिरि पर्वत है उत्तर में। उत्तर, ऊपर, उत्तर उर में, बहुत ऊपर। नीलगिरि, जो निर्मल आकाश है, वह नीलगिरि। वहाँ कागभुसुंडि रहता है। वहाँ एक त्याग रूपी तालाब है। वह सब कुछ त्याग कर चुका है। अपने में मस्त रहता है। उसे न अविद्या व्यापती है, न शरीर की व्याधियां व्यापती हैं। न उसे वैकुंठ से मतलब है, न उसे ईश्वर से मतलब है, न माया से मतलब है–इन दोनों का त्याग कर देता है। तो वह हमेशा लेबल में रहता है। ऐसा वह पद है कागभुसुंडि का। और जब–जब मन रूपी गरुण को भ्रम होता है, यहीं से समाधान पाता है। यह मन है सवारी, आत्मा की। आत्मा इसे ताकत देती है, इनर्जी देती है। यह मन उसका वाहन है, ऐजेन्ट है। यह उसका मुनीम है, मैनेजर है। यह भी कभी–कभी भ्रम में पड़ जाता है। भगवान को साधारण समझ लेता है। ईगो से परेशान हो जाता है। ऐसी घटना हो जाती है, कि इसे कागभुसुंडि के अलावा कोई दूसरा समझा नहीं सकता। गरुण को ऐसे ही हुआ। जब काम रूपी मेघनाद ने ग्यान रूपी राम, विवेक रूपी लक्ष्मण को नागपास में बॉध डाला। तो जब बंध गये, निर्जीव हो गये, तो फिर हनुमान जी गरुड़ को लाए। और गरुड़ ने उन नागों को काटा। जब काट दिया, तो वो सजीव हो गये (राम लक्ष्मन)। तो गरुण को यह अभिमान आया, कि ये कैसे भगवान हैं। ये तो मेरे छुड़ाने से बचे, नहीं तो मर गये होते आज। ईश्वर तो बड़े महान शक्ति वाले होते हैं, बलवान होते हैं–ऐसा तो मेरी समझ में नहीं आता। गरुण को इस प्रकार भ्रम हुआ। और जहॉ भ्रम हुआ, तो माया दबा लेती है। जैसे, हंड़ी रख दो, लड्डू भर कर। बन्दर आया, हाथ डाला। लड्डू हाथ में पकड़ा–अब हाथ नहीं

निकल रहा–उसे भ्रम हो गया कि हंडी उसे पकड़े है। वह नहीं समझ पा रहा, कि लड्डू छोड़ दे, तो हाथ निकल सकता है। इसलिये फंस गया। हाथ निकल नहीं रहा–हंडी भारी है, तो उठ नहीं रही। बस हो गया। इसी तरह माया फंसा देती है।

'सो माया बस परयो गोसाई।।
बंध्यो कीर मर्कट की नाई।'

बंध गया। तोता होता है–कीर। तो किसान खेत में, एक लकड़ी गाड़ देता है। उसमें बांस की एक पोली डाल देता है–वह ऐसे घूमती रहती है। और जब धान की बाली काट के उड़ा, तो बाली के वजन से बैठने का मन करता है। बैठने के लिए जैसे की लकड़ी की पोली को पकड़ा–वह घूम जाती है। तोता उल्टा टंग जाता है। अब तोते ने पोली को पकड़ रखा है, लेकिन उल्टा हो जाने से उसे भ्रम हो गया, कि मुझे किसी ने पकड़ रखा है। उसे किसी ने पकड़ा तो है नहीं। अपने भ्रम से फंसा। बस टांय–टांय करता रहता है। पकड़ के मार दिया बस। ठंडा पड़ गया।

''बंध्यो कीर मर्कट की नाई।' ऐसे बंध जाता है। कागभुसुंडि नहीं बंधता इसमें। यह एक ऐसी डिग्री है। गुणातीत, सुप्रीम है। एक ऐसा कोष्ठक है, मन के अन्दर, कि उसमें जाकर मनुष्य के जीवन के रिकार्ड बनते हैं। उसमें जाकर प्राप्ति होगी, मृत्यु होगी, क्या होगा? उसका नाम है कागभुसुंडि–साधक की कांक्षा। कांक्षा का अर्थ है–ईश्वर की प्राप्ति की इच्छा। फिर वह साधना का रूप ले लेती है–सूक्ष्म साधना हो जाती है। फिर धीरे धीरे नाम, रूप, लीला के रूप में आ जाती है। फिर वह श्वासा के रूप में उठायी जाती हैं। श्वासा जब उठती है, मूलाधार से स्वाधिष्ठान, स्वाधिष्ठान से मणिपूर, मणिपूर से अनाहत, अनाहत से ये मूर्धा। तो यहां पर जब आती है मूर्धा के ऊपर, तो यहां से फिर भ्रमर गुफा में जाती है। भ्रमर गुफा में जाकर–सोवे सोता सेज विछाता। तो ये कागभुसुंडि जो है यह एक साधन का पार्ट है। एक अंग है। यह जो मानस है, गोस्वामी जी का, उसमें मन में आने वाले जो विचार हैं, साधन पदार्थ हैं, उनको सब को समेट कर एक उच्च स्तर का स्थान बनाया है, मूर्धा। और कागभुसुंडि को वक्ता बनाया और प्रश्नकर्ता गरुण को बनाया है।

प्रार्थना, सुरति, हम इसको सुरति कहते हैं, मेमोरी जिसे कहते हैं। क्षमा, याचना, मेडिटेशन, अजपा ये सब जिससे मिलते हैं, उसको कांक्षा कहते हैं। कांक्षा काग भुसुंडि है। काग भुसुंडि को कांक्षा कहते हैं। कांक्षा कहते हैं सुरति को। तो वो निर्लेप वाले, रिसर्च करने वाले जो साधक हुए हैं, उनकी अपनी भाषा है। है एक ही। किसी ने उसी को कांक्षा कह दिया। किसी ने उसी को सुरति कह दिया, किसी ने उसी को अजपा कह दिया, किसी ने उसी को परावाणी कह दिया। अलग–अलग हो गया। लेकिन जो प्रैक्टिकल करने वाला साधक होगा, वही इसकी एडजस्टिंग करेगा। दूसरे की ताकत नहीं है। दूसरे को अलग–अलग मालूम होगा। जैसे भक्ति है, ज्ञान है। कहेंगे भक्ति मार्ग अलग है, ज्ञान मार्ग अलग है। आजकल बड़े–बड़े व्यास इसके अर्थ अलग–अलग करते हैं। लेकिन अलग–अलग नहीं हो सकते। आजकल यह प्रवृत्ति चल गई है कि जब हम एक बात पर टापिक लेकर बोलते हैं तो उसके दस अर्थ करेंगे। बीस अर्थ करेंगे। पचीस अर्थ करेंगे। तो लोगों में पूंजी बनती है कि इतना बड़ा विद्वान है, इतने अर्थ बता रहा है, इतनी शैली से बोल रहा है। ये वाहवाही लूटने के लिए आजकल ऐसा करते हैं। लेकिन यह गलत है। एक अर्थ जितना किसी चीज़ का हो उसका आधा अर्थ में समझना चाहिए। आधे में जो समझ सकता हो उसको चौथाई में समझाना चाहिए तब ठीक है। जो वाल्यूम में सिकुड़ते जाते हैं सिकुड़ जाते

हैं उसकी सबसे ज़्यादा वैल्यू होती है–यह तरीका है। लेकिन अब उल्टा हो गया है। इसलिए हम कहते हैं कि दुनिया साधक से उल्टी है। कबीर कहता है–

चलती को गाड़ी कहैं, बे चलती को दौरी।
दूध का बनता खोवा, देख के कबिरा रोवा।।

दौरी जो एक जगह रखी रहती है टोकरी, उसको दौरी कहते हैं। दौरी का मतलब जो दौड़ती है। गाड़ी, जो चल रही है, उसको गाड़ी कहते हैं। गाड़ी गड़ी हुई–और वो चल रही है। दूध को औटते–औटते जब उसका असली तत्व बन गया खोवा। खोवा कहते हैं खो गया। और देख के कबिरा रोवा। कबिरा रो रहा है कि मर गए यह कैसी दुनिया है ? यह उल्टी कैसी है ? सीधा क्यों नहीं बात करते लोग ? देख के कबीर रोवा। तो दुनिया जिसको सीधा मानती है, कबीर साधक है, उसे उल्टा मानता है। इसलिए साधना की दृष्टि से इनके सबके अलग अर्थ होते हैं। तो वो अर्थ करना चाहिए। अध्यात्म का यह नियम ही है। अगर तुम ज्ञान को ले लेते हो तो विवेक भी आ जायगा, अनुराग भी आ जायगा, जानकारी भी आ जायगी, सब आ जायगा। अगर तुम वैराग्य को ले लो, तो थोड़ा–थोड़ा सबका आ जायगा। ऐसा सिद्धान्त है। अगर तुम बदमाशी में क्रोध को ले लो तो काम का भी अंश आ जायगा, मोह का भी आ जायगा, लोभ का भी अंश आ जायगा, ममता का भी आयगा, सबका आ जायगा। जो साधक असावधान हो जाते हैं उनको यह खा डालता है–विराध राक्षस। विघ्न रूपी विराध राक्षस है, वो कब अटैक करता है? जब साधक साधना में सजग नहीं रहता। असावधान हो जाता है। गलत तरीके से काम करने लग जाता है। अब भजन करना है, भजन नहीं करता। ध्यान करना है, कहता है फिर करेंगे, फिर करेंगे। क्षमा याचना करनी चाहिए–गलती हो गई है। क्षमा की याद ही नहीं आ रही है। प्रार्थना करनी चाहिए भगवान से, प्रार्थना की याद ही नहीं आ रही है। माई–दाई मिली, और उसे मन ही मन प्रणाम नहीं किया–कोई चिंता नहीं। तो वह अच्छा साधक नहीं माना जायगा। साधक जो होगा, गुरू का प्यारा होगा, वह पहले ही सबको प्रणाम कर लेगा। जिससे अहंकार से बच जाएगा, जो सबसे भयंकर है। तुम कितना भी भजन कर लो, ध्यान कर लो अगर तुम्हारा ईगो नहीं गया, तो वह पाताल को ले जायगा। तुम्हारा सिर नीचा हो जाएगा। इसलिए सबसे बड़ी चीज़ है निरहंकारता। सबसे बड़ी चीज़ है समर्पण और सावधानी।

जब साधक के अन्तःकरण में साधन प्रक्रिया जाग्रत होती है, तब मानस बनता है। जब रावण को मार दिया गया, तो फिर क्या हुआ? ईगो। तो अहंकार का सिर–नीचा। फिर शक्ति का त्याग करना पड़ा। और जब शक्ति का त्याग हुआ, तो फिर लव और कुश। एक भयानक लगन लगी। त्याग का मिशन साधक को प्रोग्रेस देता है। उन्नति देता है। त्याग हुआ, तो लगन लगी ईश्वर में। और गहराई से लगन लगी, और गहरी लगन। और फोर्स के साथ लगे। तब फिर जाकर वह स्थिति बनी। वह अशुक्ल, अकृष्ण कर्मो की स्थिति। फिर बिना कर्म किये ही, किसी चीज़ को दे सकता है। तुममें नहीं करने की क्षमता है, तो भी वह संभाल सकता है। ऐसे अशुक्ल और अकृष्ण दो प्रकार के जो कर्म हैं, उसके प्रतीक ये लव और कुश हैं। दोनों योगी के हृदय में आते हैं। जब महाप्राणाष्टक की योग्यता को प्राप्त करके, योगी त्याग कर देता है। रिद्धियां–सिद्धियां सब का त्याग कर देता है। त्याग का त्याग कर देता है। डिग्री आई डिग्री का त्याग कर देता है। ब्रह्म आया, उसका भी त्याग कर देता है। तब जाकर ये अशुक्ल और अकृष्ण, ये लव और कुश साधक को मिलते हैं। ये भरत, शत्रुघ्न, हनुमान, लक्ष्मण सब को मूर्छित कर देते हैं। ये सब डिग्रियां साधक को जो पहले मिलती हैं, उसके बाद जो त्याग का त्याग करने के बाद, विटो और विल पावर मिलता है,

वह बहुत तगड़ा होता है। उसके सामने डट नहीं सकता कोई। राम जब आये सामने तो इतने में ऋषि आ गये, तो बच गये। इस तरीके से भजन करते–करते, भजन का त्याग कर दे। फिर भजन करता चले। फिर मन बदल कर गरुड़ बन जाय–और इसका त्याग कर दे। फिर भजन करें फिर इन्द्रियां नव निधि और अष्ट सिद्धि बन जायं, फिर उनका त्याग कर दे, और फिर भजन करता जाय। इस तरह उत्तरोत्तर ताकत बढ़ती जायगी और योग्यता बहुत ऊंची हो जायगी। इस प्रकार वह पीछे वालों से बहुत आगे निकल जायेगा। इसी को बताते हैं, कि डिग्री फिर इससे ऊपर नहीं हैं। जैसे जागृत, स्वप्न, सुपुप्ति, तुर्या, तुर्यातीत, तीतातीत ऐसे डिग्रियां उत्तरोत्तर मिलती जाती हैं। ऐसी स्थिति के प्रतीक हैं, लव और कुश। जो कुछ नहीं है, वह सब कुछ है। और जो सब कुछ है। वह कुछ नहीं।–ऐसी जब कला आ जाती है। जो सब कुछ को, कुछ न कर दे। यह अशुक्ल है। और जो कुछ नहीं को, सब कुछ करदे, वह अकृष्ण है। ऐसी जब कला आ जाती हैं। वही योग्यता लव और कुश हैं।

कृष्ण और कंस ये दो शब्द हमेशा एक दूसरे के अपोजिट हैं। देव, दानव, सुर असुर, राम रावण, कृष्ण कंस दुर्गुण सद्गुण, हँसी रुलाई, दिन और रात, दुख और सुख, गरीबी और अमीरी ये एक दूसरे के अपोजिट हैं। इनका झगड़ा कभी खत्म नहीं होता। यह झगड़ा अनादि काल से है–यह खतम नहीं होगा। इसलिये कंस और कृष्ण का भी झगड़ा है। कंस कर्म है। किसी साधक की ऐसी ही रिसर्च है, उसकी खोज है। उसकी अपनी थीसिस है। लेकिन कंस बहुत खतरनाक है। उसने मार–मार भजन करने वालों को कहा, क्या बैठे बैठे करते हो? कंस महा बेईमान दुष्ट। हम कहते हैं, कंस कर्म को। कर्म से कोई, बच पाता नहीं। बड़ी गहन गति है, कर्म की। कर्म किसी से पराजित नहीं होता। क्योंकि जब कोई उसे मारने जायेगा, तो हरकत करेगा। जब करेगा तो कर्म बनेगा–वह और बढ़ गया, बलवान हो गया। उसे ताकत मिल गई। करने वाले की आधी ताकत उसके पास चली गई–इसलिए उसे कोई पराजित नहीं कर पाता। गहनों कर्मणा गतिः। कर्म की गति बड़ी गहन है। इसलिये बाली से बलवान कोई नहीं था। राम को परेशान कर दिया। रावण को छः महीने कांख में दबाये रहा। रामायण में बाली, कर्म है। इस तरह कर्म बहुत बलवान होता है। कंस कर्म है। और जब मन रूपी मथुरा में डेरा धर लेता है। तो फिर ब्रज बरसाना आदि अन्तःकरण रूपी चारों गांवों में, कर्म ही कर्म छा जाता है। उससे कोई बच नहीं पा सकता। उसके मारे साधक को शान्ति नहीं रहती। इन्द्रियों में, इन्द्रियों के अधिदेवों में, आध्यात्मों में–14 अधिभूत, 14 अधिदैव, 14 आध्यात्म सब में लगन लग जाती है–हे तारण् हार। आओ, इस आततायी को खतम करो–इस तरह भजन में लगन लग गयी। तो ध्यान जो है वह देवकी है और जो सब में बसा हुआ है, वह वसुदेव है। शरीर करागार है। तब कंस के आपोजिट, जो सजातीय कर्तव्य रूपी कृष्ण है, वह पैदा हो जाता है। और फिर जब पैदा हुए, काया रूपी कारागृह में। तो सीधा जानकारी यमुना को पार कर अर्थात् ग्रहण करके, नियम रूपी नन्द और भक्ति रूपी यशोदा के यहां, ले जाते हैं, बस यही तरीका है। भगवान की भक्ति करे। नियम से साधना, भजन करें, यह नन्द बाबा हैं, यशुमति भक्ति है। और वहां है क्या? गाय और गोपी के अलावा तो कुछ है नहीं।

''नौ लख गैया'' नंदबबा के, नित नव माखन होय।'' नौ लाख गाय थी नंद बाबा के। नौ लाख गाय वहां चरेगी कहां? नौ लाख गायें अगर हों तो मथुरा, वृन्दावन, कावॉ, आगरा करीब 80–90 किमी. क्षेत्र में खड़ी हो सकती हैं। कुछ रह ही न जायेगा। न खेती न चारा। लेकिन अकेले नंद बाबा के नौ लाख गाय थीं, ऐसा लिखा है। नौ लाख गाय का मतलब ये

इन्द्रियाँ हैं। और सब कामधेनु थीं। तो जब साधक की इन्द्रियाँ बस में हो जाती हैं (नियम बद्ध साधन से), तो जो इच्छा होती है वही देती हैं। कामधेनु बन जाती हैं। उसकी इन्द्रियाँ। जब
साधक जिस आदमी को ध्यान में देखकर बुलाये, और वह भागा चला जाये। इतनी बड़ी इनर्जी आ जाये, तब काम चलता है।

वशिष्ठ मुनि के पास एक कामधेनु थी। विश्वामित्र शिकार के लिए गये थे, पचास हजार पलटन को लेकर। ये राजा थे। गये, तो महात्मा की कुटिया दिखायी पड़ी। तो कहा किसका आश्रम है–तो बताया वशिष्ठ मुनि का आश्रम है। अच्छा तो चलो दर्शन कर लेते हैं। तो वशिष्ठ जी ने कहा, कि राजन आज यहीं रुक जाइये। तो विश्वामित्र ने कहा–यहां आप के पास क्या है? मेरे पास बहुत पलटन है। तो वशिष्ठ जी बोले, है कुछ नहीं, लेकिन हो सकता है, कुछ हो जाए। तो राजा का नशा तो इनको था। बोले अच्छा चलो रुक जायें। देखें क्या करते हैं ? तो जो कामधेनु गाय थी, सब व्यवस्था कर दी। ऐसा व्यंजन दिया खाने को, कि उनके बाप, दादा ने भी न खाया था। सारे लोग, नौकर–चाकर सब खाये–पीये, और सब स्तब्ध रह गये कि ऐसा समान तो हम कभी देखे नहीं, ज़िंदगी में। ये कहां से ले आये, लंगोटी बाबा। कहां से यह सब इन्होंने इंतजाम किया। तो सबेरे पूछा, कि यह सब आपने कैसे किया–क्या है आप के पास? ऐसी हमारे पास भी ताकत नहीं है, राजा होते हुये भी। कि इतनी मेहमानी करा दें, इतनी जल्दी और ऐसे सुन्दर ढंग से। तो बोले, राजन् ऐसा कुछ नहीं, यह सब भगवान की कृपा है। और हमारे पास क्या है–हम लंगोटी वाले बाबा हैं। भगवान के पास बड़ी ताकत होती है– वही सब करने वाले हैं। तो बोले, हम सुनते हैं, कि आप के पास एक गाय है, जो सब इच्छा भोजन दे देती है। सब समान दे देती है। रिद्धि–सिद्धि ले आती है। वह गाय कहां है? तो उन्होंने बता दिया, कि यह है गाय। बोले अच्छा, यह गाय हम ले जायेंगे। ऋषि ने कहा, यह गाय तो ले जाने वाली गाय है नहीं। यह तो स्थायित्व है। यह तो किसी के हृदय में जमी हुई रहती है। यह कैसे जा सकती है? तो बोले, नहीं, यह तो हम ले जायेंगे। ए खोलो! ले चलो। जैसे गये उसके पास, तो फों कर दिया, तो एक किलोमीटर दूर गिरे, जो खोलने गये थे। हारकर थक गये। वह जाने वाली गाय तो थी नहीं। वह तो जहाँ पैदा होती है, उसी जगह पर रहने वाली है। उसके यहां कैसे जायेगी, जिसके उस स्तर के संस्कार नहीं हैं। वह तो योग–क्रिया से जागृत हुयी है। उसके यहां योग–क्रिया, है ही नहीं। फिर यह झगड़ा चला। बड़ा भारी विवाद चला। अनेक कवियों ने, अनेक लोगों ने, वशिष्ठ और विश्वामित्र के विवाद को लिखा है। यह भी कहते हैं, कि वशिष्ठ श्रेष्ठ थे। वशिष्ठ कहते हैं ज्ञान को, जो सबसे श्रेष्ठ होता है। विश्वास का दृढ़ होना–विश्वामित्र है। इस तरह ये दो तत्व हैं। अध्यात्म में ऐसे लेते हैं। दोनों में कौन श्रेष्ठ है यह झगड़ा है। ज्ञान कहता है कि मैं श्रेष्ठ हूँ। ज्ञान होने पर ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है। विश्वास कहता है कि बिना मेरे कोई साधन फली भूत नहीं होता है।

'कउनिउ सिद्धि कि बिनु विश्वासा।'

और,

'बनु विश्वास भगति नहि, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।'

बिना विश्वास के भगवान द्रवित नहीं होते। जब तक यह विश्वास नहीं आ जाता, तब तक यह तर्कना रूपी ताड़का मारी नहीं जा सकती। मन रूपी मारीच पर इसके बिना कंट्रोल नहीं होगा। फिर यह मन का स्वभाव रूपी सुबाहु मारा नहीं जा सकता । फिर ईश्वर को जानने की प्रक्रिया ठप पड़ जायेगी। ईश्वर को जान नहीं पायेगा तो साधक कमजोर पड़

जायेगा। इसलिये विश्वामित्र भी कमजोर नहीं है। उधर ज्ञान के बिना कुछ हो नहीं सकता। इसलिये वशिष्ठ भी कमजोर नहीं है। तो इन दोनों का झगड़ा कब निपटेगा। जब साधना समाप्त हो जायेगी। विश्वामित्र बड़े बलवान थे। बड़े अस्त्र–शस्त्र, विद्याएं थीं उनके पास। और बहुत बड़े तपस्वी थे। उनके बराबर तपस्या, किसी ने किया नहीं। जबरदस्ती ब्राह्मण बन गये। जब वो वशिष्ठ के पास गये, तो उन्होंने कहा आओ राजर्षि। तो बहुत नाराज हुये कि मुझे ब्रह्मीर्षि नहीं कहा। तो सोते समय वशिष्ठ के लड़कों का सिर काट डाला। तो वशिष्ठ की पत्नी अरून्धती ने कहा, कि ब्रह्मर्षि कह दो, नही तो तुम्हें भी मार डालेगा, मुझे भी मार डालेगा। यह बहुत बलवान है। लेकिन वशिष्ठ ने कहा, कि चाहे मार डाले, लेकिन मैं कह नहीं सकता। मैं जानता हूँ कि विश्वामित्र बहुत बड़ा तपस्वी है, लेकिन ब्रह्मर्षि कहने का टाइम जब आयेगा तभी कहूंगा। तो एक रोज विश्वामित्र छिपकर उन दोनों की बात सुन रहे थे। जब अरूंधती ने फिर कहा कि उन्हें ब्रह्मर्षि कह दो तो वशिष्ठ ने कहा विश्वामित्र तो ब्रह्मर्षि से बड़ा है लेकिन वह फरसा बांध के चलता है, तलवार बांधता है। शस्त्र लेकर चलता है। तो मैं कैसे उसे ब्रह्मर्षि कहूँ? तो सुन लिया विश्वामित्र ने। फिर त्याग कर सब हथियार गये। वशिष्ठ ने कहा, आओ, ब्रह्मर्षि आओ। तो एक साधक के हृदय में जब दोनों डिग्रियाँ पूरी होती हैं, तो फिर न ज्ञान रह गया, न विश्वास रह गया। न चूना रह गया न हल्दी रह गयी, एक तीसरी चीज़ तैयार हो जाती है।

'माई धेबिन बाप चमार, तेहि कर जनमल होय बनवार।' महतारी धोबिन है, और बाप चमार है। उनसे जो पैदा होता है, वह बनवार है। चित्त चमार है, और ध्यान धोबिन। और बनवार ब्रह्म को कहते हैं। ऐसे चित्त चूना है। हृदय में ध्यान हल्दी है। जब ध्यान किया जायेगा तो परिणाम आ जायगा। चूना सफेदी छोड़ देगा, हल्दी जर्दी छोड़ देगी, तीसरी चीज (आत्मा–लाली) तैयार हो जायेगी।

जब हृदय में एक संविधान बनकर तैयार होता है–उस ग्रंथि को, ग्रंथि समूह को अन्तःकरण कहते हैं। जो अन्दर के विभागों को क्रियान्वयन करता है। जो अन्दर की क्रियाओं का संचालन करता है। जो अन्तःकरण में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब है। वह चार भागों में बांटा जाता है। अहंकार, बुद्धि, मन और चित्त, चार भागों में बांट दिया जाता है। तो उनका काम क्या है? नाम एक ही है। अन्तःकरण समूह, संसार को धारण करता है। और चार तरीके से क्रिया करता है। मन संकल्प करता है। बुद्धि निश्चय करती है, चित्त चिन्तवन करता है। और अहं ईगो करता है। अहंकार अपना बोध कराता है। तो एक ही अन्तःकरण चार भागों में बंट जाता है। महापुरुषों ने, गुरू लोगों ने, अपनी सुविधा के लिए, इसके चार भाग कर लिये हैं। एक ही आदमी जो बड़ा मोटा तगड़ा होगा, तो वह पिटाया नहीं पिटेगा। हराया नहीं हारेगा। तो इसके चार भाग बना दें, तो यह पिट जायेगा। माया जो अनिर्वचनीय है, उसको समझना–कहना मुश्किल है। उससे पार पाना कठिन है।

'मायाछन्न न देखिये जैसे निर्गुण ब्रह्म। 'वह है भी, नहीं भी है। सत्य भी है असत्य भी है। सही भी है, गलत भी है। और सही गलत के परे भी है। ऐसी जो माया है–अनिर्वचनीय है। तो इसको कंट्रोल कैसे किया जाय? जब हम इस पर कंट्रोल पा जायं, इससे पार पा जायं तो फिर हृदय में भगवान आ जायगा।

'प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी।'

अब इसमें यह देखना है कि कैसे हम भगवान को प्राप्त करें? जितनी कल्पनाएं हैं, जितना अन्तःकरण है। मन है, बुद्धि है, चित्त है, अहंकार है, इन्हें रोक दिया जाय और भगवान जैसे हैं, वैसे हम बन जायें। निर्मल, आकाशवत्। इसमें कुछ नहीं है। न खाना है, न

पीना है, न सोना है, न जागना है, न अच्छा है, न बुरा है। वह एक रस है, व्यापक है, शुद्ध है, बुद्ध है, व्यापक है, अजन्मा है अरूप है, अलख है, अविनाशी है–ऐसा सरूप है। और यही स्वरूप सबका है। यह ऐसा सरूप नहीं है, जो अभी है नाम रूप है यह तो हमने उस निर्मल स्वरूप को छोड़कर, कल्पनाओं का रूप दे दिया है। फिर हमने चिंतवनों को दे दिया। फिर हमें इस चीज़ की ज़रूरत है, यह ज़रूरत है–बस इसी में फंस गए। तो भजन का मतलब यही होता है कि हम अपनी कल्पनाओं का दमन करें। हम अपनी इच्छाओं का दमन करें–इच्छाएं न हों। ईश्वर में, मन की गति को रोकने का उपाय करें। कहीं यह मन न रुके। रुके, तो अपने इष्टदेव में रुके। उसे हम रोकते रोकते जब खड़ा कर देंगे। तो उसमें चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ जायगा। और फिर यह तोता जैसे बाली तोड़ कर लटक गया था–वैसे ही हम परमात्मा के स्वरूप को पकड़ कर उसी में झूम जायं। ऐसी स्थिति जब जा जाय। हम उल्टा हो जायं। हम अपनी क्रिया को संसार से उल्टा कर दें। तो फिर बच लिये। परमात्मा हमारे पास रह जायगा, और यह जो विकार है, यह माया, हट जायगी। उल्टा, उल्टा, होना है–

'उल्टा चलै सो औलिया, सीधा सब संसार।'

सब लोग सीधा चलते हैं। हम कहते हैं, कि सब लोग सुख–सुख चिल्लाते हैं। कोई एक आदमी नहीं है, जो दुख की मांग करे। क्यों नहीं उल्टा हो जाते?

गीता कहती है–

''या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।''

इसमें तो भगवान का भक्त जागता है, और दुनिया सब सोती है। और भगवान का भक्त जिसमें सोता है, उसमें दुनिया जागती है। इस तरह से उल्टा जब जो जाय तब फिर ठिकाना लग जाय। अब वह तोता उल्टा तो हो गया था। उसका सेंस खतम हो गया। उसे ज्ञान ही नहीं था। बंदर का सेंस उल्टा ही तो हो गया था तभी तो वह फंस गया। इच्छाओं का दमन तो है ही नहीं। इच्छा तो है ही, कि हमें लडुवा चाही। इसको हटा सकता नहीं, अंतःकरण से। इसे जब हटा देगा, तब लडुवा छूटेगा। बस फंस गया। अगर उसे ज्ञान हो जाता, कि लडुवा के कारण फंसे हैं, तो लडुवा जाय भाड़ में, हम भाग तो जायेंगे। तो यह वह जानता ही नहीं था। बस इतने में मामला अटका है–है कुछ भी नहीं। हम शिष्य हैं, (शिष्य हैं) और गुरू वशिष्ठ है–वक्ता है। ज्ञान है। और यह योगवाशिष्ठ है। योग की पुस्तकें सबसे श्रेष्ठ मानी जाती हैं। वशिष्ठ माने श्रेष्ठ। तो इसमें राम को साधक बनाया गया है, और ज्ञान को गुरू। जो आत्मा में रुचि है, परमात्मा को प्राप्त करने की, वह राम है। और ज्ञान जो प्राप्त हो रहा है, उसे ईश्वर की तरफ से, गुरू की तरफ से, वह ज्ञान वशिष्ठ है। दोनों के बीच में डिस्कशन है। इस प्रकार हर साधक अपने अंतःकरण में एडजस्टिंग करता है, तो वह चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। और अगर भगवान का भजन करना चाहते हो, भगवान की नीति पर चलना चाहते हो, भगवान के ज्ञान को लेना चाहते हो, तो फिर बिना किये नहीं आएगा।

इस माया को कंट्रोल कैसे किया जाय? तो फिर लोगों ने इसे दो भागों में बांट दिया–विद्या और अविद्या।

फिर कहा नहीं, दो भागों में अभी कंट्रोल में दिक्कत आयेगी। तो फिर तीन भाग कर दिये। सत् रज और तम। तीन भागों में बजाय पांच भागों में बांट दिया जाय तो–छिति, जल, पावक, गगन, समीरा, पांच भाग कर दिये। फिर सोचे 10 भाग किये जाय तो–दस इंद्रियों में

बांट दिये। तो ऐसे एक ही चीज़ को हजारों भागों में बांट दिया जाए। इससे धीरे–धीरे करके कंट्रोल कर लिया जायगा।

चित्त को हम चिंतवन से तभी अलग कर सकते हैं, जब हम मूल प्रकृति को अच्छी तरह से समझ जायें, कि यह कहां से संचालित होती है। इसके पाये कितने हैं। इसके एजेंट कौन कौन हैं–इसका प्रचार प्रसार कहां कहां से होता है। यह आनंदित क्यों होने लगती है? यह अट्रैक्ट क्यों करती है, आदमी को? इसके अट्रेक्शन्स क्या हैं। इसके गुण क्या हैं–अवगुण क्या हैं? इसको बाई नम्बर, समझना पड़ेगा। इसे जब विधिपूर्वक समझ लेंगे, तब फिर इससे बचने का उपाय होगा। इसलिये ऋषियों ने, महापुरुषों ने, मायावाद में दर्शन में, इसे विभिन्न रूपों में खंडित किया। और एक एक चीज़ के दो–दो, चार–चार, दस–दस टुकड़े बनाये हैं। इसलिये बनाये कि जितने छोटे टुकडे हो जायेंगे उतनी ही सरलता से, बिना मेहनत के, हम इन पर हावी होते चले जायेंगे। और अगर संघ बना रहा तो 'संघे शक्तिः कलयुगे।' अगर प्रकृति एक ही रही, तो उसमें इतनी क्षमता आ जायेगी, इतनी ग्रेविटी आ जायेगी, इतना गुरूत्वाकर्षण आ जायेगा, कि उस पर कंट्रोल नहीं हो सकता। इसलिये यह एक तरीका है। यह तरीका साधकों को लाभान्वित करता हैं। सबसे सरल तरीका है, कि हमारे महापुरुषों ने, हमारे पूर्वजों ने–जो हमसे पहले आये हैं, और जिन्होंने इस रास्ते से निकलना शुरू किया है, इस अनुसंधान को पूरा किया है। और ईश्वर के रास्ते में सफलता पाई है, उनके बताये हुये रास्ते में चलने में, बड़ी भारी सुविधा होगी। आराम मिलेगा। और नाना प्रकार की ऐसी गोप्य युक्तियां मिलेंगी, जिनके द्वारा हम बड़ी से बड़ी कठिन घाटियों को चढ़ सकते हैं। आगे बढ़ सकते हैं।

चित्त भी अन्तःकरण का एक शक्तिशाली विभाग है। और महात्माओं ने इस पर कंट्रोल करने का उपाय–योग, का अनुशरण किया–'अथ योगानुशासनम्।' योग पर अनुशासन करने की जो विधि है, उसमें सबसे बड़ा महत्व चित्त को दिया गया है।

'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।'

चित्त की वृत्तियों को सर्वथा रोकना, निरोध करना यही योग की पराकाष्ठा है। योग का यह ध्येय है। हम कहेंगे कि चित्त की वृत्तियों का जब निरोध हो जायेगा, तो जीवन खतम हो जायगा। चित्त अगर चिंतवन नहीं करेगा, मन संकल्प नहीं करेगा तो मेमोरी खतम हो जायेगी। मेमोरी खतम हो जायगी, तो आदमी क्या करेगा–कैसा रहेगा? तो ऐसा नहीं है। चित्त–वृत्ति के निरोध का मतलब, चिंतवन समाप्त कर देना नहीं है। इसका मतलब यह है, कि चित्त चिंतवन करे, लेकिन हम जो कहें वह चिंतवन करे। निरोध का मतलब, हमारे अधीन रहकर काम करे। मन जिसे स्वीकार करे, वह न चिंतवन करे। चित्त जिसे स्वीकार करे, वह चिंतवन न करे। गाइड जो कहे, इष्टदेव जो कहे, वह चित्त चिंतवन करे। वह मन संकल्प करे। वह बुद्धि निश्चय करे। वह अहं, अहंकार करे। तब ठीक है। तब फिर इसका ट्रांसफार्म हो सकता है। मन गरूड़ बन सकता है। बुद्धि में ब्रह्मा, चेतन का प्रतिविम्ब है। अहं में रुद्र चेतन का प्रतिबिम्ब, मन में चन्द्रमा चेतन का प्रतिबिम्ब और चित्त में वासुदेव चेतन का प्रतिबिम्ब, ये सब अधिदैव हैं। मन का काम है संकल्प करना, चित्त का काम है चिंतवन, बुद्धि का काम है निश्चय और अहं का काम है अहंकार करना। ये चार अंतःकरण पाँच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां। ये 14 आध्यात्म, इनके 14 देवता अधिदैव और इनके 14 विषय

अधिभूत। ये 42 तत्व जागृत अवस्था में रहते हैं। इनसे हम सभी क्रियायें करते हैं– खाते, पीते, भजन करते भलाई करते, बुराई करते, बेइमानी करते और लडते–झगड़ते। जो भी करते, सब जागृत अवस्था में करते हैं–42 तत्व की जागृत अवस्था है। और जब हम सोते हैं, और स्वप्न देखते हैं। वह स्वप्न अवस्था है। यह स्वप्न अवस्था क्या है–जागृत अवस्था का रिऐक्शन है, जो स्वप्न में हम चित्र देखते हैं। कभी सही आते हैं, कभी गलत आते हैं। और गाढ़ी नींद में सो जाते हैं–स्वप्न भी नहीं आते हैं–अथवा जब ध्यान में हम शून्य हो जाते हैं–वह सुषुप्ति अवस्था है। और जब हम आकाशवत हो गये। वैचारिक ढंग से चलते चलो हमारे साथ। हम जाग रहे हैं, यह जागृत और सो गये स्वप्न देख रहे हैं–यह स्वप्न अवस्था। फिर गहरी नींद में चले गये–आकाशवत हो गये वह सुषुप्ति। अब जाग गए, जागृत हो गई। इस जागृत में भी उस सुषुप्ति का ही आभास बना रहे। हम आकाशवत हैं, न चलते हैं, न फिरते हैं। न खाते हैं, न पीते हैं–हम सुषुप्ति में हैं–ध्यान का यही सही रूप है। ध्यान की शून्य अवस्था, हर समय बनी रहे। जब हम जागृत में सुषुप्ति की अनुभूति पाए रहें। जागृत में, जागृत न रहें। तो सही ध्यान माना जायेगा–यह हम प्रैक्टिकल बात बता रहे हैं। और जब जागृत में जागृत अवस्था नहीं रहेगी, सुषुप्ति ही रहेगी– तो फिर जब हम स्वप्न की अवस्था में जायेंगे तो वहाँ भी सुषुप्ति ही रहेगी–स्वप्न नहीं रहेगा। सुषुप्ति उसमें भी चली जायेगी। क्योंकि जागृत को हमने ज्ञान की गर्मी से गलाकर, सुषुप्ति रूपी पानी में बदल डाला है। तो अब स्वप्न में भी रहेगी। इस तरह से जब इन तीनों अवस्थाओं में एकरस सुषुप्ति की स्थिति आ जाय, तो साधक के चित्त में, अन्वय–व्यतिरेक की युक्ति से चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ जाता है। और चित्त पकड़ में आ जायेगा। फिर जो उसे कहा जायेगा, वही करेगा। इस प्रकार जब तीनों अवस्थाओं में सुषुप्ति आ जाए, तो उसमें अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब तुर्या का है। तुर्या में पहुँचने पर संसार छूट जाता है। संसार में रहते हुये, संसार का त्याग हो जाता है । शरीर में रहते हुये, शरीर से मतलब नहीं रह जाता। और जब उस अवस्था में चेतन का प्रतिबिम्ब आ गया–अन्दर से कम्युनीकेशन हो जाए तो फिर एक डिग्री और बढ़ जाती है–तुर्यातीत। थोड़ा और अन्दर घुस जाये, तो फिर तीतातीत। फिर ऐसे महात्मा किसी की पकड में नहीं आते। फिर वीटो आ जाता है।

उसको ताकत मिल जाती है। और जब तक यह स्थिति नहीं आती, तब तक रोना चिल्लाहट भगवान से प्रार्थना, भय रहेगा, डर लगेगा, गिड़गिड़ाता रहेगा, पतित के लक्षण रहेंगे, परवसता रहेगी, मन कंट्रोल में नहीं रहेगा। ऐसी गड़बड़ियां रहेंगी। और जब अन्तःकरण पर कंट्रोल हो जाता है, तो फिर वह गम्भीर हो जाता है। ताकत आ जाती है। उसे डर नहीं लगता–मुक्तस्य किं लक्षणं निर्भयं। तो इस तरीके से जब ऐसी ताकत आ जाती है, तो वह राइज हो जाता है। इसलिये–

'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'

योग चित्त की वृत्तियों के निरोध को कहते हैं। और चित्त के निरोध का मतलब ऐसा नहीं है कि चित्त खतम हो जाता है। या अन्तःकरण खतम हो जाता है। तब तो सब काम ही

रुक जायेगा। डेड हो जायेगा। समाधी का मतलब ऐसा नहीं, कि सांस रुक जाती है। समाधी का मतलब है–सम के आदी। समत्व की स्थिति। एक ऐसी अवस्था है अन्तःकरण की, कि जब सुषुप्ति के बाद तुर्या आती है, तो समत्व में व्यापक रूप ले लेती है। बार–बार इस अवस्था को लाने का प्रयत्न करना चाहिये। यह हर समय बनी रहे, नशा हो जाय। उसे पाये बिना रहा न जाय। चित्त में आ जाय। अन्तःकरण में आ जाय। छूटने न पाये। मन में बना रहे और यह नशा उतरने न पाये।

''मरे हजारों लोग चाह चितचोर तेरी करते करते।
पर न मिला दीदार कूच कर गये ध्यान धरते धरते।।
पंडित कोबिद कवी रहे अज्ञान, शास्त्र पढ़ते पढ़ते।
वेद पुरान कुरान हुये हैरान, वयान करते करते।
कोई कहे हम पक्के हिन्दू, शिखा सूत्र धारण करते।
कोई कहे हम मुसलमान हैं, दाढ़ी में अकड़े फिरते।
आपस में सब लड़कर मर गए, राग द्वैष करते करते।
तेरे इश्क में हैरान हुये हम कई कदम धरते धरते।
सतगुरू की तब कृपा हुई जब बहुत काल साधन करते।
लखा दिया झट एक पल में जिसे चार वेद वर्णन करते।''

यह प्रक्रिया है, और यह गैल है। साधक साधना नहीं कर सकता। साधक को साधना गुरू कराता है। जैसे कुम्हार हण्डी बनाता है, तो ऊपर से लकड़ी ठोकता है और भीतर हाथ लगाए रहता है। अगर हाथ न लगाए तो हंडी बनेगी? नहीं बनेगी। टूट जायेगी। इसलिए उसमें बहुत चालाकी है। साधना करना, और बताना या पुस्तक में लिखना भिन्न हो जाता है। जो साधन में लग जाय, तो दूसरा रूप बन जाय। जब उसी को लिपिबद्ध किया जाता है, तो उसका तरीका बदल जाता है। अनुभव काल में इसका रूप बदल जाता है। यह ऐसा है ही नहीं संसार। अनुभवकाल में जो संसार दिखाई पड़ता है, उसका रूप दूसरा होता है। इसलिए यह सृष्टि है ही नहीं। यह सब आकाशवत् है। यह कुछ है ही नहीं, जैसा दिखाई पड़ता है।

यह पहुँच है। यह दर्शन है। यह निष्कर्ष है। यह इन्ड (न्दक) है। जब राम रावण का युद्ध समाप्त हुआ, तो राम ने इन्द्र से कहा कि तुम अमृत बरसा दो। तो अमृत बरसाया, लेकिन, 'जिये भालु कपि नहीं रजनीचर। भालू और बन्दर तो जिन्दा है, वह जिन्दा हो गए, राक्षस नहीं जिये। अमृत का यही गुण है कि जो जिन्दा हैं, वह जिन्दा होगा, और जो मरा है, वह मर जायगा। जो आत्मा अजर–अमर है रहेगी। और असुर जो विजातीय हैं। संसार का भोग करना चाहते हैं। खाना चाहते हैं। महल चाहते हैं। देवता और महात्मा जो सजातीय हैं, वे ईश्वर को चाहते हैं। माया को नहीं चाहते। इसलिए, जो अजर अमर ईश्वर को चाहते हैं, वो जिन्दे हुए, और जो मृत पदार्थों को चाहते हैं, वो मृत रहे। नहीं जिये राक्षस। अमृत का यही गुण है। वो मर करके मर (माया) को प्राप्त हुये। और वे (बन्दर, भालू) जिन्दे होकर परमात्मा को प्राप्त हुए। इसलिए वह अमृत, तब ठीक है। यह अमृत चित्त के निरोध से मिलेगा।

- **श्रृंगी ऋषि**
- **जप का विधान**
- **भर्तृहरि और गोपीचन्द**
- **अनपेक्ष साधना पथ**
- **उल्टा चलै सो औलिया**

श्रृंगी ऋषि अलौकिक पैदा हुआ था। कोई हिरनी गर्भवती होने वाली थी, उसे वह देख रहा था। उसके संस्कार उसमें आ गए—वह बड़ा अच्छा योगी होने वाला था। उस हिरनी के गर्भ में चला गया। पैदा हुआ, तो आदमी के आकार का था। विभांडक ऋषि उसे ले लिए। पालन—पोषण किया—बड़ा हो गया। उसे दुनिया के मोह से, कभी परिचित नहीं होने दिया गया। जंगल में कुटिया में रखते थे, कंदमूल खिलाते थे। दुनियादारी कुछ नहीं जानता था। जवान हो गया। ऋषि दो घंटे के लिए कुटिया से बाहर जाते थे। कंदमूल फल ले आते—अपने खाते, उसे खिलाते।

अब इधर — क्या हुआ, कि बनारस के राजा के राज्य में बहुत दिनों तक पानी नहीं हुआ, अकाल पड़ गया। पंडितों को बुलाया—राजा बड़ा धर्मात्मा था। पूछा पंडितो से, कि आप लोग बताइए, कि हमारे राज्य में पानी कैसे बरसेगा? पंडितों ने गणित लगाया और बताया कि अगर श्रृंगी ऋषि को राज्य के अन्दर ले आया जाय, तो पानी बरस सकता है। तो बड़ी भारी सभा बुलाई गई। विचार हुआ कि श्रृंगी ऋषि को कैसे लाया जा सकता है—विभांडक ऋषि उसे हमेशा देखते रहते हैं। नहीं आने देंगे। शाप दे देंगे। अनेक लोगों ने अलग—अलग बातें रखीं। तो रंडी थी एक बड़ी सभ्य। उसने कहा, कि सरकार, अगर हुकुम हो, तो हम ला सकते हैं। तो एक नाव दिया गया उसे, दो—चार भंडुवा और धीरे—धीरे पंद्रह—पचास लोग पहुंचे जंगल में। लगा दिया नाव गंगा के किनारे। कुटिया से 2 किमी. की दूरी पर। और एक पेड़ पर धागे से जलेबी वगैरह बांधकर टांग दिये। लड्डू, पेड़ा, रसगुल्ला, सब बांध दिए। और फिर जब देखा, कि कुटिया में श्रृंगी ऋषि अकेले हैं—तो पहुंच गई दो चार को साथ में लेकर। जैसे देखे श्रृंगी ऋषि, तो साष्टांग दंडवत को गिरे। बोले, महाराज कहां से पधारे आप? ऐसा सुंदर महात्मा तो हम कभी देखे नहीं। महात्मा लोग तो ऐसे रहते हैं—विभूती वगैरह लगाए, रूखे—सूखे। और वह चिकनी चुपड़ी। देखा तो फिदा हो गए। बोले, बड़े सुन्दर महात्मा का दर्शन करके, हमारा तो कल्याण हो गया। तो वह बोली, ऐसे कल्याण नहीं— हम ऐसे देश के महात्मा हैं, कि लो हमारे देश के ये फल खाओ—ये क्या कंदमूल खाते हो? लो खाओ। एक रसगुल्ला दिया। जहाँ खाया तो ऊपर की सांस ऊपर ही रह गई, बाबा की। बोले, देखो ये हमारे देश का कंद है। तो बस ऐसे रोज खवाय आवें। तो विभांडक बोले, क्या बात है भाई, तेरी पागल जैसी हालत है—आंखे चढ़ी—चढ़ी हैं। क्या बात है? तो बोले महाराज, आज ऐसे महात्मा के दर्शन हुए हैं, कि भगवान कोई चीज़ नहीं है। बाबा बोले, कौन ऐसा महात्मा आ गया? तुझे नष्ट होना है क्या? कैसा महात्मा रहा? तो बताया सब। तो कहा अरे, ये राक्षस तुझे मार डालेंगे। तू हमारी मेहनत पर पानी फेर देगा क्या? डांटा। लेकिन उसे तो

रस मिल गया था। फिर वे लोग आए, ले गए श्रृंगी ऋषि को वह पेड़ दिखाया। बोले देखो, खाओ इन्हें, तोड़ो। जहाँ खाया–कहा, अरे तीनों लोक दिखाई पड़ रहे हैं। धीरे–धीरे, लहा–बिहा कर ले, गए नाव में बनारस। गंगा की धार में, सनसनाती हुई नाव पहुँच गई। तो ले जाकर राजा के यहां, सिंहासन पर बैठाया। इधर विभांडक ऋषि अपने चेला को खोजते, भारी क्रोध करते चले। कि जो भी ले गया है, चाहे राजा हो या प्रजा उसे भस्म कर दूंगा। तमाम राजा के लोग, रास्ते में ही उनको प्रणामादि आदर सत्कार से संतुष्ट करते हुए लाए। तो देखा, चेला सिंहासन पर बैठे हैं। देखकर विभांडक ने कहा वाह बेटा, अच्छा काम है तेरा। साक्षात् लक्ष्मी के बगल में हो। तुम तो विष्णु हो गए। तपस्या हमने किया, फल पाए तुम। इस प्रकार, मन के ऊपर असर हो जाता है। मन एक ऐसी जगह है, जहाँ सत् असत् सभी प्रकार के विचार आते हैं। तरह–तरह के संकल्प–विकल्प आते हैं। यदि हम उन्हें देख नहीं पाते हैं, तो क्या होगा? चिंतवन रुकेगा नहीं, तो अंतःकरण शुद्ध कैसे होगा? अन्तःकरण तो ऐसी जगह है, जो चिंतवन होने से अशुद्ध हेाती है। चिंतवन कम होते जाएंगे, तो शुद्ध होता जायेगा। जैसे–तैसे चिंतवन बढ़ता है, वैसे–वैसे अशुद्ध होता है। ये इंगला और पिंगला दोनों रेल की पटरी जैसी हैं। इच्छा इनमें रेल जैसी है। संकल्प विकल्प डिब्बे जैसे हैं और चिंतवन यात्री जैसे हैं। और हृदय या अंतःकरण स्टेशन जैसा है। स्टेशन पर यात्री उतरते हैं, भीड़ होती है। तमाम देहाती आदमी, कोई थूकता है, तमाम गंदा कर देते हैं। इसी प्रकार ये मन के चिंतवन, हमारे हृदय को अन्तःकरण को गंदा कर देंगे। जब चिंतवन से हम इस अंतःकरण को गंदा कर देंगे, तो भगवान थोड़े इसमें रहेंगे। यह हृदय तो भगवान का घर है–तेरे पूजन को भगवान। बना मन मंदिर आलीशान।।

इसलिए इस अंतःकरण को गंदा होने से बचाएं। चिंतवन से यह गंदा होता है। इसलिए मन से कहें, कि भइया! तुमने खूब विषय भोग कर लिया है, चित्त से कहें कि तुमने खूब चिंतवन कर लिया अब भगवान का चिंतवन करो, अब ईश्वर का चिंतवन करो। बुद्धि से कहो कि अब ईश्वर का निश्चय करे। भगवान से कहो कि भगवान हम मर जाएंगे। लेकिन आपको छोड़ेंगे नहीं। जब ये चारों अन्तःकरण दृढ़ निश्चय करके, भगवान के पीछे पड़ जाएंगे। तो मेरे विचार से साधक को ज़रूर सफलता मिल सकती है। और अगर थोड़ी भी सफलता मिल जाय, तो नियम यह है, कि किसी रोगी को किसी औषधि से थोड़ा फायदा मिल जाय, तो उसे औषधि नहीं छोड़नी चाहिए। औषधि लेते रहना चाहिए। फिर धीरे–धीरे आराम मिल जायगा। इसी प्रकार, किसी भी साधन से नाम है, रूप है, लीला है, धाम से है। और बैखरी से मध्यमा पश्यंती से परा से है। चिंतवन से, या सेवा से, किसी तरह से है, अगर अन्तःकरण को शुद्ध करने में मदद मिलती है, तो उसमें लग जाना चाहिए। शरीर तो फिर मिल जायगा। यह बहुत कीमती चीज़ नहीं है। हमें यह समझना पड़ेगा, कि विघ्न तो आएंगें ही। चिंतवन आएंगे, रोग आएंगे, भगवान परीक्षा तो लेंगे ही। अशान्ति आ सकती है। इसलिए हमें यह समझना चाहिए, कि साधन करने से हमारी समझ बढ़ी है। तो उस साधन को नहीं छोड़ना चाहिए। उस जुगत को नहीं छोड़ना चाहिए। साधक जब कुछ आगे बढ़ जाता है, तो ऐसी दिक्कतें आ सकती हैं। इसलिए शास्त्र में भी आया है–

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति भ्रान्ति दर्शन, अलब्ध भूमिका और अनवस्थितत्व इत्यादि विक्षेप आते हैं। शरीर की दिक्कतें आती हैं। कोई बीमार हो गया तो

उसे दवा दी जाती है, अस्पताल पहुँचाते हैं। यह तो हम लोगों का काम है, समाज का काम है। जो रहते हैं तुम्हारे पास, उनका काम है। यह तुम्हारा काम नहीं है कि तुम कहो, कि बीमार हो गए हैं, इलाज करो और हमारा इन्तजाम करो। शरीर के लिए बहुत चिन्ता करना, यह साधक का काम नहीं है। इस तरह परेशान हो जाना, अच्छे साधक का लक्षण नहीं है। यह गलत है। इससे यह पहचान होगी, कि तुम साधन नहीं कर सकते। ऐसे नहीं होते, साधक के लक्षण। साधना का लक्षण तो अनपेक्षता है। अच्छा साधक, अनपेक्ष भाव से भगवान से विनय करे, कि हे भगवान मैं इतना पापी हूँ। इतनी खराबी है मुझमें, कि मैं थोड़ा भजन में लगा और और इतनी पहाड़ जैसी परीक्षाओं में आपने डाल दिया। मैं इतना सक्षम नहीं हूँ। मुझ पर दया करो। ऐसे विनय करना चाहिए। करुणा करनी चाहिए, अनुराग करना चाहिए।

यह बैखरी वाणी स्थूल के लिए है, मध्यमा भी स्थूल के लिये है। पश्यंती जो है सूक्ष्म के लिए है यह श्वास जप। और जो अजपा है, यह कारण के लिए है। अजपा में आटोमैटिक क्रिया आती है–अजपा जपा नहीं जाता है। जपती है श्वास, तुम उसे देखो, देखते चलो। और अजपा उसको कहते हैं, जब देखना भी बंद हो जाय। भारी महावड़ा हो जाता है, जब साधक को। जपो न, जप हो रहा है। सो रहा है और जप हो रहा है। खा रहा है और जप हो रहा है। जब यह क्रिया होती है, तो वह अजपा है। और जो मन को खड़ा कर दिया, और देख रहा है श्वासा को, क्या कह रही है। इसको पश्यंती कहते हैं। इसको देखते–देखते जब हम लीन हो जायं, धीरे–धीरे लीन हो जायं। तो फिर इसके आभ्यास से, आटोमैटिक क्रिया शुरू होती है। जब आटोमैटिक क्रिया होगी तो उसको अजपा कहते हैं।

अगर जाप का प्रेशर बढ़ गया, तो वेट बनेगा। और अगर प्रेशर नहीं बना पाओगे, तो हल्का रहेगा। हल्का होने से, पलड़ा उठ जायगा। विजातीय तत्व, उसको इधर–उधर कर देंगे। इसलिए इतना ज़्यादा जाप करना चाहिए, इतना ज़्यादा करना चाहिए, कि करते–करते प्रेशर आ जाय, वेट आ जाय। तो जब इतना ज़्यादा वजन आएगा, तो वो उखाड़ नहीं पाएंगे और हलका रहेगा, तो हिला देगा उखाड़ देगा। इसलिए निरंतर भजन में लगे रहना चाहिए, और इतना ज़्यादा जाप करने की आदत डालना चाहिए, कि जब हम चाहें मन को रोक लें। साधक को ऐसी आदत डाल लेनी चाहिए, कि जब चाहें, जहाँ चाहें–खाते–पीते, बैठते–उठते, हम अपने ध्यान में चले जायं। जब ऐसी स्थिति बन जाती है, तो वह साधक बहुत अच्छी स्थिति वाला होगा। और मन रुक नहीं पा रहा है। अभ्यास करता है–मन रुकता नहीं है, तो उसका प्रेशर बन कर तैयार नहीं होगा। इसलिए अभ्यास बहुत होना चाहिए–अभ्यासेन तु कौंतेय। इतना अधिक अभ्यास होना चाहिए, कि पूर्ण अभ्यास आना चाहिए। तब फिर भजन के प्रेशर से, ध्यान आएगा। ध्यान के लिए, शुरू में साधक को बता दिया जाता है, कि भगवान की मूर्ति देखो। कैसा ललाट है, कैसा मुख है। यह भी ध्यान ही है। इसके बाद उसे अन्दर ले जाता है। फिर मणिपूर में देखता है, अनाहत में हृदय में, त्रिकुटी में। यह स्थितियों के अनुसार आगे होता जाता है। पहले स्थूल का ध्यान, मूर्ति आदि का होता है। फिर सूक्ष्म का अन्तःकरण में होता है। फिर कारण का, अजपा आदि की कोटि में आता है। इस तरीके से ध्यान, चार स्तर का होता है। ऐसे ही जाप चार स्तर का होता है। और जब ऊंचे स्तर में, अजपा में पहुँच जाता है जप, तब साधक तुर्या में पहुँच जाता है–छठवीं भूमिका में पहुंच जाता है। पदार्थ अभावनी, इस भूमका से लेबल करता है।

इस तरीके से, अगर नहीं बनता है, जैसे हम लोग अजपा में नाम जपने का बताते हैं। पश्यंती का नाम जप बताते हैं। तो बैखरी में राम राम राम जपते हैं, या ओम् ओम्, ओम्

जपते हैं। इस ओम् में अ उ म् तीन अक्षर होते हैं। राम मे र अ म इसमें भी तीन वर्ण हैं। हमें वही नाम जपना चाहिए, जिसका अर्थ सही हो। जो हमें पसंद हो। श्वास जप नहीं बनता, तो बैखरी से जपो। यह ऊपर का कोर्स पूरा हो जाय, तो आगे का होगा। जैसे पहली कक्षा का कोर्स हो जाय, तो दूसरी। दूसरी का हो जाय, तो तीसरी। तीसरी का हो जाय, तो चौथी। चौथी का हो जाय, तो पांचवी। इसी तरह से साधना का क्रम है। अगर पश्यंती में नहीं हो पाता तो बैखरी में जपो। जब बैखरी का कोर्स पूरा हो जाय, तो मध्यमा से जपो। जब मध्यमा का कोर्स पूरा हो जायगा, तो श्वासा में आ जायगा। यह है–इसका तरीका। जब इसको सही रूप में समझे। प्रैक्टिकल में समझें, थ्योरिटिकल में समझें। और जब समझ में आ जाय, तब करें। पहले बैखरी जप करो। दो चार महीने करने के बाद, मध्यमा में आ जायगा। फिर श्वासा में आ जायगा, फिर आटोमैटिक हो जायगा। जैसे हम खाते हैं, पीते हैं, चलते हैं, बोलते हैं, झगड़ा करते हैं, हँसते हैं, क्या श्वासा कभी बंद होती है? श्वास ऊपर जाती है नीचे आती है–निरंतर। ऐसे ही निरंतर, हम भगवान की शरण में रहें।

ऐसे नाम जपने में, अन्तर आ जाता है– राम, राम राम। लेकिन निरंतर जप यह कैसे हो ? तो ऐसी कौन चीज़ है, जो निरंतर चलती है–तो वह है श्वासा। श्वासा निरंतर चलती है। इसलिए श्वासा का जप, निरंतर चलता रहता है। रा.....म, रा.....म। ऊपर जाती है तो रा, नीचे जाती है तो म। बस श्वासा में नाम चलने दो, और मन को खड़ा कर दो। सुनता रहे। मन है मृगा। वाणी है वीणा। सुनते सुनते जहां मन फंसा, तो यह मन मर जायगा। मर जाने दो। मन उसमें समा जाने दो। चाहे सूखा कहो, चाहे मरना कहो, चाहे समाना कहो–एक ही बात है। साधक की यह जिम्मेदारी है। और फिर चेतन का प्रतिबिम्ब खड़ा करके, उससे बात हो जाय। यह बात करे उससे, और वह बात करे इससे। वह इसे स्वीकार कर ले। और यह अपने को सुनाई पड़े, कि हमारी भगवान से बात हो गई। बस काम खतम।

न जपै न जपावै, अपने से आवै।

यह अपने से है। सब अपने में है। दुनिया का मालिक बैठा है, लेकिन कब होता है–जब फोर्स बनता है, प्रेशर बनता है, तब जाकर के मिलता है मालिक।

मन एक गम्भीर यंत्र है। इतना सुन्दर यंत्र है। कितना महत्वपूर्ण यंत्र है। किसी ने पूछा कबीर से–

कौन ज्ञान है, कौन ध्यान है, कौन है पारखबानी।
कौन लिए तुम ज्ञान कुटत हौ, को है अंतर्यामी।।

तो उन्होंने जवाब दिया–

मनै ज्ञान है, मनै ध्यान है, मन है पारखबानी।
मनै लिए हम ज्ञान कुटत हैं, मनुवै अंतर्यामी।।

तो जब हम नीचे रहते हैं सबसे, तब भी मन बता देता है कि तुम यहाँ हो। और जब हम ईश्वर को प्राप्त कर लेते हैं, तब भी यह मन ही बताएगा, कि अब तुम ठीक हो।

पहले यह मन सर्प था, करता जीवन घात।
अब यह मन हंसा भया मोती चुन चुन खात।।

इस तरह यह बदल जाता है। बदलने का एक ही उपाय है, कि जो वंदनीय महापुरुष हैं, उनका आदर करना चाहिए और साधक को उनकी शरण में रहकर, साधना करना चाहिए।

गोरखनाथ बहुत अच्छे महापुरुष हुए, 9वीं 10वीं शताब्दी में। उन्होंने अपना एक सिद्धान्त बनाया, कि साधन–भजन, सभी को कराना ठीक नहीं रहता। सभी महात्मा नहीं हो सकते। उचित पात्र हो, जैसे राजा–जो सारे सुख, भोगों को भोग लिए रहते हैं, माया क्षेत्र के। इसलिए उन्हें ये आकर्षण फँसा नहीं पातें। जो गरीबी से आते हैं, उनके मन में पुरानी कामनाएँ बनी रहती हैं–घर होता, धन होता, इत्यादि। तो साधना में दिक्कतें आएंगी। और बड़े लोगों के साथ ये दिक्कतें नहीं आतीं। जैसे गौतम बुद्ध।

तो वह (गोरखनाथ) साधुओं की जमात लेकर चलते। राजाओं के यहां आते, उनके साथ हजारों साधु रहते। जमात पड़ जाये। राजा लोग उनकी ख्याति के अनुरूप उनका स्वागत सम्मान करते थे। साधुओं की जमात रुक गई, छन रही है, घुट रही है। गुरू गोरखनाथ के संसर्ग से कई राजा विरक्त हुए। भरथरी, गोपीचन्द आदि कई को ला–ला कर उन्होंने महात्मा बना दिया।

ऐसे ही एक मर्तबा कभी, राजा भरथरी के यहाँ पहुँचे। खबर लगी, तो राजा डाली लगाकर, फलफूल भेंटलेकर आया, प्रणाम किया। गोरखनाथ बोले, तुम अच्छे राजा हो, लो, हम तुम्हे यह फल देते हैं। इसे खालोगे, तो तुम अमर हो जाओगे। तुम बड़े अच्छे राजा हो, तुम्हें सब चाहते हैं। राजा फल लेकर महल में आया, और सोचा क्यों न यह फल मैं अपनी रानी को दे दूँ। वह खाकर अमर हो जायेगी, यह ठीक रहेगा। रानी को फल दिखाया और कहा, देखो यह फल महात्मा जी ने मुझे दिया है, और कहा है कि जो इस फल को खाएगा, अमर हो जाएगा। मैं चाहता हूँ कि तुम इसे खालो। और अमर हो जाओ, तुम मुझे बहुत प्रिय हो। रानी ने फल लेकर रख लिया, बोली अच्छी बात है, खा लूँगी। उस रानी का एक शहर कोतवाल से लगाव था। वह आता जाता था, उसके पास। रानी ने वह फल उस कोतवाल को दे दिया, और जब राजा ने पूछा, तो ''मैने खा लिया है'' कह दिया। अब उस कोतवाल का, एक रंडी से प्रेम था, तो उसने वह फल, उस रंडी को दे दिया। रंडी ने ले तो लिया, लेकिन होशियार थी। उसने सोचा, मैं फल खाकर अमर होकर क्या करूँगी। सब दिन के लिए यह नारकी–जीवन क्यों भोगूँ! हमारे राजा बहुत अच्छे हैं। अगर वह फल खाकर अमर हो जायें, तो प्रजा का कल्याण करते रहेंगे। तो उसने डाली सजाया, और फल–फूल लेकर राजा से मिलने गई। कहा, महाराज आप बडे अच्छे राजा हैं। यह फल एक महात्मा का दिया हुआ है। इसे आप खा लेंगे तो अमर हो जाएंगे और प्रजा का हित करते रहेंगे। ''राजा ने फल देखा तो सन्न रह गया। यह तो वही फल है। फल लेकर क्रोध से भरा सीधे महल में पहुँचा, और रानी से पूछा, वह फल तो तुमने खा लिया था। रानी ने झट से कहा–''हाँ–हाँ मैंने खा लिया था।'' राजा ने फल दिखाते हुए कहा,'' तो फिर यह कहाँ से आया।'' और मंगा कर कोड़ा, पचास कोड़े लगाया। एक तो मुलायम शरीर, हाय–हाय! चिल्लाहट मच गई। फिर पूछा, ''किसे दिया था ?'' तो बताया, 'कोतवाल को।' बुलाकर उसे भी खूब पिटाई की। मारमार कर बेदम कर दिया, फिर पूछा, ''तुमने यह फल किसे दिया था?'' तो बताया, ''वेश्या को।'' अब राजा के अन्दर वैराग्य आया। और सब छोड़–छाड़कर गुरू गोरखनाथ की शरण में गया।

इस तरीके से त्याग होना चाहिए। क्या नहीं हो सकता, अगर त्याग किया जाये। इतनी बडी आसक्ति का त्याग। जानते हो, जितनी ज़्यादा आसक्ति पहले रहती है, उसी रेश्यू में त्याग का लाभ होता है। गेंद जितनी जोर से नीचे पटका जाता है, उतना ज़्यादा ऊपर उछाल मारता है। जितना ज़्यादा त्याग करेगा उतना ही ज़्यादा साधन में आगे–आगे बढ़ेगा।

इसी प्रकार गोपीचन्द भी गोरखनाथ की सेवा में आए। सेवा करने लगे। बारह साल तक सेवा में रखे। फिर एक दिन बोले, ''इधर आओ गोपीचन्द। देखो तुम्हारे घर में तुम्हारी माँ है, स्त्री है, बच्चा है। तो जाओ घर जाओ और वहाँ से भिक्षा लेकर आओ। हम तेरी परीक्षा ले रहे हैं। देखो वहाँ रोना नहीं। तेरे बच्चे, माँ सभी रोएंगे तुझे देखकर। तो तुम्हारी आँखों में आंसू नहीं आना चाहिए। तुम्हे कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए। मेरा ज्ञान जो तुमने लिया है, तो तुम्हें अब परीक्षा देना चाहिए।'' तो गया आवाज लगाई ''भिक्षां देहि'', नारायण हरी! ''तो आवाज सुनकर मां बाहर आई। देखा अपने पुत्र को। तो वह बड़ी होशियार थी उसकी मां। बोली'', ''शाबाश बेटे! तुमने मेरा नाम रोशन कर दिया। मैं तुम्हे भिक्षा देती हूँ। कि मशहरी में सोना, कभी मशहरी से बाहर न सोना। गांठ लगालो लंगोटी की छोर में। गांठ लगालो, याद रखना। दूसरी भिक्षा हम देते हैं, कि मोहन–भोग खाना और कुछ न खाना। और तीसरी भिक्षा हम देते हैं, कि किले के अन्दर रहना, बाहर कभी न जाना। तीनों की गांठ बांध लो, लंगोटी में। भूल न जाना'' ''तो गोपीचन्द बोला,'', माताजी! मैं इसका अर्थ नहीं समझ पाया। मुझे कुछ मिलना चाहिए।'' माता ने कहा, 'जा तुझे जो मिलना चाहिए मिल गया। अब इससे बड़ी और कोई भिक्षा नहीं हो सकती। जा तेरे गुरू बाबा बातएँगे।'' जब पहुँचा गुरूबाबा के पास, तो बोले, क्या भिक्षा लाये हो? तो बोले, ये गांठे लगी हैं लगोटी में। मेरी माता ने भिक्षा में ये ये बातें दी हैं। तो गुरू गोरखनाथ बोले, ओह! तेरी माता तो बडी अच्छी है। जानते हो इसका मतलब क्या है?' मच्छर दानी में सोने का मतलब है, कि जब खूब नींद आए तब सोना चाहिए। रात दिन भजन करे और जब नींद के मारे रहा न जाय, तब सोए। तो फिर चाहे मच्छर काटे, चाहे गर्मी लगती रहे, चाहे सर्दी लगती रहे, चाहे ढेला में पड़े रहो, चाहे कंकड गड़े–पता न लगेगा, गहरी नींद में। यह मच्छरदानी में सोना है। क्योंकि अब तुम राजा के लड़के नहीं हो, बैरागी के लडके हो। बैरागी के पास कुछ होता नहीं। कभी गद्दा में सोना पडेगा, कभी ढेले में सोना पड़ेगा, कभी नंगा रहना पड़ेगा, कभी कुछ भी नहीं। अपने काबू में नहीं भगवान के काबू में हो गये। महात्मा को तो कोई इच्छा होती नहीं। यह मच्छरदानी में सोना है। कच्ची नींद में सो जाएंगे तो सर्दी लगेगी, गर्मी लगेगी। फिर इच्छा होगी ये चीज हो जाये गद्दा हो जाये। इच्छा होगी–''इच्छइ काया, इच्छइ माया इच्छइ जग उपजाया।'' यह सब बीमारी आ जायेंगी। और जब अपने से भेजे भगवान। ''उरप्रेरक रघुवंश विभूषन''। अपने से आये। खाना आये। कपड़ा आए। तब वह चाहिये। उसका इस्तेमाल करना चाहिये, उसमें माया नहीं है। और जो हमारी इच्छा से आएगा, वह माया बन जायेगी। इसलिए, हम अनपेक्ष कहा करते हैं। इच्छा–रहित रहना चाहिये। इच्छा जीव का काल है। इच्छा, कभी साधु को नहीं करनी चाहिये। तो मच्छरदानी में सोना है कि जब नींद आवे। तब सोना। भजन करते–करते जब फिर रहा न जाय, तब सोवे। तब फिर मच्छर रहित, वायरस रहित, कीटाणु रहित, नींद आती है। यह महात्माओं का तरीका है।

दूसरा बताया, मोहन–भोग का भोजन करना। तो साधन होता है, तब, जब न कम खाओ, न ज़्यादा खाओ। साधन होता है–जब खूब भूख लगे, तब खाए। रहा न जाये। भोजन की याद आये, तो मुंह में पानी आ जाये–ऐसी जब भूख लग जाये, तब फिर सूखी रोटी मिल जाय, अमृत हो जायेगी। जो मिल जाय, अच्छा लगेगा। और आधी भूख है, आधी नहीं, तो फिर कहेंगे, भोजन ठीक नहीं बना है क्या? क्यों ऐसा हुआ? क्योंकि भूख नहीं है। इसलिए भयानक भूख लगे, तो मन को अच्छा लगने वाला भोजन होता है। तो गोपीचन्द बोला ''महाराज! ये तो बड़ी ऊंची बातें हैं। अगर मेरे जीवन में उतर जायें, तब तो मैं आपका सच्चा सेवक बन जाऊँगा। तो महात्मा ने कहा, यह मैने नहीं, तुम्हारी माता ने दिया है।' बोले एक और गांठ है। बोले हाँ, तुम्हारी माँ ने कहा, कि किले में रहना। तो ये

दसो इन्द्रियां अपने विषय–रूप, रस, गंध किसी में निकल गयीं, तो समझो छेद हो गया। वहीं से दुश्मन अटैक कर देगा। त्वचा स्पर्श में निकल पड़ी, जिह्वा रस में निकल पड़ी और जहाँ बाहर गये–मारे गये। किले के बाहर, दुश्मन खड़े हैं। किले के भीतर सुरक्षा है। इसलिए तुम किले के बाहर न जाओ। इंन्द्रियजीत बनो।

''जितेन्द्रिय मनोबुद्धिर्मुनिः मोक्ष परायणः''

मोक्ष का परायण कौन होता है? जो जितेन्द्रिय हो। कायदा यह है। साधक को इसके लिए गुरू की शरण में जाना चाहिये–समर्पण हो बस, एक बात। जब हम समर्पित हो गये तो वहाँ चिंता करने की ज़रूरत नहीं रहती। वह (भगवान) जानता है, कि साधक के अन्दर कहां–कहां चोर बैठे हैं। सूक्ष्म शरीर में, कारण शरीर में, कहाँ–कहाँ घुसे बैठे हैं–कहाँ खाते हैं, कहाँ बनाते हैं, कहाँ सोते हैं और कहाँ सजातीय पड़े हैं। कहाँ कैसे, क्या है? ये तो तब तक प्लानिंग होती है, उत्सुकता होती है कि गुरू करेंगे, पूछेंगे, समझेंगे ये करेंगे वो करेंगे। जब तक हम समर्पित नहीं हो जाते। समर्पित का मतलब ही यही है, कि अब कोई गुंजाइस नहीं रही। अब लेबिल पार हो गयी। अब भेद नहीं रह गया। और जब तब यह विश्वास नहीं है, कि गुरू को ज्ञान है, तब तक वह समर्पित नहीं हो सकता। इस तरीके से वह समर्पित तभी होगा, जब इधर बोध होगा, उधर गुरू कब्जा करता जायेगा। इधर से समझ काम करती जायेगी, उधर क्षेत्र में कब्जा होता जायेगा। एडजस्टिंग होती जायेगी, होती जायेगी, होती जायेगी। और प्राप्ति हो जायेगी। उसको हम कई ढंग से बताते हैं–आल राउन्डलिविंग टु नो। कई कई ढंग से यह है, कि अगर समर्पण हो जाता है, तभी ज्ञान होना कहा जायेगा। जब कि गुरू साथ–साथ जायेगा, बतायेगा, दिखायेगा–सुनाएगा, पहचान करायेगा, स्वरूप का ज्ञान करायेगा, इतना दायित्व है। इसलिए उसे तो साथ–साथ रहना ही है, उसके बगैर गुजर नहीं है। अपनी क्षमता नहीं हैं। एक दीपक कमरे में जला दो, तो सबको तो प्रकाशित करेगा–लेकिन उसके नीचे अंधेरा है। दीपक खुद अपना अंधेरा नहीं मिटा सकता। इस तरीके से दूसरे दीपक की ज़रूरत होती है। गुरू की ज़रूरत होती है। जब तक संकल्प व्याख्यान रहेगा, तब तक तर्क रहेगा और जब मूर्त बयान होगा तब बोध होगा। तीन हिस्सा हैं।

जब तक व्याख्यान होता रहेगा गुरू का, तब तक शिष्य के मन में तर्कों का जाल बिछा रहेगा। फिर जब इसका अन्त हो जायेगा। तब बाद में, जब वैचारिक ढंग से गुरू का व्याख्यान आएगा–विचार से, तब तुम्हारी शंकाएं (तर्क) शांत होने लगेंगी। और जब सही चीज़, भावना के द्वारा आ जायेगी, संकल्प के द्वारा आ जायेगी और इनर्जी के द्वारा जब कम्युनिकेशन होगा, तब तुम्हें बोध हो जायेगा। तीन स्तर हैं इसमें। यह बहुत बड़ी चार्ट है। अगर इसमें पुस्तक लिखी जाय, यह पुस्तक बनायी जाय, तो ''मानस बोध'' नाम की ''मानस बोध'' शीर्षक देकर, एक पुस्तक बन सकती है। और उसमें इस सबका उल्लेख किया जाय, तो एक बहुत बड़ी पुस्तक बन सकती है। इसका शीर्षक हो सकता है ''मानसबोध''। हमको पहले ऐसे भाव आये थे, लेकिन हमने मना कर दिया कि हम नहीं करेंगे। हम ऐसा नहीं सोचते उसको। यह गलत है। बस हम अपना मानते हैं। पहले कागज नहीं था। हजार दो हजार साल पहले, कागज वगैरह नहीं बनते थे। तो यह शास्त्र कैसे लिखा जाता था। कोई कहता है, भोजपत्र में लिखा जाता था। कोई कहता है कि कपड़ा में लिखा जाता था। कोई कुछ कहता है। लेकिन हम कहते हैं कि यह पुस्तक में लिखा, काम नहीं करेगा। जैसे आज, कागज में लिखा नहीं कर रहा है। प्रैक्टिकल बात महात्मा लिख देते हैं–कागज पर, वह थ्योरिटिकल होकर रह जाता है। प्रैक्टिकल में तो वही काम करेगा–श्रुत और स्मृत। जब हमने समत्व में अपने को ढाल दिया, और ढाल करके अनुभूति प्राप्त की। वह हमारी सुरत में

आ गई। जो कागभुसुण्डि हमने पहले बताया था, उसका नाश कभी होता नहीं, वहाँ मूर्धा के ऊपर जब सुरति आ गई। जो हमें अनुभूति हुई, जो हमारा स्वरूप निखर कर सामने आया, वह सब उसमें रख लिया। स्मृति। और योग्य पात्र मिले, उसे बता दिया सुनाया और उसे स्मरण कराया। बस यही शास्त्र है–इससे ज़्यादा नहीं। श्रुति और स्मृति। अध्यात्म विद्या अनुभूति का विषय है। इसमें वाचिक ज्ञान या शाब्दिक ज्ञान व्याख्यान का महत्व नहीं है। इसमें तो करके देखने की बात है। इसमें चलकर पहुंचने का विधान है। गुरू और शिष्य के बीच का आदान–प्रदान है। अनुभव–ज्ञान का जो विषय है, पुस्तकों के पढने–सुनने से उसका बोध नहीं होता। बौद्धिक ज्ञान से यहाँ काम नहीं चलता। इसके लिए महात्माओं ने व्यावहारिक साधना का उपाय निकाला है। उसे अपनाना चाहिए।

साधक के ऊपर सद्गुरू का सम्पूर्ण अधिकार होता है। जो साधना करने वाला है, उसको साधक कहते हैं। और जो साधना करने वाला होगा, बिना गुरू के संरक्षण के, साधना नहीं कर सकता। साधना गाइड के संरक्षण में होती है, गुरू के संरक्षण में होती है। कोई भी विद्या, बिना गाइड या गुरू के नहीं होती। जबकि साधारण से साधारण विद्या होती है, वह भी। तो यह तो अध्यात्म विद्या है। यह बगैर गुरू के नहीं मिलती और जब गुरू के संरक्षण में साधक साधना करता है तो जो उसका स्वरूप है–वह माया के जाल, मल–विक्षेप के आवरण से, ढका हुआ है। साधना वह है कि वह मल विक्षेप आवरण को हटा दे साधना से, और सद्गुरू की दया से, बताये हुए मार्ग में चलने से। तो जब साधक, साधना पूरी करता है, तो वनथर्ड गुरू की कृपा का है, वनथर्ड साधक की साधना का है और वनथर्ड अनेक जन्मों के पुण्यों का प्रताप है। उसे पुण्यों का प्रताप भी कह सकते हो, ईश्वर की कृपा भी कह सकते हो। बहुत से लोग इसे ईश्वर की कृपा भी कहते हैं। लेकिन पुण्य, ईश्वर कृपा बन जाता है। इसलिए ये तीनों वनथर्ड–वनथर्ड मिलकर साधक को निर्मल बनाते हैं। तो उसके ऊपर से माया का कन्ट्रोल समाप्त हो जाता है। बजाय विजातीय के जब सजातीय अध्यक्ष हो जाता है, तो गुरू उसे दीक्षान्त मन्त्र देता है। और उसको स्वरूप में मिला लेता है। जो उसको प्राप्त है, वह उसको प्राप्त करा देता है। उसका नियन्त्रण स्वयं के पास आ जाता है। फिर उसे हर प्रकार के कम्युनिकेशन्स होने लगते हैं। वाह्य जगत के भी आते हैं, सूक्ष्म जगत के भी आते हैं, कारण जगत के भी आते हैं। और सबका प्रतिउत्तर देते हुए, वह सबसे निर्मल रहता है। स्थूल जगत में रहते हुए स्थूल से मतलब नहीं रखता। सूक्ष्म जगत से संचार करता है, और संचार के संस्कार नहीं पड़ते। कारण जगत से अनुभूतियॉ, अन्तर्जगत में प्रसारित करता है और निर्लिप्त रहता है। इन तीनों देहों का वह दृष्टा बन जाता है–इन अवस्थाओं का वह साक्षी बन जाता है। ऐसा जब उसका स्वरूप बन जाता है, तो उसके जितने अवयव हैं, और भी जो उसके भेदभाव हैं, उसकी जो क्रियायें हैं, उसमें सकुशल अपनी क्षमता पा चुका होता है। जब ऐसे ढंग का साधक हो जाता है। वह साधक नहीं रह जाता। उसके नामकरण का रूपान्तर हो जाता है–उसे सिद्ध पुरुष कहते हैं। ऐसी कोटि के जो होते हैं, उनमें एक रेखा और चलती है, तो फिर अन्जान योगी बोला जाता है, फिर और आगे युक्तयोगी कहा जाता है। और फिर एक और कोटि आती है, तो फिर राजयोगी होता है–फिर सद्गुरू बन जाता है। फिर दूसरे को देने की क्षमता आ जाती है। यह ऐसी प्रणाली है।

तीन प्रकार के साधक होते हैं–भावत्व वाले पूर्णत्व वाले और शून्यत्व वाले। शून्यत्व वाले शून्यत्व की अनुभूति प्राप्त करते हैं। भावत्व वाले भावत्व की अनुभूति प्राप्त करते हैं। लेकिन इनकी परम्परायें नहीं चलतीं। शून्यत्व वाले परम्परा कायम नहीं करते। केवल पूर्णत्व वाले की

परम्परा कायम होती है। इसलिए उसको राठ कहते हैं। और वह समसुरा सम्बन्धित अनुभव लेबल में कम्युनिकेशन करता है। और मनमानी करता है। मस्ती काटता है। और नशे में झूमता रहता है। अगर होश में आ जाय तो गड़बड़ा जाय–बेहोश रहना पड़ता है। उसका मन मंसूर हो जाता है–

'कहे मंसूर मस्ताना।
ए हक दिल मैंने पहचाना।
वही मस्तों का मयखाना।
उसी के बीच आता जा।।'

कभी तो मिलेगा। नशा चढ़ना चाहिए। क्षमता आना चाहिए। इस नशे का महत्व है। इसको कहते हैं– समाधि। समत्व के नशे के आदी। भाँग के आदी नहीं, गांजा के आदी नहीं, समत्व के आदी। यह समत्व का नशा हो गया हमें, हमारा मन अब इसके बिना रह नहीं सकता। किसी काम में नहीं जायेगा। इसी में रहेगा। इसके आदी बन जाओ। इसकी हैविट बन जाय। बस, मार ले गया बाजी। समझे? इस तरीके से वह बदलाव आता है। तो सबसे पहले, साधक को साधना करना है। अनपेक्ष हो जाय, अनारम्भ हो जाय, अनासक्त हो जाय, इच्छारहित हो जाय। तब जितनी हरकत तुम्हारी होगी, पूंजी बनती चली जायेगी। भक्ति बनती चली आयेगी। फिर वेस्ट नहीं जायेगा–व्यर्थ नहीं जायेगा। और अगर तुम अनपेक्ष नहीं होते। इच्छाओं का दमन नहीं करते। आरम्भ करके तुम्हारी क्रियायें हो रही हैं, तो तुम जो भजन करते हो तुम्हारें अंग नहीं लगेगा। वह भजन व्यर्थ चला जायेगा। वो इच्छायें, उसे खर्च करती जायेंगी। सब खतम हो जायेगा। कितना भी तुम कमाओ, अगर तुम्हारा लीकेज हो गया है, खर्च डबल है, कमाई कम है, तो कर्ज बढ़ता जायेगा, बढ़ता जायेगा, तुम दबते चले जाओगे। इसलिए हम सबसे बढ़िया बात यही कहते हैं, कि अनपेक्ष हो जाओ, इच्छारहित हो जाओ। मन और शरीर, किसी को दान कर दो। – भगवान कृष्ण ने आखिरी यही शब्द कहा। 18 अध्याय में 18 साधन बताया, कई तरीके बताये। और अर्जुन की समझ में नहीं आया। तो उन्होंने अन्त में कहा–

'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज'

तुम मेरी शरण हो जाओ–बस फिर तुम्हें कुछ नहीं करना पड़ेगा। मैं सम्भाल लूंगा–'योगक्षेम वहाम्यहम्' तुम्हारे योगक्षेम की मैं रक्षा करूंगा। तुम्हें कुछ नहीं करना पड़ेगा। और अगर साधक ऐसा नहीं कर सकता, तो गुरू और परमात्मा कुछ नहीं कर सकता। ये सब ऐसे ही करते हैं, जैसे एक स्टूडेन्ट के पीछे एक प्रोफेसर। अगर उसकी रुचि है, सही पढ़ाई करता है, एडमीशन है– तो पढ़ाएंगे। और इनमें से कोई कमी है। नहीं रुचि है, नहीं एडमीशन है, क्षमता नहीं है–तो गुरू ताकता रह जायेगा। चेला अलग जायेगा, विद्यार्थी अलग जायेगा, गुरू बाबा अपना काम करेंगे, चाहे वह पास में ही बना रहे जिन्दगीभर। चाहे वह वेश बना ले। चाहे विद्यार्थी की ड्रेस चौगुनी अच्छी बना ले। कुछ फायदा नहीं होगा। इस तरीके से, इसके ऐसे कुछ नियम हैं। इसलिए समर्पण होना चाहिए। अर्जुन को जब तक समर्पण नहीं हुआ, तब तक यह विद्या नहीं बतायी। अभी तक तो थ्योरिटिकल बात थी। जब तक समझौता चलता रहा कि भाई लड़ाई न हो, डिस्कसन चलता रहा। यह थ्योरिटिकल बात थी कि पांच गांव दे दो–कौरवों से कहो। उसी में गुजर कर लेंगे। लेकिन जब उधर से सुई की नोक बराबर भी ज़मीन नहीं देंगे,– यह बात हुई, तो फिर युद्ध की तैयारी हुई। युद्ध

कहो, चाहे भजन कहो, चाहे साधना कहो। काम एक ही है, नाम तीन हैं। भजन को युद्ध कह सकते हो, भजन को भजन कह सकते हो, भजन को साधना कह सकते हो। इसलिए जब साधना के लिए तैयार हो गए–अब तय हो गया कि युद्ध होगा, तब गीता की बात आ गई। अब साधक को गाइड करने की ज़रूरत है। अब साधक को मार्गदर्शन की ज़रूरत है। अब साधक के सामने लक्ष्य को क्लियर करने की ज़रूरत है। जब सद्गुरू रूपी कृष्ण, अनुराग रूपी अर्जुन के द्वारा, शरीर रूपी रथ में, इन्द्रियों के घोड़े जोड़ कर, मनरूपी लगाम को पकड़ कर ले आए मैदान में। तो फिर अर्जुन (साधक) देखता है कि इन–इन से मुझे लड़ना है। इनका त्याग, इनका त्याग करो, ए छूटैं, इन्हें मारो, इन्हें मन से हटाओ, मारो। तो साधक घबड़ा जाता है। अर्जुन कहता है, कि मैं छुटपन में धूलभरा इनकी गोद में घुस जाता था–ये सब मेरे दादा, चाचा, मामा हैं–मैं इन्हें कैसे मारूं? तो कृष्ण बताते हैं, कि इन्हें मारो, मन से हटाओ, ये सब मरे मराये हैं, तुम हो जिन्दे। ये सब नश्वर हैं। यह शरीर तीनों कालों में नहीं है। यह मर है। तुम अमर हो। तुम अपने को सही एडजस्टिंग करो–गलत न सोचते रहो। जब वह समर्पण करता है, तो ईश्वर प्रसन्न हो जाता है। साधक प्रश्न करता है। गुरू भाषण करता है। और इस तरह से बनती है–गीता। गा शब्द गो नाम इंद्रियों का ता, त्याग। इन्द्रियों का विषयों से त्याग करा देता है।

फिर ये मोह दुर्योधन, दुर्बुधि–दुश्शासन, कुर्तक–कर्ण, भ्रम रूपी भीष्म और द्वैत का आचरण करने वाले द्रोणाचार्य आदि महान बलवान थे। ये सब पराकाष्ठा को प्राप्त करने वाले, बड़े–बड़े आदर्श महपुरुष थे, लेकिन ये पराकाष्ठा, ये सामाजिक–ये शरीर के आदर्श, जो साधक को फांसे हुए हैं, इन्हें खतम करना होगा–इनसे फायदा नहीं होगा। क्यों नहीं होगा? क्योंकि ये सब अत्याचारी के साथ हैं। ये उनका धान खाते हैं। ये उनके साथ बोलते हैं। ये सत्य के साथ कभी नहीं जाते। असत्य का साथ देते हैं। जब साधक का ध्यान लगता है। तो ध्यान रूपी द्रोपदी से, चित्तरूपी चीर को, दुर्बुद्धि रूपी दुश्शासन खींच लेता है। और ये लोग धर्मात्मा, कोई बोल नहीं पाता। इसलिए ये सब विजातीय योद्धा हैं। ये सजातीय नहीं हैं।

सजातीय योद्धा तो, धर्म रूपी धर्मराज हैं। भाव रूपी भीम है। अनुराग रूपी अर्जुन है। सत्य रूपी सहदेव है और नियम रूपी नकुल है। ये पुण्य (पाण्डु) से पैदा हुये हैं। इनको बोलने का अधिकार नहीं है। क्योंकि ये जुएं में हार चुके हैं। ये संसार असत्य का जुंआ हो रहा है। और सत्य पर चलने वाला हमेशा संसार की दृष्टि से हार जाता है।

'हारे के हरिनाम'। हारे के नाम हरि।

जब तक इससे नहीं हारेंगे। तब तक भगवान हमारे साथ नहीं हो सकता है। महान शक्ति हमको नहीं मिलेगी। और इसमें जो जीता हुआ है, उसे ईगो होगा और ईगो का सिर नीचा। उसे हारना होगा। और जो क्षमा वाला है, उसे जीतना पड़ेगा। इस तरीके से, जो साधक यह सब समझकर एडजस्टिंग करते हैं, वो साधक, साधन की गतिबिधियों को समझ सकते हैं। और अपने ऊपर आने वाला, जो माया का प्रभाव है, उसे हटा करके, उसकी जगह अपने अन्तःकरण का अध्यक्ष गुरू के स्वरूप को बना लेते हैं। और हमेशा–हमेशा के लिए, कल्याण को प्राप्त कर लेते हैं। साधक जैसे–जैसे एक एक कदम आगे बढ़ता है। ये भूमिका पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवी, छठवीं, सातवीं। शुमेक्षा, सुविचारणा, तनुमानसा, सत्वापक्ष, असंसक्ति, पदार्थभावनी, और तुर्यगा ये सात भूमिकाएं होती है। ये पहली, दूसरी और तीसरी भूमिका निम्न श्रेणी की हैं। और तीसरी के बाद सत्वापक्ष में प्रवेश किया, तो हवा में उड़ने लग जाता है। उससे कुछ छिपा नहीं रहता है। उसे

अन्तःकरण में एक करेंट मिल जाता है। एक ऐसी अलौकिक चीज़ आ जाती है, कि वह कुछ बताने लगती है। और वह सुन–सुन कर सुन–सुन कर मस्त रहने लगता है। फिर उसको ऐसा चस्का लग जाता है, कि बाहर आना नहीं चाहता। और अन्तःकरण में घुसता चला जाता है। और जब उसमें डुबकी लगा लेता है, तो उसमें इतना आनन्द आ जाता है, कि जो समस्यायें सामने आती हैं, वो समस्याएँ आटोमैटिक, हल हो जाती हैं। यह सब कुछ है नहीं। जैसा हम देख रहे हैं। वैसा है नहीं यह। यह फिर दूसरे ढंग का दिखाई पड़ेगा। यह स्तंभवत् हो जाएगा। जैसे यह पोल (आकाश) है, ऐसा हो जायेगा। यह हमको नहीं दिखाई पड़ता। ये जो क्षेत्र दिखाई पड़ते हैं–हरे, पीले, लाल, ऐसा यह सब नहीं है। वह ऐसा है–स्तंभ, निर्मल। ऐसा है–हलन–चलन से रहित, स्तब्ध, पारदर्शी। इस तरीके से ठोस वस्तु देता है। वह नकली नहीं देता है। और उसमें इतनी सिफत आ जाती है कि कोई भी फितूर कोई भी दिक्कत अपने आप हल होती चली जाती है। उसमें यह प्रश्न नहीं उठता, कि फिर क्या होगा? उसमें तो एक सीधा सा है, कि कूद पड़े। गंगा में कूद पड़ा, तो फिर गंगा ही गंगा है–चारों तरफ हर गंगा। चारों तरफ एक रूप है। बस फिर कोई खतरा नहीं, जो कुछ भी सोचे, सोचने को कुछ नहीं मिलता। वहाँ तर्क का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। संकल्प और कल्पना का कोई प्रश्न ही नहीं है। यह तो सब जब हम अपने से करते थे, तब यह बीमारी थी। और जब हम किसी के हाथ की कठपुतली बनगये, तो फिर वह सब संभाल लेता है। फिर और किसी चीज़ की ज़रूरत ही नहीं।

मन एक बहुत सुन्दर यंत्र है। यह हम अपने विचार से बताते हैं। बहुत सुंदर यंत्र है। मन जिसका जितना ही चंचल होगा, उतना ही अच्छा है। साधक को साधन करने में, बड़ी से बड़ी आपत्ति आये, उसका साधन सबसे अच्छा है। जिसको कम से कम आपत्ति आये, उसका साधन अच्छा नहीं माना जाता। आपत्ति ही भलाई में परिवर्तित होगी। परेशानी ही सुविधाओं के रूप में मिलेगी हमको। माया ही ईश्वर के रूप में ट्रान्सफार्म होने वाली है। बशर्ते साधक भजन करे। तो यदि भजन करना है, साधना करना है, तो मन जितना चंचल हो, जितना दौडे, उसे अच्छा मानना चाहिए। बड़ी से बड़ी आपत्ति आए, विघ्न आए, बलात्, दिक्कत आए, खुश होना चाहिए। ऐसा स्वभाव बन जाना चाहिए। ऐसा स्वभाव न बने, कि विघ्न आए–तो, हे भगवान क्षमा करें, दया करें, ये विघ्न न आवें, मैं आपका भजन करना चाहता हूँ–तो फेल हो जाएगा। विघ्नों को पसंद करो। दुख को पसंद करो, तो सुख तुम्हारे पैरों में लोटेगा। और अगर सुख को पसंद करोगे, साधना करने जा रहे हो और सुविधा चाहते हो, तो तुम्हारा साधन अव्वल दर्जे का नहीं होगा। थर्ड क्लास का होगा। रद्दी किस्म का होगा। इसलिये साधन काल में–तुम कर रहे हो, और बलात् कोई विघ्न आ जाये, तो उसे बुलाओ। आओ भैया आओ। मैं आपका स्वागत करता हूँ, तुम खुशी से मेरे पास आओ। यह स्वभाव होना चाहिए–साधक का। जानते हो, जो दुख को देख कर रोता है, जो घबडाता है, वहाँ जाता है दुख। कि खुश होने वालों के, हंसने वालों के पास जाता है। जब हम दुख को देखकर हंसते हैं, तो दुख दूर खडा रह जाता है, क्योंकि हमने रास्ता प्रशस्त नहीं किया। जब हम दुख से डरेंगे, तो अटैक कर देगा। और जब हम कहेंगे–आओ भाई आओ। तो फिर दबे पैर भागना पड़ेगा उसे। या तो ट्रांसफार्म होकर, सुख बन कर आयेगा या भागेगा। क्योंकि हंसने वाला प्रसन्न होकर उसका स्वागत कर रहा है। यही एक तरीका है, जीतने का। यही एक तरीका है, साधना करने का। लेकिन यह तरीका जानते नहीं लोग। इसलिए हम कहते हैं, कि उल्टी दुनिया है–

'उल्टा चलै सो औलिया, सीधा सब संसार।'

उल्टा चलना पड़ेगा। यह लोहे के चना चबाना है। कठिन है, लेकिन यह करना ही पड़ेगा। तभी इच्छा का त्याग हो सकता है। पहले नहीं हो सकता। इच्छाओं का त्याग कब होगा? जब हम उल्टे हो जाएंगे। पहले सीधे थे, अब उल्टे हो गए। उल्टे कैसे हों ? कि दुख का स्वागत करो, सुख का त्याग करो। बस पैट बदल गया। फिर संकल्प रूपी डिब्बों वाली इच्छा रूपी ट्रेन में बैठ जाओ, चिंतवन रूपी यात्री बन कर और हृदय रूपी प्लेटफार्म पर उतर जाओ। बस, वहाँ सब बना–बनाया मिलेगा, फिर सब काम हो जायेगा।

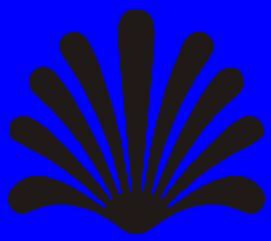

- सत्संग का कोड़ा
- सुषुप्ति और ध्यान
- अन्तर्जगत–दर्शन
- योगक्षेम वहाम्यहम्
- क्रोध–कुंभकर्ण
- युगधर्म

वेदान्त का जो विषय हैं वह साधन को नहीं मानता है। वह थोड़ा सा–सीधा है। डाइरेक्ट। यह साधन, जो हम बताते हैं, यह योग, ज्ञान और भक्ति तीनों मिश्रित है। थोड़ा–थोड़ा सभी रहता है। विवेक भी बना रहता है, इक्सपीरियन्स भी होता है। अनुभव होता है, बुद्धि में समझ आती है, बोध होता है और अन्त में ज्ञान आ जाता है।

'तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्मात् योगी भवार्जुन।'

अर्जुन तुम योगी बनो। योगी, तपसी और ज्ञानी और भक्त तीनो मिश्रित है। इसलिए योग की प्रक्रिया, थोड़ा अच्छी मानी जाती है। इससे क्या होता है, कि जितनी शरीर में कुंडलिनियां हैं, वो सब जागृत होती हैं। उनसे ताकत मिलती है। और दूसरे अनुभूतियाँ मिलती हैं। योगी–काल करके बाधित नहीं हो सकता है, देश करके बाधित नहीं होता है। वह जानता है कि आगे क्या आने वाला है। कोई घटना आने वाली है। और जो वेदान्ती है, वह यह सब नहीं मानता है। इसलिए वह मार खा सकता है। तो ये कई बातें हैं–जो इसमें विशेषताएं हैं। इसलिए उस रास्ते में खतरे ज़्यादा हैं–शेर भी मिल जाते हैं, चीते भी मिलते हैं, भालू भी मिल जाते हैं, सर्प भी मिल जाते हैं, और डाकू मिल जाते हैं, और लूट लेते हैं। एक और रास्ते में कुछ सुविधाएं मिल जाती हैं–नदी मिल जाती है, मंदिर मिल जाता है–कुछ गांव मिल जाते हैं। ऐसे कुछ सुविधाएं हैं। एक और ज़्यादा चक्कर वाला रास्ता है। ऐसे ढंग से ये जो इंडिपेंडेंट महात्मा नहीं होते–ये जो आचार्य संत या सम्प्रदायी संत हैं, मजहबी लोग हैं, उन लोगों ने ये सब निर्मित कर लिये हैं। और जो इंडिपेंडेंट या स्वतंत्र संत होते हैं, वो सबको जोड़ कर चलते हैं। जैसे ये लोग ज्ञान को अलग और भक्ति को अलग मानते हैं। लेकिन नहीं, देखिये गोस्वामी जी कहते हैं–

ज्ञानहिं भगतिहिं नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा।।

इनमें भेद नहीं। क्योंकि–

पंथ जात सोहै मति धीरा।।
'ज्ञान भक्ति जनु धरे शरीरा।

ज्ञान मनु और भक्ति सतरूपा। ज्ञान को पति बना दिया, भक्ति को पत्नी बना दिया और पति–पत्नी एक ही होते हैं।

अस विचार पंडित मोहि भजहीं।
पायहु ज्ञान भगति नहिं तजहीं।।

जानकारी मिल गई, कि यह है भगवान। यह दीपक जल रहा है—इस जगह मुझे पहुँचना है। यह ज्ञान है। अब उसमें फोर्स के साथ लपट पड़े, छोड़े न। तो वह भक्ति है। जानकारी और गति दोनों मिलकर एक हो गए। इनमें कोई अन्तर नहीं है। जिसमें जिसकी रुचि है, उसे लेकर चल देता है। और अगर गुरू, महात्मा के मुंह से इसे कहलाना है, तो वे दोनों को एक में मर्ज कर देंगे। जो अच्छे महात्मा होते हैं। और जो आचार्य पद्धति वाले होते हैं, शास्त्र ज्ञानी होते हैं, वाक्य निपुणता की पद्धति वाले होते हैं। वे यह झगड़ा खड़ा कर देते हैं कि ज्ञान—ज्ञान है। भक्ति, भक्ति है। वे सोचते हैं, कि हम ऐसी व्याख्या कर दें कि इनके दिमाग ही काम न करें—पब्लिक के। लोग सोचेंगे—कि यह बड़ा भारी विद्वान है। यह एक चीज़ के पचास—पचास अर्थ करता है। लेकिन साधक से ठीक उल्टा है—यह। साधक को पचास अर्थ के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए—एक अर्थ का आधा अर्थ करे, पाव करे, अर्थ वह अच्छा माना जायगा। और जो एक अर्थ के दस अर्थ करे। दस अर्थ के सौ अर्थ करे, वह कुछ करने के लिए नहीं अर्थ करता—वह पब्लिक को बहलाने के लिए, अश्लीलता के लिए, चतुरता दिखाने के लिए और जानकारी को जड़ने के लिए करता है। ईगो के लिए करता है। आजकल के व्यास ऐसे ही करते हैं। क्योंकि करना तो किसी को है नहीं। जिनकी समाज में वह व्यास बोलता है, उनको करना तो किसी को है नहीं। वो तो चलो भाई, बंबई में बड़े अच्छे कथा वाचक आए हुए हैं, चलो सुना जाय। लेकिन अपने जो रोज के धन्धे हैं, उन्हें छोड़ना नहीं है—कथा ज़रूर रोज सुनते हैं। लेकिन उसमें फरक नहीं आ सकता। जैसे एक सेठ थे बड़े। रोज कथा सुनने जाते थे। अपने नाती को दुकान तका कर जाता था। एक दिन ऐसा हुआ, कि जमींदार दुकान में आ गया। उनके यहाँ शादी थी, बहुत सामान खरीदना था। सेठ का पुराना ग्राहक था, लेन देन था। सेठ दुकान में नहीं था। नाती को डाँटा, जमींदार ने। जमींदार आदमी को ज़मीन की गर्मी रहती है। गर्मी में गर्मी, सर्दी में ठंड और वर्षा में भीगते रहने से इन लोगों के स्वभाव तेज तर्रार हो जाते हैं। बोला, ए लड़के! जा बुला सेठ को। लड़का दौड़ा गया, सेठ से बताया—बब्बा बब्बा! कोई बहुत बड़ा ग्राहक आया है—दुकान में, उसे बहुत सामान खरीदना है।' सेठ का नियम था, कि बिना कथा खतम हुए, बीच में उठता नहीं था। सेठ ने कथा सुनने वालों से पूछा—रोज तो पंडित जी इतनी देर कथा समाप्त कर देते थे, आज देर तक बढ़ाते जा रहे हैं। लड़के से कहा, जाओ कहना अभी आ रहे हैं। लड़का गया बोला—दो चार मिनट में आ रहे हैं—आप आइए बैठिए। जमींदार ने डांटा उसे—अरे उल्लू हो क्या? हमारे पास टाइम कहाँ है? जा, बुलाओ जल्दी। लड़का फिर भागा गया। तब तक कथा समाप्त हो रही थी, और पंडित बोल रहा था, कि कृष्ण के स्वरूप को इस तरह से अपने हृदय में धारण करना होता है—धारणा की बात, जो लड़के ने सुना—उसके चित्त में कृष्ण का रूप खड़ा हो गया। वैसा ही सांवला शरीर, पीताम्बर, वंशी सब—चित्त में छा गया। उत्तम अधिकारी था लड़का। उसको, सेठ घर चलने को कहे, तो उठाया न उठे। कहे कि कृष्ण जाने नहीं दे रहा। चारों तरफ कृष्ण ही दिखने लगा, उसे। एक दिन दुकान में एक गाय, कुछ सामान खा रही थी। लड़का देख रहा था—उसे गाय में कृष्ण दिखाई पड़े। उसने गाय को हटाया नहीं। सेठ आया और चार डंडा लगाया गाय के। तो वह लड़का लुढ़क गया—उस डंडे की चोट, उसके पीठ पर थी। सेठ भौचक्का रह गया। लड़के में स्वरूप के प्रति एकतानता आ चुकी थी। हर जगह कृष्ण दिखाई देने से, गाय में भी, अपने में भी। इसलिए डंडा पीठ पर लगा। सेठ ने कहा, यह ज्ञान तुम्हें कहां से मिला। तो लड़के ने कहा—कथा में उस दिन पंडित जी ने बताया था, कि हर जगह कृष्ण को देखना चाहिए। सेठ बोला, 'हट उल्लू कहीं का—हम पचास साल से कथा सुनते हैं रोज, और वहीं की वहीं झाड़ कर चले आते हैं—और ठाट से अपना काम

करते हैं। और एक तू बेवकूफ, जो कल ही कथा सुना–आज ही डंडा खा गया। लड़का तो उत्तम अधिकारी था, निकल गया। भगवान का भक्त हो गया। तो ऐसे भी कथाकार होते हैं। और सुनने वाले भी ऐसे होते हैं।

ऐसे ही एक बहुत बड़ा समझदार आदमी, घोड़े पर बैठ कर चला जा रहा था–एक जगह कथा हो रही थी। उसमें, उसने जाते–जाते सुन लिया, कि अगर कोई पेड़ के नीचे खड़ा है, और ऊपर से उसकी झोली में सांप गिर पड़े, तो क्या वह देखेगा कि यह सांप काला है, कि गोरा है, कि गेंहुँआ है–कैसा है–उसे तो जल्दी–जल्दी फेंकेगा। ऐसे ही कोई जितना जल्दी त्याग कर देगा–एक शब्द, में, उतना जल्दी उसे ईश्वर की प्राप्ति होगी। तो घोड़ा कहीं बांध दिया, कपड़ा फाड़कर फेंक दिया और निकल पड़ा, कि अब हम त्याग करते हैं। घूमते–घामते, बारह चौदह साल में फिर उधर से निकल पड़ा, तो फिर भी कथा हो रही थी। तो पता किया कि कथा कब से हो रही है–मालूम हुआ कि बहुत दिनों से हो रही है, और बीसों साल से श्रोता आकर, रोज सुनते हैं। उसने कहा मुझे तो शास्त्र का एक चपका (कोड़ा) लगा था, तो आज तक होश नहीं है। और वे कैसे लोग हैं, जो रोज कोड़े खाते हैं, और बैठे रहते हैं। तो इस तरह से, जब हम ईश्वर का भजन करते हैं, और जब हमारे पास 10 पैसा फोर्स है, तो 90 पैसा माया का फोर्स होगा। और अगर हमारे पास भजन का 50 पैसा होगा, तो माया का 50 पैसा होगा और भजन वाले को 60 तक बढ़ा दे, तो इसकी ताकत बढ जायगी। माया कंट्रोल हो जायेगी। बस यही तो है–दो पलड़ा चलते हैं, इधर–उधर। यही तो उलटा–पुल्टी है। हाँ बस। अब जैसे हम 100 पैसे माया में फँसे हैं। एक पैसा भजन करने लगे, तो उधर माया में रह गये 99 पैसे। अब हमारा काम है, कि हम इस एक पैसे की रक्षा करें। यह जाने न पाए। और प्रयत्न में लगे रहें, कि एक पैसा और बढ़ जाये। अगर बढ़ गया तो दो पैसे हो गए। और उधर 98। फिर तीन हो गये, तो 97 इस तरह 96, 95, 94, 93, 92, 91 माया की उल्टी गिनती होने लगी। इस तरह से धीरे–धीरे 50 के ऊपर भजन को ले आना है। बस फिर कोई दिक्कत नहीं। किसी भी तरीके से हम करें, हजारों तरीके हैं। स्पीड पकड़ो, फोर्स लगाओ, तो जल्दी सफलता मिलेगी। धीमी गति में ऊपर से अटैक हो सकता है। स्पीड में उस पर तुम्हारा अटैक होगा, और जल्दी प्रगति होगी। विजातीय ताकत सजातीय में ट्रान्सफार्म होती जायेगी।

ध्यान में नींद सी आ जाय। ध्यान लगते लगते नींद का रूप बन जाय। यह ध्यान ही है। ध्यान में ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों एक हो जायं। शून्य हो जाय, ऐसी कंडीशन आ जाय और उसमें हमें कुछ पता न हर जाय, जैसे गहरी नींद में सो जाते हैं, इसको सुषुप्ति कहते हैं। और जिसमें चित्र आते हैं, रील बनती रहती है, वह स्वप्न अवस्था है। जागृत अवस्था का कुछ अंश रहता है। जागृत की सहायक स्वप्न अवस्था। जागृत और स्वप्न इन दोनों से परे सुषुप्ति है। गहरी नींद। न चित्र दिखाई पड़े, न स्वप्न दिखाई पड़े। न कोई मतलब। जैसे गर्मी के मौसम में, कोई ठंडी जगह मिल जाय, कुछ खाने को मिल जाय, ठंडा पानी पीने को मिल जाय, और सो जाय। फिर उसे कोई जगाए तो कैसा लगता है? बुरा लगता है। कहेगा बड़ा आनंद मिल रहा था, सो रहा था इसने मुझे जगा दिया। फिर वह सोना पसंद करेगा। ऐसी गहरी नींद, जिसमें कोई चित्रण नहीं होता, जिसमें कोई कम्यूनिकेशन नहीं होता–ऐसी गहरी नींद, उसे सुषुप्ति कहते हैं। जिसमें शून्य स्तम्भ आकाशवत् रह जाता है–शरीर का भान नहीं रहता। अगर ऐसा शून्यवत् ध्यान आता है, तो वह ध्यान ठीक है। अगर उसमें कोई चित्र बनेगा तो उसका कोई कारण होगा। फ्यूचर होगा। समाज के विषय में कोई चित्र आ सकता है। साधन के विषय में कोई चित्रण हो

सकता है। कोई फ्यूचर की बात आ सकती है। आगे वह घट जायगी–अक्सर ऐसा होता है। ध्येय ध्याता और ध्यान इन तीनों में एकतानता।

''तत् प्रत्ययैकतानता ध्यानम्''

जैसे तैल धारा हो। तेल को गिराओ तो एक लाइन बन जाती है। पानी ऐसे ऐसे (थोडा हिलते हुए) गिरता है। लेकिन तेल–धारा की उपमा दी गई है। तो ऐसा ध्यान अगर लग जाय, और उसमें अगर सुषुप्ति की अवस्था में हम प्रवेश कर जायें–तो वह ध्यान ठीक है। उसमें कोई हर्ज नहीं। सुषुप्ति भी तो ध्यान ही है। यह संसार ही तो जागृत अवस्था है। यह रात ही स्वप्न अवस्था है। यह ध्यान ही तो सुषुप्ति है। तो सुषुप्ति कैसे आये हमारे पास? सुषुप्ति में कुछ भी भान नहीं होता है। यह अवस्था जागते में भी रहे। मान लो ध्यान कर रहे हैं, सुषुप्ति में हैं, और जाग गए। ध्यान टूट गया, सुषुप्ति हट गई। जो यह जागृत आ गई, अब इसके संस्कार हममें न पड़ें और जो सुषुप्ति का आनंद हमें मिला है–वही नशा हमें चढ़ा रहे, जागने पर भी। ध्यान की अच्छी दशा यह कही जायगी।

कोई भी प्रसंग हो, कोई भी अंतःकरण में तर्क हो, कोई भी मन में अंदर शंका तैयार हो, उसका हल होना चाहिए। अगर साधक के अंतःकरण में तर्क तैयार हुआ और उसका समाधान नहीं होता, तो वह साधना नहीं कर सकता। एक शंका तैयार होगी–दूसरी होगी। अगर पहली का समाधान नहीं हो पाया, और उसको खतम नहीं कर पाया। तो दूसरी होगी, तीसरी होगी, चौथी होगी–इस तरह से टाल लग जायगा। तो फिर उसका अंतःकरण, पवित्र विचारों को पकड़ने में सक्षम नहीं होगा। वह भर जायेगा, तमाम प्रकार के तर्क–वितर्कों से। प्रश्न यह है कि इसकी एडजस्टिंग खोजनी चाहिए। मेरा अपना ध्येय यह है, कि गीता को तो हटा दें, रामायण को हटा दें। और अपने को आगे ले लें। मनुष्य का जो हृदय है–तो जब आप साधना करेंगे तो आपके हृदय में ही यह क्रिया शुरू होती है। जिसमें अंतःकरण चार खंडों वाला है। और चारों तरह से मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। इसमें कोई चिंतवन करता है, कोई निश्चय करता है कि यह सही यह गलत है। कोई चेतन का प्रतिबिम्ब प्रदान करता है। इस प्रकार अंतःकरण की क्रियाएं चालू होती हैं, और जब उसकी क्रियाएं प्रारम्भ हो जाती हैं तो फिर वह साधक नहीं होता, वह आम जनता वाला आदमी, आम आदमी होता है। और जब शंकाएं और समाधान इच्छाएं और उनका शमन और उनकी पूर्तियां ये सब क्रियाएं जब अंतःकरण में होने लगती हैं तो फिर इनमें विवाद छिड़ जाता है। इनके गैंग बन जाते हैं।–इनकी अभिव्यक्ति हो जाती है। और वो दो भागों में बंटकर तैयार हो जाती हैं। एक बुरी धारणा, और एक भली धारणा। एक ही परिवार है–इनका। ये दो भागों में बंट जाते हैं। एक जो है अज्ञान का प्रतीक बनकर बुरी धारणा का पक्ष लेकर धृतराष्ट्र बनता है। दूसरा जो है अच्छे विचारों को केन्द्रित करके, उसमें रुचि लेकर और, क्षमा का आशीर्वाद लेकर और सहन करने की क्षमता के साथ, पांडवों का एक दल तैयार होता है। ये दो तरह की प्रक्रियाएं हर मानव के अन्तःकरण में जागृत होती हैं। और ये दोनों प्रक्रियाएं, परस्पर एक दूसरे के प्रति विरोधी रहती हैं। हमेशा युद्धरत रहती हैं। हमेशा ऐक्शन–रिएक्शन होता रहता है। एक इसको मानेंगें, तो दूसरे कहेंगे हम इसको नहीं मानेंगे। एक इसको सही मानेंगे, तो दूसरे गलत मानेंगे। ये दो प्रकार के–एक गुणों की पलटन और एक अवगुणों की पल्टन कह सकते हैं। या सजातीय और विजातीय कहकर इन्हें पुकारते हैं। कोई तो इन्हें दैवी संपदा और आसुरी संपदा कहकर पुकराते हैं। कोई इन्हीं को विद्या क्षेत्र और अविद्या क्षेत्र कहता है। तो अब यह दो पल्टन बनकर तैयार हो गईं। अब उनमें खलबली मचती है। यह जो शान्ति है जीवात्मा

में, वह शान्ति छिन जाती है। वो दबते चले जाते हैं, ये उभरते चले जाते हैं। एक के अंदर क्षमता तैयार हो जाती है, दूसरे के अंदर ईगो तैयार होता है। यह आटोमैटिक सिस्टम है। तो इस तरीके से वो पाण्डु पुत्र कहलाते हैं। ये धृतराष्ट्र पुत्र कहलाते हैं। ये दुर्गुणों के केन्द्र कहलाते हैं, वो सद्गुणों के केन्द्र कहलाते हैं। तो अब क्या होता है, कि यह जो शरीर है, यही कारागृह है। और इसमें जो कर्म है, उसमें चेतन का प्रतिबिम्ब कंस है। कर्म बहुत प्रबल होता है। सबसे बलवान होता है। ''कर्मणा गहनो गतिः'' इसमें बड़ी ताकत होती है। जैसे बाली रामायण के कथानक में बलवान था। ऐसे ही यहां कंस है। शरीर से ही कर्म होता है। इस शरीर में जो व्यापक भाव ले रहा है जीवात्मा, वह वसुदेव है। साधक जो इसमें ध्यान लगाता है–वह देवकी है। इन दोनों के संयोग से ये जो शरीर कारागृह है, इसमें एक तीसरी चीज, चेतन का प्रतिबिम्ब तैयार होता है। कृष्ण। तो इस चेतन का लालन–पालन कहाँ होता है–यशोदा कहते हैं–भक्ति को। नन्द बाबा नियम है। तो जब हम नियम से रहने लगेंगे और भक्ति करने लगेंगे। गो नाम इंद्रियों को हमें चराना है। बस इन्हीं को हमें रोकना है। यही इंद्रियाँ कभी गाय बन जायेंगी। कभी गोपी बन जायेंगीं। जब स्थूल स्तर की साधना होगी, तो गाय बन जायेंगी। यही इंद्रियाँ। अनुकूल बन जायेंगी। वाणी रूपीवंशी है। वाणी में जब प्रभाव आ जाता है, तो सब आकर्षित हो जाते हैं। प्रभावित हो जाते हैं। यह रचना रच जाती है। पांडवों को (सद्गुणों को) राज का अंश नहीं दिया जाएगा। सुई की नोंक के बराबर ज़मीन नहीं दी जायगी। इन्हें देश निकाला दे दिया जाएगा। छल से, झूठ से, बेईमानीसे इन्हें पसंगा नहीं माना जायगा। ये सब (दुर्गुण) बड़े बलवान होते हैं, मोहरूपी दुर्योधन, दुर्बुद्धि दुश्शासन ऐसे बड़े–बड़े बलवान हैं इनकी तरफ। कर्म रूपी कर्ण है। भ्रम रूपी भीष्म पितामह हैं। द्वैत का आचरण रूपी द्रोणाचार्य हैं। इस तरह, से सब बड़े–बड़े योद्धा हैं। ये सत्यवादी हैं। समाज की दृष्टि से इनकी बड़ी आवश्यकता है। इस तरह से इनके प्रभाव से यह सब बढ़ते चले जाते हैं। कि भाई, इनको तो कोई जीत ही नहीं सकता। इनकी तो कभी हानि नहीं हो सकती। आत्मा रूपी कृष्ण है–तो जब त्याग हो जाता है। सद्गुरू मिल जाते हैं। इष्टदेव कहो कुछ भी कहो। तो यह गाइड करता है। डाइरेक्ट भी करता है, इनडाइरेक्ट भी करता है। पहले से भी करता है और पीछे भी करेगा। वह लगा ही रहेगा। चाहे उसे जरासंध परेशान करे। चाहे उसे दिल रूपी द्वारिका में बसना पड़े। चाहे मन रूपी मथुरा को छोड़ना पड़े। कुछ भी करना पड़े लेकिन वह अपने काम पर रहेगा। तो इस तरीके से यह बराबर संघर्ष साधक के अंतःकरण में चलता है। नाम इसका है महाभारत। महा कहते हैं डिग्री को। भा कहते हैं ज्ञान को, रत कहते हैं, लगा रहने को। महान ज्ञान में जो लगा रहे। उसका नाम है। महाभारत। वहाँ ये ढाल, तलवार, बाण कुछ नहीं है। यह सब चित्त पट्ट तो यहीं हो रहा है। अपने अन्दर। साधक वही हो सकता है, जो इसे देखे समझे।

जब हम साधना करेंगे और बलात् विघ्न हमारे सामने आएगा, तो उसको जब हम सहन करेंगे, तो वह वंदनीय त्याग होता है। और त्याग का जब सहारा लेंगे तो हम स्वाभाविक उठ जाएंगे। हाँ अगर हमें यह बुरा लग गया और उठ नहीं पाए और इनर्जी खतम कर दिये, तो फिर दूसरी बात बन जायगी। फिर वह साधना नहीं रह जायगी। साधना यह है कि हम उसमें लगे हैं, और कोई बलात् विघ्न आ गया, तो हम उसका बुरा नहीं मानते। हम मानते हैं, कि भगवान परीक्षा ले रहा है। कोई रोग आ गया, तो हमें मानना चाहिए कि भगवान हमारी मदद कर रहे हैं। हमारी तपस्या से यह खतम नहीं हो रहा था, तो भगवान ने सोचा, कि इसको रोग दे दो–इसको भोग लेने से इसका पाप खतम हो जायगा। तो यह भगवान

की बड़ी भारी आह्लादिनी–कृपा है। बड़ी भारी कृपा हुई है। कि हमारा संकट थोड़े में निबटा दिया। कोई विघ्न या तकलीफ आए, तो हम उसे स्वीकार करें। उसका स्वागत करें, तो वह कष्ट–कष्ट नहीं होगा। हममें क्षमता आ जायगी और सहन करने की ताकत बढ़ जायगी। और वह वंदनीय त्याग कहलाएगा। जहाँ त्याग का सहारा हुआ, तो हम साधन में आगे बढ़ जाते हैं। आगे की भूमिका बन जाती है। इस तरह से साधक आगे बढ़ता जाता है। तो वो सद्गुण रूपी पाण्डव, ऐश्वर्य स्वरूप श्रीकृष्ण के हाथों में शरीर रूपी रथ और इंद्रिय रूपी घोड़े और मन रूपी लगाम सौंप देते हैं। मैं आपका शिष्य हूँ। मैं इस समय कुछ नहीं सोचता। और न कोई निर्णय लेने के योग्य हूँ। मुझे परेशानी है, बस मैं आपको चाहता हूँ, मैं राज्य नहीं चाहता। मैं आपको चाहता हूँ, जब ऐसा ध्येय, दृढ़ निश्चय बन जाता है, तब कृष्ण अनुकूल हो जाते हैं–आत्मा अनुकूल हो जाती है। तब कृष्ण कहते हैं, अब मैं तुम्हारा काम करूंगा। अब मैं तुम्हारा योग क्षेम सब संभालूंगा। तेरी रक्षा करूंगा। रक्षा करने में बड़ी दिक्कतें है। बड़ी–बड़ी पेचीदगी के मामले हैं। बड़ी–बड़ी शर्तें हैं। हर प्रकार से अर्जुन को मार देने में–कर्ण सक्षम था। उसके पास ऐसे–ऐसे युद्ध कौशल थे कि अर्जुन को मार सकता है, उससे भी बचाना है। फिर पितामह भीष्म से तो कोई बच ही नहीं सकता, उससे

भी बचा लेना है। यह सब कला, गुरू जानता है–यह इष्टदेव जानता है। और बचा ले जाता है। अब इसको कैसे अपने में लाना है, यह सोचिए। जो हम तुमसे कह रहे थे, कि यह जो छा गया है, यह अंदर आ जाय। बाहर न रह जाय। यह दुनिया बदल जाय। हम कहते हैं, दुनिया उल्टी है। वह दुनिया यहाँ आ जाती है। वह दुनिया जब आ जायगी। तो उस दुनिया के दिन में, दिखाई पड़ेगा दूर तक, और कम्यूनिकेशन हो जाएगा–ईश्वर से। और इस दुनिया में, इसमें पर्दे लगे हुए हैं। हमारी पूरी इनर्जी, इनमें ढक जाती है। तो यह उल्टी है दुनिया। और जब अन्दर की हो जायेगी, तो सीधी हो जायगी। तो अब प्रश्न आ गया। अब आ गया–गीता। अब यह संघर्ष रुक नहीं सकता। सजातीय–विजातीय दोनों खड़े हैं। अब ज़रूरत है गीता की। अब ज्ञान की ज़रूरत है। हर प्रकार का ज्ञान, बताया जाता है। क्या यह उचित है, तुम्हारे लिए। क्या यह सन्यास योग ठीक है ? द्वितीय अध्याय में बहुत बड़ा ज्ञान दिया है। और सबसे ज़्यादा प्रीच (उपदेश) है उसमें। बहुत अच्छा लिखा गया है। करीब करीब सब अध्यायों में ज्ञान दिया गया है। थोड़ा भेद दे–दे करके–कहीं सन्यास योग है, कहीं कर्मयोग है, कहीं भक्ति है, कहीं ज्ञान का ही है, कहीं निष्काम योग है, कहीं विद्या अविद्या का है। हर चीज़ को ले लिया गया है। कोई रह न जाय। और अगर एक भी गुण आ जाय, तो सभी गुण आ जाएंगे–यह आध्यात्मिक विषय ऐसा है। अगर तुम वैराग्य को ले लो, तो ज्ञान आ जायगा, विवेक आ जायगा, धर्म आ जायगा, सब आ जाएंगे। या धर्म को ले लो, तो सब आ जाएंगे। त्याग को ले लो, तो सब आ जाएंगे। अनुराग को ले लो, तो सब आ जाएंगे। और अगर तुम दुर्गुणों को ले लो तो सब आ जाएंगे। मोह भी आ जायगा, लोभ क्रोध सभी आ जाएंगे। जितने दुर्गुण हैं, सब एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

सबसे बड़ी चीज़ है, कि क्यों गीता की आवश्यकता है? गीता जो है, गाने से बना है। भगवान ने इसे गीत रूप में कहा है। पोएट्री रूप में कहा। इस तरीके से, उसका नाम गीता कहा गया। गीत के जैसे। और अध्यात्म में भी कहते हैं–ग नाम इंद्रियों का ता माने त्याग। इनसे अलग हो जाना। जो इंद्रियों का समूह है–इस, सब पूरे का त्याग कर देना। वही सब इसके अंदर भरा हुआ है। (गीता में) बताया गया है कि तुम काम का त्याग करो, तुम क्रोध

का त्याग करो, मोह का त्याग करो। तुम इन दुष्टों को मारो। ये आततायी खड़े हैं, इन्हें तुम मारो।

अब वह कहता है कैसे मारूं। ये मेरे काका हैं, दादा हैं, बाबा हैं, मामा हैं। इनकी गोद में–मैं खेलता था। धूल में लिपटा हुआ, इनकी गोद में घुसकर बैठ जाता था। तो इनको मैं कैसे मारूं–यह मेरी समझ में नहीं आता। तो अब एक ही बात है, कि तुम पिता को मार दो। परिवार को मार दो, कुटुम्ब को मार दो–हटाओ। ऐसा मारने को कहते हैं। इनको हटाओ। इनको मारो–तब मैं आ जाऊँगा। कोई तुम्हारा, दुश्मन नहीं रह जायगा। तुम्हें आनन्द ही आनन्द मिल जाएगा। तुमको यह परमानन्द मिल नहीं सकता, जब तक मैं नहीं हूँ। और तुम जो उसको खोज रहे हो–काका, दादा में मिल जाय, राज में मिल जाय, ज़मीन में मिल जाय, तो इनमें नहीं मिलने वाला। जब बार–बार कृष्ण ने समझाया और कहा कि मन की गति को रोको, तो वह कहता है– यह मन हवा से भी ज़्यादा वेग वाला है। यह कैसे रुक सकता है–यह मेरी ताकत के बाहर की चीज़ है। तो अब इसके बाद कृष्ण कहेगा क्या? क्या फिर से वही सब बताएगा कि काम का त्याग करो, मोह का त्याग करो? अब तो उसे दूसरी कला बतानी पड़ेगी। जब हर एक साधन में अपनी असमर्थता जाहिर करता है अर्जुन–यह साधक। तो फिर आखिर में बताते हैं कि, तुम 'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। 'सारी जो धारणाएं बन गई हैं–मन में, इन्हें हटा दो और मेरी शरण में हो जाओ। इन धाराणाओं को त्यागो–इन्हें हटाओ मन से। फिर मैं तेरे योगक्षेम का वहन करूँगा। और मैं सब कुछ करूँगा। आखिर में इतना ही आता है। तो जब यह हो गया, कि सब कुछ समर्पण कर दो और मेरी शरण हो जाओ। मन को समर्पणकर दो, शरीर को कर दो, फिर तुम्हें कुछ करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। तो जब ऐसा हो गया, तो युद्ध छिड़ गया। गीता तो बीच में खड़े होकर बताया था। दस मिनट की बात। और अगर वहाँ दिन भर खड़ा रहकर होती, तो वहां कोई खड़ा रहने की जगह तो थी नहीं। वह तो बस थोड़ी देर की बात है, अन्तःकरण की बात है, समझ की बात है। तो जैसे ले गए। देखा दोनों तरफ के लोगों को। पूज्यों को प्रणाम किये, और कहे–बस चलो। क्षमावान के यही लक्षण हैं, दुर्योधन ने किसी को नहीं किया प्रणाम। और उनकी तरफ–जो ये पितामह वगैरह थे, उनको भी नहीं किया। तो सद्गुण, क्षमा की ओर होते हैं। पांडव लोग युद्ध में जाते, तो पितामह को प्रणाम कर लेते–तो विजयी भव–आशीर्वाद मिल गया। जब युद्ध में पितामह भीष्म ने आफत कर दिया। दस हजार जवानों को रोज मारता था। कृष्ण परेशान हो गए। तो पाण्डवों को बैठाए, बोले धर्मराज! तुम तो पितामह को प्रणाम करने गए थे न? बोले हाँ। तो कृष्ण ने कहा तो हमारी बात मानो। तुम आज जाओ पितामह के पास, और उनसे कहो कि यह 'विजयी भव' का अपना आशीर्वाद वापस ले लीजिए–हमको नहीं चाहिए। गये, प्रणाम किये। बोले कैसे आए? तो कहे, कुछ नहीं–प्रणाम करने आए थे। अच्छा, 'विजयी भव। तो युधिष्ठिर ने कहा, पितामह आप अब यह आशीर्वाद न दीजिए। यह हमें न चाहिए। आप अपना आशीर्वाद वापस ले लीजिए। तो भीष्म ने कहा क्या बात है? क्या रहस्य है इसमें? बोले, मैं भीष्म–अपना आशीर्वाद वापस ले लूं, यह नहीं हो सकता। तो धर्मराज ने कहा, पितामह। आपके रहते, युद्ध में हमें जीतना तो है नहीं। तो फिर आपका यह आशीर्वाद झूठा हो जायेगा। आपको अपयश न मिले, आपकी वाणी झूठी न हो जाय, इसलिए इसे वापस ले लीजिए। हम हार जाएं, यह हमें मंजूर है, लेकिन आपकी वाणी झूठी हो–यह उचित नहीं है। पितामह ने कहा–अरे बदमाशों, मैं समझ गया। यह कला तुम्हें श्रीकृष्ण ने बतायी है। और बस हो गया। तो ये जो भ्रम है, यह पितामह भीष्म है। यह बड़ा बलवान होता है। भ्रम नहीं जाता। यह सही का गलत और गलत का सही–यह भ्रम नहीं जाता। यह बहुत खराब बीमारी है। तो यह युक्ति

से मरेगा। उल्टी युक्ति से मरता है। इसी तरह रामायण में भी है। जैसे, यह रावण क्या है? 'मोह सकल व्याधिन कर मूला।' यह मेरा है, वह मेरा है। यह कोट भी मेरा है, वह भी मेरा है–ऐसा जो मोह है, वह रावण है। ये हाथ चाहते हैं–स्पर्श मिले, नेत्र चाहते हैं–देखने को मिले, यह जिह्वा भी रस चाहती है। इस तरह से दसो इंद्रियां अपने विषयों का भोग चाहती हैं–समूह में। ये दस सिर हो गये। इंद्रियों में जो दोहरी कार्य क्षमता है। ये बीस भुजाएं हैं। यह मोह रूपी रावण है। 'मोह सकल ब्याधिन कर मूला।' छोटा मोटा नहीं–यह राजा है। तो इससे लड़ना, इसको वशीभूत कर लेना, यह बहुत बड़ी बात है। कैलाश को उठाने वाला रावण–विश्व विजयी। हाँ। कैलाश कहते हैं, काया को। मोह ने काया को जीत लिया है। काया में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब, कैलाशपति शंकर का है। तो इस तरीके से ये रूपक गढ़े हैं। अब अहंकार को बताया–अहिरावण। कहते हैं, पाताल में रहता है। पाताल लोक उसकी
राजधानी है। जो अभिमानी होता है, उसका सिर नीचा। यह पाताल है। अब इनको गढ़ा गया है।

फिर गोस्वामी जी ने स्वयं अपनी कविता में लिखा है।–''वपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंका''–यह शरीर ब्रह्मांड है। इसमें आसक्ति रूपी लंका है। 'मन मय दनुज रूप धारी।' मन रूपी मय दानव ने इसकी रचना किया है। इसी में ये सब काम–क्रोध, मोह बैठे हुए हैं। इसमें जो जीवरूपी विभीषण है–वह परेशान हो रहा है। यह बहुत बड़ा भजन बनाया है–विनय पत्रिका में। इस तरीके से, ये अनुभव की बातें हैं। अनुभव नहीं कर पायेगा, तो साधन करने वाले का कोई मतलब नहीं है। बाहरी रचना को ही अगर लेना है तो फिर साधना करके तुम करोगे क्या? इसे ट्रान्सफार्म करना पड़ेगा। इसमें इसे लाना पड़ेगा, जो दूसरी दुनिया है विरोधी। इसको खतम करना पड़ेगा। तब तुम्हारी साधना मानी जायगी। और जब यहीं बने रहोगे, तो तुम साधना काहे की करोगे? वह साधना नहीं मानी जायेगी। वही इच्छा, वही स्वभाव, वही गुण, वही कर्म और कहा गया है कि–''गुण, स्वभाव त्यागे बिना, दुर्लभ परमानंद।'' गुण–स्वभाव को त्यागना पड़ेगा। तब कहीं परमानंद मिलता है–आनंद मिलता है। इस तरीके से यह सब आध्यात्मिक तौर तरीका है। इसे हमें समझना पड़ेगा। और इसमें ऐसा है, कि जो तुम्हारे सामने–कविता या कहानी आ जाय, तुम उसके अन्दर प्रवेश कर जाओ। जो जानकारी तुम्हारे सामने आ जाये, तुम उसके अन्दर पहुंच जाओ। उसे लेकर अन्तःकरण में प्रवेश कर जाओ। तब तुम ठीक हो। जो जानकारी तुम्हारे पास आ जाय,उसे अपने अनुसंधान में ले लो। सिद्धान्त बन जाय। उसको दर्शन कहते हैं–उसको फिलासफी कहते हैं। ऐसे ढंग से चलना चाहिए। और जब तुम्हारा सिद्धान्त अपना है, और यह बौद्ध का अलग है, यह जैन का अलग है, कन्फ्यूशियस का अलग है। यह मोहम्मद का अलग है, ताओ का अलग है–तब फिर क्या फायदा हुआ? तो फिर कितने भगवान हो गये? और जब इतने भगवान हो गए, तो फिर तुम कहीं के रहे नहीं। वहीं रहे, जहाँ थे। नौ दिन चलै अढ़ाई कोस–कोई मतलब नहीं निकला। इसलिए सबमें प्रवेश करना पड़ेगा। सबमें एक चीज़ देखना चाहिए। सबको अपने सिद्धान्त में समाहित करने की शिफत आनी चाहिए–तब सही माना जायगा।

''कलियुग सम युग आन नहिं, जो नरकर विश्वास।
गाइ राम गुनगन विमल, भवतर बिनहिं प्रयास।''

कलियुग सबसे अच्छा युग है। क्यों है? क्योंकि कलियुग में बहुत ज़्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ती। सतयुग में, जब सबके अंदर सतोगुणी भावना ही व्याप्त हो जाती है। जब

समूह में सद्भावना का एक लेबल बन गया, आम जनता का स्तर बन गया, रहनी बन गई, एक स्वभाव बन गया, तो ईश्वर की प्राप्ति बहुत गहरी हो जायेगी। अब जैसे कपट कलियुग का स्वभाव बन गया है– बेइमानी में रचे–बसे हैं। और फिर साधना करनी है, तो हमें दूर जाना पड़ेगा। कहां जाना पड़ेगा–सत्य के पास। सत्य उसे कहते हैं, जो तीनों कालों में अबाधित है–एकरस है। कालकरके जो बाधित नहीं है। तो वह जब हमें मिले, तब हमें अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो। और अगर सत्य आ गया हो, जैसे आज कपट आ गया है। तो फिर अब कहां प्राप्ति होगी? तब फिर योगियों को जो प्राप्ति होती है, वह बहुत गंभीर होती है। फिर एक–एक लाख साल तपस्या करते थे। हड्डी में प्राण रह जाते थे। बांबी में आदमी दब जाता था। अब नहीं। अब कपट, मैथड बन गया है। अब तो–'गाय राम गुन गन विमल, भवतर बिनहिं प्रयास।' थोड़ी सी मेहनत कर दे, तो, खट निकल जायगा। इसलिए–''कलियुग समयुग आन नहि जो नर कर विश्वास। गाइ राम गुनगन विमल भवतर बिनहिं प्रयास।'' इसलिए कलियुग सबसे ठीक है। जहाँ कपट ही कपट भरा है, तो थोड़ा सा सत्य काम कर जायगा। और जब सब के पास सत्य भरा पड़ा है, तो कितना बड़ा सत्य होगा तब जाकर पहुंचेगा। तो वह सत्य बड़ा कठिन है। इसलिए–

'कृत युग सब जोगी विज्ञानी।
करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी।।
त्रेता विविध जग्य नर करहीं।
हरिहिं समर्पि करम भव तरहीं।।
द्वापर करि हरि गुरू पद पूजा।
नर भव तरहिं उपाय न दूजा।।
कलियुग केवल हरिगुन गाहा।
गावत नर पावहिं भव थाहा।''

अब सरल से सरल हो गया। तो इस तरीके से–

''कलियुग समयुग आन नहिं।''

ऐसी बीमारी आ जाय, कि ईश्वर को कोई न माने–आगे वह समय आने वाला है– तो झट बदलाव आ जायगा। फिर यह जो कपट है, यह नाइन्टी फाइब परसेंट पर पहुँच जायगा और सत्य, फाइब परसेंट रह जाएगा। जब 95 प्रतिशत हो गया कपट, तो उसमें ईगो आ जायगा। तो उसका रियेक्शन होगा। जो 5 प्रतिशत वाला है, वह बढ़ने लगेगा–और 95 प्रतिशत वाला कपट घटने लगेगा। वह 5 से 10 प्रतिशत हुआ, वह 90 प्रतिशत रह गया। फिर यह 20 प्रतिशत हुआ, वह 80 प्रतिशत रह गया। ऐसे बहुत समय में 50 हजार साल में, लाखों साल में युग बदलते हैं। धीरे – धीरे युगों का परिवर्तन होता है। युगों की उम्र बहुत लम्बी होती है। धीरे–धीरे बदलते–बदलते इसको सुसज्जित कर देगा–आत्मिक धर्म को। और जब धर्म बढ़ जायगा। सद्भावना समाज में बढ़ जायगी और बढ़ते बढ़ते बढ़ते जब 95 प्रतिशत हो गया, तो फिर इसमें ईगो तैयार होगा। अहंकार तैयार होगा। तो फिर इसके अपोजिट धर्म, बेइमानी बढ़ने लगेगी। और यह धर्म तहस नहस हो जायगा। लेकिन लाख–पचास हजार साल, उम्र है इसकी ऐसे बदलता रहता है। जैसे दिन और रात। हंसी और रुलाई। दुख और सुख। एक लम्बे समय में, ये बदलते हैं–इनको युग कहते हैं। इस तरह से सतयुग में बड़ी भारी तपस्या करते थे हजारों–लाखों साल तक। शंकर जी की समाधि लग गई, सत्तासी हजार साल तक। बीते संवत सहस सतासी। यह बात अब नहीं

है। 10 साल करले 12 साल करले बहुत है। हम कम समय के लिये करें, तो भी प्रगति होती है। यह युगों का प्रभाव ऐसा होता है। यह कलियुग का समय साधक के पक्ष में है कि अगर थोड़ा भी अभ्यास बन जाय, तो लाभ हो सकता है। जो लाभ पहले 10 हजार साल की तपस्या से होता था, आज थोड़े दिनों में हो सकता है। यह तो समष्टिगत संसार में युगों की बात हुई। हर व्यक्ति के अन्तःकरण में भी इन युगों का परिवर्तन होता रहता है।

''नित जुग धर्म होंहि सब केरे।
हृदय राममाया के प्रेरे।।''

मन में सतोगुण विशेष होने पर हमारे अन्दर की दुनिया में सतयुग होता है। कुछ थोड़ा रजोगुण आ जाता हे तो त्रेता युग हो जाता हैं रजोगुण और कुछ तमोगुण का असर मन में रहे तो द्वापर और जब तमो गुण का प्रभव बढ़ जाता है मन में, तो कलियुग कहा जायेगा। इन गुणों के अनुसार ही लोगों की अच्छे–बुरे कर्मों में प्रवृत्ति होती है। लेकिन निवृत्ति मार्ग वाला साधक तीनों गुणों से परे जाकर निर्लेप स्थिति के लिए साधना करता है।

- स्वप्न संकेत
- त्रयमेकत्र संयमः
- ज्योतिर्लिंग
- विकारों पर विजय का सूत्र
- राजयोग और मन का भूत

सोने में स्वप्न दिखाई पड़ता है। साधक जो जागृत में हरकत करता है, जैसे विचार लाता है, जैसा भजन करता है, जैसा व्यवहार करता है, जैसे बैठता है, जो भी सोचता है, जो भी चाहता है। इच्छा करता है, किसी चीज़ को देखकर लालच करता है। यही सब संस्कार–यह जो कंठकूप है, इसमें दाहिने तरफ, कछुए के आकार की एक नाड़ी होती है, बहुत बारीक–उसी में, ये सब जमा होते जाते हैं। खास–खास जो हैं, उनके रिफ्लेक्शन, वो सब इसी नाड़ी में, जमा होते जाते हैं। और उनकी एक रील बन जाती है। और जहाँ हम सोए, तो वह रील–स्वप्न के रूप में आ जाती है–अनेक प्रकार के चित्र दिखाई पड़ते हैं। ये हमने पहले बनाए हैं। जो संकल्प किए गए, उनके संस्कार बन जाते हैं। वे ही स्वप्न में दिखाई पड़ते हैं। स्वप्न चार–पांच किस्म के होते हैं। कुछ स्वप्न हल्के किस्म के होते हैं, जिनका कोई मतलब नहीं होता। कुछ स्वप्न ऐसे होते हैं, जो मतलब रखते हैं। जो हमने संकल्प किये थे, उनका चित्रण हुआ, रिएक्शन हुआ। कुछ सही, कुछ गलत। जैसे हमने संकल्प किया, कि हमें ये चीज़ मिल जाय। हम वहाँ चले जायें। यह आदमी ठीक है। तो बस स्वप्न में दिखेगा कि एक आदमी वैसा ही हमें कोई चीज़ दे रहा है। फिर वहाँ ले जा रहा है। ऐसे–ऐसे चित्र बनेंगे। बहुत स्पष्ट नहीं होंगे। समझ में नहीं आएगा। तीसरे किस्म का स्वप्न हो गया। चौथी प्रकार के स्वप्न वे हैं, कि जो हमने देखा वही घटित हो जाय। जैसे किसी ने सपने में देखा कि मेरी माता बीमार हो गयी है–और वास्तव में बीमार हो जाय। और पांचवे किस्म के जो स्वप्न हैं। वह साधक को होते हैं। अच्छे कोटि का जो साधक है–वह जो सोचेगा वह बातें स्वप्न में आएंगी। और उसको साधना के विषय में दिखाई देंगे–बाहरी बातों में नहीं। हमारी कितनी प्रगति हो रही है। कहाँ क्या है? गुरू मुझे कहां कृपा भेज रहा है। अनेक बातें हैं। दूसरा अंग फड़कन से भगवान बताते हैं। तीसरा ऐसे (प्रत्यक्ष) बताते हैं। चौथा सार्वभौमिक बताते हैं–पेड़ बता देगा। देवता बता देगा, कोई बता देगा। हर कहीं से बता देते हैं। ऐसे चार–पांच किस्म की अनुभूतियां होती हैं–यह सब ईश्वरीय लीला है। यह सेल्फरियलाइजेशन है। यह जब आने लगता है साधक को, तो साधक राइज करने लगता है। यह बोध कराने के लिए ही, परमात्मा भेजता है। यह जो भटभटा रहा है–इसकी समझ काम नहीं कर रही है। कभी भागता है, खाने के चक्कर में। कभी भागता है, विषय के चक्कर में। और जब मन इधर से हट कर भजन में लग जाता है। भगवान और माया दोनों का रहस्य समझ में आ जाता है। उसी लीला से, अनुभूतियों से अनुभव से। जब रहस्य समझ में आता है, तो बोध हो जाता है– वही धाम बन जाता है। फिर उसे किसी से पूछने की ज़रूरत नहीं है। वह सब जान जाता है। बोध हो जाता है। धाम हो जाता है। नाम, रूप, लीला की अनुभूतियों से–जब टटिया की आड़ से–बोध करा दिया, तो धाम मिल गया। भगवान वहाँ बैठे हैं। फिर धाम में क्या होता है। भगवान रहते हैं। यह है धाम। ऐसे ढंग से, ये स्वप्न काम करते हैं। काल कर्म स्वभाव और गुण इनको खतम करना है। केवल एक ही तरीका है। विज्ञान इसमें कुछ नहीं कर सकता। विज्ञान तो केवल सोच लाता है। जब हम कहते हैं कि एक लाख 86 हजार मील प्रति सेकेण्ड प्रकाश की गति

है। तो यह जो समय है, काल जिसको कहते हैं, इतनी गति आने पर, यह अपने आप ही खड़ा हो जायगा। वह बढ़ेगी, तो यह घटेगा। इसका कोई महत्व ही न रह जायगा, उसके सामने। इस तरीके से यह विज्ञान का विषय नहीं है—केवल अध्यात्म का विषय है। खाली नाम के द्वारा हम श्वासा को खड़ा कर दें, जो हम पहले से कहते चले आ रहे हैं। और जब श्वासा खड़ी हो जायगी, तो वह दुनिया स्तम्भ हो जायगी, जैसे आकाश। शून्य। इसमें कोई हरकत थोड़े है। शून्य खड़ा हुआ है। काल की गति तो है ही नहीं। हम अपनी गति को, मन की गति को रोक देंगे, तो काल, शून्य हो जायेगा। हम बार—बार यही कहते हैं। ध्येय और ध्याता और ध्यान। ज्ञेय और ज्ञाता और ज्ञान। ज्ञेय है—इष्टदेव, ईश्वर और ज्ञाता है—हमारा मन। और ज्ञान, जो न्यूट्रल है। जो हम देखते हैं—यह प्वाइंट है। इसमें हमारा मन रुकना चाहता है। इसकी जानकारी, यह ज्ञान है। 'त्रयमेकत्र संयमः।' ये तीनों एक हो जायं। न ज्ञान रह जाय, न ज्ञेय रह जाय, न ज्ञाता रह जाय। तब,

''तत्रप्रत्ययैकतानता ध्यानम्। तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।''

तो समाधि का रूप बन गया। बस काल, कर्म, सुभाव, गुण न रह पाएंगे। इस तरीके से जब उसमें श्वासा खड़ी हो जायगी, तो फिर पिछला रिकार्ड खतम हो जायगा। यह आटोमैटिक सिस्टम कहा गया है। इसलिये यह अलौकिक है। यह खतम नहीं हो सकता। कोई चाहे कि हम सुखी हो जायं, बगैर उसकी कृपा के, कोई सुखी नहीं हो सकता। कोई चाहे कि हम दुखी हो जायं, तो बगैर उसकी कृपा के, कोई दुखी नहीं हो सकता। दुख और सुख दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों एक हैं। न वह दुख है, न वह सुख है। आदमी के अन्तःकरण में, आनुवांशिक यह प्रवृत्ति आ गई है, आनुवांशिक—परम्परागत, पिता से पुत्र को आई, पुत्र से नाती को आई—यह आनुवांशिक आ गई, कि हम एक को सही मान लिये, एक को गलत मान लिए। एक को अच्छी मान लिए, एक को बुरी मान लिए। और यह ठोंक—ठोंक कर ऐसे बिंध गई है, कि यह दिमाग से निकलने वाली चीज़ नहीं है। यह आनुवांशिक रूप ले चुकी है। हेरिडिटी बन गई है। हम सुख चाहते हैं, इसलिए प्रयास करते हैं, कि दुख न आवे। सुख का आलिंगन करने लगते हैं। सुख का आनंद लेने लगते हैं। उसे हम स्पर्श करने लगते हैं। और जहाँ हम सुख को पकड़े, तहाँ बगैर दुख के सुख में सुख का ज्ञान होगा नहीं। तो दुख आकर प्रशस्त हो जाता है। अपने से आकर खड़ा हो जाता है। जब हम सुख का ज्ञान करते हैं, तो यह हो नहीं सकता। इसके लिए दुख ज़रूरी है। दुख के बिना सुख का भान कैसे होगा? इसलिए, ये एक दूसरे के पूरक हैं। महात्माओं की युक्ति से हम दुख से छूट सकते हैं। तरीका है छोड़ने का। जैसे दुख आ रहा है—तो हम डर जाते हैं। डरें न। कहें कि आओ दुख, हमारे पास आओ। हम तुम्हारा स्वागत करेंगे। तुम्हें परेशानी है—तुम हमारे पास आओ। खूब उसे बुलाएं, और प्रसन्न हों। प्रसन्नता व्यक्त करें। बस यही तरीका है। दूसरा आज तक कोई ईजाद नहीं हुआ। किसी ने, कोई रिसर्च नहीं किया इसमें। जब हम ऐसी कंडीशन में आ जाएंगे कि दुख आ रहा है, और हम स्वागत करने को बैठे हैं। उसे बुला रहे हैं। तो जहाँ वह सुनेगा—खड़ा हो जाएगा। क्योंकि वह जानता है, कि जहाँ मैं जाता हूँ, वहाँ रोना पीटना होता है, और यह हंस रहा है। यह पागल हो गया है क्या? कैसा आदमी है? यही सोचेगा। और वह अपना वह कर्तव्य करेगा। जो उसे करना है। क्या करेगा? कहेगा, कि मैं सुख बनकर आया हूँ। क्योंकि हंसने वाले के पास, दुख तो जा नहीं सकता। दुख तो रुलाई वाले के पास जायगा। हंसाई के पास जायगा, तो सुख बनकर जायगा, नहीं तो लौट जायगा। बस इतना है। दुख से बचने का यही एक उपाय है।

अगर कोई भी साधन करेगा तो वनथर्ड उसकी साधना होती है, साधना करना ही पड़ेगा। वनथर्ड उसके पूर्व जन्मों के पुण्य काम करते हैं। और वनथर्ड गुरू की कृपा रहती है। योग शास्त्र तो यह कहता है कि साधन कुछ भी हो–'त्रयं एकत्र संयमः' के बगैर नहीं होता। कोई कहे कि हम साधन से कर लेंगे, तो यह नहीं हो सकता। कोई कहे कि हम साधन नहीं करेंगे–गुरू की कृपा के ऊपर सब हो जायगा–यह भी ठीक नहीं है। इसलिए तीनों पर भार देना ही पड़ेगा। हाँ, अब उसमें अवलम्ब है। अगर शुरू में मूल साधन के विषय में बताया जाता है, तो ऐसे बताना पड़ेगा। अगर ध्यान के ऊपर बताना पड़ेगा, तो उसमें हो सकता है, ये दूसरे नाम हो जायं। तीनों के अलग नामकरण करने पड़ेंगे। अगर अजपा के लिए कहा जाता है, श्वासा के लिए, तो उसमें थोड़ा भिन्न शक्ति, भक्ति काम करेगी। तो इस तरीके से यह ऐसा विषय है–अलौकिक विषय है, कि इसको जितनी भी बारीकी से बुद्धि लगाकर किया जाय, उतनी कम है।

रूक्मिणी का मतलब यह है कि यह श्वासा ऊपर नीचे जपते जपते रा–म, रा–म यह रुक जाय। तो झट इसका ट्रांसफार्म होकर मणि। रुक्मिणी। तो इससे कोई नहीं जीत सकता, यह सबको हरा देगी, और कृष्ण को अपने में मिला लेगी। और जामवंती खाली जानना है। ऐसी आठ पटरानियां हैं। और आठों में मुख्य है रूक्मिणी। ये जो श्वासा रुक जाय, जिस साधक की, जपते जपते जपते जपते। तो जहाँ वो रुकी, तो मणि बन गई। भक्ति–मणि। इस तरीके से जो भक्ति करते हैं। नारद इसके साक्षी है। नारद कहते हैं, आकाश को। आकाश इसे देख रहा है। तो भगवान से कम्यूनिकेशन कर देता है। बता देता है कि यह सही है। और इसको डिग्री दे दीजिए, और इसको जिताइए। और यह जो जामवंती वगैरह है। यह जामवंत की बिटिया है। यह जानकारी से निकली है–थ्योरिटिकल है। यह रुक्मिणि जो प्रैक्टिकल है, उसको लेबल नहीं कर सकती। ये जो आठ पटरानियाँ हैं–अष्टसिद्धि के रूप में हैं। ये सब सिद्धियाँ आती हैं। तो कृष्ण के पास आठ पटरानियां। सोलह हजार एक सौ तो पूरे शरीर की नाड़ियाँ, और ये आठ–अष्ट सिद्धियाँ। राधा–कृष्ण की जो ताकत है। यह तो स्थूल जगत का जब साधन रहता है। अजपा करता रहता है। उस वाणी में पागल रहता है। उसमें लगन हो जाती है। तो यह जो रा की धारा है श्वासा में यह राधा है। और यह बरसाने से मिलती है। बरसाना कहते हैं। कंठकूप से जब अमृत मिलने लग जाता है, तो यह बरसाना है। उसमें जो ताकत मिलती है, यह राधा है। यह मथुरा (मंडल) छोड़ कर नहीं जाती है। यह द्वारका नहीं जा सकती है। यह वहीं रहेगी। और यह वहीं साधना करती रहेगी–मिलन नहीं हो सकता। यह शुरू की साधना है। और शुरू की साधना जब चलती है, तो श्वासा का जाप होते–होते इसमें बड़ा भारी प्रेम हो जाता है। वह मस्ती अलग ही रहती है। वह साधना का आवेश अलग ही रहता है। वह आनंद। यह पागल बैठी रह जाती हैं, गोपिकाएं और राधा। और वह जाकर दिल में चला जाता है–द्वारका में। प्रोग्रेस कर जाता है। तो फिर वहाँ दूसरी चीजें मिलती हैं। फिर इनका ट्रान्सफार्म होकर अष्टधामूल प्रकृति अष्टिसिद्धि बन जाती है। वह सिद्ध कोटि का साधक बन जाता है। तो इसलिए वह धाम कहलाता है, द्वारका। और जो धाम को प्राप्त कर लेता है, वह मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इनको जीत लेता है। नाम, रूप, लीला और धाम को प्राप्त कर लेता है फिर परिणाम मिल जाते हैं, उसको, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष फिर काल, कर्म, स्वभाव, गुण इनको खतम कर देता है। ऐसा जो साधक होता है, वह सही गति को प्राप्त कर लेता है। इसलिए खूब भगवान का ध्यान करना चाहिए, और जिस जगह बताया गया, उसी जगह करना चाहिए। अगर उसमें एडजस्टिंग में कोई गड़बड़ी है, तो उसका सुधार करना चाहिए। और जब धीरे धीरे अभ्यास हो जायेगा, और आदत पड़ जायगी, तो हम यह महसूस करेंगे,

कि गुरू महराज प्रसन्न हैं, हमारे साधन से। हमारा मन बताएगा। मन ही एक महान यंत्र है। जब पसंद किये हैं, तो हमको अधिकारी बना लिए हैं। और अधिकारी के लिए, इष्ट देव सब कुछ देने को तैयार रहते हैं। तो इसलिए शान्ति भी मिल जायगी। बलात् कोई विघ्न आने वाले हैं—वो भी टाल सकते हैं। विघ्न एक किनारे हो जाएंगे। आएंगे, तो उसका मतलब होगा। विघ्न आ भी सकता है। जैसे पांडवों को लाक्षागृह में जलाने का विघ्न आया। लेकिन प्रगति हुई। द्रोपदी मिली। अगर न वहां जाते, तो कहां मिलती। और भी घटोत्कच मिला। सारी लड़ाई लड़ी—हजारों को मारा। अगर वो विघ्न न आते, तो ये कहां मिलते? इसलिए साधक के सामने विघ्न आना, यह बहुत ज़रूरी है। लेकिन वह बुरा न माने, तब अच्छा है। और अगर भले को भला मान लिया, बुरे को बुरा मान लिया, तो हम प्रकृति का जो नियम है, उसी में आ गए। यह जो रोज लड्डवा—जलेबी खाते हैं—यह बाधा, है भगवान की तरफ से। यह लड्डवा—जलेबी खिलाकर हमारी बुद्धि खराब न कर देना—ऐसे भगवान से प्रार्थना करना चाहिए। और जो दिक्कत आए, उपद्रव आए, परेशानी आए, तो उसमें खुश रहना चाहिए, कि मेरे अंदर जो ये चोर घुसे हैं—काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है—यह इन पर मार पड़ रही है। इनको भगाया जा रहा है। इनके ऊपर आपत्ति आ रही है। आत्मा के ऊपर आपत्ति नहीं आ रही। आत्मा को कभी रंज नहीं हो रहा है। वह तो निर्मल है, एकरस है, शुद्ध है, बुद्ध है, अजन्मा है, अलख है, अविनाशी है। उसमें न डांट पड़ती है, न गाली जाती है, न प्रेम जाता है। वह तो जैसे का तैसा है। आकाशवत है। शून्यवत है। उसमें कुछ लगता नहीं। जिन्हें लगता है, वो बेईमान लोग हैं। उसे बांध रखे हैं, कब्जा किए हैं। ये काम क्रोध। यह जनरल विषय है। और जब हमें बुराई—बुराई न लगे। डांट हमें बुरी न लगे। हमें कोई बेवकूफ कहे, और बुरा न लगे। तो समझना चाहिए, अब ये विकार हट रहे हैं। इस तरीके से जो साधक समझता है, तो उसका प्राउड बहुत आगे जाता है। और अगर कमजोर है, तो वह बुरा मान जाता है। वह गड़बड़ा जाते हैं, कि हमको गाली दिया जा रहा है। हमको डांटा जा रहा है। हमारे एबों को पुचकारा जाय, तो कभी न निकलेंगे। ऐबों को मारना पड़ता है। कृष्ण ने कंस को मारा, पूतना को मारा, बकासुर को मारा, वत्सासुर को मारा। राम ने रावण को मारा, कुंभकर्ण को मारा, मेघनाद को मारा। और अगर मारा न जाय। अगर इनको पुचकार कर निकालें, कि भाई अब जाओ, अब मुझे छोड़ दो। अब जाओ, अब दूसरे के पास चले जाओ। तो ये नहीं जाएंगे। इसलिए इन्हें डांटना पड़ता है। और डांटना इसलिए फायदेमंद है, कि जो डांटने लायक है, वही डांटेगा। जब डांट पड़ती है, तो वह ऐब साधक के अंदर से झांकता है खिड़की से, कि यह जो डांट रहा है, इसके अन्दर भी तो हमारे बिरादर बैठे होंगे—तो जब झांकते हैं, तो देखते हैं कि वहाँ तो सब मरे पड़े हैं, तो सोचते हैं कि अब ठीक नहीं, भागो। तो वो ऐब साधक के अंदर से निकल जाते हैं। इसलिए, डांट से फायदा होता है। और जब भगवान का घर मान लेगा। और भगवान सर्वत्र हैं। तो यह कैसे हम भूल जाते हैं कि ईश्वर है, व्यापक है। इसी में मस्त रहना चाहिए। या इतना भाव व्यापक नहीं आता, तो अपने ईष्ट में रखो। जब बुराई आए तो बुराई का त्याग करके इष्ट के चरणों में पड़ जाओ। फिर, भगवान क्षमा करें, मुझमें कमी है। मुझे बचाओ, इन दुष्टों से। त्राहि त्राहि, मैं परेशान हूँ। क्या आपके पास ऐसी क्षमता नहीं है, जो मुझे बचा सकें? ऐसे रोओ, गाओ अपने भगवान से। तरीका बस यही है। उसके प्रयोग करने की क्षमता अपने में होनी चाहिए। कैसे उसका प्रयोग करें? कैसे समय पर संभल जायें? अगर संभल गए तो मिनटों में सुधार हो सकता है।

यह जो अंहकार है, हृदय में—उसको ज्योतिर्लिंग कहते हैं और वह शंकर जी का रूप है। जो जलहली होती है। उसके बीच में स्थित शिव लिंग इसका महत्व स्मार्त सन्यास में बहुत बड़ा है। यहीं पर शंकर का निवास है। इसी जगह से गुरू शंकर का रूप लेता है।

शंका जो होती है उसका (अरि) नाश करता है। इसलिए इस कमल को, अनाहत को, शंकर का स्थान कहते हैं। यह कमल बहुत महत्वपूर्ण है। और यह जो नाभिकमल है, मणिपूर इसमें विष्णु रहते हैं। और कंठकूप में ब्रह्मा और सरस्वती रहते हैं। इस प्रकार से इन तीनों देवों का निवास होता है। तो हृदय में ज्योतिर्लिंग मानी जाती है। अनेक हमारे ग्रथों में इसका बहुत बड़ा वर्णन आया है। अनेक ऋषि मुनि इसी में ध्यान करते हैं। यह सबसे बड़ा केन्द्र है, ध्यान के लिए। और यहीं से यह तर्कना रूपी ताड़का, जिससे यह मनरूपी मारीच और स्वभाव रूपी सुबाहु पैदा होते हैं, ये तर्कना–यहीं से मारी जाती है। इसी में जब विश्वास रूपी विश्वामित्र आ जाते हैं, तो यह तर्कना रूपी ताड़का मारी जाती है। तर्कना मारी गई, तहां मन कंट्रोल में आ जायगा। और जो यह स्वभाव है, साधना नहीं करने देता, यज्ञ नहीं करने देता यह सुबाहु, मारा जायगा। बिना तर्कना के मारे–बिना ताड़का के मारे, साधना नहीं हो सकती। हृदय बहुत महत्वपूर्ण होता है। इसमें प्रेम रूपी पार्वती है, सत्य रूपी शंकर है। जब हम प्रेम से सत्य को–प्रेम और सत्य को स्पर्श कराएंगे तो फिर शंकर की जितनी बातें हैं, वो आती जायेंगी। इस तरीके से जब हो जायगा, तब वह साधक आगे बढ़ सकता है। गुरू और शंकर में कोई अंतर नहीं। संत और शंकर में कोई अंतर नहीं। ये दो नाम हैं, और हैं एक। इसीलिए राम का जो भक्त होता है, वह शंकर है, संत है। और शंकर का जो स्वामी है, वह राम है। अगर भक्त न होगा, तो राम की कदर कौन करेगा? भक्त ही तो दुनिया में राम को पुजाते हैं। इसीलिए शंकर, राम की पूजा करते हैं। और राम शंकर की पूजा करते हैं। अन्योन्याश्रित हैं। एक दूसरे के पूरक हैं, और अभिन्न हैं। शरीर नहीं रह जाता, तो राम रह जाता है। वही तो राम है। और उसी को गुरू बाबा के रूप में देख कर फिक्सेशन किया जाता है। सुबह बैठते ही यह कर लेना चाहिए। फिर धीरे–धीरे, उतरते–उतरते पैर के नख पर आ जाय और जो पका नख है बारीक बस उसको देखे। बस उसी में चित्त गड़ाओ, और खड़ा कर दो वहीं। उसको ध्येय बना लो, और तुम मन से ध्यान करो–बस यह सबसे अच्छा ध्यान है। और जब ध्यान लगने लगेगा, तो वह ज्योतिर्लिंग बन जायगा। वही गुरू बाबा ध्यान करते–करते शक्तिका प्रादुर्भाव करके, ज्योति का रूप ज्योतिर्लिंग तैयार कर देंगे। यह पीछे होती है–पहले नहीं होती। गुरूबाबा का ही ऐसा रूप बन जाता है। जो हमारे अंदर, जो सनातन रूप है आत्मा का, वही उदीयमान हो जाता है।

हमारे मन की दो तरह की वृत्तियाँ हैं– एक सजातीय और एक विजातीय। तो जब सजातीय संकल्पों के द्वारा विजातीय को जीत लिया जायगा तो विजातीय तत्वों का ट्रान्सफार्म होकर सजातीय बन जायेंगे। फिर जब सजातीयों को भी जीत लिया जाता है–त्याग का त्याग कर दिया जाता है, तब संकल्प रहित हो जाता है। इसकी प्रक्रिया यही है। जैसे हमारे अंदर बुराई और भलाई दोनो हैं। तो हमें चाहिये, कि जब हम साधना करें, तो इन दोनों में झगड़ा करा दें। तो साधक को जो उसके जीवात्मा की ताकत है, उसको दुर्गुण यूज न कर पाएं, सद्गुणों को एड दी जाय। सद्गुणों को मदद दी जाय। और जब सद्गुणों को मदद मिलेगी तो, दुर्गुण खतम हो जाएंगे और खतम होते ही, जो भी रही सही इनर्जी दुर्गुणों में प्रतीत होती थी, वह बदल कर सद्गुणों में आ जायगी। एक ही हैं, ये दो नहीं हैं–कि दुर्गुण खतम हुए, तो सद्गुण अलग। एक हैं। तो जहाँ दुर्गुण खतम हुए, तो सद्गुण के खतम होने की स्थिति आ जाती है। तो इसको बचाने के लिए, दुर्गुण बदल कर सद्गुण बन जाते हैं। और सद्गुण का जब त्याग किया, तो दुर्गुण–सद्गुण से रहित–इनके सर्कुलेशन से बाहर हो जाता है। यह कला साधक नहीं जानता। यह अन्योन्याश्रय दोष से अलग है। मुर्गी के बगैर अंडा नहीं, और अंडा के बगैर मुर्गी नहीं–यह जो अन्योन्याश्रय दोष है। अब अगर तुमसे कोई पूछे कि पहले मुर्गी हुई कि अंडा, तो क्या बताओगे–पड़ जाओगे

चक्कर में। यह अन्योन्याश्रय दोष है। वास्तव में मुर्गी और अंडा एक दूसरे के पूरक हैं। ये अलग नहीं हैं–एक हैं। लेकिन उसकी गैर हाजिरी में–परमात्मा की गैर हाजिरी में, हमें दो करके दिखते हैं। इसलिये हम कई दफे कह चुके हैं, कि यह दुनिया जैसी हमें दिखती है, वैसी है नहीं। यह दूसरे ढंग की है। वह कैसे हमारे सामने आए? यह खतम हो जाय। हाँ। फिर राइज हो गया, साधक उठ गया। इतना काम करना है। बस इतना काम करना है। इस तरीके से। ये तो दोनों (अच्छा–बुरा) एक ही है। चाहे लोहे की बेड़ी पड़ जाय, चाहे सोने की पड़ जाय। बेड़ी सो बेड़ी। इसलिए साधक इन दोनों का त्याग करता है। भगवान तो सत्य का पक्षधर है। और संत जो है, वह सत्य–असत्य दोनों से परे रहता है। इसलिए भगवान, संत को अपने से बड़ा मानते हैं–

"सातवं सम मोहि मय जग देखा।
मोते अधिक संत कर लेखा।।"
और 'राम ते अधिक रामकर दासा।'

उसी का भजन करते हैं। लेकिन उससे बड़े हो जाते हैं।

इसलिए अपने ऊपर आने वाले दुखों को स्वीकार करें, और सुख आवे तो उसका निरादर करें। ऐसी प्रकृति बनाना चाहिए। ऐसी जिसकी प्रकृति बन जाती है वह इस दुनिया से अलग हो जाता है। इस दुनिया की जो तस्वीर है, दुनिया का जो तरीका है, दुनिया की रहनी है, दुनिया की गति है, दुनिया का रवैया है–उसमें वह नहीं जाता। और दुनिया से जहाँ अलग हुआ, तहाँ उसको मार्ग ठीक मिल जाता है। इसलिए कृतित्व का सबसे बड़ा स्थान है, या क्षमता का सबसे बड़ा स्थान है। क्षमता कहो या कृतित्वता, ये दोनों मिलते जुलते शब्द हैं। इसलिए इनका बहुत बड़ा स्थान इसमें है। जो कुछ बन जाय, वह तो अपने इष्ट को समर्पित कर दो, और जो न बने उसकी गलती स्वीकार कर लो। जो अपने ऊपर दुख आए उसका स्वागत करना सीखो औरजो सुख आए उसका निरादर करो। कि भाई तुम यहाँ कहाँ भटक कर आ गये–हम तुमको नहीं चाहते। हमारे पास तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है, तुम यहाँ कैसे आए? इसलिए तुम वापस जाओ, और वहाँ जाओ, जहाँ लोग तुम्हारा स्वागत करते हैं। मेरे यहां तुम्हारे लिए कोई गुंजाइस नहीं है। तो ऐसे ढंग से करने वाला साधक तपोनिष्ठ बन जाता है। उसके लिए बड़ी–बड़ी चीज़ें, सब आकर खड़ी हो जाती हैं। वह बहुत आगे बढ़ सकता है। इस तरह से ये सब कृतित्व का ही लक्षण है। नतमस्तक होना है। और लाभ लेना है उनसे, तो आते ही नतमस्तक होना चाहिए। और भी जो शक्ति का स्वरूप हैं माई–दाइयां इनको मन में अभिवादन करना। इनको मानना, इज्ज़त देना। यह अपनी इज्ज़त है। अगर कोई अपने से बड़ी है माई, तो उसे मन में आदर देना चाहिए, और उसे माता के समान आदर देना चाहिए। अगर हमारे बराबर की हैं, तो उन्हें भी प्रणाम करना चाहिए। और जो छोटी हैं, उन्हें बेटी जैसा मानना चाहिए, और उन्हें भी प्रणाम करना चाहिए। ये सब करने से साधक की काफी झंझट दूर हो जाती है। जो प्राकृतिक वायरलेस लगे हुए हैं, जो आदान–प्रदान हो रहा है। कुछ बुराइयाँ हो रही हैं, कुछ बुराइयों का परिणाम आने वाला है–उनसे निवृत्ति होती है। ऐसा करने से, उनसे निवृत्ति होती है।

जो मुझसे बड़ी है मेरी मां है, जो मेरी बराबर की है, मेरी बहन है, जो छोटी है मेरी बेटी है। माइयों के प्रति ऐसा भाव आवे–अगर आता है तो। और नहीं, एक अपने इष्ट को सबमें देखो। इष्ट को ही देखो। इष्ट में सबको देखो। इसके अलावा और कुछ देखने में आवे न। बस उसी को देखते रहो। हम स्त्री को क्यों देखें? अगर कोई स्त्री दिखाई पड़ी, तो हम स्त्री क्यों देखें? हम अपने गुरू को न पकड़ लें? एकदम बदल क्यों नहीं देते? हर एक में अपने

इष्ट देव के स्वरूप को धारण करते हुए आगे बढ़ें। हर चीज़ में बदल दें। अगर ज़रूरत पड़े तो। और नहीं, तो स्थान तो निर्धारित ही है। और वह हृदय, ऐसी जगह है कि,

''देखते–देखते क्या से क्या हो गया। और खुद ही बन्दे से–खुदा हो गया।''

राजयोगी जो है–अनुशासन कर लिया जिसने योग के ऊपर, उसको यह पद प्राप्त होता है। सब नहीं पाते हैं। महात्मा तो अनेक होते हैं–लेकिन वे सब ये बातें नहीं जानते। ये सब मामले क्या हैं, कि– साधना करके चढ़ता चला गया। सीढ़ी बाई सीढ़ी चढ़ता चला गया। एक तरीका। एक आंख बंद करके सीधे चढ़ाई के ऊपर पहुँचा दिया, दूसरा तरीका। एक तरीका है कि एक नीति को पकड़ लिया और उसी में रह गए, बस कोई मतलब नहीं।

तीसरा तरीका। और कुछ ऐसे करते हैं, वैसे करते हैं। ये उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड। ऐसे कई हैं, एक ज्ञानी होते हैं, एक कर्मकाण्डी होते हैं, एक भगत होते हैं। और एक योगी होते हैं। ऐसे ये चार होते हैं। इनमें योगी श्रेष्ठ माना जाता है। गीता में कृष्ण कहतें हैं–''तस्मात् योगी भवार्जुन–इसलिए अर्जुन तुम योगी बनो। ज्ञानियों से योगी श्रेष्ठ है, तपस्वियों से योगी श्रेष्ठ है, कर्मकाण्डियों से योगी श्रेष्ठ है और भक्तों से योगी श्रेष्ठ है। क्योंकि योगी तीनों कालों को देखने वाला होता है, वह समझता है। पीछे क्या था, आगे क्या होगा।

''तुम त्रिकाल दर्शी मुनिनाथा।
विश्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा।।''

भगवान बाल्मीकि से कहते हैं, कि आप सब कुछ जानते हैं। और दूसरे के लिए ये शब्द नहीं कहे। जो तीनों कालों को जानते हैं, उनके लिए कहा। योगी के लिए। यह ऐसा है कि अन्तःकरण को पवित्र बनाकर हमने मणि बना ली, पारस मणि, और फिर इसको जहां जहां छुवाएंगे ठीक करती जायगी। तो वो संयम रूपी मणि। ऐसे ढंग से उसमें क्रियाएं होती हैं–समाधि पाद, साधन पाद, विभूतिपाद और कैवल्य पाद। ऐसा है। समझे। कैवल्य पाद सबसे आगे है। कैवल्य एण्ड है। कैवल्य पद, कैवल्य समाधि और कैवल्य सुप्रीम डिग्री। ये सब योगी की अनुभूतियां हैं। इसके पहले विभूतिपाद होता है। विभूतिपाद में ये सब विभूतियाँ आती हैं, योग्यताएं आती हैं, डिग्रियाँ आती हैं। टाइटल आते हैं। क्या–क्या, विभूतियाँ हैं, सब आएंगी। और उसके पहले साधन, और उसके पहले समाधि। तो यहाँ यह प्रश्न होता है कि समाधि पहले कैसे आ गई? इसे तो सबसे बाद में आना चाहिए। लेकिन समाधि न आएगी, तो ये जो डिग्रियाँ हमें मिलने वाली हैं, ये मिलेंगी ही नहीं। समाधि मतलब सम के आदी–हम तभी बन सकते हैं, जब ये बाधाएं जो लगी हैं–दूर हो जायें। जो ये कल्पनाएं बनती हैं इच्छाएं बनती हैं–दूर हो जायें। जब इच्छा नहीं रहेगी, तो समत्व आएगा। कंपन न रहे, तो सम हो। कंपन है, इच्छा। इच्छा बन्द हो गई, तो फिर साधन शुरू हो गया। और अगर इच्छा बंद नहीं हुई, तो साधन नहीं माना जायगा। साधन के हिसाब से नहीं माना जायगा–वैसे तो भगवान भावप्रिय होते हैं। तो भाव अनुसार होता ही है। लेकिन जब हमारे (मन में) तरंग न उठे। तरंग इच्छा है। इच्छा न उठे। और गलतियों की माफी हो जाती है। लेकिन इच्छा मूल कारण है। खराबी का मूल है। इसलिए बड़े–बड़े संतों ने यही कहा है कि–

''इच्छइ काया इच्छइ माया, इच्छइ जग उपजाया।''

तो "मनै ज्ञान है, मनै ध्यान है, मन है पारिख बानी।
मनै लिए हम ज्ञान कुटत है, मोर मनुवै अंतर्यामी।।"

अब जो भी डिग्री सुशोभित करेगा, तो यह मन ही तो बताएगा कि अब मैं यहाँ पहुँच गया। और जब नीचे चला जायगा, तो भी मन ही बातएगा। इसलिए अगर यह कह दिया जाय कि मन ही हर चीज़ कार्यान्वित करेगा तो गलत नहीं होगा। हाँ यह बदलता चला जायेगा। लेबल में आएगा तो दूसरा रूप होगा। आखिर में जाएगा तो दूसरा रूप होगा। चाहे ऐसे कह दो। चाहे ऐसे कह दो, कि जब भगवान के पास पहुँच जायगा, तो खतम हो जायेगा। इस प्रकार कुछ भी कह लो। तो ये सब दारोमदार अन्तःकरण मन के ऊपर है। अगर यह नहीं सुधरता, तो चाहे उल्टे टंगे रहें–जैसे गोस्वामी जी कहते हैं–

"तरूकोटर में बसै विहंग, तरू काटिय मरै न जैसे।
साधन करिय विचार हीन, मन शुद्ध होय नहिं तैसे।।"

अगर कोई पोला पेड़ है, और उसमें सर्प घुस गया, तो पेड़ काटने से वह नहीं मरेगा। तो इस शरीर को जला दे। काट डाले, तो भगवान थोड़े मिलेंगे। वह मन तो मरेगा नहीं।

'साधन करिय विचार हीन मन शुद्ध होय नहिं तैसें'

अगर विचार नहीं किया जाता, साधना की सही लाइन अगर नहीं पकड़ी जाती, तब फिर यह मन कैसे शुद्ध होगा? तो इसे शुद्ध करने का तरीका है। ध्यान से सुनो।

एक सेठ थे। गांव के रहने वाले थे। बहुत धनी हो गए तो चले गए कलकत्ता, बम्बई। विलायत चले गए, अमेरिका चले गए। तमाम कारखाने–कारखाने, बहुत बड़ा बिजनेस बढ़ गया। तो सेठ की आदत थी, कभी कभी गांव में जाने की ऐसे ही गर्मियों में निकल जाय, कभी घूमने। गांव पहुँचे, तो वहां रहे दो–चार रोज। एक दिन सेठ जब गांव के बाहर, मैदान गए। शाम को थोड़ा अंधेरा हो रहा था। जब लौटने लगे, तो एक पीपल के पेड़ से आवाज आयी–सेठ हमे नौकर रखोगे। तो सेठ ने सोचा कौन है। सेठ लोगों को, पैसा वालों को, डर बहुत लगता है। तो सेठ बढ़ा कुछ दूर, डर के मारे। जब लम्बा कदम रखा, तो फिर आवाज आई–सेठ डरो नहीं। तो सेठ रुका, और पूछा कि तुम कौन हो। उसने कहा मैं भूत हूँ। भूत सुना तो और डर गया। भूत बड़ा भयानक होता है लोगों में। तो फिर कदम बढ़ाया। तो फिर कहा, अरे रुको–रुको भाई। सेठ ने कहा, आखिर तुम क्या कहना चाहते हो। उसने कहा, मैं तुम्हारे यहां नौकरी करना चाहता हूँ। पूछा क्या नौकरी करोगे? तो कहा सब काम करूँगा, दिन रात चौबीस घंटे काम करने वाला हूँ। सेठ ने कहा, तनखा क्या लोगे? उसने कहा मुझे तनखा नहीं चाहिए। मेरे शरीर ही नहीं तो खाना–कपड़ा क्या करना है? तो फिर क्या लोगे? भूत ने कहा, कुछ नहीं लूँगा। लेकिन शर्त यह है, कि अगर तुम मुझे काम नहीं बताओगे, तो मैं तुम्हें खा डालूंगा। सेठ ने सोचा, जब हमारे पास इतने कारखाने हैं, इतना काम है, तो यह क्यों खालेगा। काम से फुरसत ही न पाएगा। कितना काम करेगा। लाखों आदमियों के बराबर भी करेगा, तो मेरे पास काम है। तो सेठ ने कहा अच्छा ठीक है। चलो, लगो काम में। वह आ गया। पूछा–काम बताइए। सेठ ने बताया, उस कारखाने में जाओ–यह काम करके आओ। इधर उसने कहा नहीं, कि उसने किया नहीं। फट करके आ गया। तब सेठ ने दूसरा बताया, तीसरा काम बताया। वह एक सेकेण्ड में करके आ जाय। और कहे कि, काम बताओ, नहीं तो मैं तुम्हें खाता हूँ। तो सेठ परेशान हो गया। बीमार हो गया। बहुत बुरी

हालत हो गई। इतने में एक महात्मा सन्यासी, वहाँ से जा रहे थे। सेठ ने सोचा, हो सकता है, यह महात्मा कुछ युक्ति बतावें। तो दौड़ के गए। उनके गोड़े गिरे और सब वृतान्त शुरू से बता दिया। तो महात्मा ने कहा, अच्छा तुम उस भूत को यहाँ मेरे पास बुला सकते हो? बोला हाँ। तो कहा बुलाओ उसे। सेठ ने बुलाया—भूत यहाँ आओ—आ गया। तो महात्मा ने कहा अच्छा जाओ एक बांस ले आओ—बांस यहाँ गाड़ दो। गाड़ दिया। महात्मा ने कहा—भूत इस बांस में चढ़ो और उतरो। और सेठ से कहा जाओ अब अपनी सेठानी के पास जाओ, और शुद्ध घी के पराठे खाओ और मस्त रहो। अब तुम्हारे पास यह नहीं आएगा। और जब तुम्हारे पास काम हो, तो इससे काम कराओ, और फिर कह दो—जाओ, चढ़ो—उतरो। बस चढ़ता—उतरता रहेगा। तो भैया, यह एक उदाहरण है। यह सेठ जो है, साधक है। और यह मन भूत है। मनुष्य ने इसको अनादि काल से रख लिया है। तो यह इतनी गति वाला है, इतनी इसकी स्पीड है, कि इसकी स्पीड में यह सेठ रूपी शरीर व्यर्थ खतम हुआ चला जा रहा है। इस मरज को छुड़ाने के लिए अगर कोई सतगुरू रूपी सन्यासी मिल जाय, और वो बता दें, कि बांस गाड़ दो। जो सब में बसा हुआ है, वह श्वांसा। श्वांसा का बांस गाड़ दे। और मन रूपी भूत को इसी में चढ़ाए और उतारे। चढ़ाए और उतारे।

'निरंजन माला घट में फिरै दिन रात।''

बस इस निरंजन माला में रा—म, रा—म, जपा करे। अब भूत को सेठ के पास न आना पड़ेगा। और जब सेठ को ज़रूरत हो बुला—ले जाप बंद करो—यह काम करो। सेवा करो। फिर लगा दो। इस प्रकार अगर यह मन रूपी भूत, और ये जो सबमें बसा हुआ है यह बासुदेव रूपी श्वांसा, अगर गुरू से समझ ले। और इस मन रूपी भूत को इसी में लगा दे। तो साधक रूपी सेठ का, इस भूत के जाल से हमेशा के लिए बचाव हो सकता है।

- **उल्टा नाम जपा जग जाना**
- **यह प्रसंग जानै कोउ–कोऊ**
- **सोइ छल हनूमान सन कीन्हा**
- **सच्चा साफ अमीरी रस्ता**

मन चिंतवन करता है, संकल्प विकल्प करता है, इसमें इनर्जी खर्च होती है। और जब श्वासा में लगेगा–ओ–म, ओ–म, ओ–म तो चिंतवन बंद रहेगा। इनर्जी खर्च नहीं होगी। जो इनर्जी बनेगी वह रिज़र्व होती जायगी। और जब ज़्यादा हो जायगी, तो ताकत के रूप में इकट्ठी हो जायगी। उससे हम कुछ भी काम ले सकते हैं। उससे भजन कर सकते हैं। युद्ध कर सकते हैं। साधन कर सकते हैं शत्रुओं से लड़ सकते हैं इसलिए शक्ति रहना चाहिए। ऐसा नहीं कि इसमें उसमें खर्च किया। श्वासा में मन को लगाओ, और उसमें खड़ा करो। श्वासा में नाम को सुने। इसका नाम है, अजपा–यह जपा नहीं जाता। जो जपा न जाय। अपने से हो रहा है, आटोमैटिक। उसका नाम है–जप का उलटा अजपा।

"उलटा नाम जपत जग जाना।
बाल्मीकि भए ब्रह्म समाना।।"

इसी तरह जपा था बाल्मीकि ने। बाल्मीकि पहले डाकू था। जो सामान लूटता था, अपने घरवालों को देता था। एक मर्तबा महात्मा लोग जा रहे थे। तो बाल्मीकि ने देखा और डांटा–ऐ। यह लोटिया–डोर जो भी है, रखो। तो महात्मा जो होते हैं, निर्भय होते हैं। उन्हें किसी का डर नहीं होता। तो बोले क्या बात है भाई? उसने फिर डांटा–अभी बात करता है, मारूंगा मर जाएगा अभी। रखो सब। तो वो बोले–अरे क्या हुआ भाई, क्यों रख दें–इधर आ। क्या इस लोटिया डोर से तेरी जन्म भर की कंगाली दूर हो जायगी? ये चदरी–कपड़े लेने से तेरी कंगाली दूर हो जायगी? उसने फिर डांट कर कहा, कैसी बात करते हो? उन्होंने कहा–हम ठीक बात करते हैं। हमारे पास बड़ा सोना है। ऐसी युक्ति है, कि इस पहाड़ को छू दें तो सोना बन जायगा। तुझे तो लूटना भी नहीं आता। लूटना आता हो तो असली चीज़ लूट। वह चकाचौंध हो गया, कि मैं जिसे डांटता हूँ वह सब समान छोड़कर भाग जाता है, और ये कैसे बाबा हैं। फटीचर कम्पनी। ये तो डरते ही नहीं। तो जानते हो, डाकू लालची होते हैं। बोला, बताओ कहाँ लिए हो सोना। तो कहा हम लिए नहीं हैं–जहाँ हम खड़े हैं, यहाँ सोना ही सोना गड़ा है। हमारी ये उंगलियाँ हैं न, जहाँ छू दें सोना ही सोना हो जायगा। तुम अच्छे आदमियों से भेंट कर लिये। अच्छे साहूकार, तुम्हें मिल गए हैं–लूटो कितना लूटना है। तो कहा–बताइए। अब लाइन में आ गया। तो जब दो आदमी मिलते हैं, तो वनथर्ड एक दूसरे की जानकारी आ जाती है, और जब वार्तालाप होता है, डिस्कसन होता है, तो टूथर्ड आ जाती है। तो अब उस पर प्रेशर आ गया–एक तो महापुरुषों की वाणी। बहुत वजनदार होती है, वेट रहता है, प्रेशर रहता है। तो उसका अहं थोड़ा डोला और पूछने लगा–कि आप लोग कौन हैं, यह बताइए। तो बोले–हम होंगे जो होंगे, तुम्हें जो करना है, वह करो। और यह जो लूट–लूट कर यह पाप करता है, इसे कहाँ ले जायगा? दुनिया में आदमी पैदा होता है, तो नंगा ही पैदा होता है। खाली हाथ आता है। खाली हाथ जाता है, यह सब यहीं छोड़कर। यह क्या रच दिया है, दुनिया में आदमी ने? थोड़ी देर के लिए, यहाँ आना पड़ा, तो यह क्या माया रच दिया है? तो महात्मा लोग आसन लगाकर बैठ गए और बोले, कि जाओ अपनी स्त्री से पूछो–माता से पूछो, परिवार के सब लोगों से पूछो कि यह जो धन मैं लूट–लूट कर लाता हूँ। अत्याचार करके लाता हूँ। उसका

जो पाप होगा, पश्चाताप होगा उसमें तुम लोग हिस्सा बटाओगे? जाओ, हम यहीं बैठे हैं। हम जाएंगे नहीं। पूछकर आओ, हम तुम्हारा निर्णय करके ही जाएंगे। तो वह गया, माता–पिता से पूछा–तो कहे, भाई, यह तुम्हारा कर्तव्य है, किसी ढंग से लाओ, हम क्या जानें। हमारी सेवा करना तुम्हारा धर्म है। पाप से लाओगे, तो पाप भोगोगे। कमाई से लाओगे, तो पुण्य भोगोगे। हम तो उसमें शामिल हैं नहीं। पत्नी से पूछा, उसने भी कह दिया। तो लगा एक चपका। थोड़ा मिजाज लाइन में आया। महात्मा लोग मर्मज्ञ होते हैं। जब किसी को सुधारना होता है, तो उसकी वैसी गतिविधि बन जाती है। और वैसी शैली बन जाती है। आया लौटकर, चुपचाप बैठ गया। बोला, उन लोगों ने तो सबने जवाब दे दिया, कि हम नहीं जानते। मैंने तो बहुत पाप किया है। हजारों लोगों को लूटा है, मारा है, परेशान किया है और ये सब करके जिन्हें मैं देता था वे सब मुमानियत करते हैं, कि हमसे क्या मतलब। तुम जैसे करके लाओगे, वैसे भोगोगे। तुम्हारा धर्म है, हमारी सेवा करना। तो फिर मैं क्या करूं? तो बदल गई दुनिया। तो फिर मेरा उद्धार कैसे हो? तो बोले, राम राम, ओम ओम कहो, न खाओ न पियो, बैठे रहो रात–दिन। तो उसने कहा, मैं राम राम तो नहीं कह सकता। मैं मरा–मरा कह सकता हूँ। यही मैं करता था, यही कह सकता हूँ। तो बोले तुम जो भी कहो, कन्टीन्यू कहते रहो। तार न टूटे। और बस नाम जपो फिर हम लोग आएंगे, तुमको देखेंगे। एक युग के बाद आएंगे। मान लो बारह साल का युग होता है। 12 साल बाद आएंगे। फिर तुमको देखेंगे। तो बैठ गया। मरा, मरा, मरा तो घूम के राम राम आ जाता है। जपते–जपते उसकी धुन लग गई। दीमक लग गई, बांबी बनगई। फिर भी उसमें गुनगुनाहट आती रही। फिर वह भी बन्द हो गई। बैखरी से शुरू किया था। कंठ में आ गई, मध्यमा बन गई, फिर पश्यंती में आ गई। अब श्वासा से जपने लगा, फिर वही परा में बदल गई। जब परा में पहुंच गया तो बस मन खड़ा हो गया। बदलते बदलते परावाणी में पहुंच गया, आटोमैटिक हो गया। इधर से क्षमा, दया, कृपा ये सब धाराएं गईं। ध्यान, नाम, समर्पण, प्रार्थना ये चारों जाकर चरण में लीन हो गईं। क्रिया में साधक चलते–चलते लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। और ग्रेविटी से निकल कर आटोमैटिक क्रिया हो गई। स्वाभाविक गुण आ गया। और अन्वय व्यतिरेक युक्ति द्वारा चेतन का प्रतिबिम्ब मिल गया। लगे–लगे एक तानता मिल गयी। ध्येय, ध्याता और ध्यान तीनों एक हो गए। तो एक तानता में अनुगत, अन्वय व्यतिरेक, युक्ति से चेतन की मदद मिल गई। जब चेतन की मदद मिल गई तो उसका रूपांतर हो गया। और रूपांतर होकर वह आटोमैटिक में बदल गया। स्वाभाविक जाप होने लगा। अजपा होने लगा। जपना न पड़े और जप होता रहे। तो– कहना तो यह चाहिए कि–

"अजपा नाम जपत जग जाना।
बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।।"

लेकिन गोस्वामी जी की शैली अपने ढंग की है। वह चाहते हैं कि बाहरी बात हम कह दें, और उसमें गहराई की बात भी छिपी रहे। समझने वाले समझ जायें और न समझने वाले न समझें। जो योग्य हैं, समझें। और जो अयोग्य हैं, वह न समझें। इस तरीके से उन्होंने यह उचित समझा कि–उलटा नाम जपा जग जाना। बाल्मीकि भए ब्रह्म समाना।। सीधा न करके उल्टा। तो सीधा का उल्टा, उल्टा और उल्टा का उल्टा सीधा। जप का उल्टा अजप और अजप का उल्टा जप। तो अगर सीधा वो लिख देते कि 'अजपा नाम जपा जग जाना।' तो सब लोग समझ जाते कि यह भी कोई योग की प्रक्रिया है। ऋषियों ने उसे ये प्रक्रिया बताई होगी। साधना करने का तरीका बताया होगा। तो ऐसा न करके उन्होंने उलटा लिखा।

लेकिन बात जहां की तहां एक ही है। चाहे सीधा कहो या जप कहो। चाहे उल्टा कहो या अजपा कहो। बात एक ही है।

इसलिए––''अजपा नाम जपा जग जाना।
बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।।''

यही अजपा है, उल्टा नाम का जपना। इसे ही किया था बाल्मीकि ने। तो यह अजपा का जो विषय है, यह श्वासा की गति विधि से पकड़ में आता है। यह श्वासा, वासुकी सर्प के समान है। यह शरीर समुद्र के समान है। और कच्छप कुंडलिनी के समान है। और ये दैत्य और देवता इसको खींचने वाले हैं। अंदर समुद्र मंथन होगा। और जब इसका मंथन होगा, तो इसमें चौदह अध्यात्म, निकलते हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, मन बुधि, चित, अहंकार चार अंतःकरण। ये चौदह अध्यात्म हैं। इनमें 14 अधिभूत और 14 अधिदैव, इन्हें मिलाकर 42 तत्वों की जागृत अवस्था है। इसी का रिएक्शन स्वप्न अवस्था है। और इन दोनों के अपोजिट सुषुप्ति अवस्था है, जब ध्यान में पहुंच जाता है और तीनों अवस्थाओं में एक हो जाती है तो वह तुरीया अवस्था है। और उसका भी जब त्याग कर देता है तो तुर्यातीत हो जाता है। फिर साधक सर्कुलेशन के बाहर हो जाता है। फिर वह साधक राइज हो जाता है, उठ जाता है। इस तरीके से बस श्वासा का काम है–जपना। जब तक तुम मन को खड़ा करके, सुनने की क्षमता नहीं रखते हो, तब तक हर श्वास में जाप करो। ओ–म, ओ–म। बाद में जपना नहीं पड़ेगा। देखते रहो श्वासा कहाँ आती है कहाँ जाती है ? कैसी आती है, क्या कहती है ? यह अपने आप बता देगी। जब–

'रिनिक धिनिकध्वनि अपने से उठै।'

तब फिर, 'अब तो अजपा जप मन मेरे।'

इसके जपने की विधि अगर जा जाय, तो इससे बड़ा कोई जाप नहीं है। इससे अच्छा शुद्ध तरीका मुक्ति पाने का, ईश्वर को पाने का, दूसरा कोई नहीं है। सबसे उच्च कोटि की चीज़ है। और इससे ही फिर आदमी

ग्रेविटी पार करके आटोमैटिक बन जाता है। स्वाभाविक जाप होने लगता है। तुम सोओ तब भी जाप बन्द नहीं होगा। तुम चलो तब भी जाप होता रहेगा। तुम खाना खाओ तब भी जाप होता रहेगा। तुम रो रहे हो तब भी जाप बंद नहीं होगा। तुम हंस रहे हो तब भी जाप बंद नहीं होगा। वह गति आ जाती है। और यह सबसे उच्च कोटि की गति है। जीवन–मुक्त गति है।

''बिनुपग चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनुकरम करै विधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी वक्ता बड़ जोगी।''

यह गति बन जाती है। अगर यह श्वासा खड़ी हो जाय, तो उसका रूपांतर हो जाता है। इस तरीके से। इसका (श्वासा जप का) काम केवल क्या है ? यह कुंडलिनियों को जागृत करती है। कुंडलिनियों में क्या है ? कुंडलिनियों में हार्मोन्स हैं। जीवन तत्व हैं। अलौकिक तत्व हैं। नाभि कमल में कुंडलिनी है–सर्पिणी है। इसमें विष्णु और लक्ष्मी का निवास है। यह अनाहत की कुंडलिनी हृदय है, इसमें शंकर और पार्वती का निवास है। और

ये कंठकूप कुंडलिनी है, विशुद्ध जिसे कहते हैं। इसमें ब्रह्मा और सरस्वती काम करेगी। समय पर सब काम करेंगे। उसको गरज किसी की नहीं है। उसका स्वरूप क्या है–

'अनपेक्षः शुचिर्दक्षः

इच्छा रहित। और फिर भी ये सब लाजमी आकर पड़े रहते हैं।

तवन घर चेतौ रे भाई।
तेरा आवागमन मिट जाई।

जहाँ ये सब पहरा देते हैं, ड्यूटी बजाते हैं। वह घर देखना चाहिए। यह अलौकिक तरीका है। इसका केवल एक ही तरीका है। और वह है जाप। अगर नहीं अभ्यस्त हैं, तो भी लगा रहना चाहिए। चाहे रा–म, रा–म जपो चाहे ओ–म, ओ–म जपो। चाहे, सोहं सोहं, चाहे कुछ भी जपो। जिसमें तुम्हारी रुचि हो जाय। जन्म जन्मांतर से जो हमारी कुंडलिनियां अधोगति को हो गई हैं, और जो अन्तःकरण में जन्म जन्मांतर से गलत चिंतवन कर डाला है। ये सब बजाय हमको ताकत देने के, सब जहर दे रहे हैं। ये उल्टा हो गये हैं। और इनके वो मुंह खुल गए हैं जो अपोजिट हैं। क्या खुल गए हैं? सत रज तम गुण, प्रकृति, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, आशा तृष्णा, ये खुल गए हैं। इन्हें बंद करना है। इनको खतम करना है। और ज्ञान, वैराग्य, शान्ति, संतोष, क्षमा, दया इन सद्गुणों को लाना है। इनको खोजना है। तब फिर यह वाणी जब सही कुण्डलिनियों से जागृत होगी और जब सही समसुरा संबंधित अनुभव लेगी। और प्राण अपान, ब्यान, समान और उदान इन पांचों को जब सही संतुलन बनाएगी, तब इसमें ताकत आएगी। ओर जब ताकत आएगी, तो फिर कुंडलिनियाँ जगेंगी। और जब कुंडलिनियाँ जगेंगी, तो इसे बैकुण्ठ कहा जायगा। बैकुण्ठ दरबार लगेगा। इंद्रियाँ, रिद्धि–सिद्धि बन जायेंगी, कृष्ण–आत्मा, ब्रह्मज्ञान, ब्रज बन जायेगा। मन, मथुरा बन जाएगा। अमृत की वर्षा, बरसाना हो जायगा। वहां राकी धारा राधा मिल जायेगी–श्वासा में श्वासा के जाप की। तो ये जप करने से, कुंडलिनियाँ जगेंगी। कुंडलिनियाँ जगेंगी, तो इनर्जी मिलेगी। इनर्जी मिलेगी तो, सब परिणाम मिलने लगेंगे। और शान्ति का साम्राज्य आ जायगा।

'राम राज नभगेश सुनु सचराचर जग मांहि।
काल कर्म स्वभाव गुन कृत दुख काहुहिं नांहि।

काल कर्म स्वभाव और गुण चले जाएंगे। तो अगर बाहर का राम राज्य होता तो यह दुनिया काल कर्म स्वभाव गुण के बगैर कैसे रह जायगी। काल खतम हो जायगा हमको समय का ज्ञान नहीं होगा। कर्म खतम हो जायगा तो सब पत्थर हो जायेंगे जड़वत, स्तम्भ हो जायेंगे। यह हरकत कर्म से ही होती है। काल, कर्म, स्वभाव और गुण इन्हीं से तो संसार है। ये न रह जायेंगे, तो दुनिया कैसे रहेगी ? काल कर्म सुभाव गुण जब ये चारों चीज़ें जीवन्त रहें तब दुनिया रहेगी।

'काल कर्म सुभाव गुन घेरे।
फिरत सदा माया के प्रेरे।।

दुनिया में ये रहेंगे। हाँ, तो ऐसा राम राज्य जिसमें काल, कर्म नहीं रह जाते वह किसी साधक के हृदय में आता है। यह फलाप्ति है। साधना का परिणाम है। स्वानुभूति है।

काल, कर्म, स्वभाव, गुण

इनको जो खतम कर दे, वह प्रभु है। जीवत्व खतम हो जाय। एक आदमी के हृदय में होती है, यह क्रिया। इसीलिए कहते हैं, राम राज में काल कर्म सुभाव गुण नहीं था–तो

जिसके हृदय में राम राज हो जायेगा। उसके हृदय में ये सब नहीं रहेंगे। फिर राम राज्य ही राम राज्य रह जायेगा वहाँ। सबमें नहीं हो सकता। उनमें होता है जो अन्दर ट्रांसफार्म करते जाते हैं। बाहरी चीज़ को अन्दर ले जाने का प्रयास करते हैं। अगर ऐसा होता तो गोस्वामी जी लिख देते कि सब जानते हैं–लेकिन लिखा–

'यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ।।'

कोई–कोई जानता है। सब नहीं जान सकते। अवध क्या है? एक अवध और है अन्दर। हाथी के दांत दिखाने के अलग, खाने के अलग। बाहरी दांतों के भरोसे तो मर जाएगा, वो खाने के दांत अन्दर होते हैं। इसी तरह हर चीज़ के दो रूप रहते हैं। एक दुनिया वालों के लिए, एक महात्माओं के लिए। जैसे राम एक राजा का लड़का था, और भगवान भी हुआ। अब सुप्रीम कोर्ट में कोई फैसला होता है, तो किसी मामले में जब कोई सीनियर वकील जज के सामने बहस करता है, तो सुप्रीम कोर्ट के फैसले की नज़ीर रखता है। तो राम, राजा दशरथ का लड़का अगर भगवान हो सकता है, तो किसी का भी लड़का भगवान हो सकता है। एक नज़ीर पास हो गई। तो ऐसे क्या सबके लड़का भगवान हो जाएंगे? अब तुमसे पूछें कि तुम भगवान हो? तो कीं–पीं करोगे। कहोगे नहीं, भगवान तो भगवान होते हैं।

एक थे महात्मा, तो दिन भर ब्रह्मज्ञान बताया करें। तो पंडित लोग परेशान हो गए कि कहां का कपरफोर आ गया है कि ब्रह्म ज्ञान बताता है। हमारा कर्मकांड नहीं बताता। हमारी जजमानी फेल हुई जा रही है। और इसके ब्रह्म ज्ञान के मारे हमारा सब कर्मकाण्ड फेल हुआ जा रहा है। तो कहे, चलो झगड़ा किया जाय। तो आए दो चार लोग। बाबा ने कहा कि एक ब्रह्म है। वे बोले, कि यह बताने वाला तो अलग हो गया। तो क्या बता रहे हो? तो बाबा ने कहा, कि हां भाई हमारा दिमाग फिर गया है। ये सिर के बाल बढ़ गए हैं। तो ऐसा करो कि एक नाऊ बुला लो तो फिर हम आपसे बात कर सकते हैं, अभी हमें गर्मी लग रही है। नाऊ बुलाए। बाल बनाए। तो बाबा ने कहा, नाऊ यार! तू तो भगवान है। बड़ा भारी काम कर दिया तुमने। तो नाऊ ने कहा अरे! नहीं महराज मैं भगवान नहीं हूं, मैं तो जीव हूँ मैं भगवान कैसे हो सकता हूँ? तो महात्मा ने पंडित से कहा–कि पंडित, जी देखो जो झगड़ा तुम हमसे मचाए हो कि हम अलग और भगवान अलग। तो यह बात तो यह नाऊ भी जानता है, कि मैं जीव हूँ, भगवान नहीं हूँ। न पढ़ा न लिखा, गरीब, गंवार आदमी। बुद्धि का ठिकाना नहीं है, तो भी जानता है कि मैं अलग हूँ और भगवान अलग है। और जो तुम पढ़े लिखे आदमी इस तरह की बात करते हो–यह कितनी अज्ञानता है। दुनिया द्वैत तो है ही। अब द्वैत में अद्वैत दिखाओ, अगर बहादुर हो। अगर सिद्धान्त तुम्हारी समझ में आ गया है, तो द्वैत में अद्वैत दिखाओ। तो प्रणाम करके चले आए–अब बात करने की जगह नहीं रह गई। तो इस तरीके से जाप करना चाहिए और उत्तरोत्तर बढ़ते जाना चाहिए। बढ़ते बढ़ते फिर जो यह कृतिम साधना है, उसे आटोमैटिक बना देना चाहिए।

यह पश्यंती का जाप जो है–मन को खड़ा कर देता है और ये श्वासा की आवाज ऊपर जाती है–नीचे जाती है–इसको सुनना है। बस इसको देखते रहो–पश्यंती का मतलब यही है। पश्य नाम देखने का है। और बस देखते देखते हमें लक्ष्य तक पहुँचा दे। जहाँ हमें पहुँचना था वहाँ हम पहुँच जायें। और हमारा ट्रांसफार्म हो जाय, रूपांतर हो जाय। और हम पश्यंती से परा में बदल जायें। परा आटोमैटिक होती है। पश्यंती में देखना पड़ता है, समझना पड़ता है, सहारा देना पड़ता है और उसमें देखने की भी ज़रूरत नहीं है। कुछ भी करो न करो जाप होता रहता है–उसको कहते हैं–परा, अजपा। और तीनों बाणियों से जप किया जाता है। और जप का उल्टा है अजपा। तो यह अजपा आएगा कब? कि पश्यंती वाणी का

कर्जा चुकेगा तब। हमने कितना कर्जा किसका खा रखा है। बैखरी मध्यमा से करना पड़ेगा। उसी के साथ साथ मेडीटेशन भी चलेगा। उसी के साथ साथ जप भी चलेगा। उसी के साथ–साथ प्रार्थना भी चलेगी, उसी के साथ–साथ क्षमा याचना भी चलेगी। तो साधक चहुंमुखी प्रगति जब करता है, तब चहुंमुखी साधना भी चलती है। चित्त चिन्तवन करता है, मन संकल्प करता है, बुद्धि निश्चय करती है कि ऐसा करो और अहंकार ठोक लगाता रहता है कि हाँ ऐसा ही है। जब ये चारों अन्तःकरण बेइमानी में लगे रहते हैं तो इनको सुलझाना है, इनको ठीक करना पड़ेगा। इनके अपोजिट करना पड़ेगा। उसी का नाम साधना है। तो ये मूलतः चार प्रकार की वाणियां होती हैं–बैखरी, मध्यमा, पश्यंती और परा।

तीन वाणियों का जप अपने से किया जाता है, तब होता है। साधक स्वयं करता है। और जो परा वाणी का जप है अजपा, वह अपने आप होता है–आटोमैटिक। वह किया नहीं जाता। वह तो तुम सोते हुए कर रहे हो। जब तक तुम्हारी श्वासा चलती है, तब तक जाप हो रहा है–कंटीन्यू। ऐसी कंडीशन अंतर्जगत में एडजस्ट हो जाती हैं और अंतर्जगत से उसकी पुष्टि हो जाती है, कम्युनिकेशन हो जाता है उसमें मोहर लग जाती है, कि आज से तुम कन्टीन्यू हो गए। तुम परमानेन्ट हो गए। अब डाक्टरेट मिल गई तुम्हें। जब ऐसा हो जाता है, तब फिर वह अन्तर्जगत से उसी लेबल में आ जाता है। अजपा के लेबल की प्रार्थना क्या है, अजपा के लेबल की क्षमा याचना क्या है। पश्यंती में क्या थी–यह सब रूपान्तर हो जाता है। तो इस तरह से साधक भगवान का भजन करते, करते–करते। भगवान से प्रार्थना करते–करते, कि हे भगवान मुझे लेबल पर ले लो। मुझे निकाल लो इस जाल से, जो मैं काम के क्रोध के लोभ के मोह के चक्कर में फंस गया हूँ। इनको मार कर मुझे अपने संरक्षण में ले लो। चिल्लाते रहो, इसी का नाम भजन है, इसी का नाम प्रार्थना है, इसी का नाम मेडीटेशन है, इसी का नाम साधना है। यही भजन है। इसे करना पड़ेगा। और फिर करते करते करते भगवान जो है, जिसके ऊपर ही सब दारोमदार है। हम अपने को, अपने भजन को, अपनी प्रार्थना को, अपने मेडीटेशन को, अपनी साधना को, अपने अजपा जाप को जिसे देना चाहते हैं। वह जब कह दे, कि ठीक है, तुम इसे ले लो। बस, फिर ठीक हो गया। अब तुम ठीक हो, अब तुमको कोई दिक्कत नहीं होगी–जहाँ उसने कह दिया, तो फिर अजपा जाप शुरू हो जाएगा–होने लगेगा। फिर अनवरत हो जायेगा, आटोमैटिक हो जायेगा। फिर यह साधक, बालक बन जायेगा फिर वह–मुक्त किं लक्षणं निर्भयं–वह निर्भय हो जाता है। फिर उसे कोई चिन्ता नहीं रहती। वह अपने में मस्त रहता है। फिर उसे नशा बना रहता है। उसी नशे में मस्त घूमता रहता है। ऐसे ढंग से। पश्यंती में देखना होता है। पश्यंती वाणी का नाम ही देखना है–पश्यंती। इसमें नाम को देखना। लेकिन अजपा जो है–इनके नाम लेने से अजपा के बताने की शैली बन जाती है। अजपा बहुत उच्च कोटि की बात है–साधारण नहीं है। साधारण साधक इसे नहीं कर सकता। अजपा उसको मिलती है, जो अन्तर्जगत फकीरी पार्लियामेंट में एडमिट हो गया है। वो बड़े उच्च कोटि के साधक होते हैं। लेकिन जो बताने की शैली होती है, वह अलग होती है। अब बताने को प्राण वायु, अपान वायु, व्यान वायु, समान वायु, उदान वायु–बताने को तो बता दिया, लेकिन इनकी जो क्रियाएं होती हैं; वो अलग होती हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, महत्तत्व, प्रकृति, आत्मा अष्टधा मूल प्रकृति बताने को तो बता दिये। पांच ज्ञानेन्द्रियां पांच कर्मेन्द्रियां, चार–मन, बुद्धि चित्त, अहंकार–ये अन्तःकरण मिलाकर चौदह अध्यात्म हैं ये। इनके जो विषय हैं चौदह अधिभूत हैं–चौदह इसके अधिदैव हैं। इन चौदह की जो प्रणाली है, उसको जागृत अवस्था कहते हैं। जिसमें हम भान करते हैं। सब क्रियाएं करते हैं। और इसमें जो चेतन–प्रतिबिम्ब पड़ जाता है उसे स्वप्न कहते हैं। अपने में ध्यान के द्वारा जो जागृत और स्वप्न को समाहित

कर दे वह सुषुप्ति अवस्था है। और जब आकाशवत वृत्ति हो जाय, जागने पर भी आकाशवत बना रहे–सोने पर भी आकाशवत बना रहे वह तुरीया अवस्था है। जब थ्योरिटिकल कहते हैं तो इस तरह तुरीया में पहुँचा देते हैं, लेकिन उसका आनंद थोड़े मिलेगा (अनुभूति के बिना)। अब थाली में खीर रखा, मालपुआ रखा, लडुवा, जलेबी सब रख दिया, और उसमें हाथ न लगावें, खायें न, तो पेट भरेगा? तो बताते–बताते तो पहुँच गए। लेकिन वह बात तोजब स्वयं वहां पहुँचे, तब बनेगी। सारी बातें समझ लेने से जानकारी मिल जाती है, और अपने को तौलने का तरीका भी मिल जाता है, कि हम कहाँ हैं। किस स्तर पर यह शुभेच्छा, सुविचारणा, तनुमानसा, सत्वापक्ष, असंसक्ति, पदार्थ भावनी, कौन भूमिका में मेरी स्थिति है। यह समझ लेना चाहिए। इसलिए जब साधक कुछ भजन ध्यान में प्रगति कर लेता है, थोड़ा शान्ति प्राप्त कर लेता है। भगवान का कुछ कनेक्शन मिल जाता है–अपने माथे तो कुछ होता नहीं–इधर से भगत तो भगवान के लिए रोता ही रहता है। और रोने के अलावा कुछ ताकत होती तो ललकार न देते। वह तो माया से भी भगवान के लिए रोता है, कि मुझे भगवान की तरफ जाने दे, प्रार्थना में यही तो सब कुछ रहता है। तो यह माया से भी रो रहा है। लेकिन एक अवस्था ऐसी आती है साधना करते करते, कि भगवान का सहारा मिल जाता है। अभी तक इस काया रूपी किले में, ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, सब अधिकार किए पड़े हैं। तो अब इस अवस्था में साधक कह पाता है, कि भाई अब मुझे भगवान का सहारा मिल गया है–अब तुम मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। यह शुद्ध अहंकार अगर नहीं आया, तो फिर जोर मारना पड़ेगा–साधना करनी पड़ेगी और इसे लाना पड़ेगा। तो जिस साधक को, जिस संत को, साधन करते–करते यह योग्यता आई तो फिर–

'मैं तोहि अब जान्यो संसार।
बांधि न सकसि मोहि रघुपति के बल, प्रगट कपट आगार।
मैं तोहिं अब जान्यो संसार।'

अब तुलसीदास किस ढंग से कहता है ? तो जब बल मिल जाता है भगवान का, तो ललकार देता है–निकल भाग, नहीं तो तुम्हें नष्ट कर देंगे। अब भगवान की कृपा मेरे ऊपर हो गई है–निकल। मेरे यहाँ तेरा कोई काम नहीं है। यही कबीर भी कहता है–

'ठगिनिया क्या नैना चमकावै।
कबिरा तेरे हाथ न आवै।।

अब वह कहता है, कि माया तू मुझे क्या कला दिखाती है, मैं जानता हूँ। कि तू भगवान की राह में चलने वालों को किस तरह बहकाती है। मैं तेरी कला को जान गया हूँ। अब मैं तेरे हाथ नहीं आने वाला।

जिसके हृदय में भगवान का आवेश आ जाता है, उसके अंदर संसार को ललकारने की शक्ति आ जाती है। भगवान की भक्ति दो प्रकार से होती है–एक होती है रोते–रोते भक्ति। एक होती है वीटो मांग कर भक्ति। भगवान से शक्ति मांगो। शक्ति प्राप्त करो, फिर आगे बढ़ो। यह ऐसी भक्ति है। और एक दीन भाव से, भगवान से प्रार्थना करो, करुणा करो कि आप समर्थ हैं, मै दीन हीन हूँ। रोमांच करो, रोओ गाओ और जब सुनते–सुनते सुन लेंगे, तो फिर तुम्हें वहां से जो शक्ति मिलती है, ताकतवर शक्ति, तो उससे वीटो आ जायगा–विलपावर बन जायेगा।

जो साधना करने वाले साधक होते हैं। वो हमेशा शांति के पक्ष में रहते हैं। विषयात्मक बुद्धि उनके पास रहती नहीं, कि हम यह कर रहे हैं, तो यह पा जायें, यह बुद्धि उनके पास

रहती नहीं। यह करने से ये चीज आ जाय, ऐसा तो होता नहीं। अगर ऐसा हो जाय, तो परिपक्व हो जाय। फिर साधन की जरूरत न रह जाय। यही चीज को लाने के लिए तो साधना करता है। तो इस तरीके से यह साधना जो है इतना बारीक विषय है, इतना मालीक्यूल विषय है, कि पकड़ते पकड़ते फटकता जा रहा है। जिस मन बुद्धि चित्त अहंकार से दुनिया के सारे काम होते हैं, जानकारी की जाती है, पढ़ाई की जाती है, उस मन बुद्धि चित्त अहंकार को खतम करके उसके बाद जो कुछ रहता है—उसमें हमें चलना है। तो यह मेटाफिजिक्स ऐसा—वैसा नहीं है—सबका मूल कारण है। इसमें तो एक ही है कि जब तक अपने पास ईगो है, जब तक अपने पास करने की क्षमता है, यह जब तक समाहित न हो जायं, जब तक हमारा शरीर हमारा मन हमारा अंतःकरण सबकुछ अपना है। तब तक कुछ होता नहीं। जब हम आकाशवत हो जायं, न हम शरीर रह जायं, न हम अंतःकरण रह जायें, सब कुछ आप हो—जब ऐसा बन जायगा, तब भगवान हमें एक्सेप्ट करेगा। अपने में मिलाएंगे। और जब तक यह है कि अगर साधना छूट जाय तो फिर क्या होगा ? न इधर के रहे न उधर के। तो कैसे होगा ? यह तो तुम्हारे हाथ में है, यह दूसरे से थोड़े होगा। साधना करने वाले के, हमारे हाथ में है। इसके लिए मन में फोर्स होना चाहिए। तीव्र वेग होना चाहिए। बिना फोर्स लिये नहीं हो सकता। साधकों की चाल होती है। एक होती है पिपीलिका चाल, एक होती है मुनमुनिया चाल, एक होती है विहंगम चाल, एक होती है, पशु चाल। इस तरह चार पांच तरह की चालें हैं। तो हमें देखना चाहिए। कि साधना में हमारी गति क्या है? किस गति से चल रह हैं। अगर चींटी की चाल से चलेंगे, तो अनेक खतरे आ सकते हैं। क्योंकि आइटम ही ऐसा है ? अब आकाश में हम श्वासा लेते हैं। और आकाश में तमाम ऐसी संकल्प की तरंगे आती रहती हैं। जिसका हमने त्याग किया है, वह माता हमको याद करेगी, स्त्री याद करेगी, भाई याद करेगा, परिवार वाले याद करेंगे। उनका रिएक्शन हमारे दिमाग में आएगा। अगर इनको मारने की ताकत हमारे पास नहीं है। अगर सिंहिका को मारने की क्षमता हनुमान में नहीं है, तो परछाईं पकड़कर राक्षसी छल कर देगी। सुना है, रामायण में। पहले सुरसा मिली, उससे किसी तरह से छूटे, तो फिर सिंहिका मिल गई। समुद्र में बैठी, परछाईं पकड़ कर, खींच कर खा लेती थी।

"सोइ छल हनूमान सन कीन्हा।
तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा।।
ताहि मारि मारुतसुत बीरा।
वारिधि पार गयउ मति धीरा।।"

तो इस तरह से है। हम तो साधना में लगे हैं। भजन कर रहे हैं, और उधर कोई तुम्हारे प्रति विषय का संकल्प कर रहा है। तो वही है कि तुम्हारे में वह संकल्प रूपी परछाईं, पकड़ कर तुम्हें नष्ट करना चाहता है। तो अगर साधक में तीव्र वैराग्य नहीं है, हनुमान में क्षमता नहीं है, तो तुम्हें विषय रूपी पानी में घसीट कर खा लेगी—नष्ट कर देगी। इसलिए इसमें तो हमको हिम्मत बांधना है। यह तो साधक को करना है। जब हमारे अंदर तीव्र वैराग्य आएगा—हमारे अंदर स्पीड आएगी, तब निकल पाएंगे और धीमी चाल वाला साधक तो मार खाएगा। कहीं न कहीं कितना काटेंगे, कहाँ तक काटेंगे। और जो विहंग चाल है, जैसे चिड़िया यहाँ से उड़ी—वहाँ पहुँच गई। कोई खतरा नहीं। ये हायर लेबल की गति है। और मन की गति से चलने वाला उत्तम साधक कहलाता है। सबसे तीव्र गति वाला। दूसरा तरीका यह है, कि अगर तुम्हारे अन्दर अनुराग है, तो इस शरीर को रथ बनाओ, इन्द्रियों को घोड़े बनाओ, मन को लगाम बनाओ। और अपने इष्टदेव को बैठा दो इसमें। बागडोर दे दो

उसके हाथों में, और तुम इसमें सजग होकर बैठ जाओ। डाइरेक्ट हो गया–सीधे। और युद्ध करो। युद्ध करना ही तो है, साधना करना। भजन करना। युद्ध करना है। अब युद्ध कैसे करना है? दुर्गुणों को मार कर निकालना है, और सद्गुणों को लेना है–युद्ध करना है। भजन किसको कहते हैं ? भागे न विषयों की तरफ–भज–न। मन विषयों में न भागने पावे। साधना किसको कहते हैं। ये जो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इंद्रियां सब विषयों में भाग रहे हैं–इन्हें साध लेना, साधना है। कान हमारे भगवान का गुणगान सुने, नेत्र हमारे भगवान का रूप देखें, सिर हमारा भगवान के चरणों में झुके, मन हमारा भगवान का संकल्प करे, चित्त चिंतवन भगवान का करे। इस तरह से सब भगवान में लग जायं तो फिर हिम्मत खुलेगी। तो फिर सीढ़ी वाइज, आगे बढ़ते जाएंगे। पहली भूमिका में जब तुम पहुँचोगे दूसरी में, तीसरी में और चौथी में तब फिर सत्वापक्ष–सत् और असत् का निर्णय करने में सक्षम होंगे। सत् का ग्रहण कर लोगे, असत् का त्याग कर दोगे। और फिर जब पांचवीं भूमिका में पहुँचोगे, तो अनासक्त हो जाओगे। आसक्ति का नाश हो जायेगा। इसलिए असंसक्ति और फिर पदार्थ भावनी। जो ये पदार्थ दिखाई पड़ रहा है–ये कपड़ा न दिखाई दे, अपना इष्ट दिखाई दे। ऐसा रूप बन जाय, कि सब में अपना इष्ट ही दिखाई दे। हृदय में इष्ट का ध्यान करने को इसीलिए कहा जाता है, कि देखते–देखते ऐसा हो जायेगा। फिर हर जगह इष्ट ही दिखाई देगा। इस तरह ट्रान्सफार्म हो जाएगा तो–

'पहले यह मन सर्प था, करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुन चुन
खात।।'

जब मन विषयों में लगा रहता है तो सर्प का रूप रहता है। और फिर जब बदलकर भगवान में लग गया, तो गरुण का रूप ले लिया। गरुण का काम क्या है? गरुण का काम है भगवान विष्णु की सवारी बन जाता है। जहॉ जाएगा भगवान को लिए रहेगा।

बाहर से कोई भी तुम्हारे स्वरूप को पकड़ कर अगर कोई संकल्प करता है तो तुम कहीं भी हो, वह तुम्हारे पास पहुँचेगा–यह तरंगें हैं। बड़ी तीव्र गति से चलकर पहुँच जाते हैं। इनकी गति अबाध होती है। जैसे स्प्रिंग है, उसे दबा लो और फिर छोड़ दो, तो बहुत देर तक ऐसे–ऐसे करती है। राम बाण मारते थे रावण को, तो जितने बूंद खून गिरता था, उतने रावण बनकर लड़ने लग जाते थे। तो यह क्या है? अब जैसे एक संकल्प आ गया काम का, क्रोध का, मोह का, लोभ का, आशा का, तृष्णा का, विषय का, वासना का और तुमने कहा अच्छा ठीक है, कोई बात नहीं, आ जाओ। तो फिर वह फांसी लगा देगा। फिर हजारों मर्तबा आएगा। वह रावण, पचासों रावण बनकर तुमसे लड़ने लगेगा। पचासों काम रूपी मेघनाद लड़ने लगेंगे। फिर हम साधना का काम नहीं कर सकते। काम सबसे बलवान होता है। यह सब गोस्वामी जी ने कितनी अच्छी चार्ट दी है, साधकों के लिए। यह सब अपने लिए है–साधकों को इसे लेना चाहिए। हिम्मत बांध कर साधक को करना चाहिए। सबसे पहले तो आधार साधक को सोचना चाहिए। कि भाई इस शरीर में तो कोई दम नहीं है। इस संसार में आदमी नंगा पैदा होता है, चाहे अमीर के घर आए चाहे गरीब के घर आए। कोई कोट पैंट पहन कर आता नहीं? और जब जाएगा तो खाली जायेगा। अपने आप आता है और चला जाता है। कोई साथ जायेगा नहीं। तो अब यह रह गया, प्रेजेन्ट वाला मामला। तो प्रेजेन्ट में यह हमारा सोचने का विषय होना चाहिए, कि यह जो शरीर रूपी मोटर है, इसमें अनेक जन्मों का पुण्य रूपी पेट्रोल है, तो यह क्यों चल रही है? यह हृदय रूपी इंजन क्यों काम कर रहा है? ये ब्रेन रूपी बैटरी क्यों काम कर रही है? यह गाइड हमें क्यों मिल गया

है–हमने तो इसकी कल्पना नहीं की थी। यह ड्राइवर क्यों इसमें आकर बैठ गया है, शरीर रूपी मोटर में। तो यह सब पूर्व का किया हुआ है। कभी किया था पढ़ाई, अब फिर शुरू कर रहे हैं। अब एक आधार हमको मिल गया। यह ईश्वर की साधना रूपी मकान बनाने का आधार हमको मिल गया। और ईश्वर का दिया हुआ हमको जो यह मौका मिला है। यदि इसे हम फेंक दें। इसे हम न माने, तो उससे तो हमें कोई फायदा नहीं होगा। इसमें तो ऐसा नियम है, कि भगवान से खूब रोओ, गाओ। मीरा वाला सिद्धान्त। हम जब इसमें नहीं थे। हम खूब रोया करें, कि भगवान हमको बताओ कि हमको भजन करना है, कि नहीं। भजन करना है, तो चाहे गर्दन चली जाय, हम भजन करेंगे। और अगर नहीं करना हो तो बता दो, सही–सही। तो ऐसे मेहनत किया महीनों। तो कोई समाधान नहीं निकला। तो हमें यह बताना पड़ेगा। फिर आया, कि तुम भजन करो। भजन करना चाहिए। तो अब यही बैठ कर सोचें, कि भजन कैसे करें ? तो फिर एक दिन स्वप्न में देखे, कि हम बाबा बन गए हैं, जटा बढ़ा कर, और जंगल में भागे चले जा रहे हैं। और जितने घर के लोग हैं, सब विदाई कर रहे हैं, कि जाओ भजन करो। आशीर्वाद है। एक तो तरीका यह है। कि तुम खूब रोओ, गाओ, चिल्लाओ और घरवाले इज़ाजत दें–चाहे वो अंतर्जगत से दें। एक तो तरीका यह है। यह तो संशय बीच में बना रहता है कि हम करें तो क्या करें? इधर भी मन है, उधर भी मन है। तो इस तरीके से अगर संयोग बन जाय तो साधक को सबसे पहले भगवान को स्मरण करना चाहिए। अपना इष्ट निश्चय कर लेना चाहिए। जिसमें मन लगे, वही इष्ट है। और फिर इष्ट के सम्मुख समर्पण करना चाहिए। और ऐसा वैसा नहीं। वह समर्पण ऐसा नहीं कि काल करके बाधित हो जाय। देश करके बाधित जो जाय। ऐसा समर्पण हो जैसा पार्वती का था।

'जनम जनम लगि रगर हमारी।
वरउं शंभु नतु रहौं कुमारी।।'

जैन महावीर अच्छे महात्मा हुए हैं। भगवान का नाम नहीं लिए कभी। न राम कहे, न शिव कहे, न ब्रह्म कहे, न निर्गुण कहे, न सगुण कहे। जैन महावीर। विचार में आया, यह दुनिया क्या है–कुछ नहीं। बस बैठ गए, भजन करेंगे। और इष्ट को पकड़ लिया। अब इष्टदेव अपने से करें। हमने सब कुछ सौंप दिया तुम्हारे चरणों में। न लड़ाई रही, न झगड़ा रहा। आदमी अगर चाहता है कि हम कर लेंगे। जैसे दुर्योधन कहता था कि हम कूट–कूट कर बिछा देंगे, पांडवों को। हम सुई की नोंक के बराबर भी नहीं दे सकते। हमारे पास बड़े–बड़े योद्धा हैं। पितामह भीष्म हैं, जिनको इच्छामृत्यु है। कोई उन्हें जीत नहीं सकता। क्या कर लेंगे, वे लोग हमारा ? कर्ण हैं, जो सबको मार सकता है, द्रोणाचार्य हैं जो सबका गुरू है। ये करेंगे क्या? क्यों समझौता करें हम। हम सुई की नोंक के बराबर भी नहीं देंगे। हो गया। अगर इसी प्रकार अर्जुन और ये भाई (पांडव) भी बन जाते, तो जैसे वो हुए वैसे ये भी हो जाते। लेकिन योगी के अंतःकरण की रिसर्च है, उसने पी.एच.डी. किया है। **(टाइटल** महाभारत। अपनी रिसर्च का कोई टाइटल होता है न–सब्जेक्ट)। तो

क्या है—महाभारत। और टाइटल में उस रिसर्च का आशय—सारांश दिया रहता है। तो देखिए, महा कहते हैं डिग्री को, भा कहते हैं ज्ञान को, रत कहते हैं लगे हुए को। महान ज्ञान में रत है जो। कहाँ वहाँ युद्ध हुआ? कहाँ तीर, तलवार चले? यह तो खाली ना समझी की बात है। यह संसार तो असत्य है। संसार की कोई चीज़ क्या सत्य है? मान लिया जाय कृष्ण हुए ही होंगे, तो क्या? आज तो नहीं हैं। अब काल करके कितना भेद हो गया बीच में। और परमात्मा उसको कहते हैं, कि जो पहले भी था, आज भी है, और आगे भी रहेगा। यह सिद्धान्त है। तो इसलिए यह रिसर्च मात्र है। किसी योगी के हृदय में यह साधना हुई, और उसने उसे लिपिबद्ध कर दिया। शीर्षक दे दिया महाभारत। अंधा धृतराष्ट्र अज्ञान। मोह दुर्योधन। दुर्बुद्धि दुश्शासन। कौरवों का दल बाएं तरफ। और दाहिने, अनेक जन्मों का पुण्य रूपी पांडु। धर्म रूपी धर्मराज। भाव रूपी भीम। अनुराग अर्जुन। नियम नकुल। सत्य सहदेव। यह पांडवों का दल है। जिस साधक के हृदय में धर्म, भाव, अनुराग, नियम, सत्य। और ध्यान रूपी द्रोपदी है। ये पांचों उसके पति हैं। तो किसी के पांच पति थोड़े होते हैं। बाहर ऐसा होता, तो परंपरा से और भी आगे देखने को मिलते। लेकिन ऐसा नहीं मिलता। इसलिए यह आध्यात्मिक विषय है। और आत्मा कृष्ण है। कृष्ण के पास ऐसी कला है, कि हारे हुए को जिता सकता है, जीते हुए को हरा सकता है। राई को पहाड़ बना सकता है और पहाड़ को राई बना सकता है। सब कुछ कर सकता है। बज्र से कठोर हो सकता है, और नवनीत से कोमल हो सकता है—यह कला परमात्मा की है। तो जब हम परमात्मा को कैच कर लेंगे। उसको गाइड बनाएंगे। तो हमारी गाड़ी क्यों नहीं संसार रूपी घटिया के ऊपर चढ़ जायगी। इसमें दृढ़ विश्वास होना चाहिए, दृढ़ निश्चय होना चाहिए। और अपनी कमी जो है, वह तो है ही। इसमें दो राय है नहीं। अगर कमी न हो, तो साधना क्यों करे साधक? तो अपने को हमें भगवान को सौंपना है। और उन्हें यह श्रेय देना है, कि अगर भगवान ने हमारे ऊपर अह्लादिनी कृपा कर दी है। और बगैर बताए, बगैर कहे, हमें यह अवसर दिया है, तो हम इसको अलौकिक मानते हैं—अलौकिक आधार मानते हैं, और इसी आधार पर हम अपने को ईश्वर के चरणों में सौंप दें। गीता में अर्जुन को कृष्ण ने 18 सिद्धांत बताए 18 अध्याय में। अर्जुन सबको नकारता चला गया। मैं यह सब नहीं कर सकता। मैं इस मन को वश करने में सक्षम नहीं हूँ। यह तो वायु से भी वेगवान है। और कहां? दोनों दलों के बीच, युद्ध के मैदान में

खड़े हैं। युद्ध में कहीं ज्ञान बताया जाता है ? मारामारी के बीच में। ये कहाँ की बात है? लोगों की समझ में नहीं आता। मन को रोकना है, कि युद्ध करना है। तो वहाँ युद्ध कहाँ हुआ। यह तो साधक के लिए है। इस तरह से जो साधक अंतर्जगत में चला जाता है। वाह्य जगत से हाथ जोड़ कर उससे छुट्टी पाना चाहता है। उसको कहते हैं, साधना करने वाला साधक। और वह सबसे बड़ा बन जाता है। वही साधक बनते–बनते, तमाम दिक्कतों का सामना करते–करते। गुरू का लात सहते–सहते कामयाब होता है। कोई गाली देता है, हंसता रहता है– 'बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे।

खल के बचन संत सह जैसे।।'

संत बन जाता है। जिसके लिए भगवान कहते हैं–

'सातवं सम मोहि मय जग देखा।
मोते अधिक संत कर लेखा।।'

तो अपने गुरू का ध्यान करो। और लगे रहो, लगे रहो। और जो ये आती हैं शंकाएं विजातीय भावना की, यह किसी का दोष नहीं है–हर आदमी को ये क्लेश, कर्म, विपाक और आशय ये चार, दिनभर तोड़ते रहते हैं।

'क्लेश कर्म विपाक आशयैरपरामृष्टःपुरुष विशेषः ईश्वरः।'

इन चार से मुक्त है, वह मुक्त परमात्मा है।

अविद्याऽस्मिता राग द्वैष अभिनिवेशाः क्लेशाः।

ये पांच क्लेश होते हैं, ये आदमी को बहुत परेशान करते हैं।

प्रारब्ध संचित और क्रियमाण ये तीन प्रकार के कर्म होते हैं। और विपाक, परिणाम। हर आदमी परिणाम चाहता है। यह बहुत खराब है। कर्तव्य करना हमारा धर्म है–परिणाम हम नहीं चाहें। यह ईश्वर के हाथ में है। कर्तव्य करें और ईश्वर को समर्पित कर दें, इसको निष्काम भावना कहते हैं। इसका जो पालक है, वह ईश्वर को वश में कर लेता है। और अगर कल्पना कर दिया। भजन किया और डिमांड कर दिया। तो भजन हमारे पास रह नहीं गया, तो फिर सर्कुलेशन वाला हो गया। फिर जिन्दा होगा फिर मरेगा, फिर दुनिया में आएगा। इसलिए अनपेक्ष भजन करना चाहिए। तो इस तरीके से आगे बढ़ो। धीरे–धीरे भगवान की कृपा अगर इसी प्रकार होती रही। तो साधक को राहत मिलती है, दृढ़ता मिलती है, मार्ग दर्शन मिलता है। और आगे बढ़ेगा।

भगवान उसे देखते हैं–गलती तो नहीं कर रहा है। भजन के लिए भगवान बातएंगे, तो भजन में बैठ जाना चाहिए। अगर सोने का आदेश हो, तो सो जाओ, बताएगा। अंग फड़केगा। 2 बजे जाग गए, बैठ जाओ, अगर सोने को कहे सो जाओ। उतने टाइम बोलेगा। सिग्नल देगा। अनुकूल अंग फड़के तो बैठ जाओ। अगर बायां फड़क जाए तो उठ जाओ। तुम्हें आलस आ जाएगा भजन नहीं बनेगा। अगर दाहिना हाथ फड़कता है, तो भजन में बैठो। दाहिना अंग फड़कने से लाभ है। इस तरीके से भजन करता रहे। अगर दाहिने पीठ फड़के तो सो जाय। अगर खाना खा ले और दाहिने पेट फड़क जाय, तो तामसी का बाप हो, तो तुम्हारे लिए सात्विकी बन जायेगा, अनुकूल हो जायगा–ईश्वरीय आदेश हो गया। एक

पैसा कोई चढ़ाता है तो उसकी भी कोई कल्पना रहती है। जब हमको सीधा देता है कोई। तो फिर मौका पाकर पैर पकड़ लेगा। तो मांगे से है खून भिक्षा, बिन मांगे है दूध। दूध भिक्षावृत्ति ठीक रहती है। भगवान का भजन होता है। और जिसमें खून हो गया–जिसमें मांग हो गई, डिमांड हो गई, वह कैसे सात्विकी होगा। इसलिए दूध और खीर और चीनी को सात्विकी नहीं कहते। तामसी लहसुन और प्याज और मछली मांस को नहीं कहते। तामसी उसको कहते हैं, जो चीज़ हम अपनी इच्छा से अपनी डिमांड करके हम मांगे। आसक्ति से जो चीज़ मिले। वह तामसी है। और जो उरप्रेरक रघुवंश विभूषण। भगवान की प्ररेणा से मिले, सात्विकी वह मानी जायगी। तो वह भिक्षा हमें ठीक रखेगी, और हमारा भजन ठीक होगा। दूसरा–साधक को इतना विवेक होना चाहिए कि वह भगवान से अपने, पूछ–पूछ कर उसका पालन करे। सबसे उत्तम यह है। और यह बार–बार अभ्यास करे। अब इतने दिन से साधना करते हैं, ध्यान करते हैं। भगवान से कुछ पूछा, तो उत्तर नहीं देते। तो रोओ उससे, गिड़गिड़ाओ उससे, उससे पूछो। मैं कुछ नहीं जानता। मुझे बताइये। मैं आपका हूँ। यह संसार समुद्र है, इसमें विषय रूपी पानी भरा है, माया मगर है इसमें। मैं इसमें फंस गया हूँ। मुझे यह माया कभी भी पकड़ सकती है। इसलिए मुझे बचाओ। हे मेरे इष्टदेव! हे मेरे गुरूदेव! हे मेरे परमात्मा! मुझे बचा लो। मुझे ऐसा रंग दो, जिससे कि मैं उसमें बना रहूँ और मगर मुझे पकड़ने के लिए चीन्ह न पावै। आप ऐसा मेरे ऊपर कलर छोड़ दीजिए। उपाय कीजिए। तरीका कीजिए। ऐसी युक्ति दे दीजिए। ऐसे खूब रोओ गाओ। ऐसी भक्ति दे दीजिए। मैं कुछ लेना नहीं चाहता आपसे। मैं तो अपने आप को देना चाहता हूँ। मैं कुछ लेना नहीं चाहता आप से–

अनगढ़ मग है पूरों का,
यहां न काम अधूरों का।
कच्चा औ मटमैला रस्ता,
कच्चे कायर कूरों का।
सीधा साफ अमीरी रास्ता,
सच्चे साहब सूरों का।
जप तप करके स्वर्ग
कमाया,
ये तो काम मजदूरों का।

अगर हमने भजन किया और कुछ मांग लिया, तो यह तो मजदूरी है। हमने भजन किया, परिश्रम किया और उसके बदले ले लिया। यह ठीक नहीं। यह तो निवृत्ति मार्ग नहीं है, यह तो प्रवृत्ति मार्ग है। यह तो सर्कुलेशन है, आवागमन है। भजन किया, फल भोग किया, फल भोग किया, फिर नर्क में जाएंगे। फिर तपस्या किया फिर फल भोग किया, फिर नरक में जायेंगे। यह तो सबका हो रहा है। इसमें नहीं जाना हमको। हमें तो–

'करना सही न लेना कुछ'

हमारा भजन करना काम है, हमारा ईश्वर को पाना काम है, हमें उससे कुछ मांगना नहीं है। डिमांड नहीं करनी है।

'करना सही न लेना कुछ,
ये बाना झांखर झूरों का।'

कोई यूनीफार्म नहीं, कोई बेस नहीं, कोई सम्प्रदाय नहीं, कोई मजहब नहीं। कोई मजहब अपने पीछे लगा लेते हो, तो वह भी तो एक फितूर ही है। कोई सम्प्रदाय विशेष में तो ईश्वर है नहीं। ईश्वर तो इनमें है नहीं। अलग–अलग इनके दर्शन हैं। इन्हें दर्शन थोड़े कहते हैं। दर्शन तो यह है कि–

'ईशावास्यमिदं सर्वम्'

हर सम्प्रदाय में है, हर धर्म में है, हर जगह है। अगर ऐसा सार्वभौमिक सिद्धान्त नहीं मिलेगा, ऐसी समझ जब तक नहीं आएगी, तब तक कल्याण कैसा? संभव नहीं। एक देशीय भगवान नहीं है। एक प्रांतीय भगवान नहीं हैं। एक भाषीय भगवान नहीं होता, है। एक जाति वाला भगवान नहीं होता। वह तो सर्व देशीय, सर्व भाषीय, सर्व जातीय है। इस तरह से, अगर हमारा स्तर उठकर, उस स्तर पर नहीं पहुँचता, तब तक हम आलराउंडर हो कैसे सकते हैं?

- **शरीर पंचवटी**
- **जटायु–सम्पाती**
- **सुन्दर काण्ड**
- **सुरसा, सिंहिका, लंकिनी**

राम चरित मानस को पढ़ना चाहिये, सुनना चाहिये, समझना चाहिये–आत्म कल्याण के लिये। यही ध्येय होना चाहिये। न कि पैसा कमाने के लिये। गोस्वामी जी कभी संसारी बातें कर देते हैं और कभी आध्यात्मिक बात भी बता देते हैं कि ऐसी शैली से काम चले क्योंकि दोनों तरफ के लोग मुंह बाये हैं। संसारी लोग भी चाहते हैं कि हमें शिक्षा प्रद बातें मिलें, अच्छी बातें मिलें। हमारे जीवन में अच्छी बातें मिलें तो इस तरह से बाहर की बातें ज़रूरी हैं। और महात्मा लोग जो आगे बढ गये हैं, वो भी चाहते हैं हमें कुछ मिले। तो चारो तरफ पूर्ति करते रहते हैं, वह अपने काव्य के द्वारा। पंचवटी इस शरीर को कहते हैं, चित्रकूट इस शरीर को कहते हैं, और जनक पुर भी इस शरीर को कहते हैं, अवध भी इस शरीर को कहते हैं, और लंका भी इस शरीर को कहते हैं। अब क्यों कहते हैं? एक कारण है। समझ लो। जब योग की प्रक्रिया आ जाय, इस शरीर में योग करने की क्षमता आ जाय। योग जाग्रत हो जाय, तो उस समय इसे जनकपुर कहते हैं। जनक, जिससे कोई चीज़ पैदा होती है। जनक पिता को कहते हैं सीता शक्ति पैदा होती है। इसलिये, जनक योग को कहते हैं, जब पहुंच जाय उस स्थित में। इसे लंका भी कहते हैं। कि जब इस शरीर में हमारी लव लग गई, आसक्ति हो गयी है, तो लंका कहते हैं और जब आसक्ति हो जाती है, तो जानते हो उसके कार्यकलाप कैसे होते हैं? आसक्ति हो जाती है तो हम संसारोन्मुख हो जाते हैं। फिर विषयोन्मुख हो जाते हैं। यह मेरी है, यह मेरा है– रोना धोना लगा रहता है। रोना शब्द से रावण बना है। तो इस संसार के लिये आदमी रोता रहता है ज़िंदगी भर, कि मेरा यह हो जाय, मकान बन जाय, ऐसा हो जाय यह लड़का–यह नाती यह, यह, यह। यही सब मोह है। मेरा–मेरा, यही मोह–रावण है। जब मोह आ गया, तो उस समय शरीर को लंका कह सकते हैं। और जब इससे ठीक अपोजिट हो जाय, साधना करने लगे कोई साधक। ईश्वरोन्मुख हो जाय। विषय की तरफ इंद्रिया न जायं। ईश्वर में लगें, उस समय अवध कहते हैं। अवधि कहते हैं समय को। सौभाग्य से हमें यह समय मिला। भगवान ने बड़ी करुणा करके दिया। और जब चित्त को निरोध करने का अवसर आता है, तब उस समय इसे चित्रकूट कह सकते हैं। जब और हाई लेबिल की साधना मिल जाय, कुंडलिनी जाग्रत हो जाय, कुभंज ऋषि से भेंट हो जाय, तो फिर इसी को पंचवटी कहते हैं। शरीर जो पांच तत्वों से बना है। वहीं पर बैठा है जटायू। तो जब राम वहां गये तो उन्होंने प्रणाम किया। तो उसने कहा राम! दशरथ मेरा साथी है। मिला है मुझे। तुम मुझे अपना पिता जैसा ही मानो। अब मैं तुम्हारी, यहां बैठे–बैठे सब देख–रेख करूंगा। ऐसा शब्द कहा उन्होंने। तो इसका मतलब यह है कि जो शरीर रूपी पंचवटी है, तो जब साधक शब्द के विधान से बढ़ते–बढ़ते हायर लेबल पर पहुंच जाता है, साधना के। तब जा कर यह नाम आता है। उसे मालूम पड़ गया है, कि ईर्ष्या–द्वेष ये सब यहीं हैं, त्रिसिरा, खर, दूषण वगैरह। कुभंज ऋषि ने यही कहा था कि राम, यह सबसे उत्तम जगह है, तुम यहीं रह कर इनका सामना करो। मैं जानता हूँ जिसके लिये तुम यहां आये हो, अब वह कार्य शुरू होने वाला है। यहां तुम्हें महती, बड़ी–बड़ी ताकतें जो हैं वह सब सुलभ हो जायेंगी और तुम यहां से स्टार्ट करो। यहां से चौकियां नज़दीक हैं, सब राक्षसो की। बुरे विचार, भले

विचार सब नजदीक हैं। यह जो जटायू है, मुंह को कहते हैं। खर, ईर्ष्या को कहते हैं। द्वेष, दूषण को कहते है। तीनों गुणों में आशक्ति लग जाय यह त्रिसिरा है। ये सब राक्षस यहां चौकियां लगाये बैठे हैं, चारों तरफ। अब जैसे, हम झाड़ू लगा रहे हों, दूसरा नहीं लगा रहा है। मन में आयेगा कि यह मजा मार रहा है। आ गयी न ईर्ष्या कहीं दूर जाना पड़ा? यहीं था यह खर। यहीं सब दुर्गण पैदा हो जाते हैं। इनका चित्रण दिया गया है–यहां मुंह का नाम जटायु है। जटायु गिद्ध गोनाम इंद्रिय का है। वाक्इन्द्रिय को धारण करता है वचनो से रक्षा करूंगा। यानि मुंह से रक्षा करता है। और किया उसने। बहुत किया, बहुत किया, लेकिन फेल हो गया। नहीं कर पाया, मारा गया। साधक को जो वाणी मिलती है, चिन्ता न किया करो, खाने की कल्पना न किया करो, भगवान की कल्पना करो। भगवान में मन लगाओ। जो मिले वह ठीक है। हमें पैसा से मतलब नहीं है। धन में चित्त न फंसाओं, इन शब्दों से गीध की मदद मिलती है। साधक की रक्षा होती है। लेकिन मोह के प्रभाव में कहने का असर नहीं होता। रावण से मार खा जाता है, जटायु। साधक की क्षमता (शक्ति–सीता) को नहीं बचा पाया। मर गया।

पैसा की बात पर हमें याद आ गई कि इस मामले में साधक को शुरू से एक तरीका बना लेना चाहिए। इससे बहुत अच्छा रहेगा। अनुसुइया जी में जब हम रहा करें तो वहां पैसा चढ़े। पैसा के बगैर गुजर नहीं। जब आये तो खुशी होवें। न चढ़े तो दुखी होवें। पहले महाराज रहे। फिर कुछ दिन बाद हम आ गये। फिर साल दो साल बाद भगवाननंद आ गये। फिर दो चार साल बाद अड़गड़ बाबा आ गये। और भी बीच–बीच में कुछ बाबा आये। तो यही रहे सब। तो जो मिल जाये पैसा। उठाओ, ले जाओ, बाजार जाओ खाओ–पहनो जो कुछ करना हो। और तो कुछ धंधा रहा नहीं। हमको यह पसंद न आवे। केवल हमको। और सबको पसंद आवे। तो हमको यह अनुकूल जगह मिल गयी। जब यहां धारकुंडी आ गये तो हम पैसे का बहुत विरोध किया करें। पैसा पास में रखो, तो चितंवन होगा। बाजार जाओ, सौदा लाओ, कौन यह करता रहेगा? शुरू में जब यहां हम आये रहे, तो एक पूड़ा लिये रहे। महाराज जी की एक फोटो रही। तो गुफा में रख दिये ओर एक–एक अगरबत्ती रोजाना लगा देते थे। जब वह अगरबत्ती खतम हो गयी, दस–बीस दिन में, तब हमने कहा कि भगवान! अगर सूंघना हो तो मंगा लिया जाय अगरबत्ती। हमारे हिम्मत नहीं है, मांगने की। चाहे मर जायें। न बाजार जाने की, न लाने की हमारे हिम्मत नहीं है। बैठे रहो चुपचाप, बगैर सूंघे। यदि अगरबत्ती प्रेमी हो, पर्यावरण शुद्ध करना होतो, मंगालो। तो कोई ले आया था–जो आज तक चल रही है। बंद ही नहीं हुआ। अब यहां देखो। कोई कुछ कहीं लेने नहीं जाता। तो यह एक पद्धति बन जाती है। जैसा शुरू कर दो तुम, वैसी नियमावली बन जाती है। यह कोई बहादुरी की बात नहीं है। कि खूबी हम वर्णन कर रहे हैं, कि यहां अच्छा है, वहां खराब है। यह हम नहीं कह रहे हैं। बुरा तो वह, कि यहाँ अच्छा है तो इसी का अहंकार बन कर तैयार हो जाय। यह सबसे बुरा है। उसको अहंकार नहीं है, तो वह सबसे अच्छा हो गया। जैसे तुम्हारी सुविधा बन जाय, वह अपना–अपना अच्छा होता है। इस नियमावली को रामायण के अन्दर दर्शाने का प्रयास किया गया है। तो यह जो मुंह है गीध है। यह बार–बार कहता था, कि न इच्छा करो, न इच्छा करो। देखो फिर इच्छा किया। यही पहरेदार है, जटायू। जानकारी से युक्त है। जटाओं से युक्त है। यह जटायू है। और सद्गुरू क्या है? इसी वाक्य की निपुणता में अनुगत चेतन का प्रतिबिंब है। शब्द भावना उसमें छिपी है। जो तीनों कालों में अबाधित है, एक रस है। वही सम्पाती है। इसमें वह सुपर है। पर कह डालता है, बातें जो अंदर से आती हैं। वह थोड़ा सा सुपर है। वह जो अनुभूतियां, अतंर जगत से मिलती हैं, उन्हें, पाना वह बताना है। और यह श्वास जो है यह

सूर्य है। बड़ी मेहनत की थी साधना काल में, वाक्य ज्ञान में और प्रैक्टिकल में। प्रैक्टिकल में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब सम्पाती का है। और वाक्य ज्ञान में अनुगत जटायू का। ये दोनो साथी हैं। भाई–भाई हैं। श्वास में अनुगत चेतन का प्रतिबिंब सूर्य का है। तो इसमें बड़ी मेहनत किये, शुरु में, जब साधना किये। तो जटायू तो पहले भाग आया रहा। वाक्य रमणी तो रुक नहीं पायेगा। थोड़ा समझ में आयेगा पहले। साधना में प्रगति नहीं कर पाता। जितना किया, उतने में रह गया। और सम्पाती जो अनुभूतियों को बटोर रहा है, जो विचार आते हैं, अनूभूति होती है। अनुभव के द्वारा जो बताया जाता है, उसे करने के लिये उसने बडा संघर्ष किया। तो उसमें क्या हुआ? उसके पंख जल गये। पंख क्यों जल गये? क्यों कि उसके पंख ही तो हैं संसार में विचरण करने के लिये। संसार की जानकारी रूपी पंख। यह समाप्त हो जाती है, साधक की। जब बहुत आगे प्रवेशिका पा जाता है। बढ़ जाता है। तो पहले असत्य का त्याग कर देता है, और फिर अहं का त्याग कर देता है। क्योंकि जड है इसकी–असत्य। पहले हम असत्य को खतम करते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह को। तो जब इनको खतम कर पाये, तो इनकी जगह वो ले, लेते हैं। सत्य ज्ञान विवेक वैराग्य। अब बताइये कि ज्ञान का ज्ञान तब होगा न, जब अज्ञान होगा। एक–दूसरे के पूरक हैं ये। एक दूसरे को पैदा करने वाले हैं। ऐसी शैली से ऐसे चक्कर में फंस गया, कि इसकी जो जानकारी थी, जो ईगो था, कि हमही हैं करने वाले, वह खतम हो गया, जल गया। जल गया तो सही रूप में एडजस्ट हो गया। अच्छे और बुरे के परे चला गया। यह कंडीसन जब आ जाती है तो वह सद्गुरू जो बहुत दिनों से साधना करते–करते वाक्य ज्ञान की निपुणता में अनुगत चेतन का प्रतिबिंब मिलते–मिलते, बढ़ते–बढ़ते जो अपने स्वरूप में स्थित था और ये पंख जो संसार उन्मुखता रही, वह जल कर भस्म हो गयी। तब उसने सद्गुरू गाइड का काम किया। तथा निर्देशित किया, कि–

"मैं देखउं तुम नाहीं गीधहिं दृष्टि अपार।"

तो शरीर धारी जो साधना युक्त सद्गुरू होता है, उसकी दृष्टि अपार होती है। वह सर्वत्र देख सकता है। पहाड़ के उस पार क्या है, पहाड़ उसे रोक नहीं सकता। बता देगा। यह दृष्टि इन दीवारों के पार निकल जाती है। तो इस तरह से वो यह कह देते हैं, कि मैं देख रहा हूँ। सीता बैठी है। तुम नहीं देख सकते। हाँ तुम लोगों में वही बहादुर है, जो समुद्र लांघ कर जाय और पता लगाकर अहंकार रहित होकर परमात्मा के यहां हाजिरी देवे। तो फिर यह जामवंत जो हैं यह अन्दर बाहर की जो सब जानकारी है, वह जामवंत है। यह बुडढ़ा यहां बैठा हुआ है। यह ब्रह्मा का मानस पुत्र है। यह जानकारी आटोमैटिक, हर साधक के अन्दर रहती है। और यह बढ़ती चली जाती है। कोई भी सहायता साधना में कहीं से मिलती है, तो यह बढ़ती जाती है। तो फिर यह कहता है, कि हां बताओ भाई कौन जा सकता है समुद्र के पार। सब बताते हैं–हम इतना जा सकते हैं। ये छोटे–मोटे साधन हैं। लेकिन यह जो पक्का साधन है, अनुराग वह कहता है मैं पार जा सकता हूँ। यह है अंगद। जब भगवान के प्रेम में कंठ गदगद हो जाता है, और अश्रु धारा बहने लगे वह अनुराग है, अंगद। वह सौ योजन समुद्र लांघ सकता है। लेकिन जिय संसय कछु फिरती बारा। क्योंकि अनुराग आ जाय तो वह कांटीन्यू नहीं रह सकता। किसी का आदमी मर जाता है तो वह भी रो–गा कर फिर सिसकी मारने लगेगा, फिर मुंह पिराने लगेगा, फिर ठंडा पड़ जायेगा। तो यह लगातार नहीं बना रहेगा। और यही अनुराग, ऐसी कोई स्थिति बन जाय कि रोना न पड़े और अनुराग हमारे अन्दर बना रहे, ऐसी एमेंसीपेशन तैयार की जाय। ऐसी युक्ति हमें मिल जाय, कि वह अवस्था अनुराग की हमें मिल जाय और रोना न पडे। यह कंडीसन कैसी होती

है। वह अवस्था, रहनी कैसे मिलेगी? वह अवस्था है, वैराग्य। कान्टीन्यू अनुराग बना रहे। यह है हनुमान। अनुराग और वैराग्य, अंगद और हनुमान, ये दो योद्धा एक से एक परखे हुए हैं। जो काल करके बाधित नहीं हैं। यह साधना है। तो अब यह हनुमान जायेगा और सब चीज़ का पता लगालेगा। तो वैराग्य और अनुराग इनको लाने की ज़रूरत है। तो जहां ये आये तो संयम हो जायेगा–इन इंद्रियों का। तो संयम रूपी सेतु बन जायेगा। संसार रूपी समुद्र के ऊपर। फिर अन्दर प्रवेशिका मिल जायगी। तो ये राक्षस जितने हैं, इनमें खलबली मच जायेगी। फिर हमारी जीत हो जायेगी। तो जो शक्ति हमारी खो गयी है, वापस मिल जायेगी। फिर राम राज्य हो जायेगा। रावण का राज्य हट जायेगा। कल्याण का पथ मिल जायेगा। इस शैली से अगर चले तो साधक ठीक रहेगा। सुन्दर काण्ड का समाजिक क्षेत्र में बड़ा महत्व है। जो लोग कामना करके रामायण पढ़ते–सुनते हैं, उनके यहां सुन्दर काण्ड का बडा महत्व है। दूसरे काण्डों से श्रेष्ठ उसे मानते हैं। इसी की आराधना अनुष्ठान करते हैं। इसी का पाठ करते हैं। और गोस्वामी जी ने भी इसको अच्छा माना। इसलिये इसका नाम करण किया सुन्दर काण्ड। कुरूप काण्ड नहीं। तो समझना चाहिये कि इस काण्ड में जो विवरण है, सोच है, शैली है, उसमें कुछ निराला पन है। वैसे यह अपनी–अपनी समझ है। रुचि है। तो देखिये, दुनिया में शक्ति का ही सबसे बड़ा महत्व है। तो इसमें शक्ति का पता लगा, खुशखबरी मिली। शक्ति का सीता का ही विशेष वर्णन इसमें पाया जाता है, इसलिये सुन्दर है। साधन जो भी किये जायें, शक्ति से ही तो होते हैं सब। और ताकत क्या है? सीता शक्ति। शक्ति कहो देवी कहो। कुछ भी कह सकते हो। तो एनर्जी जो शक्ति होती है, उसी का महत्व बड़ा भारी होता है। वह चाहे तो सब कुछ करा सकती है। वही है। परमात्मा में हरकत नहीं होती है। परमात्मा में पारदर्शी चीज़े हैं सब। परमात्मा कोई पदार्थ नहीं है। इसलिये परमात्मा सबसे परे है। अगर परमात्मा कोई पदार्थ का अंश होता, जल होता, वायु होता, अग्नि–आकाश–पृथ्वी का अंश होता, तो पकड़ में आ जाता। परमात्मा इन सबसे परे है। और इतना निर्लेप है, कि सबको प्रसुप्त रूप से संजोये है पूरी क्षमताऐं। ऐसी शैली से संजोये हैं, कि आटोमैटिक नियमावली बन गयी है। इसलिये इस पर कोई तर्क नहीं कर सकता। उसे कोई काट नहीं सकता। अछेद है, अभेद है, व्यापक है। ऐसे गुणों से आच्छादित है वह। जो कि शक्ति धारित है, क्षमता धारित है, सब कुछ को धारण करता है, और फिर इससे मतलब नहीं रखता, इसलिये वह पकड से बाहर रहता है। बस वही भगवान है। अगर तुम कोई चीज़ अपने पास रखते हो, और उसमें आसक्ति है तुम्हारी, तो पकड़ जाओगे। तो ऐसी अगर कला आ गयी है तुम्हारे पास, कि उसमें आशक्ति नहीं रह गयी, तो तुम पकड़ में नहीं आओगे। तुम उसे पकड़ सकते हो, वह तुम्हें नहीं पकड सकती। इसलिये महात्मा लोग कहा करते हैं, चार अवस्थाएं मान लेते हैं–जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। सत् रज तम इन तीन गुणों से तीन अवस्थाऐं हैं, और इन तीनों में जो साझा अवस्था है, वह तुर्या है। आज देखो तुम लोग टी वी, तो यही भरा पड़ा है–सफेद प्वाइजन सबको मारने के लिये तैयार है। आज कल हजारों किस्म के मादक पदार्थ बन गये हैं, लोग नशा करते हैं। एक किलो एक करोड़ का मिलता है। बड़ी तेज़ी से संसार में फैल गया है। यहाँ सब जगह भर गया है। इंडिया इसका केन्द्र बन गया है। दूसरे देशों से ला ला कर ढेर लगा रहे हैं। रोज करोड़ दो करोड़ दस करोड का मादक पदार्थ आ रहा है, और सब खाते–पीते हैं। रहा ही नहीं जाता। इसमें हो गया है आकर्षण। चुम्बक की तरह। जैसे चुम्बक लोहे को खींचता है। ऐसे वह अट्रेक्सन करता है। क्योंकि यह हमारी जो सेंस है, कांन्सेस है, विचार है, यह पकड़ में आ जाता है। जहाँ निल हो गये, इतना आनन्द आता है कि स्वर्ग में पहुंच गये। जो हम दिन भर खेलते–खाते, हंसते–बोलते, बताते हैं तो इसका आदमी को बड़ा टेंशन बन जाता

है। तो बिजी होकर ये सब पार्ट्स, हमारे कमजोर हो जाते हैं। जर्जर हो जाते हैं। तो यह नशा जो है मस्तिष्क की नशों को निष्क्रिय कर देता है। हम विचार–शून्य हो जाते हैं। मस्तिष्क की एक्सटर्नल और इनटर्नल दोनों नशे फ्री हो जाती हैं। तो शून्य हो जाते हैं। तो आनन्द ही आनन्द अनुभव होता है। और फिर जब नशा उतरा तो सक्रिय हुआ ब्रेन, तो फिर उसी की याद आती है। तो बार–बार नशा करता है, उसके बिना रहा नहीं जाता। यह जानते हैं कि हार्ट फेल हो जायेगा, हम मर जायेंगे। तो भी नहीं मानते। हम यह बता रहे थे कि इतनी क्षमता है इसमें सर्वस्व नष्ट हो जाता है। काम का नहीं रह जाता आदमी। लेकिन नशा करने को नहीं मानता। तो जैसे यह साधारण नशा है। ऐसे ऐसे हजार नशे के बराबर वह परमात्मा का नशा है, जिसे लग गया वह छूटता नहीं। वह निर्लेप परमात्मा है। वह किसी से मतलब नहीं रखता। जैसे यह पोल है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पंचीकृत पंच महाभूत और ये सब मिल कर अष्टधा मूल प्रकृति बन कर तैयार हो गई। और अपने आप काम होते रहते हैं। अब एक लड़की पैदा होती है पन्द्रह बीस साल में एक बच्चा पैदा कर देती है, बच्चा जब पैदा होता है, तो दो किलो का होता है, और फिर बड़ा होकर दो कुंतल, ढाई कुंतल का हो जाता है। तो इसमें क्या बढ़ जाता है? कैसे बढ़ जाता है, और फिर वह और पैदा कर देता है। ऐसे यह सृष्टि गति मान है। इसमें चैतन्यता है, जड़ में। जड़ पदार्थ का संसार है, इसमें चेतन क्रिया कर रहा है। तो इस शक्ति का जब हम दुरुपयोग करते हैं, तो रावण मोह के पास में चली जाती है। संसारोन्मुख हो गयी। और जब शक्ति का सदुपयोग होता है। ईश्वरोन्मुख। तो राम के पास रहती है। यही दो चीज़ हैं। और महात्मा के पास तो यह होती नहीं। महात्मा तो बस आदान–प्रदान करते हैं। रावण का स्थान अविद्या जनित है, ईश्वर का स्थान विद्या जनित है। महात्मा इन दोनों को फेल कर देता है, इनसे परे होता है। इसलिये महात्मा का स्थान ज़्यादा बड़ा मान लिया जाता है।

''राम से अधिक राम का दासा।''

राम कहते हैं–

''मोते अधिक संतकर लेखा।''

तो इस तरीके से महात्मा लोग ऐसे करते हैं कि–

''त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक।
भजहिं मोहिं सुर नर मुनि नायक।।''

तो शुभ और अशुभ दोनों का त्याग कर दें और जहां त्याग किये तब फिर वह अवस्था मिल जाती है। नियम मिल जाता है। कानून मिल जाता है। क्योंकि हमने पहले ही कहा है–कि एक प्रकृति है उसके दो भाग बना लिये गये हैं, एक अच्छा वाला, एक बुरा वाला। बुरा ही तो बुरा है, अच्छा ही तो अच्छा है। बुरे से ही तो अच्छा होगा। अच्छे से ही तो बुरा होगा। इनका आदान–प्रदान एक दूसरे से है। तो इसलिये यह भी नियमावली है कि कैसे दोनों से ऊपर हो जाता है। और प्रसुप्त कैसे होता है, उदार कैसे होता है– यह नियमावली बड़ी विचित्र है। यह विजातीय कैसे बन जाती है और फिर कैसे सजातीय हो जाती है। तो यही मन है। यही मुंह है। जब खुशी आती है तो हंसने लगता है। तो हंसने में मुंह कैसा लगता है? दुःख आया तो रोने में कैसा हो जायेगा। मुंह वही है। दोनों धर्मों को धारण करता है। यह सब सोच कर अध्यात्म की गहराईयों में प्रवेश करना पड़ता है। प्रवेश करके वह जो सुख है, वह आनन्द है वह जो अध्यात्म की गहराई है। वह साधक को सुषोभित करती है, यहीं से। इसलिए इसका नाम सबसे सुन्दर है। सुन्दर काण्ड अब यहां से शुरू होता है। इसे हम उदर काण्ड कहते हैं। प्रसुप्त काण्ड कह सकते हैं। प्रवेशिका काण्ड कह सकते हैं।

अन्तर्जगत की साधना काण्ड कह सकते हैं। बाहर की साधना किष्किन्धाकाण्ड तक चलेगी। अब यहां से अन्दर की साधना चलेगी। हमारा अन्तःकरण– मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। ये चार अन्तःकरण हैं, बस इसके अन्दर प्रवेश करना है। तो इस शैली से अब हनुमान का काम आ गया। जो अनुराग की चरम सीमा थी। वह अंगद के रूप में बताई गयी थी। साधक को जब अनुराग का नशा आ जाय और वह कान्टीन्यू रह जाय उसका नाम हनुमान है। वह जायेगा, शक्ति की खोज करेगा। कैसे करेगा? तो यह शरीर है। सुरसा इसकी पहरेदार है। सूक्ष्म शरीर की पहरेदार है सिंहिका। और कारण शरीर की पहरेदार लंकनी है। क्या पहले प्रजातंन्त्र था कि औरतें पहरा देती थीं? प्रजातंत्र लोकतंत्र राजतंत्र ये सदैव रहते हैं। लेकिन यह माया तंत्र है। माया ही माया का पहरा देती है। तीनों गुण तीनों अवस्था तीनो शरीर ये सब माया की बातें हैं। स्त्रीलिंग है माया, स्त्री ही पहरा देगी। पुरुष नहीं। इसलिये लंकिनी सिंहिका और सुरसा सभी स्त्री पहरेदार हैं। अतः करण में जोर लगाये हैं देवता, सुरसा तुम जाओ तुम परीक्षा लो साधक जा रहा है। ये तीनों लोकों में तीनों देहों में तीनो अवस्था में, पास होकर, निकल कर गुणातीत अवस्था नाम की वस्तु को लाना है। ला पायेगा, नहीं ला पायेगा, इसका इक्जाम होता है। अब साधक की जो वृत्ति है– वैराग्य, वह हनुमान है। संसार समुद्र है। सुरसा इसकी पहरेदार है। वह इक्जाम लेती है। साधक की वृत्ति कैसी है? कितनी पावरफुल है? वह संसार–समुद्र से पार हो सकता है कि नहीं।

हनुमान जी एक छोटी पहाड़ी में चढ़कर चले तो वह नीचे धंस गयी। समुद्र ने देखा तो सोचा कि अब तो हम लोग बचेंगे नहीं। बस, उसने क्या किया कि मैनाक पर्वत से कहा, कि ऊपर को बढ़ जाओ और इनको आराम दो। अब आराम क्या, वह थके थोड़े हैं। पता नहीं कहां की बात कहां ले जाते हैं? यह मैनाक, जो मैं है। इसको खतम करना है। यह मैं जो है, यह बड़ा भारी विकार है। लेकिन इसको हनुमान ने स्वीकार नहीं किया। मैनाक पर्वत आकर खड़ा हो गया। जबरदस्ती उसने विश्राम हेतु प्रस्ताव किया। जैसे कोई महात्मा भजन करे। और कोई भक्त रोटी बनाकर उसे देने को पहुंच जाय। ये तो चारों तरफ परिवेश में हो जाता है, कि यह भजन ठीक कर रहा है। परिवेश में एक करेंट सबके मन में दौड़ जाता है कि महात्मा साधन ठीक कर रहा है। सबके हृदय में सेवा करने की प्रेरणा हो जाती है, कि इससे कल्याण होगा। लेकिन साधक को ये सब बातें स्वीकार नहीं करनी चाहिये। इन बाहरी सेवाओं से निर्लेप रहे तो ठीक रहता है। ऐसा नहीं कि कोई पूजा करे, तो पैर फैला दे कि मेरा पैर छुओ। देखो–हनुमान ने क्या किया?

'हनूमान तेहि परसा, पुनि मन कीन्ह प्रणाम।
राम काज कीन्हे बिना, मोहि कहां विश्राम।।'

साधक को भगत से कह देना चाहिये कि यह रोटी पैसा ले जाओ, मुझे भजन करने दो। मुझे इसकी ज़रूरत नहीं है। इस प्रकार इसे साधक को अपने ऊपर घटाना पड़ता है। ऐसे ऐसे यह साधन क्रम चलता है। पहले यह समझ में नहीं आता, फिर शनैः–शनैः दबाते–दबाते सब बैठ जाता है। महात्मा को ऐसा होना चाहिये जैसा कि हनुमान जी ने उदाहरण प्रस्तुत किया। तुम अपना काम करो। और मुझे अपने काम में लगा रहने दो। इससे छूटने पर आगे माया दूसरा गेयर लगाती है। यहां माया के तीन गेयर हैं। हनुमान जी ने पर्वतों के रूप में प्रस्तुत पहले गेयर को दबाकर पाताल पहुंचा दिया। ये जो छोटी–छोटी बातें हैं। इनको तो साधक पार कर लेता है। किन्तु इसके आगे दूसरा गेयर, मैं के रूप में यही मैनाक खड़ा है। साधक उसे भी जब पार कर ले, तो तीसरे गेयर के रूप में सुरसा आ गयी। यह सुरसा क्या है? लोगों की सोच में जो भाव बन गया है कि यह साधक आध्यात्मिक विषय में आगे बढ़ा

हुआ है, यही लोक मान्यता। इस प्रकार यह सुन्दर काण्ड आध्यात्मिक विषय को हमारे सामने खड़ा कर देता है, अन्दर की प्रवेशिका है। लेकिन साधक पूरा पूरा कंपोजीशन नहीं कर पाता। इसमें हम लोग युक्ति लगायें तो समझ में आ जाय। लेकिन यह कौन करे? सुननेवाला ही नहीं है। रिले किसके लिये करें। तो यह बड़ा गंभीर विषय है। सुरसा नाम अहिन की माता। सुरसा कहते हैं, जो अहम् युक्त सुराअनुगत अन्वय व्यतिरेक युक्ति से चेतन का प्रतिबिम्ब सांसारिक भावनाओं में जहां–तहां मिलता है। जो हमारी इंन्द्रियों और अन्तः करण में संसार की छाप गहराई से पड़ी है। जो मूल इच्छा है। मूल कामना है। वही मूल समस्या सुरसा है। संसार की यह जो गति विधि इन्द्रियों में प्रवेश कर गयी है, उनमें जो संबंध बन गया है, उसका नाम है सुरसा। वह अन्दर से है। और कोई यह न समझ बैठे कि वहां गये तो फिर वहां न्योता दिया। और वह नाग कन्या। इसका मतलब कुछ नहीं है। यह सृष्टि सदैव ऐसे ही रही है। जैसे अब भी है। सुरसा कोई औरत नहीं है। साधक के अन्तःकरण की बात है। शरीर की सुरत लगाने वाली विषयासक्ति की प्रवृत्ति ही सुरसा है। उसे देवताओं ने कहा कि तुम परीक्षा तो लो कि हमारा काम सही बना देगा कि नहीं बनायेगा। अब साधक ध्यान करने लगता है, उसे भूख–प्यास लगती है। वह एक रस कैसे बैठ सकता है? ये बाधाएं आती हैं, और पीछा नहीं छोड़तीं। ये साधक को आगे नहीं जाने देतीं। यह संसार की गति तिथि साधक को आगे नहीं बढने देती। जब वह किसी ढंग से निकलना चाहता है। त्याग बताया फिर भी वह नहीं मानती। फिर वह बंदा कहता है, कि खा ही नहीं लेती। यह है सर्वसमर्पण। साधक का जब तक सर्वसमर्पण नहीं होता, तब तक ये सांसारिक विघ्न उपद्रव करते हैं। यह सुरसा सुरत जो दूसरों में लगी है, उसे आगे नहीं जाने देती। जब पूर्ण समर्पण हो गया। हमारा कुछ नहीं रह गया। हम खाने के लिए अपने को परोस दिये, प्रस्तुत कर दिये, समर्पित हो गये, तब कोई नहीं खा सकता। अब युक्ति मिल गयी। अब जीत जायेंगे। संसार की यह उल्टी रीति है, कि जब तक हम 'बच जायं', कहते हैं, तो वह खा लेगी। किन्तु जब हम पूर्ण समर्पित हो गये तो नहीं खा पायेगी। अब युक्ति मिल गयी। तब फिर क्या किया, कि सुरसा ने चार सौ योजन का भारी शरीर बना लिया। तब हनुमान ने छोटा सा रूप बना लिया। चार सौ योजन मुख का मतलब है, कि उसे बन्द करने में आधा घंटा का समय लगेगा। तो उस आधा घंटा में–मुंह में गया, चीभ में नाचा कूदा, कंठ में गया, स्टमक में गया, और लीवर वगैरह में, देख सुन कर, बाहर आ कर खड़ा हो गया। और बोला माता, अब तू अपना मुख बंद कर ले। जो तुम्हें खाना था, मैं वह सब करके, तुम्हारे पेट में पच कर बाहर निकल कर आ गया हूँ। अब मुझे छुट्टी देदे। तो सुरसा हार गयी और हनुमान हार कर जीत गये। इस प्रकार शरीर में माया की जो आसक्ति थी, वह मूर्ख बन कर रह जाती है। मैंने पहले कहा था, सर्वसमर्पण से वह जीत गया। जब तक पचास पैसा या अस्सी पैसा समर्पण है, तब तक काम नहीं चलेगा। जब सौ का सौ पैसा समर्पण हो जायेगा। तब युक्ति मिल जायेगी। फिर उसे कोई नहीं रोक सकता। क्योंकि उसी परमात्मा की विद्या उसी की अविद्या। वही परमात्मा खाने वाला, उसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। यही तो कला बाजी है, देखने भर की है। तो बस, सुरसा कुछ नहीं कर पायी। आशीर्वाद देना ही पड़ा, कि जाओ हनुमान। तुम्हें कोई कहीं बाधा नहीं आयेगी। तुम्हारी परीक्षा हमने ले ली। तुम हर बात में सदैव सफल रहोगे। स्थूल शरीर की परीक्षा हो चुकी अब सूक्ष्म शरीर की बारी आती है। शरीर का जो भार था वह कुछ कम हुआ, साधक आगे बढ़ा तो सूक्ष्म शरीर मिल गया। सूक्ष्म शरीर संकल्पों की दुनिया है। संकल्प जो परछाईं की तरह है। यह विषय रूपी पानी है। और उसमें जो संकल्प रूपी परक्षाईं पडती है। उसको पकडने वाली यह सिंहिका। अब तुम यहां बैठ कर भजन करते हो, और तुम्हारे रूप को मन में पकड कर, कोई तुम्हारे पास अपने

विषय के संकल्प पेश कर रहा है। तो तुम समझ नहीं पाये और उसके प्रभाव से तुम्हारे अन्दर भजन को छुड़ाकर विषय के संकल्प आ गये। तो इस तरह यह संकल्प रूपी परक्षाईं, को पकड कर खा जाती है। साधक ने कोई गलत कदम उठा लिया, तो नष्ट हो गया। यह कलाबाजी, साधकों को अमूमन आती रहती है। तुम समझ नहीं पाते। कभी कभी तुम लोग ऐसे महसूस करोगे कि जैसे प्यास लगी है। किन्तु प्यास हमको लगी नहीं है। तो सोचो कि वह संकल्प तुम्हारे पास कैसे आया? तो इसका मतलब है कि किसी अन्य व्यक्ति में प्यास लगी है, और उसके अन्दर का संकल्प हमारे मन में आ गया। ऐसे पता लगाना चाहिये, तो अनुभूतियां आती हैं। इस तरह के जो संकल्प आ जाते हैं, वे हैं परक्षाइयां। जैसे कोई लोग हमसे मिलने आये। और हमारे रूप को देखकर पता नहीं अपने मन में क्या–क्या कल्पना करने लगे। और वे कल्पनायें झट से हमारे अन्दर भी आ गयीं। वह परक्षाईं रूपी कल्पना। और उसी के आधार पर हमने कोई गलत कदम उठा लिया। तो समझो इस तरह यह है सिंहिका। यह संसार की समस्या अनादिकाल से है। तथा सुषुप्त है। ताहि मारि मारूत सुत वीरा। साधक समझ गया, कि यह मेरा संकल्प नहीं है। मेरी प्रवृति के विरुद्ध संकल्प है। यह किसी दूसरे का संकल्प था। मैं इस पर नहीं चल सकता। इसीलिये बार–बार ध्यान किया जाता है। इससे अपने मन की चाल (प्रवृति) का पता चल जाता है। हमारे मन का यह स्वभाव है। जब दूसरे जाति के मन का संकल्प आयेगा, तो दूसरी शैली का होगा। इससे साधक को पता चल जाता है, कि यह दूसरे का संकल्प है। इस प्रकार साधक उससे बच कर निकल जाता है।

"ताहि मारि मारूत सुत वीरा।
वारिध पार गयो मति धीरा।"

यह है अन्तर्जगत के साधकों का बरबादी से बचने का तरीका। फिर साधक ज्यों–ज्यों उन्नति करता जाता है, त्यों–त्यों बाहर उसकी आभा, उपलब्धि दृष्टि गोचर होने लगती है–

"तहाँ जाइ देखी वन सोभा।
गुंजत चंचरीक मन लोभा।।"

वन की शोभा का आशय है, बाहर की आभा। साधक अन्दर–अन्दर उन्नति करता जा रहा है उसकी मान्यता बढ़ती जा रही है। सुन्दर लगने लगा, मैग्नेट काम करने लगे, लोग उसके व्यक्तित्व से खिंचने लगे, तथा आकर्षित हो कर साधक की सेवा हेतु आने लगे। जब साधक और गहराई में गया और प्रसुप्त हुआ। अरे, बाप रे बाप! यह आसक्ति रूपी लंका की जड यहां तक घुसी है। इसे यहां से निकालना पडेगा। कारण शरीर के अन्दर भी इसके अंश हैं। यह आसक्ति अन्दर प्रवेश करती जाती है। गोस्वामी जी ने यह जो सोना शब्द लिया है, बहुत सोच समझ कर लिया है। सर्वोच्च स्तर की समझ या पदार्थ उन्हें मिलता है वहां सोने का प्रयोग कर देते हैं। क्योंकि सोने का महत्व सबसे बड़ा है। साधक ने कितना डुबकी लगाया। स्थूल में प्रवेश कर, सूक्ष्म में प्रवेश कर गया। अब कारण शरीर में प्रवेश कर गया और उससे मूल कारण का पता लगा **वह** लिया। जब यह कारण शरीर की आसक्ति छूट जाय, तो फिर वह अलौकिक मिलता है। यह मुकाम है

जिसे कि साधक को पाना है। हमारे तुम्हारे अन्दर भी हनुमान ही तो काम करेगा। तो जब हम सूक्ष्म शरीर पार करने लगते हैं। तो नाना प्रकार के पूर्व परिचित लोग हैं वे सोचते हैं हमारे विषय में उल्टा पुल्टी। तो वो जो उनके संकल्प हैं, और उन्हें हम नहीं समझ पाते तो झट हम उनके शिकार हो जाते हैं। जिसके मन में बुरे संकल्पों का असर नहीं होता वह हनुमान है। ''ताहि मारि मारूत सुत वीरा''

इसका आशय है ऐसा साधक विषय को मन से हटा कर आगे निकल जाता है। किसी प्रकार की बुराई पास आ जाय तो उसका त्याग कर देना चाहिये। अब एक शरीर की साधना रह गई, जिसको कारण शरीर कहते हैं। तीन गुण तीन अवस्थाओं से पार जाना है, और ध्यान में बैठकर क्रिया हो रही है। जैसे आकाश की तरफ हमें जाना है और ये पदार्थ हमें घेर रहे हैं कि हम पदार्थों में लीन हो जायं और आकाश में यदि हम पहुंच जायेंगे तो वहा कोई पदार्थ है नहीं। आकाश को वायु सुखा नहीं सकती अग्नि जला नहीं सकती अस्त्र शस्त्र काट नहीं सकते। क्या काटेगा, कुछ है ही नहीं। इसलिये हमें ऐसे रहना है, जीना है, आकाशवत होना है। ऐसी शैली से अभ्यास करना है, कि तुम दुनिया में रहते हुये भी अलग रहोगे। पदार्थों में नहीं रहते। हम शरीर से अलग हैं। भगवान से प्रार्थना करो कि यह स्थान हमें दे दें। हम आकाशवत हो जायं। तो इस शैली से सूक्ष्म शरीर से भी हनुमान सकुशल निकल कर अपनी साधना की युक्तियों से माया से अलग हो जाते हैं। अब कारण शरीर की ओर चलो। कारण शरीर सबका मूल कारण है। संसार कार्य है, कारण ईश्वर है। जैसे सोने के गहनो में कंगन और कर्ण फूल, हार इत्यादि गहने अनेक रूपों में कार्य हैं और कारण सोना है। इसी प्रकार ईश्वर कारण है, और संसार कार्य है। ईश्वर सबसे बारीक मालिकक्यूल है, और वहां सबके संस्कार जमा हैं। जो हमने कमाई की है, इन राक्षसों को भर दिया है इन दुर्गुणों को, और सांसारिक विचार धारा, विषय की कल्पना, खाने की कल्पनायें, भोग करने की कल्पनायें, सुन्दरता की, कल्पनायें, धनी होने की– इन सब तरह की कल्पनाओं के बीज जमा हैं। तो जो मान का हरण करने वाली वृत्ति रूपी हनुमान है। ध्यान में वहां पहुंच जाती है। और उनको देख रही है, कि ये हैं बडे भारी बलवान। इस तरह से जब वह आगे बढता है, तो लंकनी मिली। संसार में जो लव लगी है, वह है लंकनी। जब हम इसमें लव लगाये हैं, तभी ये बढ़ रहे हैं। सुरसा शरीर की आसक्ति। सिंहिका सूक्ष्म शरीर की आसक्ति और लंकनी कारण शरीर की आसक्ति। तो वह सूक्ष्म से सूक्ष्म हो तो जैसे का तैसा बनेगा। तब काम चलेगा। इसलिये हनुमान ने बहुत बारीक रूप बनाया स्थूल शरीर के स्तर की क्रियाएं सभी के समझ में आ जाती हैं। लेकिन मन के अन्दर की सूक्ष्म गति विधियां सबकी समझ में नहीं आतीं। तो ये स्थूल की सुरसा और सूक्ष्म की सिंहिका तो जीत ली गयी। जो सबसे बारीक विषय की आसक्ति है, वह लंकनी वहाँ लगी है, कारण शरीर में। तो इस ढंग से जब हनुमान बहुत बारीक बन कर आगे चले, तो उससे भेंट हुई। जब चित्त को पकड लेते हैं। तो वह कितनी बारीक और बलवान है, तो भी एक मुठिका में डगमगा गयी, और खून का बमन हुआ। तो यह लंकनी वहाँ की मूल कुंजी है। तो जब शुद्ध वैराग्य वाला साधक इसे मारेगा तो समझ लो, विजातीय पार्टी का अब राक्षसों का, नाश होगा–

''विकल होसि जब कपि के मारे।
तब जानेसि निसिचर संहारे''।

यह मुझे ब्रह्मा ने पहले ही वरदान दिया था। अब देखो किसी को जरा सी चोट लगती है, तो लोग अस्पताल ले जाते हैं। डाक्टर वैद्य के पास ले जाते हैं और लंकनी की हड्डी पसली जबडा टूट गया, मुँह से खून की कै होने लगी और उसे कोई अस्पताल नहीं ले गया। और उलटे खुश है, कहती है–

''तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग।।''

वह सतसंग कर रही है। अस्पताल तो कोई ले नहीं गया। तो भाई, इस तरह से यह बाहर की बात है, ऐसा तो हम मानते नहीं हैं। इसलिये यह अन्दर की बात है। कारण शरीर की बात है। जहाँ संकल्प ही संकल्प रहते हैं। जहां सजातीय–विजातीयों का युद्ध होता है। तो कंम्पोजीशन करने में बाहरी पदार्थों को ले लिया जाता है, प्रतीक रूप में। कथानक और घटनाओं के स्थूल चित्रों से, अन्दर की–मानस की सूक्ष्म बातों को महात्मा लोग संसार के लोगों को समझाते हैं। क्योंकि स्थूल जगत के पदार्थों में रमण करने वाली बुद्धि से मनोजगत की बारीक बातें पकड़ में नहीं आतीं। अध्यात्म की दुनिया इस बाहर की दुनिया से थोड़ा अलग ढंग की है। उसमें प्रवेश पाने के लिए साधन–प्रक्रिया को समझना पड़ेगा और उस पर अमल करना पड़ेगा।

- साधना का सूत्र–समर्पण
- लंका–दहन
- मधुवन के फल
- वैराग्य हनुमान
- उमा राम स्वाभाव जेहि जाना

राम लीला में जैसे राम लक्ष्मण बना देते हैं लड़कों को, सीता बना देते हैं। तो फिर क्या वो बने ही रहते हैं राम, लक्ष्मण, सीता? राम लीला करके, फिर वही लड़के। जैसे गांवों में छोटी छोटी लड़कियाँ होती हैं, तो माई दाइयों से सीख लेती हैं और फिर गुड्डा–गुड़िया बना लेती हैं। खेल खेल में उनकी शादी रचाती हैं। बारात गाना–बजाना, भांवर फेरा, खाना–पीना सब करती हैं। और फिर दो चार दस साल में जब बड़ी हो जाती हैं। उनकी शादी हो जाती है। ससुराल चली जाती हैं। तो फिर गुड्डा गुड़ियों का ख्याल भी नहीं आता। अब असली गुड्डा से भेंट हो गई। तो ऐसे ही यह दुनिया है। नकल को लेना पडता है, असल को पाने के लिए। और जब असल से भेंट हो जाती है, तो नकल छूट जाता है। और अगर असल में नहीं जाएंगे, नकल को ही पकड़े रहेंगे, तो उनसे काम नहीं चलेगा। गुड्डा–गुड्डी से, लड़का–लड़की पैदा नहीं होंगे। बिना असल के सृष्टि कैसे चलेगी? कैसे काम चलेगा?

इस तरीके से नकली नाटक से, असली जो अपने अन्दर की कहानी है–उसे लेना चाहिए।

अक्षय कहते हैं इच्छा को। यह कभी मरती नहीं है। आज हमारे अन्दर है कल तुम्हारे अन्दर होगी। इस तरह से यह अक्षय है। समाप्त नहीं होती, यह अजर अमर है। यह अक्षय कुमार (मोह रावण) का लड़का था। रावण कोई व्यक्ति नहीं। रावण कहते हैं, रोने वाले को। रोना शब्द से रावण बना है। किसके लिए रोता है? पैसा के लिए, हाय पैसा, हाय पैसा। धन बढ़ जाय, मकान हो जाय, यह हो जाय, वह जो जाय। लड़का–मेरा, बाप मेरा, लाठी मेरी, मकान मेरा। मोह कहता है, मेरा–मेरा–मेरा। प्रेम कहता है तेरा–तेरा–तेरा। दोनों अलग–अलग हो गए। प्रेमाभक्ति जिसको है, वह कहता है, हे भगवान! यह सब आपका है। तेरा सब कुछ है–मेरा कुछ नहीं है। और जब मोह का साम्राज्य हो जाता है, तो कहता है–सब मेरा है। यह दुर्योधन मोह का रूप है। अर्जुन प्रेम का रूप है। भक्ति जब आ जाती है, तो वह कहता है, सब तेरा है– जो भी है वह तेरा है। जो भी मिलता है उसे वह भगवान का मानकर लेता है। तो फिर भगवान उसे चाबी सौंप देते हैं, कि लो, जो तुम करोगे ठीक है।

और जो कहता है– सब मेरा है, तो भगवान दूर हट जाते हैं। कहते हैं, यह तो अपने भरोसे है–अपना कर लेगा। जैसे छोटे–छोटे बच्चे होते हैं, तो माता–पिता उन्हें गोदी में लिए रहते हैं। पालते रहते हैं। फिर कुछ बड़ा होता है, बैठने लगता है, फिर चलने लगता है। सीढ़ी से उतरने – चढ़ने लगा। तो माता–पिता खूब खुश होते हैं। कहते हैं आज बबुआ सीढ़ी से उतर गया। खूब खुशी होती है। तो अब वह लड़का अपने भरोसे होने लगा–तो माता–पिता की जिम्मेदारी कम होने लगी। पहले पूरी उन्हीं की जिम्मेदारी थी। तब वह लड़का भक्त के समान था, जब नहीं चल पाता था। अब हो गया ज्ञानी, जब सब जानने समझने लगा, संसार की बातें। तो संसारोन्मुख हो गया–अपने आप अपना सब करने लगा।

तो फिर माता–पिता उसको उसी के भरोसे छोड़ देते हैं। उससे मतलब नहीं रखते। जब छोड़ देते हैं, तो फिर भर–भटाते हैं। पड़े रह जाते हैं–

पड़े के पड़े रह गए,
खड़े के खड़े रह गए,
मरे के मरे रह गए,

इसलिए यह बड़ी भारी बीमारी है। जो कुछ है, सो तोर– यह जो धारणा है, यह बड़ी उत्तम धारणा है। हमारा कुछ नहीं। देखिए, कृष्ण भगवान के प्रयत्न के बाद भी जब युद्ध नहीं रोका जा सका। एक ही परिवार के दो भाइयों के लड़कों में युद्ध हुआ। जब नहीं माने तो कृष्ण ने सोचा, अब होना ही है। तो हो जाने दो। बुलाया अर्जुन को भीम को–कि भाई अब तुम ऐसा करो, कि युद्ध ही कर डालो। दुनिया में है क्या–पैदा होना, मरना–यही तो है। तो अब युद्ध करो। तो इसमें मुझे भी शामिल होना पड़ेगा। तो भाई, एक ओर मैं रहूँगा, और एक ओर मेरी सेना रहेगी। क्योंकि तुम दोनों मेरे भाई हो। एक दिन गया दुर्योधन कृष्ण के यहाँ, वह सो रहे थे। जाकर उसके सिरहाने बैठ गया–सोचा अहीर ही तो है। उसके पीछे अर्जुन गया। वह नीचे पैताने बैठा–दोनों सहायता मांगने ही गए थे। दुर्योधन बलवान था, अभिमानी था, इसलिए सिरहाने बैठा। अहंकार था इसमें। सोचा, इस कृष्ण के पैताने मैं कैसे बैठू? अरे! मैं असली क्षत्रिय हूँ, यह ग्वाला तो नकली क्षत्रिय बना है। कहते हैं–भगवान है। अगर भगवान ही होगा, तो क्या कर लेगा? तो जैसे ही अर्जुन बैठा था, कि श्रीकृष्ण जगे, और सामने अर्जुन को देखा, बोले–आ गए अर्जुन! हां तो, बोलो भाई, तुम क्या मांगते हो? तो दुर्योधन बोला, अरे! तुम दोनों बेइमान हो। मैं पहले से आया हूँ, पहले अधिकार मेरा है। श्रीकृष्ण ने कहा–हॉ भाई, तुम पहले आए। तो अवश्य तुम से पूछना पड़ेगा। हां, हां बताओ, क्या मांगते हो–मेरी सेना को, अथवा मुझको? दुर्योधन ने कहा मुझे सेना चाहिए। तुम्हें लेकर वहॉ रणभूमि में नचाना तो है नहीं। मुझे तो युद्ध करना है। मुझे सेना चाहिए। कृष्ण ने उसे हाँ कर दिया। अब अर्जुन से पूछा। बोला भगवान! हमें तो लड़ना है नहीं। थोड़े दिन का जीवन है–भिक्षा का अन्न खाकर व्यतीत कर लेंगे। राज्य लेकर क्या करेंगे? हम तो आपको ही चाहते हैं'–भगवान का भजन करना चाहते हैं। हमें भगवान चाहिए। उसी को पाने की युक्ति बताइए–बस और मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। सेना में क्या रखा है? जितनी कलाएं हैं, वह तो यहीं हैं, कृष्ण के पास। तो फिर बस हो गया। पितामह भीष्म तो है भ्रम। भ्रम का निवारण तो एक क्षण में कर देगा कृष्ण। यह कला तो उसके पास है। सेना से क्या होगा। देखो, जब महाभारत हो रहा था तो भीष्म अद्वितीय योद्धा था, दस हजार लोगों को युद्ध में रोज मारता था। कोई उसे जीत नहीं पाया। तो पांडवों ने सोचा अब क्या करें? उनको तो कृष्ण का आश्रय था। जब दस रोज हो गए–तो कृष्ण ने एक दिन पूछा युधिष्ठिर से, कि भाई आपकी सेना तो समाप्त होने को आ गई है, युद्ध कैसे जीतोगे? तो अब कोई कुछ न बोले। कृष्ण बोले, आखिर यह युद्ध, थोड़े से बचे सैनिकों के भरोसे तो जीता नहीं जा सकेगा? तुमने किसके भरोसे यह युद्ध रच दिया? कहाँ गई ताकत? तो बोले, पितामह भीष्म के सामने कोई उपाय नहीं काम कर पा रहा है। तो भाई यह साधना भी युद्ध ही है। इसमें मरना पड़ेगा, जीव लगाना पड़ेगा, गर्दन देना होगा। अगर ऐसा नहीं कर सकते, तो किसके मत्थे भजन करना चाहते हो? भजन ऐसे थोड़े ही है। साधना अगर करनी है, तो समर्पण करना पड़ेगा। जो कहा जायगा वह करना पड़ेगा। गुरू का कहना करना है, गाइड का कहना करना है, तब जाकर काम चलेगा। तो समर्पण तो था ही उनका। तो फिर कृष्ण ने कहा, अर्जुन, भीम तुम सब जाओ पितामह को प्रणाम करके आओ। गए प्रणाम किए। तो

भीष्म ने पूछा–कहो धर्मराज! कैसे आए? तो बोले आपको प्रणाम करने आए थे। तो ठीक है–आशीर्वाद दिए, 'विजयी भव।' लौट आए। कृष्ण ने पूछा, क्या आशीर्वाद दिया पितामह ने? तो बताया कि 'विजयी भव' का आशीर्वाद दिया है। तो कृष्ण ने कहा, जब स्वयं पितामह ही दीवार की तरह खड़े हैं उधर, तो कैसे विजय होगी। जाओ, उनका आशीर्वाद उन्हें लौटा करके आओ। गए फिर से भीष्म के पास। उन्होंने पूँछा कैसे आए? तो युधिष्ठिर ने कहा पितामह! आप हमें यह जो विजयी भव का आशीर्वाद देते हैं– उसे वापस ले लीजिए। क्योंकि आपके सामने, हमें विजयी तो होना नहीं है। आप इतने बड़े महापुरुष हैं, हम नहीं चाहते कि आपकी वाणी झूठी सिद्ध हो। भीष्म ने कहा, ओ! मैं समझ गया। अपने रथ में एक स्त्री बैठा कर ले आना। बस, मैं धनुष वाण रख दूँगा। फिर जो तुम्हें करना हो करना। तो इस तरह से इसमें, ऐसी–ऐसी इमेंसीपेशन घुसी पड़ी हैं। ये सब जब हम साधना करते हैं, तो हमारे अन्दर मिलती जाती हैं। भीष्म कोई व्यक्ति नहीं हैं। भ्रम ही भीष्म है, द्वैत का आचरण, द्रोणाचार्य है। मोह दुर्योधन है, दुर्बुद्धि दुश्शासन है। यह महाभारत है। यह तो साधक के अन्दर, अनवरत चल रहा है, ऐसे इसको लेना पड़ेगा।

'सिर फूटे चाहे माथा, म्हाने तो हामी भर दई पंडित जी!'

अब चाहे सिर फूटे चाहे माथा, मैंने तो भगवान के भजन के लिए हामी भर दी–स्वीकार कर लिया है। अब हम हटेंगे नहीं। जो साधक ऐसे दृढ़ता से चल पड़ता है, तो मंजिल सरल हो जाती है। बुराइयाँ धीमी पड़ जाती हैं–उधर हड़कम्प मच जाता है। माया त्राहि–त्राहि करने लगती है। और जो कच्चा है, कमजोर मन का है, हिम्मत नहीं बांधता, बेईमान होता है–उसके लिए यह चढ़ाई और कठिन बन जाती है। चढ़ नहीं पाता, चढ़ाई के ऊपर।

विभीषण का घर नहीं जला। तो विभीषण तो बहुत बारीक चीज़ है। उसमें क्या जलेगा। वह कहने में आता नहीं। कवियों ने अपनी शैली से बना लिया है। विभीषण तो जीवात्मा है। आत्मा तो अकल है, अनीह है, अनंत है, एकरस है। उसको आग जला नहीं सकती–हवा सुखा नहीं सकती। यह आकाशवत है। आकाश से भी कहीं ज़्यादा बारीक है। आकाश से बारीक महत्तत्व, महत्तत्व से बारीक प्रकृति, प्रकृति से बारीक आत्मा है। उसका नाम है विभीषण। वह है ताकत का पुंज। इन सब शरीरों के अन्दर है–वह आत्मा, वह कैसे जलेगा? शरीर मर मिट जाते हैं–वह नहीं मरता। वह परमात्मा में लीन रहता है। अब यह कैसे काम करता है? जैसे हारमोनियम बाजा होता है। उसमें हवा के लिए पर्दा बनाते हैं–अंदर उसमें छेद कर देते हैं। हवा उन छेदों से निकलती है, तो आवाज़ होती है। ऐसे यह बना हुआ है (शरीर) आटोमैटिक। पृथ्वी जल, वायु, अग्नि, आकाश इनसे मिलकर बना है। और इनमें जो यह प्राणवायु नाभि में रहती है प्राणवायु श्वांसा में। उदानयायु कंठ के ऊपर काम करती है। अपान वायु गंदी वायु को निकालता है। और व्यान ऐसे यह पांच वायु हैं। इन्हें पाँच प्राण भी कहते हैं। तो यह आत्मा, प्राण वायु को अपनी इनर्जी देकर, शरीर में इसके साथ काम करता है। और जब यह प्राण शरीर को छोड़ देता है, तो वह अपनी जगह परमात्मा में लीन रहता है। और यह कहीं मरता या जाता नहीं है। न कोई मरता है, न कोई आता है, न कोई जाता है। इसलिए इसके घर को तो कोई जला नहीं सकता। जलने वाला वह पदार्थ है ही नहीं। जलने वाले तो पदार्थ यह–छिति, जल, पावक, गगन, समीर हैं। आत्मा तो जलेगी नहीं।

हनुमान कहते हैं विरक्ति को। यह वृत्ति जब अन्दर पहुंच जाय। और मोह कहते हैं रावण को। शरीर के अंदर जितने हारमोंस हैं–जितनी इंद्रियाँ है, उनमें एक–एक देवता बैठा है। सब उसकी हाजिरी में रहते हैं। शरीरों पर कब्जा कर लिया है, मोहरूपी रावण ने। और

आत्मा का कहना वह मानता नहीं। आत्मा है विभीषण। वह परवश हो गया है। पड़ा है, एक मंदिर में–

''परवश जीव स्ववस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता।।

यह आत्मा, जब सबकी एक मालूम पड़ने लगे, ऐसे हम हो जायं। यह हमें महसूस हो जाय कि अब हम सब में एक हो गए, तो ईश्वर की प्राप्ति होती है। और जब तक अलग अलग है, तब तक वशीभूत रहना पड़ेगा। मोह–रावण के आधीन रहना पड़ेगा।

तो यह जो सुन्दर काण्ड का प्रसंग है–हमें अपने में लेना है। हमारी सुरति में विरक्ति का भाव छा जाय, यही हनुमान है। आत्मा की शक्ति है–सीता। जो उसी में रहती है–केवल विभीषण की जानकारी में है। वहां पर वह ताकत बैठी है। वे लोग (विजातीय), उसका उपभोग कर नहीं सकते। ये पदार्थ जितने हैं, इनको भोगने वाले जो हैं, वे ईश्वर को जान नहीं सकते। वह ईश्वर का दूत है–वैराग्य। जो राग का नाश करने में लगा हुआ है। अपने अंतःकरण की विरक्ति वृत्ति, आसक्ति को मिटाने में लगी है।

अब इसमें पूंछ कहते हैं सूक्षबूझ को। जब यह बढ़ गई तो फिर–बाढ़ी पूंछ कींह कपि खेला। तब वैराग्य अग्नि से शरीर की आसक्ति रूपी लंका को जला दिया। हनुमान ने सूक्ष्म रूप बनाया था–इसका यही आशय है–वैराग्यवान जो साधक होते हैं, वे महात्मा, शरीरासक्ति से हट जाते हैं–एकाहार, उपवास आदि से क्षीण हो जाते हैं–इस तरह से वैराग्य ही शरीर की आसक्ति को जला डालता है। और फिर शरीर की गहराई का साधक पता लगा लेता है। कि कितनी क्षमता है इनमें, कितने बलवान है ये (विजातीय)। इच्छाओं का नाश कर दिया। रावण का छोटा लड़का। छोटा इसलिए कहा कि इच्छा हमारे अन्दर पहले, छोटे रूप में जागृत होती है। वैराग्य ने उसे मार दिया। फिर कामरूपी मेघनाद है। उसने ब्रह्मास्त्र से बांध लिया। ब्रह्मास्त्र क्या है? यह सांसरिक नियमावली, ही ब्रह्मास्त्र है। ऐसे करना चाहिए, ऐसे नहीं करना चाहिए। ऐसे करेंगे, तो ऐसा यह ठीक नहीं है–यह जो नियमावली है, इसमें बंध गए। इसे संसार की भाषा में कहते हैं, विधि–निषेध। और हनुमान को कभी–कभी, सांसारिक मर्यादाओं में स्वेच्छा से बंध जाना पड़ता है, अपने काम बनाने के लिए।

मोहि न कछु बांधे कै लाजा। कीन्ह चहउं निज प्रभु कर काजा।।

तो लंका दहन के प्रसंग को, ऐसे लेना चाहिए। हमें ईश्वरीय कार्य करना चाहिए–साधना करनी है। हमें इन कथाओं में मनोरंजन नहीं करना है। इस तरह से साधक अनेक उपायों से अपनी आसक्ति को खतम कर देता है, जब उसमें वैराग्य आता है। ईश्वर में प्रबल अनुराग की अग्नि से, इस लंका को जला देता है। और फिर–

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम, धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता के आगे, ठाढ़ भयउ कर जोरि।।

जाकर सीता के सामने खड़ा हो जाता है। माता, अब मुझे कोई पहचान दे दो। अब मैं जाऊंगा। यहाँ का सब रीति–रवैया मैने समझ लिया है, अब भगवान को यहाँ की खबर दे दूँ। अब आप चिन्ता न करिए, अब हम लोग आने ही वाले हैं। सीता से चूड़ामणि लेकर हनुमान वहां से आकर भगवान को सब खबर बताते हैं।

तो साधक को चाहिए, कि जो भी दिनभर में उसने किया है, ध्यान में, अपने इष्ट के सामने उपस्थित होकर, रिपोर्ट करे। कि भगवान मैंने जो भी अच्छे बुरे काम किए हैं, वे सब आपको समर्पित हैं। मैं कुछ नहीं जानता। मैने आपकी ही प्रेरणा से किया है। मैं आपके

प्रति सर्वभावेन समर्पित हूँ। मेरा इसमें कुछ भी नहीं है। सब आप ही करते–कराते हैं। हमारा मन विषय में गया या नहीं गया, यह आप जाने। आप ही इसे कंट्रोल करिये। इसे गाइड करिये, और मेरा जल्दी से जल्दी सुधार करिये। मुझे भगवान ही सबमें दिखाई पड़े। मुझे यह सब (संसार) न दिखाई पड़े। मुझे अब बर्फ न दिखाई पड़े। मुझे पानी ही पानी दिखाई पड़े। जिधर हम देखें, हमें परमात्मा ही परमात्मा, सबमें ओत प्रोत दिखाई पड़े। यह पदार्थ–जगत न दिखाई पड़े। हे भगवान! इस माया को आप समेट लीजिए और मुझे अपने स्वरूप का दर्शन कराइये। ऐसी प्रार्थना भगवान से करते रहना चाहिए, सदैव। और नहीं तो, शाम–सुबह ज़रूर करनी चाहिए। रोजाना लंका में आग लगाना चाहिये, बैठकर ध्यान में। और रोज प्रार्थना करना चाहिए। तो धीरे–धीरे परमात्मा सुन लेंगे। तो फिर ब्रह्मज्ञान रूपी बंदर चारों तरफ से इकट्ठे हो करके, संसार रूपी समुद्र में संयम रूपी सेतु बनाकर, आसक्ति की लंका में घुस जाएंगे, और ये राक्षस, जो विकारों के रूप में अन्दर भरे पड़े हैं। इन सबको मार–मार कर, खतम कर देंगे। तो फिर कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। शान्ति मिल जाती है।

'शशि मंडल से अमृत टपके पीकर प्यास बुझाता है। मेरूदण्ड की सीढ़ी बनाकर शून्य शिखर चढ़ जाता है।।'

यह, यहाँ पर (सिर या मूर्धा में) शशि–मंडल होता है, जब श्वासा का जप, आगे अजपा जप के रूप में होने लगता है, तब उस स्थिति में, यहाँ से अमृत निकलता है। जैसे खूब भूख लगी हो तो बढ़िया भोजन को देखकर मुंह में लार आ जाती है। उसको क्लोम रस कहते हैं। उसको योगिक प्रक्रिया में अमृतरस कहते हैं। यह तब मिलता है जब साधक भगवान का काम पूरा करने की स्थिति में आता है– साधना की उच्च अवस्था में जब श्वांस के जप से, ध्यान से, साधक के नाभिकमल, हृदयकमल और कंठ कमल खुल जाते हैं। और ध्यान के द्वारा, अजपा की स्थिति बन जाती है, तो फिर यह अमृत निकलने लगता है। इच्छा को मार दिया। आसक्ति की लंका फूंक दी। शक्ति–सीता का अनुसंधान कर लिया। तब वहां शशिमंडल से अमृत निकलने लगता है। इसे मधुवन कहते हैं। इसके फल वही खा सकता है, जो भगवान का काम पूरा कर लेता है।

जो न होत सीता सुधि पाई। मधुवन के फल सकहिं कि खाई।।

इसी को कहीं अमृत कहा गया है, कहीं मधुवन के फल कहा गया है–दोनों एक ही बात है। और यह सुरति, सुग्रीव है। यह राजा है। सुरति के होने से ही यम, नियम, त्याग, वैराग्य, अनुराग, विचार आदि बंदर सब इधर सहयोग करते हैं–भगवान के काम में, साधन भजन में। सुरति भगवान से जुड़ गई, इसे भगवान पकड़ में आ गए, तो सब काम बन गए। कर्म रूपी बालि मरा, सीता का पता लग गया, लंका जल गई। और जब यह सुरति भगवान में नहीं लगी थी, तो क्या दशा थी–सुग्रीव की? बालि रूपी कर्म के मारे, भागा–भागा फिर रहा था। जान बचाना मुश्किल था। सुग्रीव और राम की मित्रता हनुमान ने कराई थी ना? वैराग्य अगर आ गया हमारे अन्दर, तो सुरति भगवान से जुड़ जाती है।

जोरी प्रीति दृढ़ाइ।

इसलिए सबके हृदय में जो घटित हो रहा–वही है, यह रामायण। इसलिए इसे कहते हैं–रामचरित मानस। राम के चरित्र मन से। सबके मानस में अन्तःकरण में जो चरित्र हो रहा

है, वह राम कहानी है–इसमें। तो होना यह चाहिए कि बड़े–बड़े दिमाग वाले आदमी इसमें लगें, और खोज करें–वे लोग, जो दूसरे कार्यों में न फंसे हों, तो फिर इसका रहस्य निकल सकता है।

अब जैसे मिलेट्री में विजिलेंस स्कार्ट होता है, तो उसका कोई एक दो आदमी दुश्मन का पता लगाने जाता है, और वह टोह लेकर, जो रिपोर्ट देता हैं, उसी के अनुसार तैयारी होती है, आगे की। टोह लेकर हनुमान आ गए, रिपोर्ट दे दिया। अब उसे कार्य रूप में परिणत करना है।

तो अगर साधक का वैराग्य, काम कर गया, और भगवान के भजन–साधन करने की बात मन में बैठ गई। तो फिर मन को लगाते–लगाते, धीरे–धीरे विषयों से मन को हटाते–हटाते, बड़ी मुश्किल से भगवान में लगता है। मन को चिंतवनो का नशा रहता है–इधर भागा, उधर भागा। रुकता ही नहीं। तो साधक को भजन में बैठ जाना चाहिए। और ध्येय अपने इष्ट को बना ले, और ध्याता मन के अन्दर जो विरक्ति है वैराग्य, उसे इतना सूक्ष्म बनावे, कि वह किसी की पकड़ में न आवे।

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहिं चलेउ सुमिरि नरहरी।।

सूक्ष्म नहीं करेंगे। तो किसी के चिंतवन, उसे पकड़ लेंगे। आगे फिर जीवात्मा रूपी विभीषण से भेंट किया और बताया, कि मुझे भगवान की शक्ति–सीता का अनुसंधान करना है। परमात्मा की भक्ति करना है। मेरा मार्गदर्शन करो। तो फिर–

जुगुति विभीषण सकल सुनाई।

इस तरह से अगर साधक की भेंट अंदर मार्गदर्शक से हो जाय, तब सीता का पता लगे। विभीषण (जीवात्मा) से भेंट तो कर नहीं पाते लोग। भोजन से भेंट होती है। कपड़ों से भेंट होती है। काम से भेंट होती है। काम रहेगा, तो विषय–चिंतवन से बचा रहेगा। कहते हैं कि–

आलसी का सर। शैतान का घर।।

कहा जाता है कि–

बकरी पाती खात है, ताहि नचावै काम।
हलुवा पूड़ी खात जे, उनके रक्षक राम।।

आजकल आदमी दूध मलाई, मिनिरल्स, प्रोटीन, विटामिन और क्या–क्या खाता है। उनका मन कैसे विषय में न आएगा? जबकि भेड बकरी जो पेड़ों की पत्ती खाकर पेट भरते हैं–उन्हें भी काम का आवेश रुकाए नहीं रुकता। तो ऐसी स्थिति में, मन को रोकने का यही एक उपाय है, कि भगवान में अनुराग पैदा हो जाय। उधर ही मन लगा रहे। हमारा मन बाहरी विषयों में न जाय। सुरति भगवान में ही लगी रहे। उसी का नशा चढ़ा रहे। एक शुरूर छाया रहे–कि हमारा कर्तव्य है, भगवान का भजन करना। हमारे अंदर जो विकार पैदा हो गए हैं, इन्हें समाप्त करना–यही हमारा कर्म है। इसे चाहे भजन–साधन कहो, चाहे कर्तव्य कहो, चाहे युद्ध कहो, एक ही बात है। तो हमारा ध्येय यह बन जाना चाहिए, कि हमारा मन विकारों से हटे, और भगवान में लग जाय। देखो जब सीता का पता लगाकर हनुमान आ गए, तो राम ने क्या कहा था? कि हे हनुमान, मैं तुमसे कभी उऋण नहीं हो सकता। तुम्हारे इस उपकार का बदला नहीं चुका सकता–

प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।

राम ने कहा देवता ऋषि, मुनि संसार में जितने भी हैं, उन सबसे प्रिय मुझे तुम हो। मैं तुम्हारा ऋणी हूँ। भगवान ऋणी हो गए। किसके? हनुमान के। हनुमान अगर एक बंदर को मान लिया जाय, तो बंदर भगवान से बड़ा हो गया। वह व्योहर हो गया और भगवान ऋणी हो गए। अगर हनुमान को एक आदमी मान लिया जाय, तो वह अजर–अमर हो गया और भगवान से बड़ा हो गया। ऐसा नहीं। हनुमान कोई बंदर नहीं। हनुमान कोई आदमी नहीं। हनुमान का मतलब है। अभिमान का जो हनन करे। वह है, राग का त्याग–वैराग्य। अंगद, अनुराग है। ये गुण हैं–सद्गुण, जो हमारे तुम्हारे किसी के पास आ सकते हैं। जैसे गीता पढ़ते हो तुम लोग। उसमें आता है कि जब भगवान कृष्ण ने अर्जुन को अपना स्वरूप दिखाया, तो बोले–हे अर्जुन। मैंने तुम्हें जो अपना सही स्वरूप दिखाया है, उसे दूसरा कोई देख नहीं सकता। न तो इसके पहले कभी किसी ने देखा। और न भविष्य में कभी कोई देखेगा। तो फिर बस, अर्जुन ही अर्जुन रह गया। कोई और पहले न देख पाया था, और न अब कोई देख पाएगा। तो ऐसा अर्थ लेना ठीक नहीं रहेगा। अर्थ यह लेना चाहिए कि अर्जुन, अनुराग को कहते हैं। अनुराग तुम्हारे–हमारे सबके हृदय में हो सकता है। जिसके हृदय में भगवान के प्रति अनुराग आ जाय, वही भगवान के दर्शन कर सकता है। ऐसे ही हनुमान को लेना पड़ेगा जब हनुमान से ऐसा कहा राम ने, तो हनुमान चिल्ला पड़े–भगवान। त्राहिमाम्, त्राहिमाम्। मेरी रक्षा करो। भगवान मेरी रक्षा करो। क्योंकि अगर स्वीकार कर लेते, कि हाँ ठीक कहते हैं आप, तो ईगो की बात आती है, इसलिये चिल्ला पड़े क्योंकि हनुमान का मतलब है, जहाँ ईगो या अभिमान न हो। और अगर अभिमान आ गया, तो निरभिमानता की स्थिति मर जायगी–इसलिए वहाँ–साधक के हृदय में–जो निरभिमानता है, वह हनुमान है। इसलिए चिल्ला पड़े–बचा लो, बचा लो। ऐसे एडजस्टिंग की क्षमता होनी चाहिए, साधक में।

सुरति जब भगवान में लग गई, तो वह हटे न–यह प्रयास होना चाहिए। लेकिन जब तक राम के सही स्वरूप की समझ नहीं बैठ जाती। दिल–दिमाग में, राम का सही स्वरूप, हमारी समझ में क्लियर नहीं हो जाता है। तब तक यह मन बेइमानी करता रहता है। जब राम का सही स्वरूप पकड़ में आ जाता है, तो फिर मन विषयों में नहीं जाता है। और जब तक हमारे पूर्व जन्मों के पाप नहीं कट जाते हैं, जो मन को दौड़ा रहे हैं, वह मसाला भरा हुआ है, जो इस विषैली बैट्री को चला रहा है। तब तक यह मन, ईश्वरोन्मुख नहीं होता। और जिस समय ईश्वर के विचार, ईश्वर की पहचान ईश्वर हर जगह कैसे है–यह स्वरूप, जब समझ में आ गया और पकड़ में आ गया सही, और उसे नट, वोल्टों से कसकर, सही बैठा लिये, तब फिर यह मन नहीं जा सकता। फिर यह मन, नहीं जा सकता। यह मन, वहीं भगवान में लगा रहता है। फिर उसे चांस नहीं मिलता इधर–उधर जाने के लिए। क्योंकि जब सर्वत्र देख लिया जाता है, भगवान को तो मन जहाँ भी जाएगा, भगवान वहीं खड़ा मिलेगा। अगर वह ध्यान से, भजन से हटा, बाहर हुआ, तो वहाँ इसमें, उसमें जिस विषय में जाएगा, वहाँ भगवान को ही देखेगा। तो फिर हार मानकर बैठ जायगा। इसलिए हमें अपने आपका, इंलार्जमेंट कर लेना है–सर्वत्र बना लेना है। व्यापक बना लेना है। जब तक हम अपने को अलग–दूसरे को अलग, तीसरे को अलग देखते रहेंगे, तो फिर अनेकों में परस्पर संबंध बनेंगे। इसी का नाम माया है, और जब सब में एक को देखने लगे तो सम्बन्ध नहीं बनेंगे, तो माया मिट जायेगी। अभी तक हम इन्हें अलग–अलग बर्फ के ढेलों के रूप में देखते थे। अब ज्ञान की गर्मी से, ये सब पिघलकर एक परमात्मा रूपी पानी बन गए हैं। अब परमात्मा रूपी पानी के अलावा कुछ है ही नहीं। जब ऐसी धारणा बन गई, तो अब मन के लिए जगह नहीं रह गई। मैदान, जहाँ वह दौड़ रहा था, रह ही नहीं गया। अब परमात्मा में

रहेगा अगर किसी को, समुद्र में ले जाकर छोड़ दिया जाय, तो फिर वह कहाँ जाएगा, जिधर जाएगा, समुद्र में रहेगा। पानी ही पानी में तैरेगा। पानी के अलावा और है क्या वहाँ?

ऐसी समझ जब तक नहीं आ जाती, कि परमात्मा का ऐसा रूप है, ऐसा, खाका है, ऐसे वह काम करता है। वही कारण बनकर, कार्य को धारण किए हुए है। वही कार्य बनकर कारण को धारण किए हुए है। ऐसे अन्योन्याश्रय संबंध है इनमें। वह 9वीं क्लास की बातें हैं फिर दसवीं, बारहवीं की बातें हैं। ऐसे बढ़ते–बढ़ते चार छः सब्जेक्ट पढ़ने–पड़ते हैं–12वीं तक। शुरू में कई विषय पढ़ने पड़ते हैं। फिर बी.ए. में दो या तीन विषय रह जाते हैं। फिर एम.ए. में एक सब्जेक्ट रह जाता है। पी.एच.डी. में खाली एक टापिक पर थीसिस लिखी जाती है। इस तरह से सारी पढ़ाई पूरी होती है। साधना भी एक पढ़ाई है। इसका भी कोर्स पूरा करें, तो परमात्मा की समझ आ जाती है। तो फिर कितने बन्दर हैं अंगद, हनुमान, सुग्रीव, नील–नल–इनके कथानक बने हैं। यह सब यहाँ–वहाँ, प्रसंगों के रूप में भरे हैं टुकड़े–टुकड़े करके। ये सब बड़े–बड़े महात्माओं की साधना के अनुभव के आधार पर नाटकीय ढंग से बनाए गए हैं–समय समय पर।

अब जैसे शंकर जी हैं–हम बताया करते हैं कि शरीर अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब शंकर का है। यह शरीर का देवता है, इसका मालिक है। इसी प्रकार दक्ष को भी शरीर में चेतन का प्रतिबिम्ब माना गया है। इंद्रियों के भी देवता हैं इसी में। और भी देवी–देवताओं के कोश बने हैं। इसमें। वरुण, कुबेर, अश्वनीकुमार, इंद्र, यमराज और चन्द्र, सूर्य आदि–आदि।

हनुमान जी के जन्म की कहानी बनी है कि हनुमान की माता अंजनी ने बड़ी तपस्या की थी। जंगल में जाकर एक झोपड़ी चारों तरफ से बंद करके–एक छेद छोटा सा बना लिया, हवा आने के लिए। और उसी में भजन करने लगी। तो एक दिन उधर से शंकर जी निकले। तो कुछ गुनगुन सी आवाज सुनाई पड़ी। तो बोले कौन हो तुम। तो उसने कहा मैं अंजनी हूँ। यहाँ तपस्या कर रही हूँ। तो बोले कुछ मंत्र लिए हो कि ऐसे ही। तो अंजनी बोली मंत्र नहीं लिया। बोले, अच्छा लाओ कान, छेद के पास लाओ तुम्हें मंत्र देंगे। तो अंजनी ने एक बांस की पोली छेद में करके कान में लगाई। तो पंडित लोग कथा में बताते हैं, कि शंकर जी ने उसमें वीर्य डाला, जो कान के रास्ते अंजनी के गर्भ में चला गया और इस प्रकार हनुमान जी पैदा हुए। तो यहाँ अनुराग की प्रशक्ति के रूप में अंजनी है। ईश्वर के प्रति छोटी सी प्रेम की भावना से ही समय आने पर उसका बड़ा रूप वैराग्य रूपी हनुमान पैदा हो जाता है। जब वैराग्य पैदा हो गया। तो फिर कहते हैं हनुमान जी ने सूर्य को निगल लिया था। तो यह श्वासा ही सूर्य है। वैराग्य भाव साधक में आ गया तो श्वांसा में जप करके उसे खड़ी कर लिया, उस पर नियंत्रण कर लिया–यही सूर्य का निगलना है। फिर सारे देवताओं का आशीर्वाद मिल जाता है।

भगवान के अवतार की कथा कही जाती है, कि पृथ्वी पर जब बहुत पाप बढ़ गया, तो वह अकुला उठी, और गाय का रूप बनाकर देवताओं के साथ ब्रह्मा के पास गई। शंकर जी को लिया। सबने प्रार्थना किया तो भगवान प्रगट हुए। उनसे बताया इन लोगों ने कि इस पृथ्वी रूपी शरीर में, जो गो नाम इंद्रियों से बना है–इसमें दानवों का अत्याचार बढ़ गया है–विकार ही विकार भर गए हैं। देवता सब अरेस्ट हो गए हैं। स्वर्ग तक इन दानवों का अधिकार हो गया है। पाप का भार अब सहन नहीं हो पा रहा है। अब भगवान रक्षा करो। तो भगवान अवतार लेकर पृथ्वी का भार दूर करने का आश्वासन देकर चले गए। तब ब्रह्मा ने सब देवताओं से कहा कि–

'बानर तन धरि धरि तहं हरि पद सेवहु जाइ।'

इस तरह इसमें बड़ी भारी गणित लगाई गई है। यह गणित ही साधना है। इसी को सब वेद, पुराणों, कथाओं में समझाया गया है। इसी गणित को समझ लेने पर भगवान समझ में आ जाता है।

अब हनुमान को पवन–पुत्र भी कहते हैं और केशरी–माने जो सबसे जीत जाता है, उसके पुत्र हैं हनुमान। तो अब देखो हनुमान में कितनी क्षमता आ गई। शंकर की, पवन की, केशरी की और उधर सारे देवताओं की भी क्षमता उनके वरदानों के रूप में आ गई। इस तरह सारी क्षमता आ गई। लेकिन सबसे पीछे फिर एक कोई देवी ने आकर वर दिया, कि तुम्हें अपनी ताकत की याद न रहेगी।

तो यह सब बातें जो इन कथा प्रसंगों में बताई गई हैं, वे सब हमारे अंदर आती हैं। हमारा मन जब बुराइयों से ओत–प्रोत हो जाता है। विकारों से भर जाता है, तो फिर अकुला उठता है, कि शांति मिले–किसी तरह से। तब फिर उपाय निकलता है। देवताओं के अंश के रूप में, ये तमाम ब्रह्मज्ञान रूपी बन्दर–भालू, जामवन्त, अंगद, हनुमान, सुग्रीव सब आ जाते हैं–इसी शरीर रूपी धरा–धाम में। और फिर धीरे–धीरे भगवान भी आ जाते हैं। तो–

उमा राम स्वभाव जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना।।

इस तरह से जब भगवान की जानकारी हो जाती है, तब फिर भजन अनवरत होने लगता है। लेकिन इसके लिए हमें यह जो माया उन्मुख स्वभाव है, रहनी है, इसे ईश्वर उन्मुख करना पड़ता है। तो कैसे राम उन्मुख स्वभाव बन जाय? ईश्वर उन्मुख रहनी कैसे मिले हमें, महात्माओं की बताई हुई। समझ में तो आ जाती है। लेकिन स्वभाव में कैसे ढले? ईश्वर को हम जान जाएंगे, लेकिन उसमें रहनी कैसे मिले? वह अगर मिल जाय, तो दुनिया टूट पड़ती है। अगर क्षमता आ जाय। जैसे यह गहरा गड्ढा है, तो चारों तरफ से पानी इसमें चला आयेगा। तो इस तरह से क्षमता आनी चाहिए।

किष्किंधा कहते हैं कमर को। कमर कहते हैं आधार को, आधार कहते हैं शरीर को। तो इस काया रूपी किष्किंधा से टोह लेने के लिए बंदरों को भेजा गया। कि पता लगाना है–हमारी शक्ति को कौन चुरा ले गया है? कहाँ वह रहता है? उसकी कैसी ताकत है? कैसा क्या है–यह पता लगाना पड़ता है। यह सब पता लगाने के लिए हनुमान को भेजा जाता है। और चोरी–चोरी, हम भजन–ध्यान करते हैं। इस तरह टोह मिलने लगती है। धीरे–धीरे सब पता चल जाता है। पहले स्थूल शरीर के स्तर की साधना है। जब उसमें प्रवेश करता है, तो सुरसा मिल जाती है। यह माया की तरफ से वहाँ पहरेदार है। फिर उससे आगे जब सूक्ष्म शरीर की साधना में प्रवेश करता है, तो वहाँ सिंहिका मिल जाती है। माया की उस रक्षापंक्ति का तोड़कर कारण शरीर में प्रवेश करता है, वहाँ लंकिनी है–उसे भी मार देता है। तब फिर भेंट हो जाती है राम से–विभीषण से। जीवात्मा रूपी विभीषण राम का ही रूप है। क्षेपक कथाओं में इनका बड़ा विस्तार है। जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं। जो सबके शरीरों में जीवात्मा रूप से, ईश्वर निवास करता है वह है विभीषण। और विष्णु उस साधक की आत्मा है, जिसके ध्यान, भजन से कुंडलिनी जागृत हो जाय। परा में पहुंच जाय, रिद्धि–सिद्धि आ जाय, व्यापकता आ जाय। उस स्तर की अवस्था वाली आत्मा को, विष्णु कहते हैं। और राम

परात्पर ब्रह्म–जो सर्वत्र एक रस व्यापक, जो अनादिकाल से है, वह परमतत्व है राम। यह सुप्रीम डिग्री है। इसे कोई कोई पाता है। जो माया को लिए हुए भी, माया से अलग है। जो भलाई–बुराई दोनों को लिए हुए भी, इनसे ऊपर है। ऐसा परमात्मा है राम।

पद पाताल सीस अज धामा।
अपर लोक अंग–अंग विश्रामा।।

परमात्मा और उसकी माया सर्वत्र है। अब किसी के यहाँ (अंतःकरण में) रावण प्रबल हो गया है। किसी के पास राम का पक्ष सबल है। तो इस तरह दानव और देव, कौरव और पांडव, सजातीय और विजातीय, अच्छाई और बुराई, हंसाई और रुलाई, पैदाइश और मरण ये सब इन्हीं के नाम है। जब समझ आ जाती है, तो स्पीड आ जाती है, बताने में। और जो नहीं समझते, उन्हें दिक्कत आती है। बता नहीं पाते हैं।

तो जब साधक में साधना करने की तैयारी बन गयी। वैराग्य के जरिये टोह मिल गई और ध्यान के द्वारा जो समझ आ गई, अब उसी में अभ्यास शुरू कर दिया। कार्य में परिणत करना है, इसी शरीर के द्वारा। तो इस तरह से वह ज्ञान–ध्यान की साधना के लिए, स्पीड होनी चाहिए। तीव्र वेग चाहिए। और जो स्पीड नहीं ला पाते, उनके लिए, गुरू लोग बता देते हैं, शरीर स्तर पर सेवा। जो शरीर के द्वारा हेय धर्म होते रहे हैं, इन्हीं के परिणाम से, हमें यह कंडीशन मिली है। यह तो प्रत्यक्ष ही है। तो शरीर से किए गए पाप, शरीर के द्वारा सेवा करने से ही निवृत्त होंगे। और मन के द्वारा विषयों का चिंतन करते–करते जो विकार भर गए हैं, मन में उनके शमन के लिए भजन का विधान किया गया है। तो बस मन से भजन करना है, और शरीर से सेवा करना है। ये भजन और सेवा दोनों, एक दूसरे को मदद करने लगेंगे, तो साधक में सुधार आ जायगा। इसलिए सबसे बड़ी चीज़ है, कि साधना को नहीं छोड़ना है।

अब यह तो है, थ्योरिटिकल बातचीत। और जो हम ध्यान करते हैं, नाम जपते हैं, सेवा करते हैं। यह साधना है–प्रैक्टिकल है। इसी शरीर के लिए हम साधना करते हैं, इसी में हृदय के अंदर भगवान पैदा होते हैं। यही अवध है।

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिशि सरजू बह पावनि।।

उत्तर, अन्दर। यह श्वासा ही सरजू है। यह निरंतर प्रवाहित हो रही है। इसमें खूब नाम जपें। ऊपर जाती है तो रा, नीचे जाती है तो म। इसी में मन को लगा दें। तो फिर–

जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा।
मम समीप नर पावहिं वासा।।

जब श्वांस जप की सरजू–धारा में इस मन की सफाई हो जाएगी, तो भगवान के समीप पहुँचा जा सकता है। और कोई उपाय थोड़े ही है। और नहीं तो लम्बी कहानी छोड़ो, थोड़े में खतम कर दो। तमाम महात्मा साधना की पूरी बात ऐसे भी कह देते हैं। ऐसे ही किसी ने भजन बनाया है–

ससुरे से गौना उलटि चला नैहरवा।
बिना मात की लड़की जायी, तरकी पहिने हरवा।

बेसर पहिने मांग संवारे कंघी लीन्हे करवा।
निज लड़के को खसम बनाया छः धूनी का मड़वा।
प्यारी सखी सोहागन गावैं परिगे चकर भंवरवा।
सत्रह पांच पचीस सजा कै, सजगे चार कहरवा।
डोली–डोली फिरै भंवर में तीन धार का नरवा।
आठ चार के बीच घुमा के लइगे ससुर दुवरवा।
कह पुरूषोत्म पिया पायकै सोवै लागी कोरवा।

भगवान में लव लग जाय यही बिना माता की लड़की है। मन को सुधार ले यही मांग संवारना है। अच्छे–अच्छे कार्यों को हाथ में ले लें बुरे कर्मों का परित्याग कर दें। अपने लक्ष्य का ही–इष्ट का ही वरण करें, उसी को हृदय में पकड़ लें। यही अपने लड़के को पति बनाना है। काम क्रोध लोभ मोह मद मत्सर इन षट्विकारों को इनके विरोधी छः सद्गुणों से काटना, यही छै थूनी का मड़वा है। संसार ही ससुराल है, निवृत्ति पद या त्रिगुणातीत निर्गुण अवस्था (आत्मपद) ही नैहर है। संसार रूपी ससुराल से लौटकर आत्मपद रूपी नैहर में जाना है। अष्टधा मूल प्रकृति और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार त्याग करके, सत्य स्वरूप परमात्मा के द्वार पर पहुँच गई। और अपने स्वरूप में स्थित होकर शांत हो गई। तो इस तरह से एक ही पद में सब, वेद–शास्त्र की बात आ गयी। तो जो जानकार होते हैं, वे आलराउंडर होते हैं। उनको महावड़ा हो जाता हैं। अब दसवीं क्लास का लड़का बी.ए. की क्लास में बैठ जाय, तो प्रोफेसर की बात क्या समझेगा?

तो इस शैली ये जब सही आइडिया मिल गया, कि यह लक्ष्य है। यहाँ–यहाँ, ऐसे–ऐसे जाना है। तो अब प्रैक्टिकल साधना शुरू हो गई। चारों तरफ बंदर ही बंदर। ब्रह्मज्ञान की ब्रह्मज्ञान, मन–मष्तिस्क में भर गया है। हर तरफ ईश्वर मय विचार छा गए।

सियाराम मय सब जग जानी।

और पहले क्या था–

गो गोचर जहं लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।

अब वह माया रह नहीं गई। सही लक्ष्य मिल गया, सही साधन होने लगा। अब राइज हो गया साधक।

तो गोस्वामी जी ने एक ऐसा उपाय–यह मानस–रच कर तैयार कर दिया है, कि हर आदमी के अंतःकरण की यह कहानी है। एक कायदा है। एक नज़ीर है, एक डाकूमेन्ट (दस्तावेज) है, हमारे अन्तःकरण का। हर एक के अंदर लालसा है, कि हमको शान्ति मिले। हमें संतोष मिले, हमें जीवन का लाभ मिले, हमें ईश्वर की प्राप्ति हो। अब उससे छुटकारा नहीं मिलता, जहां फंस गए हैं–इस दुनिया में। संसार रूपी बर्फ है, परमात्मा रूपी पानी है। संसार यह आकार बन गया है, उसी पानी रूप परमात्मा का। यह हमारे इस काम आता है, यह खाने के काम आता है–इस प्रकार संसार के इन रंग, रूप, आकारों में फंस कर रह गया है, आदमी। इसमें ढल चुके हैं, हम। यह धारणा दृढ़ हो गई है। यह कन्टीन्यू हो गई है,

मान्यता। मानते चले जा रहे हैं, कि यह ऐसा ही है। इसे हमें खाना होता है। इसे हमें पहनना होता है, इत्यादि इत्यादि। परस्पर के संबंध व्यवहार, रीति–नीति, शरीर की क्रियाएं, पदार्थ सब हमें ज़रूरी नहीं गैर ज़रूरी हैं। जब प्रकृति हमें उठाना चाहती है, तो खाने की इच्छा नहीं रह जाती, कपड़े की ज़रूरत नहीं रह जाती, पैसा–धन दौलत सब पड़ा रह जाता है। कौन एसी ताकत है, जो अनिर्वचनीय, अपने को कहती है, कि मैं सर्वत्र हूँ एकरस हूँ, व्यापक हूँ, शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, अजन्मा हूँ। अविनाशी हूँ। और मेरे ही होने से सब कुछ हो रहा है। जो सबका कारण बना हुआ है। लेकिन देखते हैं, कि कार्य भी कारण का काम कर रहा है, और यह समझ में नहीं आ रहा है। इसलिए गोस्वामी जी के दिल दिमाग में यह बात आई। वह बहुत बड़े विद्वान थे। बहुत बड़े रिसर्च कर्ता, बहुत उच्च कोटि के मननकर्ता थे। तो उनकी समझ में इस संसार की अलौकिकता जैसे आई है, उसे सबके सामने रख दिया है–मानस के रूप में। कि भाई, मेरी इस इमेंसिपेशन को, अगर समझ में आ जाय, तो कार्य में ले लेना। इस आशय से लोक कल्याण के लिए उन्होंने इस रामायण की रचना की है कि लोग पढ़ेगें–सुनेंगे, और मेरी जैसी समझ उनमें भी आ जायेगी। यह समझ में आ जायगा, कि यह संसार बर्फ है, और ईश्वर पानी है। ज्ञान रूपी गर्मी दे देंगे, तो यह संसार रूपी बर्फ पिघलकर परमात्मा रूपी पानी बन जायगा, और अगर इच्छा रूपी ठंडी देंगे, तो परमात्मा रूपी पानी–संसार रूपी बर्फ बन जाएगा। और असली चीज़, नकली बनकर तैयार हो जायेगी, और इस मृगतृष्णा में हमारी प्यास जग जाएगी, तो फिर इससे कभी पिंड छूटेगा नहीं। तो यह जनरल एक बात है, जनरल एक कथन है।

तो भाई हमारे तुम्हारे सबके अन्दर जो आसक्ति है, वही लंका है। बिना बुलाए इसमें मोह रूपी रावण आकर बैठ जाता है। फिर उसकी मदद के लिए क्रोध रूपी कुंभकरण बन जाता है, काम रूपी मेघनाद तैयार हो जाता है। इच्छा रूपी अक्षय कुमार पैदा हो जाता है। इस तरह से ये सब दुष्ट तैयार हो जाते हैं। और ये सब हमें अपने साथ ले जा रहे हैं। जो ज्ञान, वैराग्य, विवेक है, उनका साथ हमारा छूट रहा है। ये सब निराकार हैं, दुर्गुण और सद्गुण। तो निराकार की पलटन जल्दी समझ में नहीं आती और साकार की पलटन, जल्दी समझ में आ जाती है। और इसमें निपुण हो जाते हैं। तो गोस्वामी जी ने कहा कि हमने जो समझा है, अपने ढंग से, यह उपाय हम आपके लिए छोड़े जा रहे हैं। तो उन्होंने हम लोगों के लिए जो उनके अनुयायी हैं, उनके पीछे जो हम सब चलने वाले हैं, हम सबके लिए बड़ी भारी दया करके, यह उपाय बता दिया है। अब हम लोगों का कर्तव्य है कि हम उनके बताए हुए उपाय को अपने ऊपर लागू करें। इस समझ को अपने में एडजस्ट करें। इस नज़ीर को अपने जीवन में उतारें। अब कैसे उतारें, यही चतुराई की बात है। यही है साधना, यही बदलाव, यही है भजन, यही है ईश्वर की प्राप्ति। उसे हम करें।

- रामेश्वरम्–सेतुबंध
- ध्यान का चित्र
- अनुराग – अंगद
- त्रिशंकु और सूर्यवंश
- नाम निरूपण–नाम जतन ते
- अहंकार से बचें

चित्त रूपी चाप तोड़ दिया जाता है। चित्त रुक जाता है। जो संसारोन्मुख था, ईश्वर उन्मुख हो जाता है। तो फिर यह शक्ति–सीता स्वीकार कर लेती है। फिर सब दुनिया बदल जाती है। पहले यह मन सर्प था, वह हंस हो जाता है। ईश्वर उन्मुख हो जाता है। और सीता मिल जाती है। अभी यह जो हुआ व्यष्टिगत था, अब समष्टिगत चित्त का समाधान करना है। तो फिर चित्रकूट आ जाता है, यहीं, शरीर में। और वहाँ जाना–आना नहीं पड़ा है, कहीं! और जब चित्रकूट आ गया। तो, फिर चित्त का निरोध करके कुंडलिनियां जगाता है। तो आगे जाकर कुंभज ऋषि से भेंट हो जाती है। वहाँ कुंभज का आशीर्वाद मिल गया। तो फिर पंचवटी मिल गई। छिति जल पावक गगन समीरा! इसमें रहने लगता है। साधना के हिसाब से कुछ और आगे बढ़ा। जैसे प्राइमरी में, प्राइमरी स्कूल में जाना पड़ेगा, हाईस्कूल पढ़ने के लिये, हाईस्कूल में जाना पड़ेगा। मास्टर अध्यापक दूसरे होंगे। इण्टर बी.ए. के लिये किसी कालेज में जाना पड़ेगा। पढ़ाई तो पढ़ाई है। ऐसे ही नाम बदलते जाते हैं। साधना भी एक पढ़ाई है। इसमें भी श्रेणी क्रम चलता है। गोस्वामी जी को पहले समझ में नहीं आया था।

मैं पुनि निजगुरू सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउं अचेत।।

तब नहीं समझ में आया था। जब पचहत्तर साल के बाबा हो गये, तब समझ में आया, उनके। हाँ तो भैया, खूब समझ लो! यह वही कानून है। यह मन और शरीर का मामला है, किस ढंग से हमारी समझ में आ जाय। यह मन बहुत खतरनाक है। यह मन इतना तीव्र है, कि क्षण–क्षण में भाग जाता है, यह मन ही भगवान है। वह लड़का जब प्राइमरी में पढ़ता था, तब जो मन था, वही मन तो अब भी है उसका, जब उसने एम.ए. पास कर लिया है। क्या ब्रह्मा ने पहले वाले मन को बिदा कर दिया है, दूसरा मन दिया है? हां, समझ लो, ऐसे ही है, कुछ है नहीं इसमें। प्रैक्टिकल में ऐसे समझना पडता है। तो भगवान राम शंकर जी की सीपना करते हैं। गुरू के रूप में उनको मानते हैं। और अपने नाम से उनका नामकरण कर दिये। तो शंकर की स्थापना अब तक कहीं होती है। तो उसका नामचार करते हैं। शंकर भगवान इस जगह गुरू रूप हैं। शरीर की जितनी प्रक्रियाएं हैं, इस संसार में, जिसके लिये यह आया है। इन्द्रियां विषय के लिये आई हैं। यह तो सभी जानते हैं। हाथ काम के लिये हैं, आँख देखने के लिये, कान सुनने के लिये हैं, नाक सूंघने के लिये, मुँह खाने के लिये, वाक् बोलने के लिए है। वह तो करना ही पड़ेगा। प्रकृति का नियम है। लेकिन इसमें इनके देवताओं को पकड़ कर ऋषियों ने ऐसी कला निकाल दी, कि समझ से काम लें, तो इस संसार में रहते हुए संसार से अलग हो जाऐंगे। जैसे परमात्मा संसार में रहते हुए, इससे अलग रहता है। परमात्मा बरफ में है और ग्लेशियर में है, सबमें पानी के रूप में है। संसार बरफ है, और ईश्वर पानी है। बरफ में पानी ही तो है। तो

परमात्मा ही संसार में है। यह जो संसार है, यह होते हुये भी नहीं हैं। यह मकान है, दिखाई दे रहा है। लेकिन होते हुये भी, असत्य है। इस कारण से, इसे झूठा कहते हैं। इसका कुछ आधार नहीं है। जैसे बर्फ का आधार कुछ नहीं है। यह परमात्मा रूपी पानी ही संसार रूपी बरफ बन कर दिखाई पड़ता है। इसमें हमारी कल्पना बन जाती है, प्रवृत्ति बन जाती है। इस बरफ में कुछ है नहीं, पानी के अलावा। इसलिये पानी ही है। चाहे बरफ के रूप में हो, चाहे पानी के रूप में, परमात्मा ही दोनों रूपों में है। तो इस तरीके से यह शरीर जो है इसमें अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब शंकर है। उनकी राम ने स्थापना किया। इन्हीं के आशीर्वाद से उसका जो टारगेट है, जो उसका लक्ष्य है, वह पूरा हो जाता है। इस तरह से भगवान राम ने शंकर की स्थापना की। ऋषियों को लाकर पूजा कराया। और फिर यह जो संसार रूपी समुद्र है, विषय रूपी पानी है इसमें, ये पाप रूपी पत्थर हैं, जो इसमें डूब जाते हैं। विषय और पाप परस्पर लीन हो जाते हैं। लेकिन यहाँ हैं, नल और नील। यम और नियम। यम, नियम, देशकाल, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, मूलबंध आदि 15 योग के अंग होते हैं। यम और नियम ये दोनों हैं नल नील ये बड़े भारी योद्धा हैं। ये अगर चाहें तो पाप रूपी पत्थर को ट्रांस्फार्म करके पुण्यरूपी पत्थर बना सकते हैं। जब पुण्यबन गया, तो फिर वह विषय में नहीं डूबेगा। उसे स्वीकार नहीं करेगा। जो अविद्या जनित हैं संस्कार, यम नियम के द्वारा ट्रांस्फार्म होकर विद्या जनित संस्कार बन जाते हैं। जब हम पुण्य करेंगे, तो इन्द्रियों का संयम करेंगे। इस तरह से संसार रूपी समुद्र में, विषय रूपी पानी के ऊपर, संयम रूपी सेतु, पुण्य रूपी पत्थरों से बन जायेगा। तो फिर हमारी समझ रूपी सेना पार हो जायेगी। यह है इसका सिद्धान्त। अगर बन जाये, तो बना लेना चाहिये। अब लोग बना लिये–चलों चलें गंगाजी से जल लें आये। चलो रामेश्वर में गंगाजल चढ़ा आवें। तो हमें मुक्ति मिल जायेगी। तो यह गलत अर्थ है। सही अर्थ यह है, कि जो यम–नियम से रहेगा। संयम करेगा, पुण्य आचरण करेगा, समझ से काम लेगा, वह साधक संसार समुद्र को पार कर लेगा। और जो रामेश्वर दर्शन करिहैं, जो अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त कर लेगा, जो रिसर्च करके पहुंच जायगा। साधना करके, वह सायुक्त मुक्ति प्राप्त कर लेगा। और गंगाजल क्या है? यह ब्रम्हाण्ड से निकलने वाला अमृत है। जब हम श्वांसा का जाप करते हैं। बहुत समय तक। और फिर ध्यान की तन्मयता में जो आनन्द रस मिलता है–उसे अमृत कहा है संतों ने। इस गंगाजल से आत्म स्वरूप रामेश्वर का अभिषेक जो करे, उसे सायुज्य मुक्ति मिलती है। स्वरूप में समाहित हो जाय। जब संयम–सेतु बनाकर यह पूरा दल उतर गया तो– वहाँ क्या करते हैं? वहाँ एक शुभ्र शिलापर बैठते हैं। अगर तुम लोगों ने रामायण पढ़ी हो तो –

इहां सुबेल सैल रघुवीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा।।
शिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य सम शुभ्र विशेषी।।
तहं तरू किसलय मृदुल सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए।।
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहि आसन आसीन कृपाला।।
प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा। बाम दहिन दिशि चाप निषंगा।।
दुहुं कर कमल सुधारत बाना। कह लंकेश मंत्र लगि काना।।
प्रभु पाछे लछिमन वीरासन। कटि निषंग कर वान सरासन।।
एहि विधि कृपा रूप गुन धाम राम आसीन।
धन्य ते नर एहि ध्यान जे रहत सदा लयलीन।।

राम उस शुभ्र शिला पर बैठते हैं। सुग्रीव बैठे हैं, और उनकी जंघा का तकिया बनाकर राम लेट जाते हैं, और लक्ष्मन पहरे पर सजग है। अंगद और हनुमान पैर दबाने लगते हैं।

बड़भागी अंगद हनुमाना।
चरन कमल चाँपत विधि नाना।
और,
कह लंकेश मंत्र लगि काना।

विभीषण मंत्रणा दे रहे हैं। तो यह ध्यान का चित्र है। हृदय है शुभ्र शिला और सुरति हमारी जो भगवान में लगी है, सुग्रीव हैं। विवेक हमारा जो लक्ष्मण है, वह सजग है। अनुराग अंगद और वैराग्य हनुमान है, जो भगवान को घेरे हुये हैं, हृदय से हटने न पाएं। और विभीषण जीवात्मा है। यह जीवात्मा जो सब जानता है, बताता है आगे की पीछे कि बातें। तो वहाँ राम पूछते हैं, कहो महाराज विभीषण। यह चन्द्रमा में कालिमा कैसी है? फिर कुछ देर में रावण के अखाड़े की बात आ जाती है। जहाँ गाना बजाना हो रहा था। तो यह सब ध्यान की अवस्था का चित्रण है। वहाँ पर गोस्वामी जी ने लिखा है।

''धन्य ते नर एहि ध्यान जे रहत सदा लयलीन''

इस ढंग से ध्यान करते हैं। निर्मल हृदय रूपी शुभ्र शिला पर भगवान को बैठा ले, सुरति उनसे जुड़ी रहे। और कन्टीन्यू अनुराग बना रहे। बैराग्य विषयों की ओर न जाने दें, मन को। भगवान से मन हटने न पावे। सुरति बिल्कुल लग गई है, भगवान से वह हट नहीं सकती। और विवेक जो है लक्ष्मन, वह लगा है कि कोई विषय संबन्धी विचार, बिजातीय अन्दर प्रवेश न कर जाय, यह रक्षा कर रहा है। यह विवेक रूपी लक्ष्मन। ऐसे जब ध्यान में लीन हो जाय। ध्यान जब दृढ़ हो जाय। तब सब ठीक हो जाता है। अब तुम्हारा 50 पैसे ध्यान लगता है, तो 50 पैसे में तो राक्षस घुसे ही रहेंगे। 80 पैसे लगने लगा, तो कुछ उधर निराशा होगी राक्षसों में और 90 पैसे ध्यान लगा तो मरने लगेंगे। और जब 100 पैसा ध्यान हो जायगा तो ये राक्षस, मरे मराए धरे हैं। जब विभीषन जीवात्मा, मोह (रावण) को त्याग कर इधर राम के पक्ष में आ गया तो–

'रावन जबहिं विभीषण त्यागा।
भयउ विभव बिनु तबहिं अभागा।'

– – – –

'अस कहि चला विभीषण जबहीं।
आयूहीन भए सब तबहीं।।'

तो फिर ये सब राक्षस मर जाते हैं। मरे ही जैसे हो जाते हैं। तो यह ध्यान कब होता है? संयम के बाद। सेतुबन्ध के बाद। समुद्र रूपी, संसार का हर प्रकार का कर्जा चुक गया, साधक ने ध्यान दृढ़ किया। तो मानो ये सब विकार, फिर जर्जर हो गये। फिर वहाँ एक कला और होती है। फिर एक गियर लगाया गया। राम बोले कि यह रावण–ऐसा लगता है–कि कभी का मेरा भाई है। कभी इसने भक्ति तो किया है। पता नहीं क्यों, इसके प्रति मुझे दया आती है। ऐसा लगता है, कि इसे एक मौका और दिया जाय। इसलिये दूत भेजा जाय। तो यह सुनकर लक्ष्मण को आग लग गयी। मन में कहा कि दूत से काम नहीं चलेगा। लक्ष्मण ने कहा इनका भंडाफोड़ कर देना चाहिये। राम ने कहा, हाँ करना है। लेकिन क्यों ऐसा लगता है। लक्ष्मण के अनुसार, व्यर्थ समय विताना ठीक नहीं है, सीता माता की क्या दशा होती होगी? हमसे रहा नहीं जाता। तो बोले हाँ, यह तो ठीक है, लेकिन मेरी ऐसी कल्पना है। इस समय धैर्यवान होना चाहिये साधक को। जिसमें न शरीर के सुख की कल्पना। न और कोई इच्छा या कल्पना होनी चाहिये। नीति का सही ढंग से पालन करते

हुये अनुसंधान करना चाहिये। तो फिर प्रश्न आया, कि किसे दूत बनाकर भेजा जाय? तो कहा अंगद को भेजा जाय। अंगद जैसा दूत हो। जो हाजिर जबाब हो, वार्तालाप बढ़िया कर सके और हर चीज़ में कुशल हो, बलवान हो। ऐसा एक प्रयास हो। यातो हमारी शरण में वह आ जायेगा। या मरने लायक हो जाये। इतना हम अपना दायित्व और निभा लें। तो अंगद कहते हैं, अनुराग को। अनुराग की परिसीमा, एक बार और रावण को मोह को हिला दे। कैसा सुन्दर अन्तर्जगत का कम्पोजीशन किया है, तुलसी दास ने। रोज सुबह शाम भगवान के सामने करुणा करो, रोओ, गाओ। कि मैं दरिद्र हूँ। क्या आप मुझे अपनी शरण में नहीं ले सकते? मैं एक बूंद हूँ, आप समुद्र हैं। मुझ पर दया की जाय। ऐसा अनुराग ही अंगद है। अंगद को भेजने का मतलब है, साधक को अनुराग होना चाहिये। जब रोज ऐसा अनुराग लाएंगे, तो फिर मोह की, काम की, क्रोध की, बदमाशी की जड़ उखड़ जाएगी। ये सब जर्जर हो जाएंगे। अब यहाँ से हमारी तरफ से खुराक पा नहीं रहे। साधक की जो इनर्जी है, वह अनुराग के द्वारा, बैराग के द्वारा, भगवान में लग गयी है। तो ये सब, काम, क्रोध खुराक पा नहीं रहे हैं। उनका जो बेग हमें आ जाता था, रुकेगा। काम मेघनाद का वेग आ जाता था। क्रोध कुम्भकर्ण का वेग आ जाता था। मोह का वेग आता था। वह अब ढीले पड़ जाएंगे। तो ऐसी युक्ति से गोस्वामी जी ने यह रचना की है। अंगद जब गया तो दरवार में जाने के पहले रावण के एक लडके को मार डाला था। तो वहाँ कोई लड़का–फड़का तो है नहीं। लड़का तो है लगन। जो माया मोह की लगन है मन में। इसलिये बाहर की बातों की तो कोई वैल्यू यहाँ रहती नहीं। बाहर किसी का लड़का मरता है, तो रोवाई मच जाती है। तो जब हम माया–मोह में रहते हैं, तो तमाम विषयों में जो हमारी लगन लगती रहती है, यही सब रावण की सैकड़ों संताने हैं। कभी स्वाद में लगन लगी, कभी रूप में लगी, कभी और कहीं लगी–यही सब उसके लडके, पैदा होते जाते हैं। और इस तरह रावण का परिवार बहुत बडा था।

"इक लख पूत सवा लख नाती।
ता रावण घर दिया न बाती।"

ऐसे ही जब हमारी लगन भगवान में लग जाती है। तो देखो राम ने कितने बंदरों की सेना खडी कर दी। ये ब्रम्हज्ञान रूपी बंदर। पदुम अठारह पूथप बंदर। कोई भी जगह न रह जाय, जहाँ हमारी ब्रम्हमई दृष्टि न हो जाय। जब अनुराग को भेज दिया, तो वहाँ खलबली मचा दिया। जाकर पैर जमा दिया, और कहा कि लो उठाओ मेरा पैर। कोई नहीं उठा पाये। और जब रावण पैर उठाने गया, तो उसके मुकुट गिर गये। उनमें चार मुकुट, अंगद ने भगवान राम की तरफ फेंक दिये। ये मुकुट नीति–धर्म के प्रतीक थे। अध्यात्म में इन्हें अन्तःकरण के 4 प्रतीक मानते हैं। अब ये चारों (मन बुद्धि चित्त अहंकार) पकड़ में आ गये, और ये विषय की ओर नहीं जायेंगे। अब त्रिजटा का प्रसंग आ गया। उसने स्वप्न में देखा कि रावण तेल में नहाया हुआ है। काला मुख है, तथा दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है। तो यह मोह अब जर्जर हो गया। ऐसी नीति से इसको अन्तःकरण में बैठाते जाओ, तो प्रैक्टिकल अर्थ आ जायेगा। और नहीं तो–

देखन कहं प्रभु करूना कंदा।
प्रगट भए सब जल चर वृंदा।।
मकर नक्र नाना झख व्याला।
सत योजन तन परम विसाला।।

यहाँ सोचो कि जब सौ योजन का कुल समुद्र ही था, तो उसमें सौ–सौ योजन के जीव कहाँ से आ गये? क्या गोस्वामी जी को कविता लिखने में यह ध्यान नहीं देना चाहिये। कि इस पर लोग तर्क वितर्क करेंगे। समझ में नहीं आता कि यह बाहरी कविता हो सकती है, या नही। एक जगह कहते हैं–

शंकर प्रिय मम द्रोही शिव द्रोही ममदास।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महंवास।।

तो फिर कोई इनकी भक्ति ही न करे। आज तो आदमी इस ढंग से विचार करता है। कोई शंकर की करता है, कोई गणेश की, कोई देवी की उपासना करता है। तो क्या इन देवताओं में, आपस में आदमियों जैसे विरोध भी रहता है? अरे भाई। किसी की भक्ति कर तो रहा है। एक तो आदमी ऐसे भी भक्ति नहीं कर पा रहा है। जो जहाँ कर रहा है, करने दो। कोई देवी की करता है, कोई गणेश की करता है, और किसी की करता है, तो इसमें हर्ज ही क्या है? भक्ति तो भक्ति। एक तो आदमी को वैसे भी माया के मारे टाइम नहीं हैं, भक्ति करने का। उस पर इस तरह के बैर विरोध, अगडपेंच भरे पड़े हैं। तो इसका मतलब तो यह हुआ कि किसी की भक्ति न करे, वह आधे नरक में पड़ेगा। क्योंकि जो राम की नहीं करेगा, शंकर की भक्ति करेगा, वह घोर नरक में पड़ेगा। ऐसा लिखा है। आज कल का आदमी, ऐसे तर्क वितर्क करता है। तो इसका क्या उत्तर है? आखिर उन देवी देवताओं को तो बोलना नहीं है। अपने में आदमी ऐसे तर्क करते करते अन्त में देवी–देवताओं से हट जाएगा। क्योंकि जब तर्क हुआ और उसका समाधान नहीं मिला, तो फिर आदमी के मन में और ज़्यादा शंका बनती है। इसलिये मानस के ढंग से लेना पड़ेगा। शंकर यहाँ शरीर स्तर की साधना में, नियंत्रण करने वाला सत्य का रूप है। राम आत्मा के रूप में है। साधक शरीर स्तर की साधना करके आगे बढ़ता है, तभी राम को पा सकता है। और राम अगर नहीं मिलेगा, तो शरीर का उद्धार कैसे होगा? इसलिये, ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। या यों कहिए कि शंकर भगवान का रूप संत का रूप है, जो राम को अपने में धारण करता है। और राम उसी पर कृपा करता है, जो राम को भजता है। उसी का भक्त होता है। तो जो शरीरधारी राम हैं। इसी का नाम शंकर है और राम जो सब में व्यापक है उसका नाम राम है, इसलिये इन दोनों में अभेद है। बिना शंकर के राम नहीं, और बगैर राम के शंकर नहीं। अन्तर्जगत में तो यह अर्थ आ जाता है। लेकिन बाहरी जगत में एक कहेगा हम राम उपासक हैं, दूसरा कहेगा हम शिव के हैं। तो फिर आदमी तर्क खड़ा कर देगा, कि रामायण में तो ऐसा लिखा है। तो ये जो सम्प्रदाय बढ़ते जा रहे हैं। यह जो अनेक ईश्वर वाद बढ़ते चले जा रहे हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के सिद्धान्त अलग–अलग बनते जा रहे हैं। ये द्वैतवाद, अद्वैतवाद, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत और कौन–कौन बाद, तो यह वाद विवाद तो बढता ही जाएगा। जब तक सही सिद्धान्त, जो सबपर लागू होता है, ऐसा अन्तर्जगत का सिद्वान्त नहीं मिल जायगा। इसमें एकता नहीं लायी जाएगी, तब तक एकात्मता कैसे हो सकती है ? क्या समझ संतुष्ट हो सकती है ? कभी नहीं हो सकती है। यह रामायण, गीता उपनिषद कुछ भी हो, तो यह अन्तःकरण का आधार तो हमें लाना ही पड़ेगा। सत्य का आधार तो हमें लाना ही पडेगा। अब मान लो हमें जाना है, रीवां। तो यह जानकारी लेनी पडेगी, किसी से, कि कहाँ से कैसे जायं। तो वह बताएगा कि अमुक जगह से मोटर मिलेगी, फिर सेमरिया मिलेगा, फिर ऐसे ऐसे मिल जाएगा रीवा। बाहर को लेकर अन्तर्जगत में बैठालना पड़ता है। फिर चलना पडता है। तब पहुंचना होता है। तो इस तरह से इस जटिल संसार में, जो अन्योन्यश्रय दोष से युक्त है। सुख–दुख, हर्ष अमर्ष आदि द्वन्द्वों

से भरा है, तो यह मन इसी में तैरता रहता है। इसलिये अगर ईश्वर को हम बाहर ले लेते हैं, तो काम नहीं चलेगा। ईश्वर ही संसार बन गया है, और संसार ही ईश्वर मय बन जाता है। लेकिन इसका भेद लगाना पड़ेगा। उदाहरण के लिये पानी ही सर्दी पाकर बर्फ बन जाता है। और बर्फ ही गर्मी पाकर पानी बन जाता है। लेकिन इन दोनों के रूप आकार गुण धर्म बदल गये हैं। इसलिये इसका बाहरी अर्थ लेने से, गड़बड़ी आती है। जैसे हम जहाँ पैदा होते हैं, उसी जात के माने जाते हैं। दूसरा दूसरे जात का माना जाता है। इसी तरह सभी का जाति धर्म, रीति, रिवाज, खानपान, रवैया ये सब अलग–अलग हो जाता है। बाहर दुनिया में, यह सब स्वाभाविक है। लेकिन ईश्वर में यह सब विभिन्नता ठीक नहीं बैठती। वह तो एकरस है। यह जो बर्फ बन गया है पानी, उसमें बडी भारी कला है। यह जो परमात्मा रूपी पानी ही, बर्फ रूपी दुनिया में बदल गया है। उसकी सफेदी, उसका रूप आकार, इसमें बड़ा भ्रम बन जाता है। उसे गलाकर पानी बनाएं, तभी पानी मिलेगा। तो यह जो शंकर जी की स्थापना का प्रसंग है, यह साधना की पांचवी–छठी भूमिका के संदर्भ में है। यह संसार समुद्र है जिसमें विषय रूपी पानी है संकल्पों की लहरें उठ रही हैं। ऐसे मानना पड़ेगा। इसे पार करने के लिए एक आधार बनाना पड़ेगा। ध्यान करना पड़ेगा। संतसद्गुरू को हृदय में बैठाना पड़ेगा, जब वो शंकर मिल जायेंगे, तो फिर इसका इलाज मिलेगा। पहले हमने सोचा था कि साधनों से इसे पार कर लेंगे, तो हमारे विवेक रूपी लक्षण ने हमें टोंका था कि ऐसे साधना से यह मानने वाला नहीं। यह ऐसे वश में न होगा। हम अच्छाई को पकड़ेंगे। तो बुराई बन कर खड़ा हो जायेगा। और बुराई को पकड़ेंगे तो भलाई बन कर खड़ा हो जायेगा। यह अन्योन्याश्रय दोष से परिपूर्ण है। कभी यह ईगो बन जाता है। सब रूप धारण कर लेता है। बहुत खतरनाक है। यह सब एक दूसरे से मिले हुये हैं। एक धारणा साधक के हृदय में विवेक के द्वारा यह आती है। जीवात्मा रूपी विभीषण है। इसका रहस्य पूरा वहीं से (जीवात्मा द्वारा) खुलेगा। इस जीवात्मा विभीषण ने राम से कहा, कि यह समुद्र तुम्हारा कुल गुरू है। बहुत पहले से है। इसे मनाओ। अर्थात् शरीर से साधना करके, आगे बढ़ना चाहिए। किन्तु साधना करने पर भी, यह धोखा दे सकता है। हम चाहे कितना मेहनत करें, और यहां हमारी खबर न मिले। और यह संसार हमें न छोड़े। राम ने समुद्र की स्तुति की। किन्तु समुद्र रूपी असत्य संसार, उनकी स्तुति पर प्रसन्न नहीं हुआ। हर प्रकार से साधना किया किन्तु जब इससे सफलता नहीं मिली, समुद्र नहीं माना, तब राम ने कहा–लाओ अग्निबाँण, में इस समुद्र को सुखा डालता हूँ। यही तरीका है, जो तुलसीदास के हृदय में आया था। पहले विनय पत्रिका में गोस्वामी जी ने भगवान के समक्ष कितना अनुनय विनय किया। काम, क्रोध, लोभ, मोह से मुझे लुटवाओ नहीं। इनसे, हे भगवान! मेरा पीछा छुडाओ। दुष्टों की बंदना करते रहे। किन्तु कोई नहीं माना। तब वे ललकार कर खड़े हो गये, कि 'अब मैं तोहिं जान्यो संसार।' अब संसार में आशक्त नहीं कर सकते मुझे। इसी प्रकार साधक को भी ललकारना चाहिये। अब मुझ पर भगवान की कृपा हो गयी है। अब तुम मुझे नहीं बाँध सकते। इसी तरह से जब साधक में कुछ अनुराग बैराग, विवेक का बल आ जाता है, तब वह ललकार कर खड़ा हो जाता है। तब यह संसार समुद्र गिड़गिड़ाने लगा। काबू में आ गया। तो साधना करो। मन से भजन करो ध्यान करो। शरीर से सेवा करो। चाहे तुम झाड़ू लगाओ, चाहे तुम भोजन बनाओ, चाहे तुम कोई कर्तव्य करो। सेवा कार्य इसलिए किए जाते हैं, कि जो शरीर से किए हुए पाप हैं, उनकी निवृत्ति, शरीर से की गई सेवा से होती है। और मन से किए हुए अनेक जन्म के जो पाप हैं–खराबियां हैं, उनकी निवृत्ति, मन के द्वारा होती है। हमारे पास दोनों हैं। शरीर भी है, मन भी है। शरीर से हम सेवा करें, और मन से भजन करें, तो एक दूसरे को हेल्प करेंगे। सेवा धातु से भजन बनता है। तो दोनों एक ही हुये। सेवा के

द्वारा इधर शरीर शुद्ध होने लगेगा। उधर भजन से अंतःकरण शुद्ध होने लगेगा। खाने–पीने का ऐसा है, कि जो चीज़ तुम्हे अनपेक्ष मिल गई है, ठीक है, और अगर मांगोगे तो तामसी हो जायेगी। तो बगैर मांगे जो चीज़ मिल जाती है, चुपके से भगवान का भोग लगाओ, कोई जानने न पावे। यह सब पूजा–पाठ चोरी से करना चाहिए। जब हमारी अच्छाई को कोई भी देखेगा, तो वह हमसे थोड़ा सा बँटा लेता है, यह नियम है। तुम्हें मालूम है, वह कौन राजा था? त्रिशंकु। तो उसने अपने गुरू वशिष्ठ से कहा कि कोई उपाय किया जाये, हम सब खर्च–व्यवस्था करेंगे, मैं सदेह स्वर्ग जाना चाहता हूँ। तो वशिष्ठ ने समझाया, राजन ऐसा नियम नहीं है–शरीर तो छोडना ही पड़ता है। स्वर्ग तो आकाश में गमन करने वाले लोगों के लिए ही है। वो जो वेट रहित हैं, जिनको गुरुत्वाकर्षण प्रभाव नहीं डाल पाता उनके लिए है। जो सार्वभौमिक होते हैं, पारदर्शी होते हैं। और शरीर के लिए तो मृत्युलोक है। यह शरीर वहाँ नहीं जा सकता। यह तो मात्र संकल्प है। और यह संकल्प पोषित इच्छा में परिणत हो कर शरीर बन गया, पदार्थ बन गया। यह वहाँ नहीं जा सकता। यह तो यहीं छोडना पड़ेगा। तो उसने कहा, नहीं–नहीं, कोई तो उपाय होगा? ऐसा तो हो नहीं सकता, कि किसी रोग का कोई इलाज न हो? हाँ यह बात अलग है, कि यह उपाय आपको न आता हो। उसके राज्य में और बड़े–बड़े ऋषि थे, शक्ति इत्यादि। उनसे भी कहा। उन्होंने भी इसी तरह बताया तो राजा नाराज हुआ कि तुम लोग पेट भरने के लिये साधु बने घूमते हो, तो शक्ति ऋषि ने उसे शाप दे दिया। फिर त्रिशंकु राजा गया, विश्वामित्र के पास। वह ब्रह्मर्षि बनने के लिए तपस्या में लगे थे, और वशिष्ठ से विरोध था। तो उन्होंने कहा अरे वह वशिष्ठ क्या जानता है–चलो मैं तुम्हें सदेह स्वर्ग पंहुचाता हूँ। तो जैसे के तैसे, ठाकुर–बुद्धि से, लगे–दोनों लोग। तो ये अपनी तपस्या के बल से बोल दिए– मैं इतने हजार वर्ष की तपस्या का फल देता हूँ, तुम जाओ स्वर्ग में। तो जोर लगाते–लगाते पहुँच गया। वहाँ स्वर्ग में हल्ला मच गया कि यह एक शरीरधारी आदमी यहाँ कैसे आ गया ? तो गुरू वृहस्पति के पास गए, इंद्र वगैरह सब देवता यह समस्या बताये। वृहस्पति न कहा, कि इसमें कौन झगड़े की बात है, उससे पूछ लो कि कौन सी तपस्या या यज्ञ करके, पुण्य करके, स्वर्ग में आ सका है। जब वह बताएगा, अपने किए हुए पुण्य कर्मों को, तो जो सुनने वाले होंगे, उनके पास आ जाएंगे उसके पुण्य। इस तरह उसके पुण्य क्षीण हो जाएंगे। और जहाँ पुण्य क्षीण हुए, तो अपने आप स्वर्ग से उसका पतन हो जाएगा। गिर जाएगा। तो उससे झगड़ा करने की क्या जरूरत है ? जाकर देवताओं ने जब उससे पूछा तो फिर उसने विस्तार से बताया–मैंने यह यज्ञ किया, फिर यह किया यह किया, फिर वह किया, फिर ऐसा किया। सुनने वाले बहुत से लोग थे। कहते–कहते सारी पुण्य की कमाई खर्च हो गई। तो अपने आप नीचे आ गया। फिर चिल्लाया कि महाराज रोको–रोको मुझे बचाओ। तो कहते हैं, बीच में ही टांग दिया उसे। टंगा है वहीं। उसकी नाक बहती है, तो उससे कर्मनाशा नदी बन गई। तो अब यह कहाँ का अर्थ, कहाँ की कहानी और आदमी कहाँ–कहाँ जोड़ कर क्या–क्या बना लेता है। कैसा विश्वामित्र का और वशिष्ठ का झगड़ा ? वशिष्ठ है भी कि नहीं? विश्वामित्र को लाया गया है, अपने थीसिस के हिसाब से, साधना के हिसाब से। वशिष्ठ जो सबसे श्रेष्ठ है– उसका नाम वशिष्ठ है। इस तरह से वशिष्ठ, ज्ञान है। यह गुरू है। जो साधना करता है, वही सूर्य कुल का राजा होता है। सूर्य कुल कहते हैं–श्वासा का कुल। जब श्वांसा के जरिए साधना करके इसके पार जाता है वह सूर्यवंशी कहा जाता है। निवृत्तिमार्ग की परंपरा ही सूर्यवंश है। तो सूर्यवंशी क्या कोई जात है, कास्ट है ? अब तक जितने निवृत्ति मार्ग वाले महात्मा हुए हैं, उनकी परम्परा है, उनकी वंशावली है–अब किसको कहॉ तक समझाया जाय ? कहाँ की बात है–घटा लेते हैं कहाँ?

उसे सूर्यवंशी कहेंगे, कि जो श्वासा से साधना में पारंगत हो कर, इच्छाओं का दमन करके संसार से निवृत्त हो जाते हैं। वो सूर्यवंशी कहलाते हैं। उनकी परम्परा सूर्य–कुल है। जबसे इस दुनिया की सृष्टि हुई, इस श्वासा के द्वारा जिन्होंने भगवान को प्राप्त कर लिया है, उनकी निवृत्ति हुई है–वे निवृत्ति मार्ग वाले हैं–ऐसे कितने लोग हुए। उनका कितना परिवार है, उनका कितना कुल है–वह परम्परा। वह अलौकिक परम्परा। उसमें कितने साधक हुए–यह सूर्यवंश है। न कि जात वाला, न कि समाज वाला। ऐसा नहीं होता ये तो गलत अर्थ है। सही अर्थ लेना पड़ेगा।

एक होता है सूर्यवंश–निवृत्ति मार्ग वाले। एक होता है चन्द्रवंश प्रवृत्ति मार्ग वाले, ये दो होते हैं–एक होता है पितृ यान और एक होता है–चन्द्र यान। पितृ यान से जाने वाले की निवृत्ति होती है, और चन्द्र यान वाले, आने–जाने वाले होते हैं। फिर मरेगा, फिर जनम लेगा फिर अच्छा होगा, फिर बुरा होगा। तो दो यान हैं, दो मार्ग हैं, दो तरीके हैं–एक निवृत्ति और एक प्रवृत्ति। निवृत्ति मार्ग वाला सूर्यवंशी कहलाता है, और प्रवृत्ति वाला चन्द्र वंशी कहलाता है। ये दो रास्ते हैं। तो जिनको ईश्वर को पाना है, वो सूर्यवंशी होता है। जिनको (सद्गुरू की शरण में) एडमीशन मिल गया–भर्ती होने का सौभाग्य प्रप्त हुआ। और वह उस पद्धति से फिर चले, इच्छाओं का दमन करके। साधना पूरी करके निवृत्ति को प्राप्त करे। ऐसे महापुरुषों की जो परंपरा चली आ रही है, वह सूर्य कुल है, उस कुल के गुरू वशिष्ठ हैं। और वशिष्ठ है ज्ञान।

वह सब वस्तुओं को दिला देता है–विश्वास जो है, वह विश्वामित्र है और ज्ञान वशिष्ठ है। वह श्रेष्ठ है। ज्ञान क्या बताता है, और विश्वास क्या बताता है। दोनों में बड़ा झगड़ा है। ज्ञान कहता है–तुम वही हो। तुम वही हो। और विश्वास कहता है–मैं कुछ नहीं हूँ, मैं कुछ नहीं हूँ। विश्वास अंधा होता है, उसके आंख नहीं होती बहुत फोर्स होता है। हॉ विश्वास का प्रतीक भरत है। और ज्ञान का प्रतीक राम है। राम को समय–सयम पर भरत से हारना पड़ा। उसने जो कुछ कहा, राम को मानना पड़ा। तभी ज्ञान की विजय होती है–वशिष्ठ की विजय होती है। और विश्वामित्र। जिसका विश्वास दृढ़ हो जाता है, वह क्षत्रिय से ब्राह्मणत्व को प्रप्त हो जाता है। बगैर विश्वास के दृढ़ता आती नहीं। और यह तर्कना जो है–ताड़का राक्षसी–जहॉ हम जानने का प्रयास करते है, जग्य करते हैं वहाँ ताड़का के–मन रूपी मारीच, और मन का बुरा सुभाव रूपी सुबाहु–ये दोनो लड़के विघ्न डाल देते हैं। जहाँ जानकारी आई–तो हमारा सुभाव है बीड़ी पीने का, हमारा स्वभाव है भांग खाने का, तो झट उसके संकल्प आ जाएंगे। तो इस तरह से ईश्वर की जानकारी रूपी जग्य में ये विघ्न बार–बार आते हैं। इनके कारण जग्य पूरा हो नहीं पाता। ये दोनों क्षमता कहाँ से पाते हैं–तर्कना रूपी ताड़का से। अवध है–शरीर इसमें साधना क्रम से जब विश्वास आया, तब जाकर यह तर्कना रूपी ताड़का को मारने का विधान बन गया। मूल खतम हो गई। और मन रूपी मारीच को हटा दिया गया। बिनुफर वाण राम तेहि मारा। कि अभी और कुछ काम करके, फिर तुम्हें मारेंगे। और मन के स्वभाव (सुबाहु) को खतम कर दिया। अब भूमिका बन गई। अब साधक

राइज हो गया, उठ गया अब हमारा विश्वास जग गया। अब हमारी तर्कना खतम हो गई। जग्य पूरा हो गया–ईश्वर की सही एडजस्टिंग बन गई। ईश्वर की जानकारी मिल गई।

अब योग चालू हो गया। चित्त, रूपी चाप तोड़ने का समय आ गया–शक्ति (सीता) मिलने वाली है। सीता का वरण हो गया लेकिन अभी थ्योरिटिकल जानकारी में प्रक्रिया आ गई है–और उस पूरी प्रक्रिया से होकर गुजरे नहीं। प्रैक्टिकल हुआ नहीं–और राजा बनाने लगे लोग। तो कर्तव्य रूपी कैकेयी आ गई। काम, क्रोध आदि दुश्मन अभी मरे नहीं, पहले ही राजा बनाने चल दिये। तो कर्तव्य रूपी कैकेयी को क्षमता है। और मन को स्थिर करना रूप मंथरा है। जो कर्तव्य में मन को स्थिर कर देती है, (साधक के अंदर की वह क्षमता) ऐसी जो मंथरा है। उसको, लगा कि यह गलत हो रहा है। ऐसा तो कभी हुआ नहीं। बिना सूक्ष्म की साधना के राजगद्दी तो होती नहीं, फिर क्यों सजावट हो रही है ? यह कैसे हो सकता है ? अभी तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मत्सर सब पड़े हुए हैं, और अंतःकरण में राज्य कर रहे हैं। आसक्ति लंका है, मोह रावण है, क्रोध कुंभकरण है। अभी ये मरे नहीं। अभी उन्हें मारने के लिए राम को आदेश हुआ नहीं, और यह गलत काम कैसे हो रहा है ? तो उसने हल्ला मचाना शुरू किया। और रात भर में उसने कर्तव्य रूपी कैकयी को बदल दिया। कैकयी ही एक ऐसा तत्व है जिसने राम को, श्रेय के मार्ग में, सबसे ज़्यादा मदद दिया। और राम को बचा लिया। अगर कच्ची अवस्था में, साधक महंत बन जाय, और गाइड का काम करने लगे, तो धोखा हो जायगा। इसलिये यह अधूरे में काम हो रहा है–तो फिर राम चले गए वनवास में–अन्तर्जगत में साधना करेंगे। अभी तक स्थूल जगत की साधना थी, अब अन्तर्जगत की साधना होगी, सूक्ष्म जगत की साधना होगी। तो जब उसमें प्रवेश करेगा साधक, तो
अवध में–शरीर में, यहां भरत–भावना का राज्य रहेगा। भाव सदा बना रहे, भगवान के ऊपर। राज्य करते हुए, महात्मा का रूप धारण करके। ऐसा जो भाव आ जाय बाहर। और अंदर प्रवेश हो जाय मेडिटेशन में, श्वासा के अजपा जाप में, तो वनवास हो गया। तो फिर ऋषियों से मिलना है, ऋषियों से आशीर्वाद लेना है। और बड़े–बड़े सत्संगों की एडजस्टिंग करनी है। और जो राक्षस छुपे बैठे हैं–उन्हें एक–एक करके निकाल–निकाल कर मारना है। तो इस प्रकार से जब वन में प्रवेश कर जाते हैं, साधक अंदर की तरफ प्रावेश कर जाता है, तो
इधर यह दशरथ–दसो इंद्रियां, मर जाती हैं। श्रवण के माता–पिता के शाप से। और अगर साधक निरंतर आगे बढ़ता रहा तो आसक्ति रूपी लंका को जीत कर राक्षसों को मार कर राम–राज्य कायम कर लेता है। और राम राज्य जब उसको हो जाता है–

परवश जीव स्ववश भगवन्ता।

तो जो विभीषण है जीव, उसका उद्धार कर देता है। बस–

राम राज नभगेश सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहिं नाहिं।।

तो जहाँ यह स्थिति बनी फिर मुक्त होगया। इसी में बंधा हुआ है–

काल कर्म सुभाव गुन घेरा।
फिरत सदा माया कर प्रेरा।

इसलिए गोस्वामी जी ने हमें आपको बड़ी अच्छी राय दी है कि –

देह धरे कर यह फल भाई।

भजिय राम सब काम बिहाई।।

गोस्वामी जी ने मानस में नाम की साधना को सबसे बड़ा महत्व दिया है। लेकिन नाम की महिमा का निरूपण नाम की साधना करने से हो सकता है। उन्होंने खुद कहा है–

नाम निरूपन नाम जतन ते। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतनते।।'

नाम का निरूपण करना चाहिए, उसकी कीमत का पता लगाना चाहिये। और नाम से ही उसकी कीमत का पता लगेगा (नाम जतन ते)। नाम में लगने पर।

नाम निरूपन नाम जतन ते। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतनते।।'

कैसे पता लगेगा ? रतन जहां देखा, यह रखा हुआ है हीरा। तो मोल होने लगेगा। जौहरी ने देखा। कितने का होगा ? हाँ, 1 लाख का है। नाम की कीमत भी कई तरह से है। नाम कई जगह से लिया जाता है। बैखरी, मध्यमा, पश्यंती, परा, अजपा–किस तरीके से, उसे जपना है ? क्या हमारी योग्यता है ? किस भूमिका में उसका काम लेना है ? कैसे हमको राइज करेगा ? यह हमारी स्थिति के अनुसार होगा। फिर दूसरी बात गोस्वामी जी ने कही–

'बारक नाम जपत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ।।

एक बार नाम लिया, तो संसार को तरने की ताकत आ गयी और दूसरे को तारने की ताकत आ गई–'होहिं तरन तारन'– एक बार नाम जपने से ऐसी क्षमता आती है, स्वयं पार हो जाता है, और दूसरे को पार करा देता है। अब एक बार कैसे ? उधर यह भी है कि–

जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।

इसमें तो जनम–जनम अनेक जनम लगे रहने का विधान है। और फिर कहते हैं–एक बार। एक बार का मतलब है। एक को पकड़ लो, दो को नहीं। वैचारिक ढंग से एक हो जाय। कर्तव्य के ढंग से एक हो जाय। क्रिया में एक हो जाय। और फिर उसमें भजन करना चाहिए। उसमें माला पहनना चाहिए। उसमें अगर कोई शंकाएं आती हैं, तो उनका समाधान करना चाहिए। और इस तरीके से एडजस्टिंग करके जो अपने आप में मस्त रहता है वह ठीक है।

निश्चय को बदलेंगे नहीं, निश्चय को गलत तरीके से नहीं देखेंगे। चाहे हम नरक में जायं। जो निश्चय कर लिये उसे बदलेंगे नहीं। तो ऐसी स्थिति में जो हमारी कमी है, वह भी पूरी हो जाती है।

वरऊं शम्भु नतु रहौं कुमारी। जनम जनम लगि रगर हमारी।।

हढ़ता आगई। अब कोई परीक्षा ले, कोई प्रलोभन आए, फेल नहीं होगा। तो यह अपने करने से होता है।

लव लागत लागत लागै। भय भागत भागत भागै।।

और अगर जम गया, तो फिर बस हो गया।

लेकिन इसमें भी अहंकार से बचकर रहना चाहिए। अहंकार अहिरावण है।

यह मौका पाते ही ज्ञान और विवेक को चुरा लेता है।

देखो सुरति भगवान के चरणों में लग गई है, यह सुग्रीव लगा हुआ है। वैराग्य विषयों से हो चुका है। अनुराग, एकदम ईश्वर में विभोर है साधक, यह अंगद लगा हुआ है। धर्म दधिबल लगा हुआ है, नियम नल नील लगे हुए हैं। और इसके साथ जानना हर चीज़ का, जामवंत लगा हुआ है। और इसके बावजूद भी अहिरावण अन्दर प्रवेश कर गया, और राम–लक्ष्मण का हरण कर ले गया। तो इसलिए यह ईगो, अहंकार बहुत खराब है। इसको

निकालने के लिए एक ही तरीका है, कि भगवान की आर्थना करो। भगवान मेरे में बहुत दुर्गुण हैं। मैं बड़ा वैसा हूँ। मुझको आप क्षमा करिए। यह जो क्षमा याचना का स्वभाव बिगड़ने पाया, तो फिर अहंकार आ जायेगा। इसलिए हमको बढ़िया साधना बनी, तो इसकी बड़ाई भगवान को है। कि यह आपकी कृपा है कि बढ़िया साधना बन गयी और जो गलती हो जाये हमारी है, यह स्वभाव बिल्कुल भुलाये न। यह हमेशा बना रहना चाहिए। और प्रार्थना चलती रहना चाहिये, तो यह अहंकार को प्रवेश करने से रोकेगा। तो राम–लक्ष्मण बच जाएंगे।

साधक के अन्दर जब साधना सही चल रही है। और जपते–जपते, जब हमने लोभ को मार दिया क्रोध को मार दिया, काम को मार लिया, कपट को मार लिया, इच्छा को मार लिया। तो अब यह ढाढस आ जाता है, कि इतना तो हमने प्रगति कर लिया। इतनी प्रगति हो गई है–अब थोड़ी रह गई है। और यह हो जायगी। तो जहाँ यह होना आया, तहां ईगो आ गया। विभीषण जीवात्मा का रूप लेकर। तो यह सत्य के सहारे से आता है। बिना छेद के छेद में यह घुस जाता है–और गाड़ी वहीं टांय–टांय करती रह जायगी। इसलिए क्षमा याचना, प्रार्थना इनका सहारा लेना चाहिए। अब दूसरा पहलू यह है कि अहंकार को नष्ट करने के लिए वैराग्य का प्रयोग करना चाहिए। और वैराग्य जहॉ आया, तहां फिर है क्या?

एक राजा थे, बहुत धर्मात्मा और बहुत अच्छे राजा थे। खूब भजन किया करें। और एक अच्छे महात्मा थे। वह राजा की भक्ति देखकर, उसके यहाँ आया करें। तो राजा ने उन्हें गुरू बना लिया। तो वो बताया करें–और वह भजन किया करें। धीरे–धीरे एक दिन ऐसा आया, कि राजा ने कहा कि महाराज! यह पूरी स्टेट और सब, आपका है–मैं अब भजन करूंगा। तो महात्मा ने कहा, क्यों ? साधना करोगे, कि राज्य करोगे। उसने कहा नहीं, अब मेरा पैट बदल गया, अब मैं भजन करूंगा। अब मैं वह राज्य करना चाहता हूँ–यह राज्य आप लीजिए। तो बोले, अच्छा ठीक है। राज दे दिया गुरू बाबा को। गुरू बाबा, राजा बन गए। तो राजा से बोले, हो गया, दे दिया। अब मेरे राज को तुम ले लो। मैं तो अपना काम छोड़ नहीं सकता। और तुमने मुझे राज्य प्रदान कर दिया। तो मैंने अपना आशीर्वाद देकर इसे शुद्ध कर दिया है। और अब तुम ऐसा करो कि तुम भजन भी करो और मेरे इस राज्य को तुम चलाओ। अब इसमें हानि हो जाए तो तेरे बाप का कुछ नहीं जाएगा। अब इसमेंआग लग जाय, तो तेरे को चिन्ता नहीं होना चाहिए। तेरा होता, तो तुझे चिंता होती। अब मेरा राज्य है, और काम तुम करो। तो उसके समझ में आ गया। तो यही है, कि समर्पण कर दो, और समर्पण करके काम करो। अब यह मन तेरा नहीं है, मेरा मन हो गया है। अब मैं कहता हूँ कि इसे भजन में लगाओ। अब यह तेरा शरीर नहीं रह गया, अब मेरा हो गया है। अब मैं कहता हूँ, कि शरीर से सेवा करो–भजन करो। ऐसा होना चाहिए।

तो अब तुमको हानि होगी तो कोई मतलब नहीं। लाभ हो, तो कोई मतलब नहीं। अब तो तुम्हें, आज्ञा पालन करना है। इच्छा तो तुम्हारी है नहीं, न परिणाम की इच्छा है, न फल की इच्छा है। न कर्म की इच्छा है, न गैर कर्म की इच्छा है। अब तो तुम्हारा राज्य, है नहीं। अब तो दूसरे का राज्य है। तुम्हें कह दिया गया है, वह काम करो। अनासक्ति इसको कहते हैं। यह पंचम भूमिका। असंसक्ति पांचवी–आसक्ति का नाश। और आसक्ति का नाश तब होगा, जब यह होगा, कि यह हमारा शरीर है नहीं, यह भगवान का है। और उनकी आज्ञा से, मैं इससे काम ले रहा हूँ। मैं कुछ नहीं हूँ–न मेरी कोई इच्छा है, अनपेक्ष हिसाब से मैं कर रहा हूँ। इस तरीके से जो साधक चलते हैं। वो ठीक होते हैं।

- **आत्मा से भेंट तब**
- **मानस में मानस**
- **जीवात्मा – विभीषण**
- **निर्णय का क्षण**
- **ऐसे पढें रामायण**

जैसे स्वप्न में झूठे चित्र दिखाई पड़ते हैं। किन्तु यह अपने ही भीतर एक्शन रिएक्शन होता रहता है। अब स्वप्न में सर्प आया और काट लिया, डरते हैं, रोते हैं, चिल्लाते हैं और जाग गए, तो कुछ नहीं। तो इस संसार में रिएक्शन पर रिएक्शन होता है। जैसे एक कांच पर लाइट पड़ती है तो उस वक्त रिफ्लेक्शन आता है। फिर उस रिफ्लेक्शन की लाइट को दूसरे कांच में ले लो, तो उसका भी रिफ्लेक्शन बन जाता है। इस तरह बनते जाते हैं। तो हमारा तुम्हारा अंतःकरण ऐसा बना हुआ है, यह जल्दी समझ में आता नहीं है। इसलिए गोस्वामी जी ने सोचा कि इसका हम भरपूर प्रयास करके चित्रण कर दें। इस रामचरित मानस में इसी–अंतःकरण की गतिविधि–को कथा के माध्यम से लिखा है। कैसे यह काम करता है ? कैसे समाज है नहीं, और बन जाती है? कैसे हमको इससे लाभ हो सकता है ? और कैसे हम विकारों के द्वारा अपने अकल्याण की ओर चले जाते हैं ? इस तरह से दोनों ओर इसकी प्रवृति होती है, एक संसार उन्मुख और एक ईश्वर उन्मुख। इसी का चित्रण जैसा उनसे बन सका है, उन्होंने किया है।

तो बंदरों के प्रयास से जब सीता की खबर मिल गई। वैराग्य रूपी हनुमान जब साधक के हृदय में बैठा, साधक जब ध्यान में बैठा, और राग के स्थान पर वैराग्य को धारण कर लिया मन में फिर वह सूक्ष्म हो गया। ध्यान के माध्यम से अंतःकरण में प्रवेश कर गया। सुरसा ने उसे बहुत रोका । उससे छूटकर आगे गया, फिर सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करता है, तो सिंहिकाने रोका संकल्पों के द्वारा। उसे भी मारकर आगे, कारण शरीर में प्रवेश करने की स्थिति बन गई तो वहाँ लंकिनी ने बहुत रोका। उसे भी मारकर, कारण में प्रवेश किया। वहाँ विभीषण से भेंट हो गई। जीवात्मा का स्वरूप विभीषण का है। तो जब साधक तीनों शरीरों के स्तर की साधना पूरी करके, त्रिगुणातीत अवस्था को प्राप्त हो जाता है। तीनों गुणों से परे हो जाता है। तब आत्मा से भेंट होती है।

यह शरीर नरक है। कितना बढ़िया–बढ़िया पदार्थ दूध मलाई खाते हैं। लेकिन कंठ के नीचे उतर जाय, फिर कै कर दे, तो कोई देखेगा उधर। इससे भी बड़ा कोई नरक होगा क्या? यह शरीर का रूप रंग, चमक दमक इसी मल रूप में है–सुनी है लैला मजनू की कहानी? हमने कभी बताया था। तो गोस्वामी जी ने इन्हीं सब यथार्थ बातों का चित्रण किया है इसमें। और इसका नाम रखा है रामचरित मानस। राम जो सबमें रमा हुआ है। जो सर्वत्र है– कैसे उसे पाकर लोग, उसी का रूप बन जाते हैं ? कैसे उसे न पाकर यह दुनिया बना लेते हैं। रावण जैसी दुनिया बन जाती है। कहीं उसे पाकर अयोध्या जैसी दुनिया बन जाती है। शान्ति मिलने लगती है। दसों इंद्रियाँ जब ईश्वर उन्मुख हो जाती हैं, तो दशरथ इसका अध्यक्ष बन जाता है। और यह शरीर अयोध्या बन जाता है। अगर दसों इंद्रियॉ विषयों में आनंद लेने लगे, तो फिर यहाँ दशानन अध्यक्ष बनकर बैठ जाता है, और यही शरीर तब लंका बन जाता है। सब प्रकार की संसारी कामनाओं से भर जाते हैं जब हम, तब यह लंका

हो जाती है। विषय से लव लगाने का नाम लंका है। इस प्रकार मानस में शुरू में दो भिन्न–भिन्न तरीके के आधार बता दिये। फिर नाम की महिमा का चित्रण किया। जनम की भूमिका तैयार कर दी। अब साधक के हृदय में परमात्मा का अवतरण होने लगा। फिर विश्वास विश्वामित्र आ गया, तो तर्कना रूपी ताड़का समाप्त हो गई। तो जनकपुर आ गया–साधक को योगिक प्रक्रिया मिल गई। ध्यान रूपी धनुष को चढ़ाकर, शक्ति सीता मिल गई। अब आगे साधन प्रक्रिया मिल गई। चित्त रूपी चित्रकूट का चित्रण आ गया। फिर आगे अरण्यकाण्ड में बुराइयों का त्याग, और भलाइयों का ग्रहण करना। फिर किष्किंधा आ गया। और तब सुंदरकाण्ड। सुन्दरकाण्ड को सबसे अच्छा माना जाता है। बाहर की कथा के हिसाब से इसमें सुन्दरता नहीं देखने में आती। लेकिन यदि अन्तर्जगत में इसके प्रसंगों को घटाते चलें, तो हम देखेंगे कि साधना की उच्च से उच्च अवस्थाओं का चित्रण इसके प्रसंगों में आ जाता है। शायद है कि गोस्वामी जी ने इसी आशय से, इसका नाम सुन्दरकाण्ड कहा है। सीता की खोज में बन्दर मारे मारे घूम रहे हैं। लंका की कहानी इसमें जो आई है इन सबको बाहर से लें अगर, तो इसका नाम सुन्दरकाण्ड शायद ठीक नहीं बैठेगा। बंदर सीता की खोज में परेशान थे। एक विवर देखकर प्यास बुझाने की गरज से उसमें गए अन्दर। उन्हें वहाँ मार्गदर्शन मिल गया–मदद मिल गई, उस तपस्विनी के रूप में। तो साधक जब साधना की गहराई में पहुंच जाता है, तो उसे इष्टदेव किसी न किसी रूप में, मार्गदर्शन करने लगते हैं। और परमात्मा अपनी क्षमता से, साधक को राइज कर देता है। सम्पाती मिल जाता है। शक्ति के अनुसंधान का रहस्य वहाँ साधक पा जाता है। अब देखिए, वहाँ भी इष्ट की मदद पा गया। इस तरह स्टेप बाई स्टेप, साधक प्रगति करता जाता है। सीता की खबर पा गए, तो अभियान हो गया। समुद्र से राम ने प्रार्थना किया। रास्ता देने को, क्योंकि कुलगुरू है। यह सब युक्ति, आत्मा रूप विभीषण, अब साधक के पक्ष में अन्दर बताने लगा। यह संसार रूपी समुद्र है, इसमें विषय रूपी जल है। यह अनंत–अनंत समस्याओं वाला होने से बहुत विस्तृत है। साधक अपनी क्षमता से इसे सुखा सकता है–राम ने जब बाण संधान किया, तो आकर हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा। तो समझना चाहिए कि संसार प्रार्थना से कंट्रोल में नहीं आता। यम नियम रूपी नल नील की मदद लें। इंद्रियों का संयम रूपी सेतु बन जाय, तो सेना पार हो जाय–संसार की पकड़ से बाहर निकल सकते हैं। यम–नियम का पालन करो। इंद्रियों के विषय–उन्मुख काम जो हैं, ये डूबने वाले पत्थर हैं। जब यम–नियम का हाथ लग गया–सहारा मिल गया, तो सब काम ईश्वर उन्मुख होने लगे। अब ये विषय में लीन नहीं होते–तैरने वाले पत्थर बन गए। विषयों से चित्त हट गया तो इंद्रियों का संयम आ गया–सेतु बन गया। लंका पहुँच गए। अब वहाँ सब काम होते चले जा रहे हैं। तो यह सब गोस्वामी जी के स्वयं अनुभूत साधना का सांचा–ढांचा दिया गया है, मानस में। हमें इसी रूप में लेना चाहिए। अगर ऐसा लेकर साधना में लगेंगे, तो हमारा जीवात्मा रूपी विभीषण जो फंसा था विकारों के बीच–

'जिमि दशनन महं जीभ विचारी।'

वह भगवान को पा जायगा। अपने स्वरूप को पा जाएगा। राजा बन जायेगा। तो हम प्रसंग से हटकर ये जो चारों तरफ की बातें बताने लगते हैं–इसलिए कि तुम लोगों के अन्दर यह बैठ जाय, कि इस रामायण की कथा पढ़ने का सही लाभ तभी मिलेगा–जब हम इसे अपने अन्तःकरण से, एडजस्ट कर लें। हृदयंगम करें, इसे अपने अन्दर ढाल लें।

अच्छा, अंगद ने जब पैर जमा दिया। तो गोस्वामी जी कहते हैं कि संसार में हलचल मच गई। सब डांवाडोल हो गए, लेकिन देवी–देवता सब खुश हो गए। कौन डांवाडोल हो

गए? राक्षस जो माया क्षेत्र के आधार हैं। जो ईश्वरीय क्षेत्र के हैं, वो खुश हुए। साधक के अंदर भगवान के प्रति प्रगाढ़ अनुराग दृढ़ हो जाय, यही अंगद का पैर जमाना है। जब हृदय में ईश्वर का प्रेम जम गया, विजातीय पार्टी तो डांवाडोल होगी ही। अब उनका सफाया हो जाएगा–संसार के विषय विकारों का। और सजातीय खुश हुए। यह मन्दोदरी,साधक की बुद्धि को कहते हैं। जो समझाती रहती है रावण को, मोहग्रस्त मन को। लेकिन वह मानता नहीं है, हठी है, जिद्दी है। मोह की पकड़ जल्दी छूटती नहीं। मन्दोदरी बार–बार समझाती है–तो बुद्धि का काम है। बुद्धि हमेशा सजातीय पक्ष में रहती है, लेकिन पराधीन है। मोह की पत्नी बन गई है रावण की। तो कितना भी सजातीय धर्म हो उसमें, परन्तु रहेगी रावण के अंडर में ही। यह नियमावली है। परमात्मा रूपी पानी में, संसार रूपी बर्फ बन सकती है, यह नियमावली है–प्रकृति का कानून है। जैसे सोने का ज्ञान, जागने पर हो जाता है। लेकिन सोना पड़ेगा–वह छोड़ा नहीं जा सकता। जागने की क्षमता, हमें सोने से ही मिलेगी। यह नियमावली है। सूर्य से प्रकाश अभिन्न है। यह अनयोन्याश्रय दोष कहा जाता है वेदान्त में। इसलिए मंदोदरी राम का पक्ष हमेशा लेती है, और पत्नी है रावण की। यहाँ गावों में जब लड़ाई हो जाती है लोगों में। तो स्त्रियाँ अपने–अपने पुरुष के साथ खड़ी होती हैं, पति के दुश्मन का पक्ष नहीं लेती हैं। तो बाहरी लड़ाई में कभी ऐसा नहीं देखा गया है। और गोस्वामी जी की रामायण की लड़ाई में उल्टा है, कि स्त्री है रावण की और प्रशंसा करती है राम की। कहीं एक भी शब्द ऐसा नहीं पाओगे कि मंदोदरी कभी रावण की तारीफ किये हो। राम के ही पक्ष की बात करती है। अब बाहर तो ऐसा होता नहीं। स्त्रियाँ अपने पति का ही पक्ष लेती देखी जाती हैं। अगर दुश्मन का पक्ष ले कोई स्त्री, तो उसका पति उसे अपने पास रखेगा ही नहीं। निकाल बाहर करेगा। लेकिन रावण मंदोदरी को नहीं निकालता। तो इन बातों पर विचार होना चाहिए। मानस में ऐसे सैकड़ों प्रसंग हैं। जिन्हें बाहर से लेने पर, उनमें संगति नहीं बैठती है। तर्क आते हैं, जगह–जगह। समाज की गतिविधि से मेल नहीं खाते। इसलिए ये सब अन्दर की बाते हैं। अन्दर की बातों में हमारे मन–बुद्धि नहीं जाते। बाहर हम रचे–पचे हैं। बाहर की दुनिया के आकार–प्रकार, बात व्यवहार–ऐसे पैदा होते हैं, ऐसे ट्रैक्टर, ऐसे खेती, ऐसे यह–वह, सब जो करते देखते हैं, उसी में रचे–पचे हैं। उसी के अनुरूप हमारे मन –बुद्धि ढल गए हैं। यह दुनिया भूलभूलैया है। इसमें जबरदस्ती ये रूप–आकार बन गए हैं। और हम इसी में फंसकर रह गए हैं। यह दुनिया लखनऊ का भूलभूलैया वाला मकान है। जिसको गुरू (गाइड) से युक्ति मिल गई, वह तो इसमें से निकल पाता है। नहीं तो वहीं भटभटाता रह जाता है। तो भाई, इस दुनिया से अलग, एक दुनिया अपने अंदर की है। उसमें जिसकी समझ काम कर जाती है, वह फिर इस भूलभूलैया से निकल जाता है। गोस्वामी जी अपने अन्दर की दुनिया में विचरने वाले उच्च कोटि के महात्मा थे। इसलिए उन्होंने समझा और लिखा–अब हमें इसे समझने बताने में कोई दिक्कत नहीं आती, और तुम लोग जो नहीं समझते, उन्हें ये सब नट बोल्ट बैठाने में दिक्कत आती है।

रावण को विभीषण ने भी समझाया, और कहा कि जो मैं तुमसे कह रहा हूँ कि सीता को लौटा दो, राम से विरोध न करो, यह बात पुलस्त्य ऋषिने अपने शिष्य द्वारा कहला भेजा है–

ऋषि पुलस्त्य निज शिष्य सन, कहि पठई यह बात।।

लेकिन रावण नहीं माना। हित की बात नहीं माना, तो नष्ट हुआ। पुलस्त्य का संदेश वह है, कि जो बात हमारे नाभि से–अपने अन्दर से– उठकर आती है, और बुद्धि उसे ग्रहण कर लेती है। वह कल्याणकारी होती है। उसकी अवहेलना अहितकर होती है। अब यह प्रसंग

एक प्रकार से अंतिम निर्णय की अवस्था का है– भगवान की ओर जाना है या फिर संसारोन्मुख रहकर अपना सर्वनाश करना है। निर्णय लेना चाहिए।

विभीषण जो है वह परमातमा का रूप है, जीवात्मा। वह बता रहा है, यह बात। और जो इस शरीर में अन्वय व्यतिरेक युक्ति से चेतन का प्रतिबिम्ब है– अहंकार से युक्त, कि मैं बड़ा हूँ, मैं विद्वान हूँ, मेरी बराबर का कोई नहीं है– यह जो अहंकार है, इसमें अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब रावण का है। यह हृदय दरबार है, और मान्यता प्राप्त जो नीति के पुट हैं इसमें, वे माल्यवंत, प्रहस्त मंत्री हैं। इनके बीच परामर्श, हर व्यक्ति के हृदय में, हमेशा चलता रहता है, कि क्या करें? क्या न करें? ये समस्याएं ये संशय, ये विचार निरंतर आते रहते हैं। किसी का कहना रावण मानता नहीं। मतलब एक ऐसी अवस्था आती है, कि आदमी संसार के हाथों बिक चुका होता है। संसार की जितनी कल्पनाएं इच्छाएं हैं–पैसा की, बड़ाई की, घर की मकान की, काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वैष–वासना सबसे युक्त हो जोता है। फिर दूसरे को मान्यता नहीं देता। जब ऐसी स्थिति बन जाती है, तो रावण के जैसा बन जाता है। हर व्यक्ति के अन्तःकरण में, ये तत्व पाए जाते हैं–जो यहाँ बताए गए हैं। आत्मा रोकती–टोकती रहती है, कि ऐसा गलत काम न करो। परिणाम गलत आएगा। सही चलो। मन जब कहता है, कि विश्व के अधिपति बन जाएंगे, तो आत्मा हमें बताती है, कि ऐसा मत करो, भगवान से दूर हो जाओगे। न्यायोचित ढंग से चलो, मानवोचित तरीका अपनाओ, ऐसा न करो। यह आत्मा हमें हर प्रकार से समझाती रहती है, बताती है। विभीषण अन्तःकरण रूपी दरबार में, इस रावण के प्रभाव क्षेत्र में भी यह हमेशा सत् प्रेरणा देता रहता है। कोई माने या न माने। हमारे–तुम्हारे सबके अन्दर यह क्रिया होती रहती है, कोई माने या न माने। यहाँ पर यही चीज़ रावण के अन्दर आ रही है, कि जो तुमने अहंकार वश यह भगवान की शक्ति को छिपाकर रख लिया है, तुम्हें नष्ट कर देगी, तुम उस क्षमता को धारण नहीं कर सकते। राम से विरोध न पालो, वह सूर्यके समान है। जुगनू सूर्य के तेज के सामने ठहर नहीं सकता, सब तरह से कहता है, लेकिन रावण नहीं मानता। जो इस प्रकार आत्मा के निर्देशों का उल्लंघन करता है, उसे नष्ट होना पड़ता है। यह प्रकृति की आटोमैटिक नियमावली है। दूसरा कोई अस्त्र–शस्त्र उसको नहीं लेना पड़ता है। कृष्ण भगवान ने बहुत समझाया दुर्योधन को, कि झगड़ा न हो, कि सरलता से सुधर जाय। समझाया, कि पाण्डवों को आधा राज्य दे दो। युधिष्ठिर राजा भी रहा है, योग्य भी है। वह नहीं माना तो फिर कहा, 5 गाँव ही दे दो–वह भी मना कर दिया। फिर अन्त में बोले, अच्छा भाई। कहीं रहने भर की जगह दे दो। तो दुर्योधन ने कहा, सुई की नोक के बराबर भी भूमि नहीं दूँगा। अब देखो युधिष्ठिर तो कायदे पर चलने वाला था, और दुर्योधन अहंकारी था। वह कहता था कि जो मैं कहता हूँ, वही वेद–वाणी है। किसी दूसरे का कहना मैं कभी नहीं कर सकता। यह नीति है। ये दो विपरीत विचार, काल भेद से होते आए हैं। देवताओं और दैत्यों के बीच यही विचार–भेद था। राम और रावण संग्राम, कृष्ण–कंस का संघर्ष, सबके पीछे यही नीति काम करती है। केवल देशकाल का भेद है–नीति वही है। अलग–अलग पुस्तकें बन गई। अलग–अलग कहानी बन गई। पुस्तकों के नाम अलग हो गये। लेकिन मूलतः लड़ाई सद्विचार और असद् विचार की है। इसे सद्–असद् भावनाएं कहो, सद् असद् वृत्ति कहो अथवा अच्छाई बुराई कह लो। यह दोनों सबके अंतःकरण में होते हैं। काया का भेद है–कल्प–भेद है। नीति तो एक ही है। तो जो इंडिपेंडेंट संत हुए हैं, वे हैं, कि विभीषण की नीति को जिन्होंने स्वीकार कर लिया है। रावण के विचारों का हमेशा के लिए त्याग कर दिया है।

विभीषण ने इस अंतिम समय में, एक संदेशवाहक के रूप में, पुलस्त्य ऋषि की बात रावण से कही। पुलस्त्य–पुलह ये बड़े अच्छे ऋषियों के नाम हैं, जो सदैव एकरस रहते हैं। जो ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ देखते ही नहीं ऐसी स्थिति वाले महान आत्मा हैं। उनका संदेश दिया विभीषण ने। और पुलस्त्य के ही ये लोग वंशज हैं–उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती ।

उसी वंश–परम्परा के, ये लोग भी हैं, लेकिन रावण वगैरह ने इच्छाएं कर लीं। पुलस्त्य अनपेक्ष थे–महात्मा थे। शरीर तो सबके समान तत्वों से बने हैं। पहले ब्रह्मा हुए, फिर और हुए, ऋषि हुए, फिर ये लोग हो गये। करोड़ों हो गए। लेकिन नियमावली तो वही है। भगवान की कृपा, तो किसी शरीर पर होती है। विभीषण ने बड़ी आत्मयीता से रावण को समझाया, लेकिन वह नहीं माना। हमने कभी बताया था, कि जब राम ने युद्ध जीत लिया, तो सारे देवता ऋषि मुनि उनकी स्तुति करने आए। और राम ने इन्द्र से कहा, कि अमृत बरसा दो, जिससे ये सब जो युद्ध में मरे हैं, जीवित हो जायं। अमृत बरसाया इन्द्र ने, लेकिन– 'जिये भालु कपि नहिं रजनीचर'। भालू बंदर जीवित हुए, और राक्षस मरे के मरे रह गए। नहीं जिये। क्यों नहीं जिये ? क्योंकि दो पक्ष हैं–एक सजातीय एक विजातीय। एक सत्य का पक्ष, एक असत्य का। सत्य आत्मा का पक्ष, असत्य संसार का। सत्य का पक्ष, आत्मा का पक्ष सजातीयों का है, असत्य का पक्ष संसार का पक्ष विजातीयों का है। सत्य सनातन है अमर है, इसलिए उसमें जो रहेगा वह जियेगा। और जो असत्य–संसार में रहेगा, वह मरेगा। मरा ही है। क्योंकि संसार है ही नहीं। आत्मा सत्य है–जब आदमी गर्भ में रहता है, तब भी आत्मा रहती है। यह संसार और काम, क्रोध, लोभ, मोह ये सब विकार, तो पैदा होने के बाद हमें मिले हैं। इसलिए आत्मा सत्य है। संसार मिथ्या है। अमृत से नहीं जिये राक्षस। ये तो संसार से जीवन लेते हैं। आत्मा ही तो अमृत है। तो ये दोनों, साधक के अन्दर रहते हैं। दुर्गुण भी, सद्गुण भी। साधक को सद्गुणों का संग्रह करके, आत्मा के क्षेत्र में प्रवेश पाना है–दुर्गणों को छोड़कर, संसार से मुक्त होना है। सदाचार की नीति में ही परमात्मा, ऋषि, मुनि, महापुरुष, महात्मा सभी आ जाते हैं। सनक, सनंदन, सनत्कुमार सभी इसी नीति को लिए रहते हैं। और फिर ऐसी ग्रेविटी में आ जाते हैं। कि इसी में बने रहते हैं। वो संसार को देखते ही नहीं। काम, क्रोध, लोभ, मोह से मतलब ही नहीं रखते। इस नीति से अपने को इन्लार्ज करना है। और भगवान के पेट में डाल देना है, इस संसार को। और नहीं तो, जूझते रहो इसी में–अगर अपनी दृष्टि से तुम्हें लेना है।

गोस्वामी जी ने लिखा है– असकहि चला विभीषण जबहीं।

आयूहीन भए सब तबहीं ।।

विभीषण ने जहाँ इनका परित्याग किया, ये सब मृतप्राय हो गए। जीवात्मा तो निकल गई। अब ये मुर्दे हो गए। इन बातों से, समझ में आ जाना चाहिये कि यह संसारी समाज की पुस्तक नहीं है। यह राजनीति की या इतिहास की पुस्तक नहीं है। यह अध्यात्म की पुस्तक है। यह अन्दर की दुनिया का विश्लेषण करने वाली पुस्तक है। इसलिए विभीषण की नीति को धारण करना चाहिए। जहाँ विभीषण की धारणा बन गयी, तो काम बन गया। सबके अन्दर आत्मा है। उसका कभी नाश नहीं है–

'ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी।।'
'सो माया बस परेउ गोसाई। बंधेउ कीर मर्कट कीनाई।।'

बंधा हुआ है। शरीर में, माया–मोह में, फंसा हुआ है। लेकिन निर्लेप है। उसमें माया जा नहीं सकती। माया में फंसा है, तो भी माया उसे छू नहीं जाती। यह कला है उसमें, इसी को हमें पकड़ना है। इसकी धारणा दृढ़ करना है।

माया भ्रम मात्र है, इस मन का। जैसे बंदर ने लड्डू पकड़ लिया है, अब हंडी के संकरे मुँह से हाथ नहीं निकल रहा है। उसे भ्रम हो गया, कि कोई पकड़े है। लड्डू छोड़ दे, तो हाथ निकल सकता है। लेकिन अपने ही भ्रम से फंस गया है। तो यह भ्रम है भीष्म–इच्छामृत्यु है इसे। इच्छा के रहते यह जल्दी, मारा नहीं मरता। असत्य, जो है नहीं, उसे सत्य मान लेना–भ्रम है। जैसे मरूभूमि में जल, सीप में चाँदी, है नहीं। तो भी है। आकाश कुसुम, बन्ध्या–पुत्र है ही नहीं। वेदान्त भी कहता है।

तो विभीषण भगवान की शरण में गया। इतनी दूर तक जीवात्मा पर मोह का प्रभाव रहता है। वैराग्य रूपी हनुमान से भेंट हो जाय, तो फिर संसार से ठोकर खाकर, तिरस्कृत होकर, वह राम की शरण में आता है। आना चाहिए। यह जीवात्मा, परमात्मा का रूप है। मोहासक्त मन को यही राय देता है। मार्गदर्शन करता है। पर वह मानता ही नहीं। देखो महाभारत के युद्ध में भगवान कृष्ण अर्जुन का रथ हांकते थे। तो जब साधक ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाता है, तो भगवान हृदय में बैठकर, बागडोर संभाल लेते हैं। पग–पग पर संभालते हैं, युक्ति बताते हैं, रक्षा करते हैं–लक्ष्य तक पहुँचाते हैं। जब कौरव पांडव आमने–सामने सेनाएं लेकर डट गये मैदान में। तो अर्जुन के रथ को लाकर दोनों सेनाओं के बीच खड़ा कर दिया। अर्जुन ने पितामह भीष्म आदि सगे संबधियों को देखकर युद्ध करने से मना कर दिया। धनुष फेंक दिया। मोह का प्रभाव था, अभी तक उसके मन में। श्रीकृष्ण ने उसे ज्ञान कराया, कि इस मोह रूपी दुर्योधन पर विजय पाना है। तो भ्रमरूपी भीष्म, द्वैत–द्रोणाचार्य, कर्मरूपी कर्ण सभी को मारना पड़ेगा। तुम्हारा अपना भ्रम ही भीष्म है। यह सब हैं ही नहीं। मरे ही है। इसलिए जो तीनों कालों में है ही नहीं, उसके लिए तुम्हारा शोक करना ठीक नहीं है। जो तीनों कालों में सत्य है, वह आत्मा जो अचिन्त्य है, अज है, अविनाशी है, शुद्ध है, बुद्ध है उसे देखो। वही तुम्हारा स्वरूप है। तुम्हें इस प्रकार करना उचित नहीं । तो यह साधक के अंदर की कहानी है। आत्मा ही कृष्ण है, साधक का अनुरागी मन ही अर्जुन है। उसे सब बताता है भगवान। और विजय करा देता है। साधना के लक्ष्य तक पहुँचाता है।

तो विभीषण ने परित्याग कर दिया जब रावण का तो राक्षस सब आयुहीन हो गए। मर गए। मरे ही हैं, ये अन्तःकरण के विकार रूपी राक्षस। ये हैं ही नहीं। अच्छा बताओ, काम को किसी ने देखा, क्रोध को देखा, मोह को देखा, लोभ को देखा कभी, कहाँ रहता है, कैसे खाता है, कैसे सोता है ? देखा कभी? जो है नहीं उसको छोड़ो,जो है उसे पकड़ो, तो सही एडजस्टिंग हो जायगी। इसी का नाम ज्ञान है। इसी का नाम गीता है, इसी का नाम वेद है। यही रामायण कहती है।

तुम्हारे अन्दर छः दुश्मन हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर। और छः शास्त्र भी हैं। महात्माओं से हमें मिले हैं। इनसे इन विकारों को काटो। यही शास्त्र, शस्त्र हैं। दस इंद्रियाँ, पाँच प्राण और मन, बुद्धि अहंकार। ये अठारह तत्व हैं अन्तःकरण के। इनको पूर्ण करो। ये अपूर्ण हैं। तो ऋषियों ने इसके लिए, अठारह पुराण हमें दिये हैं। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार–चार विभाग हैं अन्तःकरण के। तो चार वेद हैं। इनसे इन्हें शुद्ध करो। शुद्ध कर लोगे, तो ईश्वर आ जायगा। अशुद्ध रखोगे, तो संसार तो है ही।

इस तरह से विभीषण भगवान के पास पहुँच गया। पैट बदल दिया। गाड़ी सही लाइन पर आ गई। सिग्नल मिल गया–'जातहिं राम तिलक तेहि सारा।'

और उधर रावण वगैरह तो–'मरे के मरे रह गए। पड़े के पड़े रह गए।'

तो कुंजी यहाँ है (नाभि में)। यह विष्णु लोक है, कारण शरीर। यहाँ से संकल्प उठते हैं, फिर सूक्ष्म शरीर में आकर हृदय में अंकुरित हो जाते हैं, कंठ में आकर वाणी के रूप में वही संकल्प बाहर आ गया और कार्य रूप में परिणत हो गया। कुल मामला इतना है, और यह सबकुछ है नहीं। लाभ–हानि, अच्छा–बुरा, जन्म–मृत्यु ये दो शब्द मात्र हैं। इनका मतलब कुछ नहीं, वैल्यू कुछ नहीं है। हमने वैल्यू बना लिया है। क्योंकि समझते नहीं है। हम संसार रूपी जंगल में भटक गये हैं। हम भ्रम में पड़ गए हैं। हम चकाचौंध में पड़ गए हैं। हम रूखड़ी नाक गए हैं। हमारा रास्ता छूट गया है। हम जाते हैं उस तिराहे तक, और फिर घूमकर उसी जंगल में आ जाते हैं। यह सब झगड़ा तैयार हो गया है। और यह सब किया है, हमने। हमने अपने मन, बुद्धि इंद्रियों का दुरूपयोग किया है–इसी से यह झगड़ा खड़ा हो गया है। इंद्रियाँ शब्द, रूप, रस, स्पर्श, गंध इन विषयों में दौड़ रही हैं। मन वासनाओं में फंसा है। बुद्धि संसार में लग रही है–ये सब अधोगामी हो गए हैं–उर्ध्वमुखी होना चाहिये। यही करना हमारा दायित्व है। गोस्वामी जी ने मानस के इस प्रसंग के द्वारा हमें यही बोध कराया है कि विभीषण रूपी जीवात्मा जब भगवान की ओर जाने का निर्णय कर लेता है तो उसके मन, बुद्धि इंद्रियों की गति उर्ध्वमुखी हो जाती है। उसकी दुनिया बदल जाती है। विषय विकार निर्जीव हो जाते हैं, संसार निस्सार हो जाता है। पाप नष्ट हो जाते हैं। हैं ही नहीं। उधर मुड़े तो। भगवान कहते हैं–

सन्मुख होइ, जीव मोहिं जबहीं। जन्म कोटि अघ नासउं तबहीं।।

तो जो मूल निर्णय है– समर्पण का, वह सबसे महत्वपूर्ण है। उधर भगवान तो हाथ पसारे बैठे हैं–

आए शरण तजौं नहि ताही। कोटि विप्र वध लागै जाही।।

जो भी हो, जैसा भी हो, आए तो। हाँ तो, यहाँ तक साधक का काम है, आगे का काम भगवान संभाल लेते हैं।

भगवान की शरण में आते ही, वह राजा हो जाता है। विभीषण को राम ने जाते ही राजतिलक कर दिया– 'जातहिं राम तिलक तेहि सारा।'

और उसे महाराजा! महाराजा! कहकर ही संबोधित करते रहे हमेशा। खुद पीछे हो गए, उसे आगे ले लिया। त्राहिमाम् करके गया था, महाराजा हो गया– यही नियम है,।

'राम ते अधिक रामकर दासा।'

आगे की कथा में मिलेगा कि विभीषण के बिना पूछे, राम ने एक कदम नहीं रखा। आगे–आगे रखा। और जहाँ संकट आया तो–

तुरत विभीषण पाछे मेला। सनमुख राम सहेउ सोइ सेला।।

इस तरह से भगवान के यहाँ की रीति–नीति साधक की समझ में बैठ जाय, और निर्णय सही आ जाय, तो कल्याण का मार्ग मिल जाता है। और नहीं तो भजन करते रहो। ऐसे तो विभीषण जब लंका में था, तब भी भजन कर रहा था–लेकिन काम, क्रोध, लोभ, मोह के बीच फंसा पडा था। दस पैसा राम का था, नब्बे पैसे रावण का था। दस पैसे की क्या वैल्यू होती है कुछ? इस तरह से तो बहुत लोग भजन करते हैं–परिणाम नहीं आता। परिणाम के लिए समर्पण होना चाहिए। सौ प्रतिशत समर्पण। संसार हमें नहीं चाहिए। जब तक बिल्कुल

निश्चय नहीं कर लिया जाएगा, कि अब हमें भगवान चाहिए–अब हम भगवान की शरण में जाएंगे, चाहे हम मर जायं– तब तक रास्ता नहीं मिलता–भटभटाते रहो।

हर साधक के अन्दर बैठा है, जीवात्मा रूपी विभीषण। उसे यह निश्चय करना चाहिए, कि अब तक मोह रूपी रावण को, मैं अपना भाई मानता रहा, लेकिन नासमझी के कारण। अब मेरी समझ काम कर गयी, अब मैं इसका परित्याग करता हूँ। तो जिस रोज साधक, ऐसा दृढ़ निश्चय करके भगवान की शरण में अपना सम्पूर्ण समर्पण कर देता है, तो तत्काल भगवान उसे मिल जाते हैं। उसे गोद में ले लेते हैं। ईश्वर के सामने हो जाये। क्लियर हो जाय। इच्छाओं से रहित हो जाय। कोई कामना न रह जाय संसार की। गीता में कहा गया है– 'अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदा सीनो गत व्यथा।' इच्छायें न रह जायं। गोस्वामी जी ने भी मानस में इसी बात को अपने ढंग से कहा है कि–अनारम्भ अनिकेत अमानी। ऐसा होना चाहिये साधक को। जिस रोज ऐसा हो जायगा–भगवान उसे गोद में बैठा लेगा। ऐसे भक्तों के लिए भगवान हाथ फैलाए बैठे रहते हैं।

अब देखो जब विभीषण गया, तो उसे घेर लिया था बन्दरों ने। सुरति–सुग्रीव, वैराग्य हनुमान, अनुराग अंगद, नियम, नल नील आदि सजातीयों ने। विजातीय राक्षसों के बीच का मानकर, घेर लिया। सुग्रीव ने कहा कि यह रावण का भाई है, हमारा भेद लेने आया है–बांध लिया जाय। लेकिन भगवान ने कहा–'मम पन शरणागत भयहारी।'

आए शरण तजौं नहिं ताही। कोटि विप्र वध लागै जाही।।

यह शुत्र–मित्र, पुण्यात्मा, पापात्मा संसार की नीति है। भगवान का नियम कानून दुनिया से अलग है। जैसे सारी नदियाँ समुद्र में आती हैं–समुद्र किसी को मना नहीं करता, कि मुझमें न मिलो। ऐसे ही भगवान के दरबार में जो भी जाता है–स्वीकार कर लिया जाता है। हाँ, जाने वाले को, पूरे मन से जाना चाहिए– यहाँ न काम अधूरों का। तो समुद्र रूपी ईश्वर है, भाविक भक्त रूप नदी नालों को अपने में समाहित करता है। यह उसका धर्म है, गुण है।

परमात्मा जो सबसे परे है, वह सबसे निर्मल होता है। जो प्रकृति के गुणों के अन्दर की बातें हैं, वो निर्मल नहीं हो पाती हैं। तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण ये तीन घाटियाँ हैं। इन घाटियों में रहने वालों की शुद्ध वृत्ति होती नहीं। कभी बुरे विचार, कभी भले विचार। इन तीनों घाटियों को पार करके, त्रिगुणातीत जो हो जाता है, वह एक परिणाम माना जाता है। एक सिद्धान्त माना जाता है। एक नियमावली मानी जाती है,। एक सत्य माना जाता है।

प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी। ब्रह्म निरीह विरज अविनाशी।।

वह प्रकृति से परे है। सबसे परे है, इनमें किसी में उसका चित नहीं लगता। इसलिए निर्मल से भी वह निर्मल है। एकरस है, व्यापक है, शुद्ध है, बुद्ध है, अजन्मा है, अविनाशी है–ऐसा जो स्वरूप है, उससे हमें मिलना है। जिस रोज साधक के अन्दर ऐसी रुचि आ जायगी, लगन जाग जायगी, लव लग जायगी। उधर से रावण की ठोकर लगी, तो भगवान की शरण में आने का संयोग बन जायेगा। जैसे विभीषण का बन गया। विभीषण हमारे तुम्हारे सबके अन्दर जीवात्मा के रूप में बैठा है। रावण भी यहीं है, मोह के रूप में। विभीषण ने रावण को विनयपूर्वक समझाया कि इस सीता रूपी शक्ति को, उसी को दे दो, जिसकी यह है। यह तुम्हारी नहीं है। अनधिकार चेष्टा करना ठीक नहीं है। यह उसकी शक्ति है, जो सर्वेश्वर है। तो इस तरह से यह जीवात्मा ही सब बताता है। उसी को यह ज्ञान है, कि संसार के पदार्थ, धन वैभव,

ऐश्वर्य सब हमारे नहीं हैं, परमात्मा के हैं। इस दुनिया का वही मालिक है। हम अगर इसके पदार्थों को अपना मानकर भोगते हैं, तो रावण का ही काम करते हैं। मोह के कारण ही मेरा है–मेरा है का भाव आता है। भगवान की सम्पत्ति का उपभोग, बिना उसके आदेश के करना, चोरी करने के समान है, डाका डालना है। बताइये, सब खाते हैं, पीते हैं, खेती, व्यापार करके, वैज्ञानिक तरीकों से धरती, आकाश, हवा, पानी सबका उपभोग करते जा रहे हैं। क्या कभी पूछा किसी ने भगवान से ? क्या किसी ने अप्लीकेशन दी भगवान के यहाँ, कि हम आपकी यह अमुक वस्तु लेना चाहते हैं। सब मेरा है, मानकर करते जा रहे हैं। यही तो कर रहा था, रावण। लंका का ऐश्वर्य भोग रहा था, अपना मानकर। ईश्वर की मान्यता उसके यहाँ थी नहीं। इसी प्रकार से अगर हम भी मेरा है–मेरा है, यह सब मैं कर रहा हूँ, मैं ऐसा विद्वान हूँ, मेरा ऐसा प्रभाव है यही सब करते रहते हैं। भगवान को ताक में रखे बैठे हैं। मेरा–मेरा में ऐंठे हैं, तो समझना चाहिए हमारे अन्दर रावण का निवास हो गया। ऐसा यदि हम करते हैं–तो सिद्धान्त विरुद्ध हो गया। फिर देखते हो पैसे वालों को, कभी रेड पड़ जाती है, आयकर वाले आ जाएंगे, चोर–डाकू आ जाएंगे भूख गायब हो जायगी, मुकदमा चल जायगा, नींद खराब हो जायगी, लड़का–लड़की बिगड़ जाएंगे, पचास बीमारी आती है। पैसे वाले परेशान घूमते हैं। पैसे वालों से पूछो– इनकी नानी मरी हुई है। ऐसा क्यों है? कि बिना ईश्वर की इजाजत लिए हुए, बगैर उसकी परमीशन के बगैर काटखता किए, हम उपयोग कर रहे हैं। हमारे ऋषियों मुनियों ने इस सिद्वान्त को समझा था। इसलिए जन्मते ही विरक्ति भाव, उनमें जागृत रहता था, और वह भाग जाते थे। घर से निकल जाते थे। भजन भाव द्वारा जब भगवान को प्रत्यक्ष कर लेते थे, तबफिर उसी ईश्वर के आदेश से संसार के कार्य भी करते थे। गृहस्थी भी करते थे। गुरूकुल चलाते थे। और भी सब काम करते थे। लेकिन ईश्वर के आदेश से, उसी का मानकर करते थे। उसी का दिया उपभोग करते थे। जो जानते हैं, वह आज भी ऐसा करते हैं। गर्ग, गौतम, वशिष्ठ, सांडिल्य, अत्रि आदि सब गृहस्थ ऋषि थे। कुछ विरक्त रहते थे इनमें नारद, सनकादिक, शुकदेव आदि के नाम हम तुम सब जानते हैं। शादी करते हुए उन्हें कोई दोष आज तक नही लगा। वही क्षमता वीटो, विलपावर, उनमें बराबर बनी रही। आजकल वैज्ञानिक लोग अरबों–खरबों रूपए लगाकर, एटम बम बनाते हैं। उसके रखरखाव में अरबों खर्च होता है। फिर उसके प्रयोग के लिए वायुयान वगैरह में भी खर्च होता है। और उन ऋषियों ने ध्याता, ध्यान, ध्येय के रूप में, बहुत पहले से इन न्यूट्रान, प्रोट्रान और इलेक्ट्रान की एटामिक इनर्जी से भी मालीक्यूल आत्मिक शक्ति का अनुसंधान कर लिया था। वाणी निकली, कि विध्वंश हुआ। वाणी निकली, और काम हुआ। अच्छा काम हो सकता है, बुरा काम हो सकता है। आज हम उन्हीं ऋषियों की संताने हैं। दीन–हीन दरिद्र की नाईं भटभटा रहे हैं। थोड़ा खाने–पीने को घर में है, तो अकड़े फिरते हैं। अन्दर से खोखले हैं। क्यों नहीं करते हम, अपने पूर्वजों की विद्या का अनुपालन ? क्योंकि –

'सद्ग्रंथ पर्वत कंदरन्हि महुं जाय तेहि अवसर दुरे।'

सभी पर काम हावी है। कैसे करें? सही बात बताने और सुनने समझने वाले भी जल्दी नहीं मिलते–करने वाला तो कोई–कोई ही है। हम कहते हैं कि लोग रोज रामायण पढ़ते हैं। फिर भी नहीं समझते। क्योंकि तुलसीदास की जो समझ, इस मानस में निहित है– समाज में रह नहीं गयी। गिरि–कंदराओं में छिप गई है। इसी मानस में–खोजबीन करें, तो मिलेगी। लोग तो कहानी पढ़कर मनोरंजन करते हैं। एक सोने की नगरी लंका थी–रावण वहॉ का राजा था। बड़ा विद्वान था, दस सिर थे उसके। कुम्भकरण उसका भाई था, मंदोदरी स्त्री थी,

यह लड़का था–ऐसा करता था, वैसा करता था। बस ऊपर–ऊपर रह गए। और वह समझ छिपी है, गहराई में। बताने वाले बता पाते नहीं। सुनने वाले भी सुनते जा रहे हैं। न कोई तर्क करता है। रावण के दस सिर थे। तर्क करना चाहिए। न उसके बाप दादा के दस सिर थे। न फिर लड़कों बच्चों के हुए। क्या आज तक कोई ऐसा आदमी फिर से हुआ? वंशानुक्रम में तो होना चाहिए। बस रावण हुआ। तो सच्चाई यह है, कि यह मानस हमारे खुद के अन्तःकरण का नाटकीय रूपांतरण है। देखिए कितना अच्छा कम्पोजीशन किया है गोस्वामी जी ने। दसों इंद्रियाँ जो विषय में लगी हैं, यही रावण के दस सिर हैं। दसों इंन्द्रियाँ विषयानन्द में लिप्त हैं इसलिए इसे दशानन कहते हैं। मेरा–मेरा का जो भाव है मोह, यही रावण है। जब हम मेरा है–मेरा है की भावना से संसार के पदार्थों का भोग करने में प्रवृत्त हो जाते हैं, तो हमारा मानस (अन्तःकरण) रावण का घर बन जाता है। भोग में बाधा आती है, तो क्रोध कुंभकर्ण भी पैदा हो गया अंदर। लोभ, नारान्तक पैदा हो गया, काम मेघनाद हो गया, इच्छा अक्षय कुमार, मोहग्रस्त बुद्धि मंदोदरी की, ये सब संताने हैं। ईर्ष्या, द्वैष, बैर, विरोध ये सब त्रिशिरा खर, दूषण हमारे अन्दर अपनी–अपनी छावनी बना लेते हैं। फिर इनका अनन्त विस्तार हो जाता है। मन रूपी मय दानव द्वारा निर्मित शरीर की आशक्ति रूपी लंका, इस रावण की राजधानी बन जाती है–मोह हमें आच्छादित कर लेता है। हमारी आत्मा ही विभीषण है। इन विकारों के बीच फंसा पड़ा है। पद दलित हो रहा है।

गोस्वामी जी ने विनय पत्रिका में इसको खोलकर लिख दिया है–

'वपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंका दुर्ग,
रचित मन मय दनुज रूपधारी।
विविध कोशौध, अतिरूचिर मन्दिर निकर,
सत्व गुण प्रमुख त्रैकटककारी।।
कुणप अभिमान सागर भयंकर घोर,
विपुल अवगाह दुस्तर अपारं।
नक्र नागदि संकुल मनोरथ सकल,
संग संकल्प वीची विकारं।।
मोह दशमौलि तद्भ्रात अहंकार,
पाकरिजित काम विश्राम हारी।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट,
क्रोध पापिष्ठ विवुधान्तकारी ।।

.....

जीव भवदंघ्रि सेवक विभीषण बसत,
मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिन्ता।
इत्यादि।

विनय का यह पद,गोस्वामी तुलसीदास के आध्यात्मिक अनुसंधान का रहस्य खोल देता है। रामायण पढ़ने वालों को इस रहस्य से परिचित ज़रूर होना चाहिए।

इस तरह से ये सब काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वैष, ये सब बड़े–बड़े विकार हमारे तुम्हारे सबके मन में भरे रहते हैं। इन विकारों से ग्रस्त रहता है जीव। यह जीवात्मा ही विभीषण है। यह आत्मा परमात्मा का अंश है–उसी ओर इसकी प्रवृत्ति रहती है। यह उसी का स्वरूप है। निर्लेप है। आकाश से भी सूक्ष्म और व्यापक है। आत्मा पारदर्शी होती है, यह

कोई पदार्थ नहीं है। जैसे यह आकाश है। आकाश से भी सूक्ष्म होता है महत्तत्व। महत्तत्व से भी सूक्ष्म प्रकृति और प्रकृति से भी निर्मल और सूक्ष्म आत्मा होती है। उसको इस तरह समझो। क्या यह जलेगा ? पानी से गीला भी नहीं होगा। इस तरह से आत्मा निर्लेप है, निरवयव है, निराकार है, एकरस है। इसका प्रतिरूप विभीषण को बताया है, गोस्वामी जी ने। मय दानव ने लंका को बनाया है। मैं कहते हैं अहंकार को। मैं–मेरा की इस माया से घिरा, आशक्ति रूपी लंका में यह जीवात्मा विभीषण है। इसे हर साधक को अपने में ठीक से बैठा लेना है, और विभीषण की मदद करना है। जीवात्मा हमारा स्वरूप है। हमेशा उसी सत्य की ओर जाना चाहता है। हमारे शरीर के अवयवों को ताकत देता है, सबको प्यार देता है, नीति बताता है और शान्ति के रास्ते पर चलना चाहता है। लेकिन इसी लंका में दुष्टों से घिरा पड़ा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, आदि विकार उसे उधर जाने नहीं देते। इन विकारों के बीच अशान्ति रहती है क्योंकि ये क्षर हैं। क्षण–क्षण मैं उपजते–विनशते रहते हैं, असत्य हैं। शांति तो वहाँ है जहाँ स्थायित्व है। जो सदा एकरस है, सत्य है, वह आत्मा का स्वरूप है। वह स्थिति बनती नहीं। जब तक हम असत्य को पकड़े रहेंगे, विकारों से भरे रहेंगे, माया में पड़े रहेंगे। इसे हटाना होगा। विभीषण चला गया, तब भगवान मिल गए, राजतिलक हो गया। लेकिन वह जीवन भर लगा रहा, प्रयास करता रहा, तब सफल हुआ। इसका नाम है साधना। तो हम ईश्वर का भजन करने वालों से कहना चाहते हैं, कि तुलसीदास संत थे, महापुरुष थे। भजन साधन सम्पन्न महात्मा थे। उनकी बातों को हमें गम्भीरता से लेना चाहिए। अपने अर्थ में लेना चाहिए। ईश्वर के अर्थ में लेना चाहिए। संसार के अर्थ में लेंगे, तो अभी रामायण पढ़ने पर लंका अलग, अयोध्या अलग खड़ी हो जायगी। कल्पना में आ जायगी। हमारा मन बाहर आ गया। क्या लाभ मिला ? इसलिए इन सारे प्रसंगों को अपने अन्तःकरण में उतारते चलो। उनको सही ढंग से नट बोल्ट से कसते चलो–एडजस्टिंग करते चलो। तब रामायण पढ़ने का सही लाभ मिलेगा।